LIMITED, NEW DELHI

295 **DEBIT**

f .... 20........

Vr. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH Rs.	CASH P.	TOTAL Rs.	TOTAL P.

GOODWILL INDIA

CREDIT

CASH BOOK for ....

Receipt & Vr. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH Rs.	CASH P.	TOTAL Rs.	TOTAL P.

श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला १६१

॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(AN ENCYCLOPAEDIA OF INDIAN BOTANYS & HERBS)

(पहला भाग)

लेखक—

श्री चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

अखिल भारतीय आयर्वेद [illegible]

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१६१

॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(AN ENCYCLOPAEDIA OF INDIAN BOTANYS & HERBS)

(पहला भाग)

[संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण]

लेखक—

श्री चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'



चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१

१९७०

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : पञ्चम, वि० सं० २०२६
मूल्य : सम्पूर्ण १–१० भाग रु० ४०–००
प्रत्येक भाग रु० ५–००

APPROVED & RECOMMENDED BY

The Inspector General of Forests
Central Government New Delhi.

For All Chief Conservators of Forests
Circular No...7-3-53

The Chief Conservators of Punjab, Himachal Pradesh & Madhyabharat.

For All Divisional Forest Officers
of Above Provinces

The Director of Medical Deptt. Central Government
The Director of Education Deptt. Madhyabharat

For All Inter College & High School Libraries
Order No 3/8/53

The Director of Education Deptt. U. P.

For All Degree Colleges

P. O. Chowkhamba, Post Box 8
Varanasi–1 (INDIA)
1970
Phone : 63145

प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी–१
फोन : ६३०७६

विषय-प्रवेश

वनस्पति-विज्ञान की उत्पत्ति और उसका विकास

(ग्रन्थ को पढ़ने के पूर्व इस विवेचन को पढ़ना विशेष लाभदायक होगा)

(१)

जब से संसार के अन्दर मानव-शरीर की उत्पत्ति हुई तब से ही रोग की भी उत्पत्ति हुई है, अतएव रोग की उत्पत्ति का इतिहास भी मनुष्य-शरीर के इतिहास के साथ ही प्रारम्भ होता है और जब से रोग की उत्पत्ति हुई तभी से मनुष्य उसको दूर करने के उपायों की खोज करने लगा और तभी से उसके ये उपाय चिकित्सा-शास्त्र की तरह प्रकट होने लगे, अतएव यह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि चिकित्सा शास्त्र का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव-जाति का इतिहास। जिस समय मानवीय विचारों को लिपि-बद्ध करने के लिये लिपियों का आविष्कार भी नहीं हुआ था उस समय भी ओषधि-विज्ञान के तत्त्व मानव जाति में विद्यमान थे। मगर लिपिबद्ध न होने के कारण उनका कोई पता नहीं है।

मनुष्य के विचारों को लिपिबद्ध रूप में हम सबसे पहिले संसार के पुरातन ग्रन्थ ऋग्वेद के अन्दर देखते हैं। इस ग्रन्थ की रचना पुरातत्त्ववेत्ताओं के मतानुसार ईसा के ३५०० वर्ष पूर्व से १८०० वर्ष पूर्व तक किसी समय में हुई मानी जाती है। यह ग्रन्थ सोमवृक्ष नामक ओषधि का बड़ा ही कौतूहलपूर्ण परिचय हमको देता है। यह सोम वनस्पति क्या वस्तु है, इसका ठीक २ अनुसन्धान अभी तक नहीं हो पाया है, पर प्राचीन ग्रन्थों से मालूम होता है कि यज्ञ इत्यादि पवित्र कार्यों के समय में इस वनस्पति का उपयोग होता था। आर्य लोग इसे उत्तेजक पेय पदार्थ के रूप में उपयोग में लेते थे। धीरे-धीरे यह चिकित्साद्रव्यों की तरह भी काम में आने लगी और इसके पश्चात् दूसरी वनस्पतियों का भी उपयोग होने लगा।

अथर्ववेद, जिसकी रचना ऋग्वेद के पश्चात् हुई है उसमें जड़ी-बूटियों का और भी अधिक विस्तृत वर्णन पाया जाता है। मगर उस समय की पद्धति के अनुसार उन वनस्पतियों का उल्लेख जादू-टोने के रूप में किया गया है।

ज्यों २ ओषधि-विज्ञान के ज्ञान का विस्तार होता गया त्यों २ इस विषय की महत्ता अधिकाधिक लोगों के ध्यान में आने लगी और क्रमशः इस विज्ञान ने एक स्वतन्त्र शास्त्र का रूप धारण कर लिया जिसका नाम आयुर्वेद हुआ।

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार इस आयुर्वेद के पिता स्वयं ब्रह्मदेव हैं और उन्होंने इस ज्ञान को मनुष्यजाति में प्रचार करने के लिये दक्ष प्रजापति को दिया। दक्ष प्रजापति के पश्चात् आयुर्वेद के इतिहास में अश्विनीकुमार नामक दो भाइयों का नाम आता है जो इस विज्ञान में अत्यन्त निपुण और सिद्धहस्त थे। च्यवन ऋषि को पुनर्यौवन देना, दक्ष प्रजापति के कटे हुए सिर को जोड़ देना, युद्ध-क्षेत्र के अन्दर घायलों का उपचार करना, दाँतों के गिर जाने पर पुनः दाँत उगा देना, राजयक्ष्मा को मिटा देना, कटी हुई टांग के स्थान पर लोहे की टांग जोड़ देना, इत्यादि अनेक आश्चर्यजनक काम जड़ी-बूटियों की सहायता से इनके द्वारा सम्पन्न हुए थे।

इनके पश्चात् आयुर्वेद के इतिहास में महर्षि आत्रेय और धन्वन्तरि का नाम आता है जिनमें से पहिले चरक-सम्प्रदाय के स्थापक और दूसरे महर्षि सुश्रुत के गुरु थे।

महर्षि चरक और सुश्रुत आयुर्वेद के स्तम्भरूप में प्रसिद्ध हुए। महर्षि चरक की चरक-संहिता और महर्षि सुश्रुत की सुश्रुत-संहिता आज भी आयुर्वेद-विज्ञान की ऐसी चमकती हुई कलाएँ हैं जिनका प्रकाश समय के प्रहारों से भी मन्द नहीं हो सकता। सुश्रुतसंहिता में चिकित्सा के साथ-साथ सर्जरी अर्थात् शल्य-शास्त्र और शस्त्र-चिकित्सा के ऊपर बहुत उत्तम विवेचन किया गया है। इसी प्रकार चरक के अन्दर चिकित्सा-विज्ञान के विषय में अत्यन्त विस्तृत और शास्त्रीय विवेचन है। इस ग्रन्थ के सप्तम अध्याय में वामक और विरेचक ओषधियों के सम्बन्ध में और

बारहवें अध्याय में भैषज्यतत्वों के सम्बन्ध में विद्वत्तापूर्ण वर्णन किया गया है। साधारण ओषधियों को महर्षि चरक ने ४५ भागों में विभाजित किया है। इन ओषधियों को उपयोग में लेने की विधियों का भी उसमें पूर्णतया उल्लेख किया गया है। काढ़ा, शीतनिर्यास, चूर्ण, गोली, अर्क, अवलेह, तेल, घृत, भस्म, रसायन इत्यादि अनेक रूपों से ओषधियों का प्रयोग करने की वैज्ञानिक विधियों का उसमें उल्लेख किया गया है। बहुत से रोगों के लिये सूचीवेध (इन्जेक्शन) चिकित्सा का भी इसमें वर्णन किया गया है। इस वर्णन को देखने से उनके वैज्ञानिक ज्ञान का पूर्ण परिचय हम लोगों को मिलता है।

सुश्रुत-संहिता के अन्दर हमको करीब ७०० वनस्पतियों का उल्लेख मिलता है। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि ये सब वनस्पतियाँ भारत की पैदाइशी नहीं थीं। उन दिनों भारत के अन्दर बाहर से भी वनस्पतियाँ आती थीं। पुराने समय में भारत-वासियों का दूसरे देशवालों के साथ ओषधियों का व्यापार होता था। मुलेठी जो कि इस देश में पैदा नहीं होती थी, एशिया माइनर और मध्य एशिया से आती थी। इसका उल्लेख सुश्रुत और चक्रदत्त इत्यादि ग्रन्थों में पाया जाता है और आयुर्वेदिक नुस्खों के अन्दर भी यह ओषधि काम में ली जाती थी।

इस काल से लगाकर भारत पर मुसलमानी आक्रमण होने तक हिन्दू-चिकित्सा-काल के चार भेद किये जा सकते हैं।

(१) वैदिककाल (२) मौलिक अन्वेषण और प्रसिद्ध ग्रन्थकारों की उन्नति का काल (३) तन्त्र, सिद्ध और संकलन का काल (४) अवनति और पुनः-संचय-काल। इनमें से दूसरे और तीसरे कालों के अन्दर आयुर्वेदीय चिकित्सा की धाक संसार के सभी सभ्य देशों में फैल गई। संसार की सभी सभ्य जातियां हिन्दुओं से वनस्पति-शास्त्र और चिकित्सा-शास्त्र का ज्ञान उपार्जित करने के लिये उत्सुक हो गई। ग्रीस, रोम इत्यादि देशों की ओषधियों पर हिन्दू-चिकित्सा-शास्त्र का बहुत प्रभाव पड़ा।

सिकन्दर महान् के आक्रमण के समय हिन्दू वैद्यों का वनस्पति-विज्ञान, विष-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान बहुत ही बढ़ा-चढ़ा था। वे लोग वनस्पतियों की सहायता से रोगों की चिकित्सा बहुत ही सफलता के साथ करते थे। ग्रीस कैम्प के सिपाहियों में सर्प-विष वगैरह के केसों का इलाज भी वे बड़ी चतुरता से करते थे। ऐसी स्थिति में ग्रीक-वनस्पति-विज्ञान पर भारतवर्ष के चिकित्सा–विज्ञान का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

यूनान के महान् चिकित्सक डिसकोरिडस के ग्रन्थों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि वहां के चिकित्सक चिकित्सा के सम्बन्ध में भारतवर्ष के कितने आभारी थे। श्वास या दमे की बीमारी में धतूरे का धूम्रपान, पक्षाघात या लकवा और मन्दाग्नि की बीमारी में जहरी कुचले का उपयोग, विरेचक ओषधि के रूप में जमालगोटे का उपयोग, इत्यादि बातें प्राचीन भारत से ही संसार में प्रसिद्ध हुई थीं। अधिक मात्रा में धतूरे के धूम्रपान से होनेवाले दुष्परिणाम भी भारतवर्ष से ही प्रसिद्ध हुए थे।

रोमन लोगों ने भारतीय जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में बहुत दिलचस्पी से भाग लिया था। प्लाइनी के समय में रोम का भारतवर्ष के साथ जड़ी-बूटियों का बहुत विस्तृत व्यापार होता था।

बुद्धकाल के अन्दर भारतवर्ष में जड़ी-बूटियों के ज्ञान का और भी अधिक विकास हुआ। सम्राट् अशोक के समय में बहुत से वानस्पतिक द्रव्यों की खेती की जाती थी और वहीं से ये द्रव्य वैद्यों को वितरित किये जाते थे तथा उनको उपयोग में लेने के लिए कई एक उपयोगी सूचनायें भी दी जातो थीं। जैसे वर्षजीवी वनस्पतियों को बीजों के पकने के पहिले इकट्ठा करना चाहिए। साल में दो बार होनेवाली ओषधियाँ वसन्त ऋतु के पहले इकट्ठी की जानी चाहिये। जड़ें ठण्ढ के मौसम में, पत्ते गरमी के मौसम में तथा छिलके और लकड़ियाँ बरसात के मौसम में संग्रह करना चाहिए। इसी काल में बहुत सी नई ओषधियां भारतीय निघण्टु-शास्त्र में सम्मिलित की गई और उनका यथाविधि अन्वेषण भी किया गया।

बुद्ध-धर्म के पतन के साथ ही साथ दूसरे ज्ञानों की तरह ओषधि-शास्त्र के ज्ञान का भी क्रमशः पतन होने लगा। नवीन अन्वेषण बन्द हो गये और इसके विकास में बहुत शिथिलता पैदा हो गई।

ईसा की पाँचवीं या छठी शताब्दी के समय में हिन्दू लोग प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में उल्लिखित ओषधियों के ज्ञान पर ही निर्भर रहते थे। उस समय का कल्पस्तवन नामक ग्रन्थ बड़ा रोचक है। इसमें वनस्पतियों और

ओषधियों के कई विभाग किये गये हैं। जैसे सुगन्धित छिलकेवाली ओषधियां, फल-फूल और बीज में समानता रखनेवाली ओषधियाँ, दूधवाली ओषधियाँ, गोंदवाली ओषधियाँ, गाँठदार जड़वाली ओषधियाँ, इत्यादि कई प्रकार के आधारों पर इन वनस्पतियों के भेद किये गये हैं। इसी ग्रन्थ में वनस्पतिशास्त्र का भी बड़ा अच्छा वर्णन है। कौनसी वनस्पतियाँ किस-किस आबहवा में पलती हैं, किस-किस समय उनको इकट्ठा करने से वे अधिक समय तक टिक सकती हैं, इत्यादि कई बातों का वर्णन है।

(२)

मुसलमानी काल के अन्दर भारतीय जड़ी-बूटियों के इतिहास में एक नवीनयुग का प्रारम्भ हुआ। मुसलमान आक्रमणकारी अपने ओषधि-विज्ञान को अपने साथ लाये थे और उनका शासन स्थापित होने पर उन्होंने उस विज्ञान की तरक्की पर विशेष ध्यान दिया, जिससे आयुर्वेदिक चिकित्सा की तरफ लोगों का ध्यान बहुत कम हो गया और हकीमी चिकित्सा का बहुत प्रावल्य हो गया। अरब लोगों ने विज्ञान और कला की उन्नति की ओर काफी ध्यान दिया। यद्यपि उन्होंने कोई नई चीज नहीं ढूँढ़ी, फिर भी पुराने संसार के ज्ञान को नया चोला पहिनाकर उसका प्रचार किया। उनको इस विषय में इतनी दिलचस्पी थी कि हिन्दू वैद्य बगदाद के शासक के दरबार में रहा करते थे। चरक, सुश्रुत इत्यादि आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद हो चुका था। हिपोक्रेटस, डिमाक्रेटस, डिस्कोरिडस, इत्यादि ग्रीक वैद्यों से भी लोग परिचित थे। जब भारतवर्ष में मुसलमानी शासन का प्रारम्भ हुआ तब यहाँ के मुसलमान बादशाहों के दरबार में यूनानी हकीम रहा करते थे। वे लोग ग्रीक सिद्धान्तों के भी जानकार थे और मध्यएशिया की वनस्पतियों के गुणों और उपयोगों से भी परिचित थे। मुसलमानी शक्ति के उदय के बाद हिन्दुस्तानी चिकित्सा-पद्धति जहाँ की तहाँ रह गई, मगर हिन्दू लोगों ने मुसलमान विजेताओं के द्वारा लाई हुई वनस्पतियों का उपयोग चालू रखा। सबसे महत्व की चीज जो कि मुसलमानी सत्ता के द्वारा यहाँ पर लाई गई वह अफीम थी। मुसलमानी सत्ता के पहिले भारतीय निघण्टुओं में अफीम का कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता।

मुसलमानी हकीमों ने इस देश में पैदा हुई वनस्पतियों के तथा अरब और अफगानिस्तान में पाई जाने वाली वनस्पतियों के सम्मिलित निघण्टु तैयार किये। मुसलमान शासक इस कार्य के लिए उन्हें बहुत उत्साहित करते रहते थे और इसी कारण इनके लिखे हुए ग्रन्थ बहुत उत्तम हुये। तालीफशरीफ नामक ग्रन्थ इस विषय का एक उत्तम ग्रन्थ है जिसमें भारतीय वनस्पतियों के ऊपर यूनानी हकीमों के मत को संक्षेप में बतलाया गया है। इसी प्रकार मखजनूल अदविया भी इस विषय का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

आठवीं और नवीं शताब्दी के करीब मुसलमानों का वनस्पति-सम्बन्धी ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उस समय इस विषय पर फारसी भाषा में वनस्पतियों के सम्बन्ध में सैकड़ों पुस्तकें बन चुकी थीं। ऐडाल्फ फानाहन ने अपने ग्रन्थ में चार सौ से अधिक ऐसे परशियन ग्रन्थों का जिक्र किया है जिनका प्रधान विषय वनस्पति-सम्बन्धी ही था। इसमें से अबूमन्सूर-मुआफक्स जिसकी रचना सन् ९५० में हुई और दाखिरा-ए-ख्वर्जमशाही जिसकी रचना बारहवीं शताब्दी में हुई, बड़े प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इन किताबों में मेटेरियामेडिका के तीन विभाग किये गये हैं। पहिला विभाग जीवधारियों के सम्बन्ध में है, दूसरा विभाग साधारण वनस्पतियों के विषय में है और तीसरा विभाग तैयार की हुई ओषधि के सम्बन्ध में है। कुछ ग्रन्थों में चीर-फाड़ करने के पहिले बेहोशी के लिये दी जानेवाली ओषधियों का भी वर्णन है। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बने हुए शाहनामा नामक ग्रन्थ में रुस्तम की माता रुदबा को अचेत करने के लिए जो मदिरा पिलाई गई थी उसका वर्णन है। इससे यह मालूम होता है कि अरबी लोगों का मेटेरियामेडिका-सम्बन्धी ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था।

(३)

यह तो जड़ी-बूटियों के इतिहास का ग्रन्थों में आया हुआ ऐतिहासिक विवेचन है, मगर जड़ी-बूटियों के इतिहास का एक पहलू ऐसा है जिसका न तो किसी इतिहास ही में विवेचन है और न जिसका कोई वैज्ञानिक आधार ही है, मगर इतना होने पर भी वह इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि ऐसे समयों में जब कि शास्त्रीय और वैज्ञानिक ओषधि-विज्ञान मनुष्य का प्राण बचाने में असफल हो जाते हैं उस समय यह अवैज्ञानिक विज्ञान चमत्कारिक ढंग से मनुष्य के प्राण बचाने में सफल हो जाता है। ओषधि-विज्ञान का यह पहलू जंगल में रहनेवाली जंगली जातियों का तथा

शिकारी लोगों का ओषधि-ज्ञान है। यद्यपि सुशिक्षित लोगों ने इन लोगों की बहुत सी ओषधियों को प्राप्तकर अपने ग्रन्थों में सम्मिलित कर लिया है फिर भी सैकड़ों ओषधियाँ ऐसी हैं जिनका उल्लेख न तो आयुर्वेदिक और न यूनानी ग्रन्थों में ही किया गया है। मगर अशिक्षित जन-समुदाय सैकड़ों वर्षों से इस प्रकार की ओषधियों का उपयोग कर लाभ उठाता आ रहा है।

उदाहरणार्थ प्लेग की बीमारी को लीजिए। इस बीमारी से इस देश में लाखों मनुष्यों की करुणाजनक अकाल-मृत्यु हुई है और इसके लिए आयुर्वेदिक, यूनानी और एलोपेथी इत्यादि करीब २ सभी पद्धतियाँ असफल हो चुकी हैं। इसी प्लेग की बीमारी के सम्बन्ध में एक जैन साधु के द्वारा असगंध की जड़ या गाँठ पोरबंदर के सुप्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री श्रीजयकृष्ण इन्द्रजी को प्राप्त हुई जिसके लिए जैन साधु ने बतलाया कि चाहे जैसी गाँठ के ऊपर इसे घिसकर लगाने से वह गाँठ फूटकर आराम हो जाती है। उसके बाद इस जड़ को प्लेग के कई रोगियों पर अजमाया गया और शुरू से आखिर तक प्लेग की गांठ को नष्ट करने के लिए यह ओषधि रामबाण साबित हुई और इसकी प्रशंसा कई बड़े २ डाक्टरों और सर्जनों ने की, जिसका उल्लेख इस ग्रन्थ के अन्दर असगंध के प्रकरण में विस्तार के साथ किया गया है।

इसी प्रकार इसी प्लेग के ऊपर एक जंगली मनुष्य के द्वारा गुजरात के एक गृहस्थ को लाल इन्द्रायण की जड़ का योग मालूम हुआ। उन्होंने भी इस जड़ के द्वारा पचासों ऐसे रोगियों को प्लेग के पंजे से मुक्त किया जिनको डॉक्टर और वैद्य जवाब दे चुके थे। इस ओषधि का वर्णन भी इन्द्रायण के प्रकरण में इस ग्रन्थ के अन्दर विस्तार से किया गया है।

इसी प्रकार बिच्छू के जहर के सम्बन्ध में गुलतर्रा नामक वृक्ष की जड़ का उपयोग भी एक ऐसा चमत्कारिक उपाय है जिसका शास्त्रीय ग्रन्थों में कहीं उल्लेख नहीं है, मगर जो बड़े २ डाक्टरों के द्वारा हजारों केसों में अजमाने के पश्चात् भी पूर्ण रूप से विजयी सावित हुई है।

बंगाल के अन्दर 'वक्खो' नामक एक ओषधि होती है, जिसका वर्णन आयुर्वेद और यूनानी के किसी भी ग्रन्थ में पाया नहीं जाता, पर यह ओषधि बंगाल के ढाका जिले में बहुत बड़े परिमाण में पैदा होती है। यह वनस्पति पातालगारुड़ी के समान होती है। इस ओषधि का उपयोग वहां के रहने वाले सन्थाल लोग निर्भीक होकर करते हैं। बंगाली लोगों में से जब किसी को सांप काटता है तब वे लोग बड़े २ डॉक्टरों को बुलाने की जगह पर संथाल लोगों को बुलाकर उनसे इलाज करवाते हैं। इसी बूटी के प्रताप से संथाल लोगों के बच्चे काले सांपों को निर्भीकता के साथ खिलवाड़ की तरह गले में पहन लेते हैं।

'जंगलनी जड़ी-बूटी' नामक ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि शान्ति-निकेतन के एक विद्यार्थी को बड़े जोर से नकसीर (नाक से खून बहना) शुरू हुआ। कई डॉक्टरों का इलाज करने पर भी उसको लाभ नहीं हुआ और सब लोग बड़े हैरान हो गये। इतने ही में उधर से एक संथाल आ निकला। उसने वक्खो की जड़ लेकर पानी के साथ पीसकर रोगी को पिला दी जिससे तुरन्त खून का बहना वन्द हो गया। एक स्त्री को भयंकर प्रदर रोग था। दिन भर उसको काफी खून बहता था। वक्खो की २ तोला जड़ लेकर पानी में पीसकर उसको पिलाई गई जिससे उसे ऐसा लाभ हुआ कि फिर दूसरी वार दवा लेने की उसे आवश्यकता ही न रही। सर्पदंश के ऊपर भी यह ओषधि इसी प्रकार पानी में घिसकर पिलाई जाती है और कहा जाता है कि बिल्कुल मृत्यु के मुख में पहुँचे हुए मनुष्य के पेट में भी अगर यह पहुंच जाय तो १०-१५ मिनट में ही वह चैतन्य लाभ कर लेता है।

नर्मदा के किनारे पर बड़ौदा राज्य की सरहद में गौला नामक एक ओषधि होती है। इसके लिए कहा जाता है कि पानी में डूबे हुए मनुष्य को यदि वह मृत्यु के मुख में भी पहुँच गया हो तो यह ओषधि पुनर्जीवन दे देती है। इसकी तरकीब यह है कि मुर्दे को गाड़ने के लिये जैसा गड्ढा बनाया जाता है वैसा गड्ढा खोदकर उसमें उपले कण्डे भरकर जला देना चाहिये। जब वे कण्डे जलकर अंगारे हो जायँ तब उनको उस गड्ढे में से निकालकर उस गड्ढे में नीम के पत्ते भरकर उन पत्तों के ऊपर पानी में डूब कर मरे हुए मनुष्य को नग्न करके सुला देना चाहिये। फिर इस गौला नामक वनस्पति को बारीक पीसकर उसके मुँह और ललाट पर लेप करना चाहिए। इससे करीब एक घण्टे के बाद पसीना और पेशाब होकर वह रोगी चैतन्य लाभ करता है।

कई डाक्टरों का ऐसा मत है कि क्लोरोफार्म की तरह मनुष्य को बेहोश करनेवाली कोई ओषधि भारतवर्ष में पैदा नहीं होती, पर हिमालय के अन्दर नैपाल से भूटान के बीच 'विखमा' नामक एक वनस्पति के पौधे पाये जाते हैं, जिनकी ऊँचाई ४ से ५ फीट तक होती है। इस ओषधि के अन्दर यह तासीर है कि इसके नजदीक होकर अगर कोई मनुष्य निकल जाय तो वह मूर्च्छित हो जाता है। इस ओषधि की जड़ को लाकर सुँघाने से यह क्लोरोफार्म का काम कर सकती है। इस ओषधि की दर्प-नाशक एक वनस्पति जिसको 'निर्विषी' कहते हैं, वह भी इसके नजदीक ही पैदा होती है और उसमें यह गुण है कि उसकी जड़ को नाक के पास रखने से बेहोश व्यक्ति तुरन्त होश में आ जाता है।

इसी प्रकार ऐसी सैकड़ों वनस्पतियां इस देश में पैदा होती हैं जिनके गुण-दोष केवल जंगली लोगों, शिकारियों और योगी-यतियों को ही मालूम हैं और वे गुरु-परम्परा से उन्हीं लोगों की जानकारी में रहती आई हैं। उनका ज्ञान न तो प्राचीन ग्रन्थकारों को था और न शायद आधुनिक रसायनशास्त्रियों को ही है। दुर्भाग्य से इस देश में यह विचार-पद्धति बहुत दिनों से चली आ रही है कि लोग अपने ज्ञान को संसार के संमुख प्रकाशित करने में बड़ी हानि समझते हैं और इसी विचार-पद्धति के कारण यहाँ का ज्ञान प्रकाश में न आकर मनुष्य के जीवन के साथ ही लुप्त हो जाता है। अगर कोशिश करके इन जंगली लोगों के पास रहा हुआ जड़ी-बूटियों का ज्ञान संकलित किया जाय तो इस शास्त्र के अन्दर एक नवीन युगान्तर हो सकता है।

(४)

कुछ वनस्पतियां हमारे देश में ऐसी भी पैदा होती हैं जो अत्यन्त प्रभावशाली हैं और जिनका ज्ञान हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों को बहुत अच्छी तरह से था और जिन्होंने अपने ग्रन्थों में उनका पूरा वर्णन दिया है, लेकिन काल-परम्परा से और समय के भीषण आघातों से लोग उनकी पहिचान को बिल्कुल भूल गये और वे ओषधियां हमारे लिए एकदम अपरिचित-सी हो गईं। इनमें जीवक, ऋषभक इत्यादि अष्टवर्ग की ओषधियां तो प्रसिद्ध ही हैं और इनके लिए खोज भी चल रही है, मगर इनके सिवाय चरकसंहिता के अन्दर और भी कई दिव्य ओषधियों का जिक्र किया गया है, जैसे :—ब्रह्मसुवर्चला नाम की एक ओषधि है जिसको हिरण्यक्षीरा भी कहते हैं। इसके पत्ते कमल की तरह होते हैं। एक ओषधि आदित्यपर्णी अथवा सूर्यकांता नामक होती है। जिसका दूध सोने के समान पीला और फूल सूर्य-मण्डल के आकार का होता है। एक ओषधि नारी नामक होती है जिसको अश्वबला भी कहते हैं। इसके पत्ते बकरे की तरह होते हैं। एक काष्ठगोधा नामक ओषधि होती है जिसका आकार सांड के समान होता है। एक सर्पा नामक ओषधि होती है जिसका आकार सर्प की तरह होता है। सोम नामक ओषधि जिसे सोमवल्ली भी कहते हैं और जो सब ओषधियों की रानी है, इसके पन्द्रह पत्ते होते हैं और चन्द्रमा की कला के अनुसार कृष्णपक्ष में प्रतिदिन एक २ घटता जाता है और शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन एक २ नवीन आता जाता है। एक पद्मा नामक ओषधि होती है, जो आकार, रंग और गन्ध में कमल के समान होती है। एक अजा नामक ओषधि होती है जिसको अजश्रृङ्गी भी कहते हैं। एक नीला नामक ओषधि भी होती है जिसके दूध और फूल नीले रंग के होते हैं तथा शाखा-प्रशाखाएँ बहुत होती हैं।

महर्षि चरक लिखते हैं कि उपर्युक्त ओषधियां बड़ी दिव्य हैं। इनके रस का तृप्तिपर्यन्त पान करके ऊपर से बकरी का दूध पीने से और उसके पश्चात् पलाश की हरी लकड़ी के बनाये हुए ढक्कनदार टब में नग्न स्थिति में सोने से नवीन शरीर की प्राप्ति होती है और वह मनुष्य आयु, वर्ण, स्वर, आकृति, बल और प्रभा में देवताओं के समान हो जाता है।

इसी प्रकार भूख और प्यास को दूर करनेवाली, दूध पैदा करनेवाली, सोना बनानेवाली, इत्यादि अनेक प्रकार के चमत्कृत गुणों से संयुक्त ओषधियां हमारे यहां के पहाड़ों में पैदा होती हैं। मगर जानकारी न होने से हम लोग उनसे बिल्कुल लाभ नहीं उठा सकते।

(५)

अँग्रेजी राज्य का इस देश में प्रारम्भ होने पर पाश्चात्य लोगों ने और २ बातों के साथ इस देश के वनस्पति-विज्ञान पर पूरी तरह से ध्यान देना आरम्भ किया। यूरोप के विद्वानों ने भारतीय चिकित्सा-प्रणाली की महत्ता और

वैज्ञानिकता को सच्चे दिल से महसूस किया और उन्होंने इस देश के आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रन्थों का बहुत गहरा अध्ययन एवं मनन किया। उन लोगों ने केवल प्राचीन ग्रन्थों पर आश्रित रहकर ही वनस्पतियों के अन्वेषण का कार्य नहीं किया, प्रत्युत पहाड़ों और जंगलों में घूम-घूम कर वनस्पतियों की पहचान की, जंगली लोगों से उनके गुण-धर्मों को जाना और उसके बाद उन औषधियों को अपने ग्रन्थों में दर्ज किया।

सबसे पहिले इस विषय में सर विलियम जोन्स ने अपना प्रयत्न किया। वे वनस्पति-शास्त्र के ऊंचे विद्वान् थे। उन्होंने भारतीय ओषधियों के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी के समक्ष प्रकट की और बतलाया कि सैकड़ों वनस्पतियां जो भारत के जङ्गलों और मैदानों में पैदा होती हैं, वे यूरोपीय लोगों के परिचय में नहीं आई हैं। अपने एक ग्रन्थ में उन्होंने ऐसी कुछ वनस्पतियों का परिचय भी लिखा है। इसके बाद उनके अनुयायी राक्सवर्ग ने 'फ्लोरा ऑफ इन्डिका' में देशी ओषधियों का काफी परिचय भी दिया। फरमाकोपिया ऑफ इण्डिया के प्रकाशित होने तक यह ग्रन्थ ही इस देश की ओषधियों के लिये एक उत्तम ग्रन्थ माना जाता था। सन् १८७४ में इस ग्रंथ के सम्बन्ध में मिस्टर क्लार्क ने लिखा कि राक्सवर्ग ने भारतीय जड़ी-बूटियों के विषय में इतना लिखा है कि उनके आगे हमारा कार्य बहुत ही कम है। इकॉनामिक बोटानी के विषय में राक्सवर्ग बहुत ही विश्वनीय हैं और उनके ग्रन्थ इस विषय पर बहुत-कुछ जानकारी देते हैं।

एंसली कृत मेटेरियामेडिका में भी देशी वनस्पतियों के सम्बन्ध में बहुत ही महत्व का काम हुआ और इसने इस क्षेत्र के अन्दर बहुत प्रशंसा प्राप्त की।

सन् १८६८ में वेरिंग के सम्पादन में फारमाकोपिया ऑफ इण्डिया नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसमें यहां पर पैदा होनेवाली वनस्पतियों पर काफी प्रकाश डाला गया है। इस ग्रंथ ने इस क्षेत्र के अन्दर एक नवीन युग का प्रारम्भ कर दिया। इसके अन्दर की कई महत्वपूर्ण ओषधियां ब्रिटिश फरमाकोपिया के अन्दर दर्ज की गईं। डाक्टर मोहिदीन शरीफ ने 'सप्लीमेंट टू दी फरमाकोपिया' प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में ऐसी कई नवीन वनस्पतियां प्रकाश में लाई गईं जिनका इस देश में अधिकतर उपयोग होता है, मगर जिनका उल्लेख वेरिंग ने नहीं किया था। मोहिदीन शरीफ ने 'मेटेरियामेडिका ऑफ मद्रास' नामक ग्रन्थ की रचना भी की, जिसको उनकी मृत्यु के पश्चात् हूपर ने प्रकाशित किया। यू० सी० दत्त ने संस्कृत मेटेरियामेडिका का अनुवाद किया जिससे हिन्दू-चिकित्सकों के द्वारा उपयोग में ली जानेवाली मुख्य २ ओषधियां प्रकाश में आ गईं। इसके बाद फ्लूकीगर और हेम्बीकृत 'फरमेकोग्रेफिया' नामक दूसरा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ और सन् १८८३ में डॉयमाक ने 'मेटेरियामेडिका ऑफ वेस्टर्न इण्डिया' नामक ग्रन्थ की रचना की। सन् १८८५ में वार्डन और हूपर के सम्पादन में 'फरमेकोग्रेफिया ऑफ इण्डिया' नामक महत्वपूर्ण और विस्तृत ग्रन्थ तैयार हुआ, जिसमें बहुत ही परिश्रम और सावधानी के साथ पूर्व और पश्चिम के देशों में काम में ली जानेवाली ओषधियों का काफी वर्णन दिया गया। सन् १८९५ में 'डिक्शनरी ऑफ इकॉनामिक प्रोडक्ट्स ऑफ इण्डिया' नामक महान् ग्रन्थ सर जार्ज वेट के द्वारा तैयार किया गया। यह एक विस्तृत और उपयोगी ग्रंथ है। इस स्मरणीय ग्रंथ में पहले के ग्रन्थों का सारांश ही नहीं लिया गया अपितु इसके हर एक पृष्ठ में भिन्न-भिन्न पत्तों, फूलों, जड़ों, छिलकों और लकड़ियों का भिन्न-भिन्न उपयोग बतलाया गया है। कई वनस्पतियों की खेती के विषय में भी इसमें बहुत कुछ लिखा गया है। इसके बाद कन्हैयालाल दे कृत 'इन्डिजैनस ड्रग्स ऑफ इन्डिया' और कीर्तिकर और वसु के ग्रन्थ 'इण्डियन मेडिसिनिल प्लाण्ट्स' में कई ओषधियों के चित्र भी दिये गये हैं जिनसे उनके परीक्षण में सहायता मिले।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कई सभा-सोसाइटियों, मासिक पत्रों और व्यक्तिगत प्रयत्नों के द्वारा भी वनस्पति-विषयक ज्ञान की बहुत तरक्की हुई। गवर्नमेंट ने भी इस विषय में बहुत दिलचस्पी ली। यह बात भी धीरे-धीरे सर्वमान्य होने लगी कि इस देश की आब-हवा में पैदा होनेवाली बीमारियों को दूर करने के लिये यहां की आब-हवा में पैदा होनेवाली ओषधियाँ ही अधिक कामयाब हो सकती हैं। चिकित्सा की देशी प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिये कौन्सिल के अन्दर भी सवाल उठाये गये। अधिकारियों का ध्यान भी इस महत्वपूर्ण तथ्य की तरफ आकर्षित हुआ कि इस देश में पाश्चात्य-चिकित्सा-पद्धति पर अवलम्बित रहनेवाले लोगों की संख्या केवल दश प्रतिशत है, शेष जन-समुदाय देशी ओषधियों पर ही निर्भर करता है। लार्ड हार्डिंग ने एक स्थान पर भाषण देते हुए कहा था

कि 'जब मैं इस बात को सोचता हूँ कि कितने कम लोग ऐसे हैं जिनकी पहुंच एलोपैथिक चिकित्सा तक है और उनमें कई ऐसे हैं कि जिनकी पहुँच एलोपैथिक तक होने पर भी जो देशी इलाज को ही पसन्द करते हैं, तब मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि जो भी युक्ति देशी चिकित्सा को पुनर्जीवित करने के लिये मेरे सामने पेश की जाय उसकी अवहेलना करना मेरे लिये भयंकर भूल होगी।'

इन्हीं सब बातों के परिणामस्वरूप, खासकर सरकार का ध्यान इधर आकर्षित होने से इस क्षेत्र के अन्दर सर्वतोमुखी उन्नति होने लगी, जिसके परिणाम इस प्रकार दृष्टिगोचर होने लगे हैं :—

(१) सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य इस क्षेत्र में यह हुआ कि यहां पर पैदा होनेवाली ओषधियों पर अर्थशास्त्र की दृष्टि से विचार होने लगा। जन-समाज का और जिम्मेदार व्यक्तियों का ध्यान उस भारी रकम की ओर गया जो प्रतिवर्ष विदेशी औषधों के मूल्यस्वरूप विदेशों में जाती है।

इसी प्रकार कई ओषधियाँ ऐसी हैं, जो ठीक उसी रूप में तो हमारे यहां पैदा नहीं होतीं जिस रूप में वे बाहर से आती हैं मगर ठीक उन्हीं के समान गुण-धर्म और प्रभाव रखनेवाली ओषधियां हमारे देश में प्रचुर परिमाण में पैदा होती हैं और कौड़ियों के मोल यहां पर प्राप्त हो सकती हैं, जैसे इपिकेकोना के बदले अन्तमूल और आंकड़ा, सारसापरिला के बदले अनन्तमूल, एफिड्रा के बदले असमानिया, जेलप के स्थान पर कालादाना, क्वाशिया के स्थान पर नीम, वेलेरियन के स्थान पर जटामांसी, इत्यादि। अगर उन ओषधियों के स्थान पर ये ओषधियां काम में ली जाँय, तो इससे भी हमारे देश का बड़ा लाभ हो सकता है।

इसके सिवाय कई ओषधियां हमारे यहां ऐसी होती हैं जिनकी अगर व्यवस्थित रूप से खेती की जाय तो वे यहाँ से सफलतापूर्वक बाहरी देशों को भेजी जा सकती हैं और उनसे हमारे देश को काफी लाभ हो सकता है।

इन्हीं सब बातों पर विचार करने के लिए सन् १८९५ में गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ने एक 'इण्डिजेनस ड्रग्स कमेटी' नियत की थी। इस कमेटी ने गवर्नमेंट का ध्यान इन बातों की ओर आकर्षित किया—(१) व्यवस्थित रूप से भारत में देशी ओषधियों की खेती को उत्तेजन देना, (२) चिकित्सा-शास्त्र में जिन-जिन ओषधियों की उपयोगिता मान ली गई है उनका मेडिकल डिपो में अधिकाधिक उपयोग करवाना और (३) डिपो में कुछ विशेष औषधों को तैयार करने की स्वीकृति देना।

इसके परिणामस्वरूप कई स्थानों पर गवर्नमेंट ने व्यवस्थित रूप से, यहाँ पैदा होनेवाली और न होनेवाली कई ओषधियों की खेती भिन्न-भिन्न स्थानों पर करवानी प्रारम्भ की। उसमें यथेष्ट सफलता भी मिली तथा देशी ओषधियों की बाहर जाने की तादाद में भी काफी वृद्धि हुई।

(२) दूसरा महत्त्व का कार्य इस क्षेत्र में यह हुआ कि गवर्नमेंट ने इस देश में पैदा होनेवाली ओषधियों के रासायनिक तत्त्वों की जानकारी के लिए कुछ स्कूल खोले। यद्यपि इसके पहिले भी वार्डन, हूवर इत्यादि लोगों ने संगठित और व्यक्तिगत रूप से यहाँ की ओषधियों के रासायनिक विश्लेषण किये थे, पर इस सम्बन्ध में संगठित काम करने के लिये कलकत्ते में 'ट्रापिकल स्कूल आफ मेडिसिन्स' की स्थापना हुई। इस संस्था ने देशी ओषधियों का परीक्षण करके उनके सम्बन्ध में नवीन प्रकाश डाला। इसके प्रधान कार्यकर्ता ले० कर्नल चोपरा ने अत्यन्त परिश्रम करके देशी ओषधियों के सम्बन्ध में प्रचलित अनेक अन्धविश्वासों को नष्ट कर दिया। उन्होंने एक-एक ओषधि के रासायनिक तत्त्वों का पृथक्करण कर उनके गुण-धर्मों का विवेचन किया। इनके कार्य से भारतीय वनस्पतियों के इतिहास में एक नवीन युग का निर्माण हुआ।

फिर भी यह कहना कठिन है कि इस प्रकार के रासायनिक विश्लेषणों से प्रत्येक ओषधि के वास्तविक गुण प्रकाश में आयेंगे। कुदरत की रचना इतनी विचित्र है कि एक वनस्पति में स्वाभाविक रूप से जो गुण रहते हैं, वे विश्लेषण की क्रिया करते-करते नष्ट हो जाते हैं। कई वनस्पतियाँ अग्नि का स्पर्श होते ही निःसत्त्व हो जाती हैं। डाक्टर भुवनमोहन सरकार ने एक बार लिखा है कि 'उलटकम्बल' को टिंचर, गोली, चूर्ण इत्यादि सभी रूपों में प्रयोग किया गया, मगर इसके ताजा रस में जो गुण मिला, वह इसके दूसरे किसी भी रूप में नहीं पाया गया। इसी प्रकार

कई वनस्पतियों के टिंचरों और रासायनिक तत्वों से आधुनिक चिकित्सकों को निराश होना पड़ा, मगर उन्हीं वनस्पतियों के द्वारा सैकड़ों वर्षों से यहाँ के वैद्य सफलतापूर्वक चिकित्सा करते आ रहे हैं।

केस और महस्कर ने सांप के विष को दूर करनेवाली यहाँ की प्रायः सभी अर्थात् ४०९ ओषधियों का विश्लेषण किया और अन्त में उनको सबसे निराश होना पड़ा। मगर उन्हीं ओषधियों के द्वारा यहाँ के वैद्य और संपेरे सैकड़ों सांप के काटे हुए मृतप्राय रोगियों को सफलता के साथ सैकड़ों वर्षों से अच्छा करते आ रहे हैं।

मगर इन अपवादों से या इसी प्रकार के और भी सैकड़ों अपवादों से रसायन-शास्त्र की उपयोगिता में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आ सकता। यह जरूर है कि रसायनशास्त्र अभी अपूर्ण अवस्था में है, फिर भी इसके द्वारा हमको जो ज्ञान प्राप्त हो सकता है उसकी कीमत नहीं आंकी जा सकती। ओषधियों के सम्बन्ध में रसायनशास्त्र की वजह से मानवीय ज्ञान में जो तरक्की हुई है, वह ऐतिहासिक है। इससे उपयोगी और निरुपयोगी ओषधियों के पृथक्करण में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि किसी भी ओषधि का रासायनिक विश्लेषण करते समय हम उस ओषधि से सम्बन्ध रखनेवाले प्राचीन मतों या पहाड़ी लोगों के अनुभवों को उपेक्षा की दृष्टि से न देखें। इन सब तथ्यों को मद्देनजर रखते हुए किसी भी ओषधि के गुण-धर्म और प्रभाव पर हम जिन नतीजों पर पहुँचेंगे, वे अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होंगे।

(३) तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य इस क्षेत्र में यह हुआ कि यहाँ के मेडिकल कालेजों के पाठ्य-क्रम में देशी ओषधियों का ज्ञान देनेवाली प्रामाणिक पुस्तकें भी सम्मिलित की गई हैं। इससे यहाँ के मेडिकल ग्रेज्यूएट्स देशी इलाजों से कालेजों में ही परिचित हो जाते हैं और अपने भावी जीवन में उनका उपयोग भी करते हैं।

(४) इस सम्बन्ध में निकलनेवाली पत्र-पत्रिकाओं, प्रदर्शनियों और दूसरे फुटकर साहित्य ने भी इस विषय के ज्ञान को बढ़ाने में काफी सहायता दी।

इसके अतिरिक्त कई लेखकों ने प्रान्तीय दृष्टि को मद्देनजर रखकर भिन्न २ प्रान्तों में पैदा होनेवाली ओषधियों के सबन्ध में कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों से भी ओषधियों से सम्बन्धित ज्ञान की बहुत वृद्धि हुई।

पंजाब की जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में डाक्टर स्टैवर्ट ने 'पंजाब प्लांट्स' नामक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ की रचना की। पंजाब प्रान्त की ओषधियों के सम्बन्ध में यह ग्रन्थ बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारी देता है।

डा० एटकिनसन ने 'एकानामिक प्रोडक्ट्स आफ दी नार्थ-वेस्ट प्राविन्स' नामक ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ विशेष कर उत्तर प्रदेश की वनस्पतियों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी देता है।

बड़ौदा और काठियावाड़ की वनस्पतियों के सम्बन्ध में गुजरात के सुप्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्री श्री जयकृष्ण इन्द्रजी ने अत्यधिक अन्वेषण और मनन के साथ अपने वनस्पति-शास्त्र की रचना की है।

इसी प्रकार सर डेविडप्रेन कृत 'बंगाल प्लांट्स', थियोडोर कुक कृत 'फ्लोरा ऑफ बाम्बे', हेन्स कृत 'फ्लोरा ऑफ सेण्ट्रल प्राविन्सेस', गॅबल कृत 'फ्लोरा ऑफ मद्रास', मोहीद्दीन शरीफ कृत 'मेटेरियामेडिका ऑफ मद्रास', कर्नल बॅबर कृत 'पंजाब प्लांट्स', जनरल कॉलेट कृत 'फ्लोरा सिमलेन्सेस', बकिंलर कृत 'प्लांट्स ऑफ बिलोचिस्तान', इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हो चुकी है।

मतलब यह है कि इस सम्बन्ध में इतना क्षेत्र तैयार हो चुका है कि उत्साह रखनेवाले किसी भी व्यक्ति को इस सम्बन्ध की काफी जानकारी प्राप्त हो सकती है।

इसलिए इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि राष्ट्र-भाषा के अन्दर इस विषय का उपयोगी साहित्य छोटे से लेकर बड़े पैमाने पर प्रकाशित किया जाय, जिससे जन-समाज में इस विषय की ओर अभिरुचि पैदा हो।

इसी कमी की ओर जन-समाज का ध्यान आकर्षित करने के लिए तथा इस अभाव की यत्किञ्चित् पूर्ति करने के लिए इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ में आयुर्वेदिक, यूनानी और आधुनिक वैज्ञानिक ग्रन्थों के अतिरिक्त जंगली लोगों के तथा जड़ी-बूटियों में दिलचस्पी रखनेवाले दूसरे लोगों के अनुभवों का भी वर्णन किया गया है। उपयोगिता की दृष्टि से ग्रन्थ कहाँ तक सफल हुआ है, इसका निर्णय इस विषय के अधिकारी ही कर सकेंगे।



सहायक ग्रन्थों की सूची

(१)

हिन्दी और संस्कृत

महर्षि चरक	...	...	चरक-संहिता
महर्षि सुश्रुत	...	...	सुश्रुत-संहिता
महर्षि-वाग्भट	...	...	अष्टांग-हृदय
चक्रपाणि	...	...	चक्रदत्त
भावमिश्र	...	...	भाव-प्रकाश
काशिराज	...	...	राजनिघण्टु
श्री चौबे दत्तराम	...	...	वृहत् निघण्टु रत्नाकर
श्री शालिग्राम	...	...	शालिग्राम निघण्टु
श्री रूपलाल वैश्य	...	...	रूप-निघण्टु
श्री गंगाप्रसाद दाधीच	...	...	अनूभूतयोग प्रकाश (दो भाग)
श्री प्रवासीलाल वर्मा	...	...	वृक्ष-विज्ञान
श्री हरिदास वैद्य	...	...	चिकित्सा चन्द्रोदय (सात भाग)
बाबू रामजीतसिंह वैद्य		...	आयुर्वेदीय विश्व-कोष (दो भाग)
बाबू दलजीतसिंह वैद्य	...	...	आयुर्वेदीय विश्व-कोष (दो भाग)

'धन्वन्तरि' के कुछ फाइल

(२)

यूनानी

मखजनूल अदविया	...	...	खजाइनुल अदविया
तर्जुमा नफीसी	...	...	मुहीते आजम

मुजर्रिबात अकबरी

(३)

अंग्रेजी

Lt. Colonel Kirtikar, Major B. D. Basu.... Indian Medicinal Plants. 4 Parts
W. Dymock. N. K. Gadgil. ... The Vegetable Materia Medica of the Hindus.
W. Dymock, Warden and Hooper ... Pharmacographia Indica (3 Vols.)
R. N. Khori and N. N. Katrak, ... Materia Medica of Indica and their Therapeutics
K. M. Nadkarni. ... Indian Plants and Drugs-Indian Materia Medica.
Lt. Colonel R. N. Chopra. ... Indigenous Drugs of India. A Hand Book of Tropical Therapeutics.
Devaprasad Sanyal and Rasbihari Ghosh. ... Vegetable Drugs of India.
G. T. Birdwood. ... Practical Bazar Medicines,
Dr. Mooden Sheriff. ... Materia Medica
Sukhasampati Rai Bhandari ... Dictionary of Medical Terms.
Files of Medical Journal of India.

(४)

गुजराती

वैद्य-शास्त्री शामलदास गोर ... ... जङ्गलनी जड़ी-बूटी ३ भाग
वनस्पति-शास्त्री जयकृष्णइन्द्रजी ... ... वनस्पति-शास्त्र
जटाशंकर, लीलाधर त्रिवेदी ... ... घरवैदु तथा वैद्य-कल्पतरु की बीस वर्षों की फाइल

(५)

मराठी

वासुदेव शास्त्री बापट ... ... वनौषधि-प्रकाश
यज्ञेश्वरगोपाल दीक्षित ... ... बनौषधि-गुणादर्श
डॉ० वामनगणेश देसाई ... ... ओषधि-संग्रह

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी कई छोटे-बड़े ग्रन्थ और सामयिक पत्रों की फाइलों से इस ग्रन्थ के निर्माण में सहायता मिली है। इसलिये लेखक उन सबके प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता है।

विषय सूची (१)

(हिन्दी नाम)

विषय सूची (२)

(संस्कृत नाम)

विषय सूची (३)
(बङ्गला नाम)

विषय सूची (४)
(गुजराती नाम)

विषय सूची (५)

(मराठी नाम)

विषय सूची (६)

(रोगानुक्रम से)

नोट—विशेष प्रभावशाली ओषधियों के आगे * ऐसे फूल लगा दिये गये हैं।

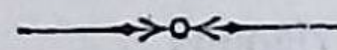
विषय सूची (६)

(रोगानुक्रम से)

नोट—विशेष प्रभावशाली औषधियों के आगे * ऐसे फूल लगा दिये गये हैं।

INDEX (7)

(Latin Names)



INDEX (7)

(Latin Names)



॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(पहला भाग)

अकलकरा

नाम—संस्कृत—आकल्लकः, आकारकरभः, अरकरभः, अकल्लकः। हिन्दी—अकलकरा। गुजराती—अक्कलकरो। मराठी—अक्कलकारा। बंगाली—अकोरकोरा, तेलगू—अक्करकरम। अरबी—आकरकरहा। लेटिन—Angeyclaus. Anacyclus Pyrethrum (एनासायक्लस पाइरिथ्रम) अंग्रेजी–Pellitory Root (पेलेट्री रुट)।

वर्णन—यह अरब और भारतवर्ष की प्रसिद्ध बूटी (जड़ी) है। पूर्वकालीन चरक, सुश्रुत, बाग्भट आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में इस बूटी का उल्लेख नहीं मिलता। मगर मध्यकालीन भावप्रकाश, शार्ङ्गधर आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख पाया जाता है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि भारतवर्ष में इस औषधि का ज्ञान यूनानी हकीमों के द्वारा ही प्रचारित हुआ। यूनानी हकीम 'डीओस कुरीदस' (Dioscorides) ने पाइथ्रोन के नाम से इस औषधि का वर्णन किया है। इस शब्द से लेटिन के पाइरीथ्रम शब्द की व्युत्पत्ति हुई है।

यूनानी ग्रन्थों में अकलकरे का वर्णन बाबूना वर्ग की चार औषधियों के साथ मिलता है। यह सब औषधियाँ एक दूसरी के साथ बहुत मिलती हुई हैं। बाबूना जरूमी, बाबूना बदबू, बाबूना गावचश्न और बाबूना स्पेनिश इन चारों औषधियों को यूनानी में बाबूना और लेटिन में पायरीथ्रम कहते हैं। इन चारों में स्पेनी बाबूना जिसको लेटिन में एनासायक्लस पायरीथ्रम कहते हैं। वही वास्तविक अकलकरा साबित हुआ है। यह औषधि अफ्रिका के उत्तरीय अलजीरिया प्रान्त में तथा भारतवर्ष के कुछ हिस्सों में पैदा होती है।

भारतवर्ष में पैदा होने वाला अकलकरा दो प्रकार का होता है। पहिले को लेटिन में (Spilint hes Oleracea) और दूसरे को (Spilanthes Acmella) कहते हैं।

स्वरूप—यह औषधि क्षुप जाति की है, वर्षाऋतु की पहली वर्षा होते ही इसके छोटे २ पौधे निकलना प्रारंभ होते हैं। इसकी डाली रुएंदार होती है, डाली के ऊपर गोल गुच्छेदार छत्ती के आकार वाला पीले रङ्ग का फूल आता है। इसकी जड़ २ से ४ इंच तक लम्बी और आधे से पौन इंच तक मोटी होती है। छाल मोटी, भूरी और झुर्रीदार होती है। यह औषधि ७ वर्ष तक खराब नहीं होती।

रासायनिक विश्लेषण—इस औषधि का रासायनिक विश्लेषण करने से पता चला है कि इसमें 'अलकलाइड अकरकरमीन' नामक क्षार तत्व, रेजिन और दो स्थायी तथा उड़नशील तेलों का अस्तित्व पाया जाता है यह वस्तु प्रदाहजनक, लार निस्सारक, कामोत्तेजक, वातनाशक और मज्जातन्तुओं को बल देने वाली है।

गुण दोष—आयुर्वेदिक मत से अकरकरा उष्णवीर्य, बलकारक, चरपरा तथा सूजन, वात और जुकाम को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थकार इसे दूसरे दर्जे में रूक्ष और गरम मानते हैं, कोई इसे तीसरे दर्जे के अन्त में और चौथे दर्जे तक खुश्क मानते हैं। किसी २ के मत से यह तीसरे और चौथे दर्जे में शीतल है। फेफड़ों के ऊपर इस औषधि का प्रभाव हानिकारक होता है।

उपयोग—स्नायुरोग—ज्ञान तन्तुओं के ऊपर इस औषधि का अच्छा असर होता है। जिसके फलस्वरूप यह औषधि पक्षाघात, अर्दित (मुँह का लकवा) इत्यादि स्नायु जाल से सम्बन्ध रखने वाली व्याधियों पर अच्छा लाभ

पहुँचाती है। रूमी मस्तंगी के साथ इस औषधि को चबाने से दूषित दोषों से पैदा हुई मिर्गी मिटती है। इस औषधि में वात नाशक गुण काफी मात्रा में मौजूद होने के परिणाम स्वरूप गृध्रसी, संधिवात, वातजनित मस्तक रोग, पुट्ठे का दर्द, कुबड़ापन, गर्दन की अकड़न, जोड़ों के दर्द इत्यादि वात व्याधियों पर जैतून के तेल के साथ पीसकर मालिश करने से अच्छा लाभ पहुँचाता है।

ज्वर और जुकाम—इस औषधि में पसीना लाने का गुण भी है। जैतून के तेल के साथ इसको पकाकर मालिश करने से पसीना देकर ज्वर उतर जाता है। इसके गरम काढ़े को सिर पर लेप करने से और उसे तालू पर मलने से सरदी और नजला दूर होता है।

दंतरोग—दांतों के व्याधियों पर भी अकलकरा बहुत लाभ पहुँचाता है। इसके क्वाथ [काढ़े] को मुँह में रखने से हिलते हुए दांत मजबूत होते हैं। इसी प्रकार इसकी जड़ को सिरके में भिगोकर दांत के नीचे दबाने से दंतशूल नष्ट होता है। इसके चूर्ण को जीभ पर मलने से जीभ की जड़ता दूर होती है और तोतलापन मिटता है।

खांसी—खांसी के ऊपर भी यह औषधि अच्छा फायदा करती है इसका क्वाथ बनाकर पिलाने से पुरानी सूखी खांसी मिटती है। इसी प्रकार इसके बारीक चूर्ण को सुघाने से नाक बँध जाने से पैदा हुआ श्वासावरोध दूर होता है।

अतिसार और पेट की व्याधि—आमाशय के रोगों पर भी यह औषधि अपना असर दिखलाती है। इस औषधि के प्रयोग से बालकों के अतिसार, दांत निकलने के समय के उपद्रव, उदरशूल इत्यादि रोगों में फायदा होता है। सोंठ के साथ इसके चूर्ण की फक्की लेने से मन्दाग्नि और अफारा मिटता है। जलोदर में भी इसका प्रयोग गुण दिखाता है। इसकी चौदह रत्ती की खुराक घोटकर देने से यह बल पूर्वक कफ को जुलाब के द्वारा निकाल देती है। किसी वामक और विरेचक औषधि को पीने से पहले यदि अरकरा चबा लिया जाय तो उससे दवा पीने की घृणा दूर हो जाती है। इस औषधि के लेने से बच्चों का और गायकों का कण्ठ स्वर सुरीला होता है।

वीर्य सम्बन्धी रोग—अकलकरे के अन्दर उत्तेजक गुण बहुत काफी प्रमाण में विद्यमान है। इसलिये आयुर्वेद के अन्दर कामोत्तेजक औषधियों में यह बहुत प्रधान माना जाता है। यह औषधि भिन्न २ औषधियों के साथ देने से वीर्य वर्धन, कामोत्तेजन व स्तम्भन में अद्भुत फायदा दिखलाती है। मगर इस औषधि का लाभ ठण्डी प्रकृति वालों को ही अधिक मिलता है। इसी प्रकार इसके तेल को बाह्योपचार की तरह पुरुषेन्द्रिय पर मालिश करने से यह कामशक्ति को प्रबल करता है।

कर्नल चोपरा के मत से इस पौधे की जड़ पौष्टिक मानी जाती है। इसको पक्षाघात की बीमारी में देते हैं, सर्वाङ्ग में भी यह दी जाती हैं। अपस्मार और मिरगी पर भी इसका उपयोग होता है। कंपवात में भी यह दिया जाता है। यह बच्चों की वाचा शक्ति को तेज करने वाला माना जाता है। मगर इन सब धारणाओं को कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। इसकी जड़ का काढ़ा सड़े हुए दांतों को ठीक करने के लिए कुल्ले करने के रूप में लिया जाय तो उपयोगी सिद्ध होता है। गले की बीमारी में और तालु मूल ग्रन्थि के प्रदाह और गल ग्रंथि का प्रदाह दूर करने के लिये उपयोगी है।

प्रयोग और बनावटें—मृगी नाशक सुंघनी—अकलकरा १ तोला, इन्द्रायण की जड़ ६ माशा, नौसादर ६ माशे, स्याह जीरा ६ माशे, कुटकी १ तोला, काली मिरच १ तोला, इन सब औषधियों का चूर्ण प्रतिदिन सबेरे शाम सुंघाने से संचित दोषों को दूर कर मृगी को नष्ट करता है।

अकरकरादि बटी—अकरकरा चार भाग, जायफल तीन भाग, लौंग दो भाग, दालचीनी तीन भाग, पीपलामूल दो भाग, केशर दो भाग, अफीम एक भाग, भंग चार भाग, मुलेठी चार भाग, आंकड़े की छाल पांच भाग, बायबिडंग तीन भाग—इन सबका चूर्ण करके उसमें पांच भाग शहद और शेष पानी मिलाकर घोटकर आधी रत्ती से लेकर ढाई रत्ती तक की गोलियां बनाई जांय, ये गोलियाँ बच्चों के दाँत निकलने के समय के उपद्रव, अतिसार, उदरशूल और वमन के लिए हितकारी है।

रति वर्धक लेप—जायफल, तज, मालकांगनी, अकलकरा, भीमसेनीकपूर, जायपत्री, लवंग ये सब एक-एक भाग और रेंगमाही पाँच भाग लेकर बारीक चूर्ण कर कपड़े में छान लिया जाय, फिर उसमें बढ़िया गुलाब का इत्र

एक भाग डालकर शीशी में भर लिया जाय। कामोद्दीपन के लिए इस औषधि का शहद के साथ मिलाकर पुरुषेन्द्रिय पर लेप किया जाता है।

सन्तान निग्रह लेप—पारा, गन्धक, अकलकरा, लौंग, कपूर, और सुहागी इन सब वस्तुओं का अंजन के समान बारीक चूर्ण कर समागम के पूर्व शहद के साथ लेप करने से गर्भ स्थित नहीं होता। दोनों लेपों का प्रयोग पुरुषेन्द्रिय के अगले भाग को छोड़कर करना चाहिये।

टिंचर आफ पाइरीथ्रम्—एलोपेथिक ढंग से अकलकरे के द्वारा टिंचर ऑफ पाइरीथ्रम बनाया जाता है। जो दांत के दर्द, गठिया, अपस्मार, पक्षाघात, कफवात, तोतलापन, इत्यादि अनेक रोगों में लाभ पहुंचाता है।

उपदंश नाशक गोली—भाव प्रकाश के मतानुसार शुद्ध पारा आधा तोला, खेर का चूर्ण आधा तोला, अकरकरा का चूर्ण आधा तोला, इन सबको कूट छान कर बनाई हुई गोलियां जल के साथ लेने से फिरंग रोग (उपदंश) नष्ट होता है।

अकलकरे का तेल—एक छटांक भर अकलकरे का चूर्ण कर उसे दो सेर पानी के साथ औटाना चाहिये। जब चौथाई पानी शेष रह जाय, तब उसे उतार व छानकर दस रुपये भर शुद्ध काली तिल्ली के तैल में डालकर मन्दाग्नि से औटाना चाहिये, जब पानी का वजन जल कर तेल मात्र शेष रह जाय, तब ठण्डा कर शीशी में भर देना चाहिये। इस तेल के उपयोग से सभी प्रकार की सर्दी की खांसियां दूर होती हैं।

अकलकरादि चूर्ण—अकलकरा, सेंधानमक, चित्रक, आंवला, अजवायन और हरड़—ये सब एक-एक तोला और सोंठ दो तोला, इन सबों का कपड़ छान चूर्ण करके उसमें बिजोरा अथवा नीबू के रस की भावना देना चाहिये। यह चूर्ण सुबह शाम तीन-तीन माशे लेने से पीनस, मृगी, उन्माद, खांसी, श्वास, मन्दाग्नि, अरुचि इत्यादि व्याधियों में लाभ पहुँचाता है।

जादू का योग—अकरकरे को नौसादर के साथ पीसकर तालू और मुंह में खूब रगड़ने से मुंह में ऐसी शून्यता उत्पन्न हो जाती है कि मुंह में अङ्गारे भी भर लिये जांय तो नहीं जलता। कई बाजीगर लोग इसी के प्रयोग से मुंह में अंगारे भरने के अद्भुत खेल दिखाते हैं।

प्रतिनिधि—जिगर के रोगों की चिकित्सा के लिए अकरकरे के अभाव में उसके प्रतिनिधि पीपर और शहद हैं और आमाशय के रोगों में इसके प्रतिनिधि रास्ना और अगर हैं। अकलकरे के दर्प को नष्ट करनेवाली औषधियों में मुनक्का और कतीरा गोंद प्रधान है।

योग्य मात्रा में देने से जहां यह औषधि अनेक प्रकार के दिव्य लाभ पहुँचाती है, वहां अधिक मात्रा में देने से आंतों के श्लेष्मावरण में दाह उत्पन्न करके खूनी दस्तें, आक्षेप इत्यादि उपद्रवों को पैदा करती है। इसलिए इसका उचित मात्रा में ही समझ-बूझकर प्रयोग करना चाहिए।

अकलबेर

नाम—संस्कृत—हिन्दी—अकलबेर, भंगजल, द्रिनखारी, सिदासु। काश्मीरी—कालबीर, वज्रजल, लेटिन—Datisca Canalina (डेस्टिका केनेलिना)

वानस्पतिक वर्णन—यह हिमालय तथा सिन्ध प्रदेश में उत्पन्न होनेवाली एक वनस्पति है। इसका झाड़ सीधा व कठोर होता है। इसकी शाखायें फूलमय व लम्बी होती हैं। इसके पत्तों के किनारे कुछ कटे हुए रहते हैं। इसके फूलों का रङ्ग पीला होता है। यह फूल करीब २ इञ्च लम्बा व १। इञ्च चौड़ा होता है। इस वृक्ष के बीज बहुत बारीक होते हैं।

गुण दोष—आयुर्वेदिक निघण्टुओं के अन्दर इस औषधि का कोई भी उल्लेख नहीं पाया जाता और न यूनानी ग्रन्थों में हो इसका कोई उल्लेख मिलता है। मगर वनस्पतियों की आधुनिक खोज करनेवाले वैज्ञानिकों के ग्रन्थों में इसका उल्लेख पाया जाता है।

इण्डियन मेडिसिनल प्लान्ट्स (Indion Madicinal Plants) नामक अंग्रेजी ग्रन्थ के रचयिताओं के मतानुसार यह एक मूत्र निस्सारक औषधि है। पार्यायिक बुखारों में इसका उपयोग होता है। जुकाम और खाँसी में

इसको कफनिस्सारक औषधि की तरह देते हैं। यह कड़वी व विरेचक होती है। गण्डमाला के रोग के अन्दर भी इसका उपयोग किया जाता है। खम्बात में इसकी जड़ को कूटकर सिर दर्द के ऊपर काम में लेते हैं। गठिया के रोगों में भी इसकी जड़ उपशामक मानी गई है। दांतों के ऊपर लगाने से यह दांतों की तकलीफ को मिटाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कड़वी, विरेचक और ज्वर को नष्ट करनेवाली है।

इसके रासायनिक विश्लेषण से इसमें एक प्रकार का कड़ुवा ग्लूकोसाइड पाया गया है।

डाईमाक के मतानुसार २। रत्ती से लेकर ७॥ रत्ती तक की मात्रा में यह औषधि विषम ज्वरों के अन्दर उपयोग की जाती है।

मि० वेट के मतानुसार गठिया रोग में भी यह औषधि लाभ दिखलाती है।

इण्डियन मेटेरिका मेडिका के मतानुसार इस पौधे का ठण्डा काढ़ा (हिम) कण्ठमाला, मूर्छा तथा विषम ज्वर में लाभदायक होता है।

अखरोट

नाम—संस्कृत—अक्षोटः, फलस्नेहः, रेखाफलः, वृत्तफलः। हिन्दी—अखरोट। गुजराती—अखोड़। मराठी—अक्रोड़। बंगाली—अक्रोट। तेल्लंगी—अक्षोलमु। द्राविड़ी—अकोट्टू, कर्नाटकी—वेट्ठदगोनूमर। अरबी—जोजे हिन्दी, फारसी—गिर्दगा। लेटिन—Juglans Regia जुगलांस रेजिया।

वर्णन—अखरोट के वृक्ष काबुल और हिमालय में काश्मीर से मनीपुर तक अधिकता से होते हैं। इसके वृक्ष की ऊंचाई ६० से ९० फीट तक होती है। पत्ते ४ से ८ इञ्च तक लम्बे अण्डाकार, नुकीले और तीन २ कंगूरे वाले होते हैं। फूल सफेद रङ्ग के छोटे-छोटे गुच्छे के रूप में लगते हैं। एक ही गुच्छे में नर और मादा दोनों तरह के फूल होते हैं। इसके फल, गोल और मेनफल के समान होते हैं। फल के भीतर बादाम की तरह मींगी निकलती है। अखरोट दो प्रकार का होता है। एक को अखरोट और दूसरे को रेखाफल कहते हैं। इस पौधे की लकड़ी बहुत ही मजबूत, अच्छी और भूरे रङ्ग की होती है।

गुण दोष—आयुर्वेद के मतानुसार अखरोट मधुर, किञ्चित् खट्टा, स्निग्ध, शीतल, वीर्यवर्द्धक, गरम, रुचिदायक, कफ-पित्तकारक, भारी, प्रिय, बलवर्द्धक तथा वातपित्त, क्षय, वात, हृदयरोग, रुधिरदोष, रक्तवात, और दाह को दूर करने वाला होता है।

इसका छिलका कृमिनाशक और विरेचक है। इसके पत्ते सङ्कोचक व पौष्टिक हैं। इसका काढ़ा गलग्रन्थियों के लिए उपयोगी माना जाता है और कृमिनाशक है। गठिया की बीमारी में इसका फल धातुपरिवर्तक होता है। यूरोप के अन्दर इसके छिलके और पत्ते रेचक, धातु परिवर्तक और शरीर की क्रियाओं को दुरुस्त करने वाले माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त उपदंश, विसर्पिका, खुजली, कण्ठमाला इत्यादि रोगों में यह मुफीद माना जाता है।

यूनानी मत—यूनानीमत के अनुसार यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में रूक्ष प्रकृति को मृदु करनेवाला, ओजकारक, अजीर्ण को नष्ट करनेवाला तथा मस्तिष्क, हृदय, यकृत् और आन्तरिक इन्द्रियों को बल देनेवाला होता है। इसकी भुनी हुई मिंगी सर्दी से होनेवाली खांसी में लाभदायक है। यह गरम प्रकृति वालों को हानिकारक है।

प्रतिनिधि—अखरोट के प्रतिनिधि चिरौंजी और चिलगोजा हैं तथा इसका दर्प नाशक अनार का रस है।

उपयोग—अर्दित (मुंह का लकवा)—अर्दित में इसके तेल का मर्दन करके बादी मिटानेवाली औषधियों के क्वाथ का बफारा लेने से बड़ा लाभ होता है।

नारू—नारू में इसकी खली को पानी के साथ पीसकर, गरमकर, सूजन पर लेपकर, पट्टी बांधकर तपाने से सूजन उतर जाती है 'ऐसे १५-२० दिन तक नित्य प्रयोग करने से नारू गलकर नष्ट हो जाता है।

कंठमाला—इसके पत्तों का क्वाथ पीने और उसीसे गांठ को धोने से कंटमाला मिटती है।

दाद—प्रातःकाल हाथ-मुंह धोने से पहिले इसकी गिरी को दांतों से महीन चबाकर लेप करने से दाद मिटता है।

शोथ (सूजन)—पाव भर गोमूत्र में १ से ४ तोले तक अखरोट का तेल मिलाकर पीने से शरीर की सूजन उतरती है।

नासूर—इसकी पिसी हुई गिरी को मोम व मीठे तेल के साथ गला कर लेप करने से नासूर मिटता है।

अफीम का विष—इसकी गिरी को खिलाने से अफीम और भिलामें के विष के उपद्रव में फायदा होता है।

कृमि रोग—इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से आंतों के कीड़े मरते हैं।

विरेचन—इसकी गिरी से जो तेल खींचा जाता है वह एक औंस से लगाकर २ औंस तक देने से मृदु-विरेचन होता है।

तेल निकालने की रीतियां—(१) इसकी गिरी को महीन कूट कर गाढ़े कपड़े की थैली में भर कर यन्त्र में दबाने से तेल निकलता है। यह तेल पतला और स्वादिष्ट होता है। इसमें जलाने व फफोला उठाने की शक्ति होती है। यह तेल ज्यों २ पुराना होता है त्यों त्यों फफोला उठाने की शक्ति बढ़ती जाती है।

(२)—जितनी गिरी में से तेल निकालना हो उसमें से पौन हिस्से को पहले कोल्हू में डाल डाल कर पेरना चाहिये। जब वह महीन हो जाय, तब शेष गिरी भी उसमें डाल दें और उसके बाद एक सेर भर मिसरी के टुकड़े डालद जिससे खली तेल को छोड़ देगी। इस तेल को छान कर कांच या चीनी के बर्तन में भर देना चाहिये।

अगस्तिया

नाम—संस्कृत—अगस्त्य। हिन्दी—अगस्तिया। गुजराती—अगस्थियो। बंगला—बक। मराठी—अगस्ता। कनाड़ी—अगसेयमरन्। चोगची। तामील—अक्कम, अर्गतो, तेलंगी—अविसी। लेटिन—Agati Grandiflora (अगटी ग्रांडीफ्लोरा)

वर्णन—इस वृक्ष की ऊंचाई २० से ३० फीट तक होती है। इसकी छाल—चिकनी और हलके भूरे रंग की होती है। लकड़ी सफेद और कोमल होती है। पत्ते इमली के पत्तों के समान पर आकार में उनसे कुछ बड़े इंच डेढ इंच लम्बे किंचित् अण्डाकार होते हैं। फूल तिरछे, लाल, सफेद होते हैं। फलियां १०-१२ इंच लम्बी, तिहाई इंच चौड़ी और चपटी होती हैं। इसकी दो जातियां होती हैं। एक का फूल सफेद होता है और दूसरी का लाल। इसकी फलियों, फूल आर पत्तों का शाक बनाया जाता है।

गुण दोष—आयुर्येदिक मत—भाव प्रकाश के मतानुसार अगस्तिया शीतल, रूखा, वातकारक, कडुआ तथा शीत वीर्य होता है और पित्त, कफ और चौथे दिन आने वाले बुखार तथा जुकाम को नष्ट करने वाला है।

इसके फूल शीतल, चातुर्थिक ज्वर और रतौंधी को दूर करने वाले, कड़वे, कसेले, पचने में चरपरे तथा पीनसरोग, कफ, पित्त और वात को नाश करने वाले होते हैं। (निघण्टु रत्नाकर)।

इसके पत्ते चरपरे, कड़वे, भारी, मधुर, किंचित्, गरम, स्वच्छ तथा कृमि, कफ, विष और रक्तपित्त को हरने वाले हैं। इसकी फली हलकी, दस्तावर, बुद्धिवर्धक, रुचिकारक, पचने में मधुर, कड़वी, स्मरण शक्ति वर्धक, तथा त्रिदोष, शूल, कफ, पांडुरोग और गुल्म नाशक है।

यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थकार इसको दूसरे दर्जे में ठण्ढा और रूक्ष मानते हैं। मीर महम्मदहुसेन के कथनानुसार इसके पत्तों का रस निकाल कर दो-तीन बूंद नाक में टपकाने से छींक आकर तथा नाक बह कर सिरदर्द व सिर का भारीपन दूर होता है।

उपयोग—अपस्मार (मृगी)—अगस्तिया के पत्तों को काली मिरच के साथ गोमूत्र में बारीक पीस कर मृगी के रोगी को सुंघाने से लाभ होता है।

वातरक्त—अगस्तिया के फूलों का चूर्ण कर उसको भेंस के दूध में मिलाकर दही जमाना चाहिये। इस दही से निकाले हुए मक्खन से वातरक्त आराम होता है।

चेचक—चेचक की प्रथमावस्था में इसकी छाल का हिम बनाकर देने से लाभ होता है।

चोट—कहीं पर भी चोट लगने से या कुचल जाने से इसके पत्ते की पुल्टिस बनाकर बांधने से लाभ होता है।

नेत्र की कमजोरी—इसके फूलों का रस निचोड़ कर आंखों में डालने से दृष्टि की कमजोरी और धुँधलेपन में फायदा होता है।

श्वेतप्रदर—अगस्त की ताजी छाल को कूट कर उसका रस निकाल कर उसमें कपड़े को तर कर बत्ती बनाकर योनि मार्ग में रखने से श्वेतप्रदर में लाभ होता है।

आधा शीशी—जिस तरफ के कपाल में दर्द होता हो, उसकी दूसरी ओर की नाक में अगस्त के फूलों या पत्तों का रस निकाल कर टपकाना चाहिये।

चित्त विभ्रम—अगस्त के पत्तों के रस में सोंठ, पीपर और गुड़ को मिलाकर सूंघने से चित्तविभ्रम में फायदा होता है।

सूजन—लाल अगस्त्य और धतूरे की जड़ को साथ २ गरम पानी में पीस कर लेप करना चाहिये।

चातुर्थिक ज्वर—इसके पत्तों का या फूलों का रस सुंघाने से चातुर्थिक ज्वर और बँधे हुए जुकाम में लाभ होता है।

गठिया—लाल-फूल के अगस्तिया की जड़ को पानी में पीसकर गरम करके लेप करने से गठिया की सूजन उतरती है।

रतौंधी—इसके फूलों का साग खाने से रतौंधी मिटती है।

अगमकी

नाम—संस्कृत—अहिलेखा। हिन्दी—अगमकी बिलारी। बम्बई—चिराती। वर्मा—सतखीवा। कुमाऊ—बिलारी, गुवालककड़ी। मुण्डारी—जयपट्टुस। सिन्ध—बेलारी, चिराती। तामील—मुसीमुसीकेई। तैलगू—पोती बुदामु। लेटिन—Mukia Scabrella, Melothria Medreas patana।

विवरण—यह एक प्रकार की वर्षोपजीवी वनस्पति है। इसकी शाखायें बांकी टेढ़ी फैली हुई रहती हैं। शुरू २ में इसके ऊपर सफेद रुंआ रहता है। इसके आधारभूत तन्तु बहुत नाजुक और सीधे रहते हैं। इसके पत्ते भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं। ये खण्ड युक् और कोष युक् रहते हैं। इनकी नौक तीखी होती है। इनके ऊपर का डंठल लम्बा और रुंएदार होता है। इसके पुष्प गुच्छेदार होते हैं, जिनमें नर और मादा दोनों जातियां होती हैं। पुष्पों के ऊपर का आवरण रुंएदार होता है इसका फल मटर के आकार का होता है। यह शुरू-शुरू में कुछ पीलापन लिए हुए हरे रंग का और पकने पर गहरे लाल रंग का होता है। यह गोल और चपटा और चिकना होता है।

इण्डियन मेडिसिनल प्लांट्स—के रचयिताओं के मतानुसार इसके बीजों का काढ़ा एक प्रकार की पसीना लेनेवाली औषधि है। इसकी जड़ का काढ़ा बादी या कोष्ठ वायु में बहुत ही मुफीद है। यह दांतों की पीड़ा में भी उपयोगी है। दांत-पीड़ा दूर करने के लिए इसकी जड़ को चबाना चाहिए। इसके नरम पत्ते व नरम-नरम डालियां मृदु-विरेचक माने जाते हैं। ये सिर के चक्कर घूमरि और पित्त में बड़े मुफीद हैं। छोटा नागपुर में मुण्डाजाति के लोग इसके बीजों को कुचल करके दर्द के स्थान पर लगाते हैं। इनका खास उपयोग कमर की लचक पर किया जाता है।

कोमान का मत—यह वनस्पति अपने कफ निस्सारक गुण के कारण उन जीर्ण रोगों की औषधियों का मुख्य अङ्ग रहती है जिनमें कि कफ का मुख्य लक्षण होता है। इसे वायु-नलियों के प्रदाह, खांसी व श्वास की बीमारी में कुछ बीमारों पर आजमाया, किन्तु असर बहुत धीमा व असन्तोषजनक पाया।

डाक्टर चोपरा—उनके मतानुसार यह मूत्र निस्सारक व अग्निवर्धक है।

अगर

नाम—संस्कृत—अगुरु, वंशिकं, राजार्ह, कृमिजम्। हिन्दी—अगर। द्राविड़ी—अहिलकट्टे, अरबी—ऊद हिन्दी, फारसी—ऊदखाम। लेटिन—Aquilaria Agallocha (एक्वीलेरिया एजेलोका)।

वर्णन—अगर के वृक्ष सिलहट, मालाबार, मलयाचल, मनीपुर इत्यादि स्थानों पर होते हैं। इसके झाड़ की ऊंचाई साठ से सौ फीट तक और गोलाई ५ से फीट तक होती है। जब यह वृक्ष बीस वर्ष से अधिक आयु का होता है तब इसकी लकड़ी पकने लगती है और उपयोग में लेने योग्य होती हैं। यह वृक्ष बहुत बड़ा और सर्वदा हार

रहनेवाला होता है। इसकी लकड़ी नरम होती है। इसके छिद्रों में राल की तरह कोमल और सुगन्धित पदार्थ रहता है। जो अगरबत्ती बनाने और शरीर पर मलने के काम में लिया जाता है।

प्राचीनकाल के अन्दर भारतवर्ष में अगर द्रव्य की कड़ी महत्ता थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस द्रव्य के व्यापार का बड़ा व्यापक वर्णन किया है। सुश्रुत, चरक इत्यादि ग्रन्थों में इसका बहुत वर्णन किया गया है। प्राचीन काल में यहूदी लोग अगर को अलहीट, ग्रीक और रोमन लोग अगेलोकन और अरब निवासी अधखुली कहते थे परन्तु बाद में वे इसका नाम बदलकर ऊद हिन्दी कहने लगे।

अगर की कई जातियाँ होती हैं। आर्य वैद्यक ग्रंथों में इसकी पाँच जातियों का वर्णन मिलता है। जिनके नाम क्रमशः कृष्णागुरु, काष्ठागुरु, दाहागुरु, स्वाद्वगुरु, और मङ्गलागुरु है। यूनानी हकीम इसकी चार जातियाँ बतलाते हैं। हिन्दी, समन्दरी, कमरी और समगडली।

इखतीयारत—इ-बादियायी नामक ग्रंथ के कर्त्ता ने उपर्युक्त सभी जातियों से भिन्न एक और जाति का वर्णन किया है। उसकी कीमत सोने के बराबर होती है। अगर की दूसरी जातियों को आग पर रखे बिना सुगन्ध नहीं आती। परन्तु उसे थोड़ी दूर तक हाथ पर रखने से ही सुगन्ध आने लगती है।

उपर्युक्त सब जातियों में कृष्णागुरु जिसे ऊदेगरकी कहते हैं और जो सिलहट से प्राप्त होता है सर्वोत्तम होता है और वही औषधि के काम में आता है। यह पानी में डालने से डूब जाता है। स्वाद में कड़वा होता है। चबाने में मुलायम होता है और जलाने से सुगन्ध देता है।

गुण दोष—आयुर्वेदिक चरक के मतानुसार अगर शीत प्रशामक और खाँसी को नष्ट करनेवाला है।

सुश्रुत के मतानुसार यह कांतिवर्धक, कफनाशक, कुष्ठ, खुजली को नष्ट करनेवाला है। अगर की लकड़ी को जल में औटाकर उस पानी को पीने से ज्वर में लगनेवाली प्यास बुझ जाती है। इसके अतिरिक्त मृगी, उन्माद इत्यादि रोगों में भी लाभ पहुँचाता है।

राजनिघण्टुकार के मतानुसार काला अगर कड़ुवा, उष्ण, लेप में शीतल, पीने में पित्तनाशक और किसी-किसी के मत से त्रिदोष नाशक है। काष्ठागुरु—चरपरी, गरम, लेप में रूखी और कफनाशक है। दाहागुरु—चरपरी, गरम, केश-वर्धक वर्ण को उज्ज्वल करनेवाली, केशों के दोष को हरनेवाली और निरन्तर सुगन्धिदायक है और मंगलागुरु—शीतल गंधवाही और योगवाही है।

निघण्टु रत्नाकर के मतानुसार अगर—सुगन्धित, गरम, कटु, स्निग्ध, मङ्गलदायक, रुचिकारी, धूप के योग्य, पित्तजनक, तीक्ष्ण, तथा वात कफ, कर्णरोग और कोढ़ का नाश करनेवाली है।

भावप्रकाश के मतानुसार अगर-गरम, चरपरी, त्वचा को हितकारक, कड़वी, तीक्ष्ण, पित्तजनक, हलकी तथा कर्णरोग, नेत्ररोग, शीत, वात और कफ नाशक है।

इसकी लकड़ी—तीक्ष्ण, सुगन्धित, तेलयुक्त, गरम, धातु परिवर्तक, पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करनेवाली, कफ, वात, कर्णरोग और चर्मरोग, कुक्कुरखांसी (whooping Cough) और नेत्र की पीड़ा में लाभकारक है।

यूनानी मत—इसकी प्रकृति दूसरी कक्षा में गरम और तीसरी कक्षा में रूक्ष है। किसी-किसी के मतानुसार दूसरी कक्षा में रूक्ष है। इसकी लकड़ी सुगन्धित और स्वाद में खराब है। यह विरेचक, पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करनेवाली, अग्निवर्द्धक, मूत्र निस्सारक व कामोद्दीपक है। जीर्ण रक्तातिसार में भी यह चीज उपयोगी है। यकृत और आँतों के रोगों को दूरकर मुँह की बदबू को हटानेवाली है। यह वायु नलियों के प्रदाह, श्वास और वमन में उपयोगी है तथा मस्तिष्क को शक्ति देनेवाली है।

अपने हलके सुगन्धदायक और अपने स्वाभाविक गरम स्वभाव से यह प्राणवायु, आमाशय, यकृत, हृदय, मस्तिष्क तथा इन्द्रियों को बल देता है। इसका चबाना मुँह को सुगन्धिदायक करता है और वायु को नष्ट करता है।

रासायनिक विश्लेषण—रासायनिक विश्लेषण से मालूम हुआ है कि इसमें एक उड़नशील तेल रहता है जो ईथर में विलेय होता है, दूसरी राल रहती है जो अलकोहल में घुलनशील और ईथर में अनघुलनशील होती है।

उपयोग—त्वचारोग और कांतिवर्द्धन के लिये अगर का लेप करना चाहिये।

कामोद्दीपन—अगर का चोया पान में लगाकर खाने से अत्यन्त कामोत्तेजना होती है। बाजीकरण औषधि में भी यह मिलाकर दिया जाता है।

मन्दाग्नि—मन्दाग्नि और हृदय रोग में इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से लाभ होता है। इसके प्रतिनिधि दालचीनी, बालछड़ तथा देवदारु और इसके दर्पनाशक गुलाब और कपूर हैं।

अंकोल

नाम—संस्कृत—अंकोलः, निकोचकः, रेची, गुप्तस्नेहः। हिन्दी—अंकोल, ढेरा। मारवाड़ी—अंकोल। गुजराती—अंकोल। बंगाली—आंकोड़। तेलंगी—बुडुगू। द्रविड़ी—अंकोलम। लेटिन—Alangium Lamarckii (एलेन्जियम लमारकि।

वर्णन—अंकोल का झाड़ सारे भारतवर्ष के जंगलों में पैदा होते हैं, जिसकी ऊँचाई २५ से ४० फीट तक की होती है। इसके पेड़ की गोलाई ढाई फीट तक होती है। इसकी शाखाओं का रंग विशेषकर सफेद होता है। इसके पत्ते ३ से ६ इंच तक लम्बे और एक से दो अंगुल तक चौड़े कनेर के पत्तों की तरह होते हैं। वे पतझड़ में गिर जाते हैं और चैत्र, वैसाख में नये आते हैं। पत्तों के गन्ध उग्र और स्वाद खट्टा और कड़वा होता है। इसके फल कच्ची हालत में नीले, पकते हुए लाल और पक जाने पर जामुन के समान बैगनी रंग के हो जाते हैं। इन फलों के अन्दर गुठली होती है जिनको मोड़ने से बीज निकलता है। ये बीज नख से कुरेचने पर रस भरे हुए मालूम होते हैं। देशी वैद्य लोग अंकोल के काले और सफेद दो प्रकार के भेद बतलाते हैं। पर डाक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार काली जाति अंकोल की नहीं, प्रत्युत उसीके समान दूसरी वनस्पति जिसको लेटिन में Alangium Hexa petalum एलंजियम हेक्सापेटेलम कहते हैं, उसकी है।

गुण दोष आयुर्वेदिक मत—निघण्टु रत्नाकर के मतानुसार अंकोल—कड़वा, कसेला, पारे को शुद्ध करने वाला, हलका, किंचित् चरपरा, दस्तावर, चिकना, तीखा, रूखा, गरम होता है। इसका रस—कांतिजनक, तथा विष विकार, कफ, वात, शूल, कृमि, सूजन, ग्रहपीड़ा, आमपित्त, रुधिर विकार, विसर्प, कुत्ते, मूषे और बिलाव का विष, कटिशूल और पिशाच पीड़ा को नष्ट करने वाला है। इसके बीज—शीतल, धातु वर्धक, स्वादिष्ट, भारी, मन्दाग्नि करने वाले, रस और पाक में मधुर, बलकारक, सारक, स्निग्ध, वीर्यवर्धक तथा दाह, वात और पित्त, क्षय, रक्त-विकार, कफ, पित्त, और विसर्प को दूर करने वाले होते हैं।

यूनानी मत—कुछ यूनानी ग्रन्थकार इसे पहले दर्जे में और कुछ दूसरे दर्जे में गरम और तर मानते हैं। उनके मतानुसार यह औषधि जिगर को ताकत पहुँचाने वाली, जहर को नाश करने वाली, वायु के विकार, पेट के दर्द और कृमि को नष्ट करने वाली है। इसके ज्यादा उपयोग से आमाशय निर्बल होकर मन्दाग्नि पैदा होती है और सिर में झंझनाहट के साथ दर्द शुरू हो जाता है। इसकी जड़ गरम और चरपरी होती है फल—ठण्डा, पौष्टिक और शरीर को मोटा करने वाला होता है।

डाक्टर मुडीन शरीफ (Modeen Sheriff) के मतानुसार यह औषध पचास ग्रेन (२५ रत्ती) की मात्रा में सुरक्षित वमन कारक सिद्ध हो चुकी है। हलकी मात्रा में यह ज्वर को नाश करने वाली है। इसकी छाल बहुत कड़वी, चर्मरोगों में बहुत लाभ पहुँचाने वाली तथा ज्वर निवारक है। विशेष करके प्रदाहिक ज्वर को नष्ट करती है। धातु परिवर्तन के लिए इसकी मात्रा २ से ५ ग्रेन तक तथा ज्वर नाश, मूत्र वर्धन और उल्टी लाने के लिए इसकी मात्रा ६ से १० ग्रेन तक उपयोग में ली जाती है। उपदंश और कोढ़ की बीमारी में भी यह उपयोग में ली जाती है। भारतवर्ष के वैद्य इसको विष निवारक समझते हैं और जहरीले जन्तुओं के काटने पर काम में लेते हैं। चरक, भावप्रकाश के लेखक भावमिश्र और शार्ङ्गधर भी इसको सर्प विष नाशक मानते हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार इस औषधि में सर्प-विष को नष्ट करने की शक्ति नहीं है।

रासायनिक विश्लेषण—कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इस औषधि में निम्नलिखित द्रव्य पाये जाते हैं।

Alkaloid., *82*
Petroleum Ether [B. P. *35*. to 70. Percent] ·*40*
Absolute Ether. ·66
Absolute Alcohol. 4· 01
Alcohol [70 Percent *3·5*]

इसके पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण से यह पता लगा है कि इसमें Alkaloid (अलकालाइड) अच्छी तादाद में पाया जाता है। पोटेसियम क्लोरिड Potesium Chlorid भी इसमें पाया जाता है। इसमें किसी प्रकार का टैनिन व ग्लूकोसाइड्स (glucosides) नहीं पाया जाता, इसके उपचार की उपयोगिता का विश्लेषण करने पर मालूम हुआ है कि इसके रस को इन्जेक्शन द्वारा खून में पहुँचाने से यह खून की गति (Blood Pressure) को कम कर देता है लेकिन वह असर बिलकुल अस्थायी रहता है। कलकत्ते के स्कूल ऑफ् ट्रापिकल मेडिसन्स में इसके सम्बन्ध में प्रयोग जारी है।

उपर्युक्त विवेचन से मालूम होता है कि अङ्कोल की जड़ की छाल का आमाशय की पाचन-नलियों पर तथा शरीर की त्वचा (चमड़ी) के ऊपर प्रत्यक्ष असर होता है। दो-तीन रत्ती की मात्रा में इसके चूर्ण को देने से आँतों की ताकत बढ़ती है, दस्त साफ होता है, पित्त का स्राव भली प्रकार होता है, कफ ढीला होता है तथा चमड़ी पर स्निग्धता पैदा होती है। अधिक मात्रा में इसको देने से उल्टी होती है, पेशाब की मात्रा बढ़ती है, फिर भी इस औषधि की गणना आयुर्वेद में वामक औषधियों में नहीं की गई है। इसका कारण यह है कि इसके द्वारा कराई हुई उल्टी से शरीर की रक्तवाहिनी नलियों में बहुत थकावट और शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। आमाशय में दाह भी उत्पन्न हो जाता है और कभी २ तो सूजन भी पैदा हो जाती है। इसीलिए वामक औषधियों की तरह इसको व्यवहार में नहीं लाना चाहिए। इस औषधि का दूसरा महत्त्व पूर्ण गुण विष को नष्ट करने का है। यद्यपि केस और मस्कर ने इस औषधि को सर्पदंश में निरुपयोगी माना है, पर प्राचीन और नवीन अनुभवों से मालूम होता है कि वैद्य लोग विष नाशक औषधियों में इसका प्रयोग करके सफलता पाते हैं।

दिसम्बर सन् १९२२ के वैद्य कल्पतरु में अङ्कोल के सम्बन्ध में एक नोट प्रकाशित हुआ था, उसका अनुवाद हम ज्यों का त्यों यहां उद्धृत करते हैं।

करांची से सेठ एदलजी बहेंराना एक वनस्पति के सम्बन्ध में निम्नांकित प्रश्न करते हैं।

'इस पत्र के साथ आपके पास एक लकड़ी का टुकड़ा भेजते हैं, जिसे मेरे मित्र एक डाक्टर को किसी पारसी गृहस्थ ने आधा सेर दिया है। उसका नाम वे स्वयं जानते नहीं या बतलाना नहीं चाहते, इस टुकड़े को नीबू के रस में घिस कर गाढ़ा प्रवाही बनाकर आधी छोटी चम्मच सबेरे और शामको भोजन के दो घण्टे पूर्व लेने से चाहे जैसे भयंकर दमें में लाभ पहुँचाता है, और पांच-सात दिन में आराम जैसा हो जाता है। यह लकड़ी किस वनस्पति की है और उसके क्या गुण दोष हैं, इसकी गुजराती के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वनस्पति शास्त्र' के लेखक रा० जयकृष्ण भाई से पहचान करा कर अगर आप अपने पत्र में प्रकाशित करेंगे तो बड़ा लाभ होगा।'

'इस वनस्पति का टुकड़ा जांच के लिए जयकृष्ण भाई को भेजा गया और उन्होंने उसकी जांच कर लिखा कि इस टुकड़े की जांच करने पर यह अंकोल का मालूम पड़ा है।' इससे पता चलता है कि इस औषधि में दमे को नाश करने का चमत्कारिक गुण है।

प्रयोग—**दमा**—अंकोल की जड़ को नीबू के रस में गाढ़ा २ घोटकर आधा-आधा छोटा चम्मच सबेरे शाम दो घण्टे पूर्व लेने से भयंकर दमे की बीमारी में भी लाभ पहुंचाता है।

सर्पदंश पर—अंकोल की जड़ को दस तोला लेकर उसे कूटकर दो सेर पानी में उबालना चाहिये। जब डेढ़ पाव पानी शेष रह जाय, तब उतार-छानकर प्रति पन्द्रह मिनट में पांच तोला क्वाथ गाय के गर्म किये हुए पांच

तोला घी के साथ मिलाकर पीने से वमन के द्वारा सर्प का जहर निकल जाता है। जहर उतरने के पश्चात् भी आठ दिन तक नीम की अन्तर छाल का काढ़ा बनाकर उसमें अंकोल की जड़ की छाल का १॥ माशा चूर्ण मिलाकर सबेरे शाम पीने से जहर का सूक्ष्म असर भी नष्ट हो जाता है।

पागल कुत्ते का विष—सुदर्शन चूर्ण ड़ेढ़ माशा, अंकोल की जड़ की छाल का चूर्ण डेढ़ माशा दोनों को मिलाकर सबेरे शाम डेढ़ माशे की खुराक में देने से पागल कुत्ते का विष नष्ट होता है। लगातार तीन महीने तक इस औषधि का सेवन करना चाहिए।

चूहे के विष पर—इसकी जड़ की छाल को घिस कर पीने से तथा उसी को घिस कर दंश पर लगाने से चूहे का विष और उस से पैदा हुई शरीर की दाह दूर होती है।

ज्वर पर—इसकी जड़ के चूर्ण की ढाई रत्ती से पांच रत्ती तक की मात्रा देने से पसीना आकर मौसमी ज्वर उतर जाता है।

जलोदर पर—इसी चूर्ण की डेढ़ माशे से तीन माशे तक की मात्रा देने से दस्त आकर अजीर्ण रोग और जलोदर में फायदा होता है।

कुष्ठ रोग पर—इसकी जड़ की छाल, जायफल, जावित्री और लौंग प्रत्येक पांच-पांच रत्ती लेकर चूर्ण करके देने से कोढ़ का बढ़ना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार बढ़िया हड़ताल को अंकोल के तेल में घोटकर टिकड़ी बनाकर एक हाँडी में पीपल के झाड़ की राख भर कर उस पर वह टिकड़ी रखकर ऊपर से फिर राख भर कर बहार प्रहर की आंच देने से जो भस्म होती है, वह भस्म कोढ़ के असाध्य दर्दों में लाभ पहुंचाती है।

गठिया—इसकी जड़ की छाल का रस बनाकर मालिश करने से गठिया वात की तीव्र पीड़ा मिटती है।

नासूर पर—इसकी लकड़ी की राख नासूर के अन्दर भरने से नासूर नष्ट हो जाता है।

बवासीर पर—इसकी जड़ की छाल का चूर्ण एक माशा लेकर काली मिर्च के साथ फंकी देने से बवासीर में लाभ होता है।

फोड़े फुन्सी पर—वर्षाऋतु में बगल के नीचे तथा गले पर जो प्राणनाशक फोड़े हो जाते हैं। उनमें प्रारम्भ से ही सबेरे के समय यदि इसका एक फल खिला दिया जाय और एक फल का रस निकाल कर फोड़ों पर मल दिया जाय तो तुरन्त लाभ पहुंचता है।

चेचक के दाग पर—गेहूं के आटे में हलदी, अंकोल का तेल और पानी मिलाकर चेहरे पर मालिश करने से चेचक के दाग मिटते हैं तथा चेहरा साफ होता है।

सुजाक—इसके फलों के गूदे और तिल के क्षार को शहद में मिलाकर देने से सुजाक में लाभ होता है।

घाव पर—धार वाले हथियार से अगर चोट लग जाय तो इसके तेल में रूई को भिगोकर उसकी घाव पर पट्टी चढ़ाने से खून आना बन्द हो जाता है और घाव जल्दी भर जाता है। जंगल का जड़ी बूटी नामक ग्रन्थ के लेखक लिखते है कि दूसरे उपचारों से दो-तीन महीने में भी जो घाव आराम नहीं हुए वही इसके उपचार से केवल बारह दिन में आराम हुए हैं। ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं।

बनावटें—प्रमेह नाशक चूर्ण—अंकोल के फूल की सुखाई हुई कलियां दो तोला, आंवले दो तोला, हलदी दो तोला इन तीनों का चूर्ण करके तीन माशे की खुराक में शहद के साथ दोनों टाइम लेने से प्रमेह रोग में लाभ पहुँचता है और मूत्रनाली साफ होती है।

अतिसार नाशक बटी—अंकोल की जड़ की छाल, देवदारु, कालीपाड़ की जड़, कूड़े की छाल, धावड़ी के फूल, लोध, अनार के वृक्ष की छाल और राल इन सब चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण कर चावलों के धोवन के पानी में खरल करना चाहिये। उसके बाद झड़बेर के समान गोली बनाकर चावलों के धोवन के साथ खिलाने से अतिसार और खून की दस्तें आराम होती हैं।

अंकोल का तेल निकालने की विधि—तन्त्र ग्रंथों के मतानुसार अंकोल के बीजों का चूर्ण करके उस चूर्ण को तिल के तेल में भिगोकर धूप में रखना चाहिये। जब वह तेल सख जाय तब उस चूर्ण को दूसरी दफे तेल में तर

करके फिर उसको धूप में सुखाना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक वह चूर्ण जितना तेल पिये उतना पिलाकर उस चूर्ण को एक कांसी की थाली पर लपेट कर उस थाली को एक दूसरी कांसी की थाली के ऊपर औंधी ढांक कर कड़ाके की धूप में रखने से ऊपर की थाली में से तेल टपक कर नीचे की थाली में इकट्ठा होगा। इस तेल को एक शीशी में भर कर रख लेना चाहिए। इस तेल में अद्भुत रोपण शक्ति रहती है। नहीं भरने वाले गहरे घावों पर इस तेल को लगाने से थोड़े समय में घाव भर जाते हैं। अगर सिर की चांद के बाल उड़ गये हों तो इस तेल की मालिश करने से नये बाल उग जाते हैं।

दूसरी विधि—एक चीनी के प्याले के मुँह के ऊपर कपड़ा कसकर बांध दें। इस कपड़े के मुँह पर अंकोल के बीज को कूट कर बिछा दें और उस प्याले पर अंकोल का टुकड़ा रखकर कोयले की आंच के ऊपर रखें। इसकी गर्मी से तेल टपक कर प्याले में इकट्ठा होगा जिसे लेकर एक शीशी में भर लें।

अंकोल के तेल का मलहम—उपर्युक्त दूसरी विधि से निकला हुआ अंकोल का तेल ५ तोला और मोम सवा तोला लेकर इन दोनों को हलकी आंच पर गरम करके जब दोनों चीजें एक रस हो जायँ तब उनमें फुलाया हुआ नीला थूथा चार रत्ती डालकर उतार लेना चाहिये। ठण्डा होने पर अच्छी तरह से मिला कर चौड़े मुँह की शीशी में भर लेना चाहिये। इस मलहम से खुजली, भगन्दर, नासूर इत्यादि कठिन बीमारियां आराम होती हैं।

इस तेल की पाँच बूँदें शक्कर डाले हुए गरम दूध में मिलाकर पीने से शरीर बलवान होता है तथा प्रमेह, निर्बलता, चक्कर आना वगैरह दर्द दूर होते हैं।

शिवोक्त इन्द्रजाल नाम ग्रन्थ में इस तेल की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

'शववक्त्रे विन्दुमात्रं, तत्तैलं निक्षिपेद्यदि। एकयामं सजीवः स्यान्नान्यथा शंकरोदितम्'॥

अर्थात् मुर्दे के मुख में भी अगर एक बूंद अंकोल का तेल डाल दिया जाय तो एक प्रहर के लिए उसका संजीवन हो जाता है।

हो सकता है कि उपर्युक्त बात में अतिशयोक्ति हो पर यह बात तो इस समय की नवीन शोधों से मालूम हुई है कि अंकोल के तेल में विद्युत् शक्ति काफी होती है। संभव है कि मरणासन्न अवस्था में जब कि प्राणी की ज्ञान शक्ति बिल्कुल लुप्त हो जाती है इस तेल को देने से हेमगर्भ की तरह यह भी क्षणिक चेतनता पैदा करने की शक्ति रखता हो।

अंगूर

नाम—संस्कृत—द्राक्षा, मधुरसा, स्वादुफला, फलोत्तमा। हिन्दी—अंगूर। गुजराती—द्राख। मराठी—द्राख। तैलंगी—द्राक्षापेडी, गोस्तनीतेड्डु। लेटिन—Yitis Viniferr। अंग्रेजी—Grapes।

परिचय—अंगूर की लता लकड़ियों की टट्टियों पर चलती है। इसके पत्ते गोलाकार, पांच दल वाले हाथ के पंजे की आकृति के होते हैं। इसके फूल सुगंधित व हरे रंग के होते हैं, बालों के ऊपर फूलों की सींगे लगती हैं और फूल तथा फल गुच्छेदार लगते हैं। मचानों के ऊपर इसकी बेलें खूब छा जाती हैं। हिन्दुस्तान से अफगानिस्तान व फारस देश के अंगूर ज्यादा अच्छे होते हैं।

काश्मीर, औरङ्गाबाद, दौलताबाद, नासिक इत्यादि स्थानों में भी अंगूर पैदा होते हैं मगर वे सीमाप्रान्त के अंगूरों के बराबर मीठे व गुणकारी नहीं होते।

अंगूर की जातियाँ कई प्रकार की होती हैं। उनमें पाँच जातियाँ विशेषकर प्रसिद्ध हैं। इनमें से दो काले रंग की और तीन हरे रंग की होती हैं। काले रंग की एक जाति को हब्शी अंगूर कहते हैं। यह जामुन के समान गहरे बैंगनी रंग का व ज्यादे चमकदार होता है। खाने में बहुत मीठा होता है। दूसरे प्रकार का काला अंगूर साधारण बैंगनी रंग का होता है तथा हब्शी अंगूर से कम मीठा व कम गुणकारी होता है। हरे अंगूरों में पिटारी का अंगूर सबसे अधिक बड़ा, लम्बा और अधिक मीठा होता है और हरे अंगूरों में सबसे अच्छा माना जाता है। हरे रंग का अंगूर बहुत प्रसिद्ध जाति का है जो आकार में सबसे छोटा मगर खाने में सबसे अधिक स्वादिष्ट और सबसे अधिक कोमल होता है। बीज न होने की वजह से बेदाना कहलाता है।

पक्के अंगूरों को उनकी लताओं पर ही सुखाकर दाख या मुनक्का बना लेते हैं। काले अंगूर का काला मुनक्का, पिटारी के अंगूर का लाल मुनका और बेदाना अंगूर का किसमिस बनता है।

गुण-दोष—आयुर्वेद के मतानुसार कच्ची दाख-स्वल्प गुणवाली, भारी, खट्टी और कफ-पित्तहारी है। पकी दाख कुछ दस्तावर, शीतल, नेत्रों को लाभकारी, भारी, पुष्टिकारक, सुस्वादु, स्वर को शुद्ध करनेवाली, कसैली, मूत्र व मल को निकालने वाली, वीर्यवर्धक, कफकारक, पौष्टिक तथा तृषा, ज्वर, श्वास, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, मेह, दाह और शोष को दूर करनेवाली है। कालीदाख अथवा गोस्तनी-वीर्यवर्धक, भारी और कफ-पित्त को नाश करनेवाली है। छोटी दाख अर्थात् किसमिस, मधुर, शीतल, वीर्यवर्धक, रुचिप्रद, खट्टी तथा श्वास, खांसी, ज्वर, हृदय की पीड़ा, रक्तपित्त, क्षत, क्षय, स्वरभेद, तृषा, वातपित्त और मुख के कडुवेपन को दूर करती है।

अंगूर के ताजे फल--रुधिर को पतला करनेवाले, छाती के रोगों में लाभ पहुँचाने वाले, बहुत जल्दी पचनेवाले रक्तशोधक तथा खून बढ़ानेवाले होते हैं।

यूनानीमत—यूनानी हकीम इसको दूसरे दर्जे में गर्म व तर मानते हैं। कच्चे अंगूर को पहले में ठण्ढा और दूसरे दर्जे में रूक्ष मानते हैं। यह स्निग्ध, आमाशय व प्लीहा को नुकसान पहुँचानेवाला तथा वायुजनक है। इसके पत्ते बवासीर में उपयोगी हैं। इनके रस से सिरदर्द, उपदंश, बवासीर और तिल्ली का दर्द दूर होता है। ये मूत्रनिस्सारक, वमन को दबानेवाले, मुँह से गिरनेवाले खून को बन्द करनेवाले और खुजली को लाभ पहुँचानेवाले हैं। इसकी लकड़ी की राख जोड़ों के दर्द में फायदेमन्द है। इसकी डाली मूत्राशय, अण्डकोष की सूजन व बवासीर के अन्दर लाभ पहुँचाने वाली है। इसका फल कफ को ढीला कर निकालनेवाला, स्त्रियों के मासिक धर्म को नियमित करनेवाला, खून बढ़ानेवाला, पौष्टिक, वायुनलियों के प्रदाह में लाभ पहुँचानेवाला और कब्जियत को दूर करनेवाला है। यह खट्टा, मीठा, पाचक, अग्निदीपक तथा फेफड़े, यकृत, मूत्राशय व जीर्णज्वर की बीमारी में उत्तम है। इसके बीज—ठण्ढे, कामोद्दीपक और अंतड़ियों का संकोचन करनेवाले हैं। इन बीजों की राख सूजन कम करने के लिए लगाई जाती है। इसकी लकड़ी की राख बस्ति की पथरी में गुणकारी और बवासीर की सूजन को दूर करनेवाली होती है।

इसके सूखे फल अर्थात् मुनक्का—शान्तिदायक, रेचक, मृदु तथा प्यास, शरीर की गर्मी, कफ और क्षय की बीमारी में लाभकारी है। इसकी छोटी-छोटी शाखाओं का रस चर्म रोग की उत्तम दवा है। यूरोप के अन्दर आँख के दर्द में भी यह काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार अंगूर—शान्तिदायक, रेचक और अग्निदीपक है। यह कमजोरी को दूर करनेवाला और क्षय रोग में लाभकारी है। बिच्छू के डंक में भी यह लाभ पहुँचाता है। इसके कच्चे फल में आक्सेलिक एसिड नामक एक पदार्थ पाया जाता है।

फलों के अन्दर अंगूर सबसे उत्तम व निर्दोष फल है। औषधि की अपेक्षा भी पथ्य के अन्दर यह बहुत अधिक काम में आता है। यह सभी प्रकृतियों के मनुष्यों के अनुकूल होता है। क्या नीरोग, क्या रोगी, क्या निर्बल, क्या बलवान, क्या बालक, क्या वृद्ध---सबके लिए यह उपयोगी है। नीरोग मनुष्यों के लिए यह उत्तम पौष्टिक खाद्य है और रोगी के लिए अत्यन्त बलवर्द्धक पथ्य है। जिन बड़े-बड़े भयंकर व जटिल रोगों में किसी प्रकार का कोई खाने-पीने का पदार्थ नहीं दिया जाता, उनमें अंगूर की दाख दी जा सकती है।

हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से इस फल का उपयोग होता आ रहा है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट, चक्रदत्त, भावप्रकाश इत्यादि प्रामाणिक ग्रन्थों में इस फल की काफी प्रशंसा की गई है।

उपयोग—चर्म का रोग—बसन्त ऋतु के अन्दर अंगूर की डालों को काटने से एक प्रकार का मद निकलता है। उसको त्वचा के ऊपर लगाने से चर्मरोगों में बहुत लाभ होता है।

कुत्ते का जहर—इसकी लकड़ी की भस्म को सिरके में मिलाकर लगाने से कुत्ते के जहर में लाभ होता है।

पथरी—इसकी लकड़ी की भस्म ६ माशे, गोखरू के रस में कुछ दिन पिलाने से पथरी में लाभ होता है। इसके पञ्चांग से निकाला हुआ क्षार भी दो से चार रत्ती तक की मात्रा में देने से पथरी को भेदन करता है।

अण्डवृद्धि—इसके पत्ते पर घी चुपड़कर के आग पर खूब गरम करके पोतों पर बाँधने से सूजन कम होती है।

तृषा—पित्त ज्वर और उसकी तृषा को मिटाने के लिए अंगूर का शर्बत पिलाना चाहिये।

उदावर्त व मूत्रावरोध—द्राक्षा का काढ़ा पिलाने से रुका हुआ पेशाब खुल कर आता है व उदावर्त में लाभ पहुँचता है।

मूत्रकृच्छ्र—मुनक्का को बासी जल में चटनी की तरह पीसकर जल के साथ लेने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ पहुँचता है।

बनावटें—अंगूर का शर्बत—ताजे पके अंगूर का स्वरस १ सेर, जल १॥ सेर, शुद्ध चीनी २ सेर। सबसे पहले जल में चीनी को डालकर आग पर चढ़ावें। जब उबाल आने लगे तब अंगूर का रस उसमें डाल दें। उसके पश्चात् एक तार व डेढ़ तार की चासनी आने पर उसको उतार लें। यह शर्बत तृषा, शरीर की गर्मी, खाँसी, स्वरभंग, राजयक्ष्मा, रक्तविकार, पित्तसम्बन्धी मन्दाग्नि, मूत्रावरोध इत्यादि अनेक रोगों में लाभ पहुँचाता है।

द्राक्षासव—मुनक्का १०० पल, मिश्री ४०० पल, बेर की जड़ ५० पल, धाय के फूल २५ पल, सुपारी १० पल, लौंग १० पल, जावित्री १० पल, जायफल १० पल, तज, इलायची, तेजपात, ४० पल, सोंठ, मिरच, पीपल ३० पल, नागकेशर १० पल, मस्तगी १० पल, केशर १० पल, अकरकरा १० पल, कूट १० पल, इन सब ओषधियों को अधकचरी करके कुल वजन से चौगुने पानी में मिट्टी के बरतन के अन्दर डालकर जमीन में गाड़ दें। चौदह दिन बाद वहाँ से निकालकर इन सबका भभके से अर्क खींच लें, उस अर्क में केशर, कस्तूरी मिलाकर बोतलों में भरकर रख देवें। यह आसव बलानुसार १ से ४ पल तक दिन में तीन बार पीने से बल, कांति, कामशक्ति और जठराग्नि को प्रदीप्त करता हैं। (योगचिंतामणि)

द्राक्षारिष्ट—मुनक्का ५० पल लेकर उसको दो द्रोण जल में औटा ले, जब चौथाई जल रह जाय तब उसमें दो सौ पल गुड़ तथा तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, प्रियंगु, मिरच, पीपर, वायबिडंग, इन सबका एक एक पल चूर्ण डालकर पकावे, पकाते समय बार बार हिलाते रहना चाहिये। पकने पर उतार कर छानकर बोतलों में भर लें। यह द्राक्षारिष्ट क्षय, खांसी, उरःक्षत, मन्दाग्नि में अत्यन्त लाभदायक और बलवर्द्धक है।

अञ्जन

नाम—हिन्दी—अञ्जन। नैपाली—कञ्जु तुहसी। अफगानिस्तान—वनरिश। सीमान्त—अञ्जन, अञ्जु, बखुरी। बञ्जाब—अञ्जु, हेमर, हम, शुन, सूम। लेटिन—Freximus Feloribunda.

वर्णन—यह एक बड़ा वृक्ष होता है। इसके पत्ते कंगूरेदार और तीखे रहते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। इसके फल में एक बीज रहता है और उसके आस-पास गिरी रहती है, यह हिमालय में काश्मीर से भूटान तक और खासिया पहाड़ियों पर होता है।

इसके वृक्ष के तने में से एक प्रकार का मधुर और ठोस रस निकाला जाता है। इस रस को इसके मधुर और हलके विरेचक गुणों के कारण उपयोग में लिया जाता है।

अञ्जनी

नाम—संस्कृत—अञ्जनवृक्ष। गुजराती—अञ्जन। मराठी—अञ्जनी। बम्बई—अञ्जन करपा। कनाड़ी—अलामारु, अल्ली, अरचेटि। तेलग—अल्लि, मिदाल्लि, पेदाल्लि। तामील—आल्लि, अञ्जनी, कासा। अंग्रेजी—Iron Wood Tree (आयर्न उड ट्री)। लेटिन—Memecylon Ebule.

पहिचान—इसके पत्ते गोलाकार होते हैं। उनके आगे कुछ नोक निकली हुई होती है। इसके पत्तों का रङ्ग ऊपर से गहरा हरा और नीचे से फीका होता है। इसके फूल छत्री की तरह होते हैं। इसका फूल गोल होता है। फूल का रङ्ग बैगनी होता है। इसमें एक और कभी-कभी दो बीज निकलते हैं। यह वृक्ष भारत के पश्चिमी समुद्र के किनारों पर तथा उड़ीसा, आसाम, सिलहट, सिलोन और मलाया द्वीप समूह में पैदा होता है। भारतवर्ष

और लङ्का में इसके पत्ते रंग के लिये काम में आते हैं। मद्रास में चटाई बनाने वाले हरड़, पतङ्ग और मजीठ के साथ इसे विशेष रूप से रंगने के उपयोग में लेते हैं। लालरंग पैदा करने में इसे फिटकरी से उत्तम मानते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत के अनुसार इसके पत्ते ठंडे और संकोचक होते हैं। इनका ठण्डा क्वाथ लोशन के रूप में नेत्रों की बीमारी में लिया जाता है। श्वेत प्रदर और सुजाक में भीतरी उपचार के लिए ये काम में लिये जाते हैं। इनको खरल में कूटकर पानी में उबालकर इनका सत निकाला जाता है। यह सत्त्व दक्षिण में सुजाक के लिए मुफीद माना जाता है।

कोकण में इसकी छाल, नारियल का गूदा, अजवायन और कालीमिर्च बराबर २ मात्रा में लेकर पीसते हैं, फिर कपड़े में पोटली बनाकर उससे चोट आई हुई जगह पर सेंक करते हैं।

इसकी जड़ का काढ़ा, अत्यधिक रक्तस्राव पर मुफीद माना जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते नेत्रशूल रोग में लाभकारी हैं व इसकी जड़ सुजाक तथा अत्यधिक रक्तस्राव में लाभदायक है।

सन्याल और घोष के मतानुसार इसके पत्तों का शीत कषाय नेत्रशुक्ल रोग में आंजने से लाभ होता है। इसके पत्ते भारत और सिलोन में रङ्गने के काम में लिये जाते हैं। सुजाक रोग के अन्दर इसके पत्ते भीतरी उपचार के काम में आते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—प्रोफेसर ड्रेजन डार्फ के मतानुसार इस औषधि में पीत ग्लुकोसाइड, राल, गोंद, क्लोरोफाइल और रंगीन पदार्थ रहते हैं।

उपयोग—श्वेत प्रदर—इसके पत्तों को पीसकर पानी में छानकर पिलाने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है।

नेत्ररोग—इसकी फांट से आँखे धोने से नेत्ररोग में लाभ पहुँचता है।

सूजन—इसकी छाल, नारियल की गिरी, अजवायन, जंगली हलदी और काली मिरच बराबर ले पीस, गर्म कर लेप करने से तथा इनको औटा कर बफारा देने से सूजन और पीड़ा मिटती है।

सुजाक—इसके पत्रों का फांट पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

अगिनघास

नाम—संस्कृत—भूतृण, रोहिष। हिन्दी—गंधतृण, अगिनघास, अगियाघास। बंगाली—गंधबेन। गुजराती—लिलीचा। तेलगु—छिपगादी। फारसी—छेहकाश्मीरी। लेटिन—Andropogan Citratus।

वर्णन—यह एक प्रकार का बहुवर्ष-जीवी घास है जिसकी शाखाएं कई पत्ते वाली होती हैं। जब पत्ते झड़ जाते हैं तब शाखाएं बिना पत्ते की रहती हैं। इसके पत्ते नुकीले, हरे और खुरदरे होते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष में सब जगह पैदा होती है।

गुण—दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से यह औषधि तिक्त, कटु, गरम, विरेचक, भूख बढ़ाने वाली, बाधा निवारक, कृमिनाशक और कामेच्छा को नष्ट करने वाली है। यह बच्चों की खाँसी में लाभदायक है। कोढ़ और अपस्मार की व्याधि में लाभ पहुँचाती है। वात, कुष्ठ और आँतों सम्बन्धी बीमारियों में भी लाभदायक है।

हैजे की बीमारी में भी यह लाभदायक सिद्ध हो चुकी है। यह सिर्फ हैजे की वमन को ही नहीं रोकती, प्रत्युत उसके सब उपद्रवों में फायदा पहुँचाती है। गठिया की बीमारी में इसका लेप बहुत फायदेमन्द है। स्नायु-शूल, मोच और अन्य कष्टप्रद तकलीफों में भी यह लाभदायक है। इसका बफारा ज्वर को दूर करने के लिए उत्तम है। [इण्डियन मेडिसिनल प्लांट्स]।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में रूक्ष है। यह त्वचा (चमड़ी) को हानि पहुँचाने वाली और खुजली उत्पन्न करने वाली है। इसके स्वरस में ४० दिनों तक गन्धक को भिगोकर धूप में सुखाकर उस गन्धक को २ रत्ती की मात्रा में पान में रखकर खाने से बहुत भूख लगती है। इसके स्वरस में फूकी बंग की भस्म श्वास और खांसी में बहुत लाभ पहुंचाती है।

अग्नियून

नाम—हिन्दी—अग्नियून, बकार, बकर्च, बसोता, जैटेला। कुमायू—अग्निऊ। नेपाल—गिनेरी। पंजाब—गनहिला, गियान, बंकार। तेलगू—नेली। लेटिन—Premna latifolia (प्रेम्ना लेटिफोलिया)

वर्णन—यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा पौधा है। इसके पत्ते गोलाकार होते हैं। यह बंगाल, खासिया पर्वत, भूटान, त्रिनावेली इत्यादि स्थानों पर पाया जाता है।

गुण दोष—आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इण्डियन मेडिसिनल प्लाण्ट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसके पत्ते मूत्रनिस्सारक हैं। जलोदर रोग में ये भीतरी और बाहरी दोनों उपचारों में उपयोगी हैं। इसके पत्ते १० ड्राम और धनिया २ ड्राम, दस ओंस उबलते हुए पानी में डाल कर १० मिनट तक रखे जायँ, बाद में इसे छानकर तीव्र जलोदर रोग में देने से लाभ पहुँचता है।

इसके बक्कल का दूध अर्बुद और सूजन पर लगाने से लाभ होता है। पशुओं के उदरशूल में भी इसका रस काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते मूत्रनिस्सारक हैं और जलोदर रोग में बाह्य उपचार में आते हैं।

अजमोद

नाम—संस्कृत—अजमोदा, बस्तमोदा, मर्कटी, कारवी। हिन्दी—अजमोद। बंगाली—रान्धुनी। फारसी—काफ्स। अरबी—वज्नुनकरफ्स। लेटिन—Apium Graveolens (एपियम ग्रेवियोलेन्स)। Carum Roxburghianum (केरम राक्स बर्गिनम)।

वर्णन—अजमोद के पौधे एक से तीन फुट तक लम्बे होते हैं। इसके पत्ते अनेक भागों में विभक्त रहते हैं। प्रत्येक भाग अनीदार, कंगूरेदार और कटे हुए किनारे वाले होते हैं। यह जाति अजवायन का ही एक भेद है। इसके झाड़ भी अजवायन के झाड़ की तरह होते हैं। इसके बीज शीतकाल के प्रारम्भ में बोये जाते हैं। इसको शाखाओं पर बड़े २ छत्ते लगते हैं उन छत्तों में सफेद रङ्ग के छोटे २ फूल खिलने पर उनमें दाने पैदा हो जाते हैं। उन्हीं को अजमोद कहते हैं।

कई वैद्य और अत्तार जंगली अजवायन को ही अजमोद मानकर भ्रम में पड़ जाते हैं। एक दो निघण्टुकारों ने भी इसी भ्रम में पड़कर अजमोद का लेटिन नाम Sesili Indicum. लिख मारा है, मगर यह नाम असल में जंगली अजवायन का है।

गुण—दोष-आयुर्वदिक मत के अनुसार अजमोद कड़वी, चरपरी, अग्निदीपक, गरम उष्णवीर्य, दाहकारी, हृदय को हितकारी, वीर्यवर्द्धक, हलकी, कफ वात के रोगों को दूर करने वाली, आंतों को सिकोड़ने वाली, तथा वायु-नलियों के प्रदाह, वमन, कुक्कुरखांसी, जलोदर, गुदाशय की पीड़ा, कृमि, वमन, हिचकी इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचानेवाली है।

यूनानीमत—यूनानी चिकित्सा के मतानुसार यह पहले दर्जे में गर्म और दूसरे दर्जे में रूक्ष है। यह गर्भवती तथा दूध पिलानेवाली स्त्रियों और मृगी के रोगियों के लिये बहुत हानिकारक है।

इसके बीज गरम और तेज होते हैं। यह रेचक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, क्षुधा को तेज करने वाली, कृमिनाशक और कामोद्दीपक है। यह एक प्रकार की गर्भस्रावक औषधि है, इसलिए गर्भवती स्त्रियों के लिए हानिकर है। यह आमाशय में गर्मी पैदा करती है और उसमें एक प्रकार की भाप पैदा करती है। यह भाप जब मस्तक में पहुँचता है तब घनीभूत होकर वायु बन जाता है। इसीसे मृगी रोग को उत्तेजना मिलती है इसलिये मृगी रोग वालों के लिए यह हानिकारक कहा गया है। यकृत्, प्लीहा और हृदय को यह बहुत लाभ पहुँचाती है। रजःरोध (नष्टार्तव) मूत्रसम्बन्धी बीमारियां, ज्वर, गठिया और सीने के दर्द में भी यह लाभकारी है। पथरी के रोग में भी यह लाभ पहुँचाती है। यह पथरी के टुकड़े २ कर मूत्रावरोध के कष्टों को मिटा देती है।

इसकी जड़, इसके बीजों की अपेक्षा बलवान, सब प्रकार के कफ-सम्बन्धी रोगों तथा जलोदर में लाभ पहुँचाने वाली तथा फेफड़े के लिए हानिकर है। इसके सिवाय यह (जड़) रसादिक विकारों को दूर करने वाली मूत्रनिस्सारक और सर्वांगीण सूजन में लाभ पहुँचाने वाली है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, मूत्र-निस्सारक और ऋतुस्त्रावनियामक है। इसके तेल और अर्क में ग्लुकोसाइड नामक पदार्थ पाया जाता है।

डाक्टर वीडी के मतानुसार यह औषधि बदहजमी और दस्त की बीमारी में अत्यन्त उपयोगी है। खराब स्वादवाली दवा को अजमोद के पानी के साथ देने से उल्टी आने की शंका नहीं रहती। यह अत्यधिक लार पैदा करने वाली है। इससे पाचक रस अधिक उत्पन्न होते हैं। उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि यह औषधि पाचन-नलियों और शरीर की रस क्रिया पर अपना सीधा असर दिखाती है और इसलिए पेट से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियों को दूर करने वाली औषधियों में यह अपना प्रधान स्थान रखती है।

उपयोग—पेट का दर्द—काले नमक के साथ अजमोद की फंकी देने से पेट का दर्द दूर होता है तथा इसके चूर्ण की गुड़ के साथ गोली बनाकर देने से पेट का अफारा मिटता है।

पसली का दर्द—पसली के दर्द और हर एक अंग में बादी की पीड़ा मिटाने के लिए अजमोद को गर्म कर बिस्तरे पर बिछा देना चाहिये और उस पर रोगी को सुलाकर हलका कपड़ा ओढा देना चाहिये।

सूखी खांसी—अजमोद को पान में रखकर उसका रस चूसने से सूखी खांसी में लाभ करता है।

हिचकी—जिनको भोजन करने के पश्चात् हिचकी चलती हो, उनको चाहिए कि भोजन के पश्चात् अजमोद के दाने मुँह में डालकर उनका रस उतारें।

मूत्राशय की बादी—अजमोद और नमक को एक पोटली में बांधकर गरमकर नलों पर सेंक करने से मूत्राशय की बादी मिटती है।

दन्त पीड़ा—अजमोद को जलाकर उसकी धूनी देने से दाँतों की पीड़ा मिटती है।

वात पीड़ा—अजमोद को तेल में औटाकर उसकी मालिस करने से बादी के दर्द मिटते हैं।

वमन—अजमोद और लौंग के सिरे (टोपी) को पीसकर शहद के साथ चटाने से वमन बन्द होती है।

कृमि रोग—बच्चों के गुदा में पड़नेवाले सफेद कृमि (चुन्ने) अजमोद की धूनी देने से मर जाते हैं।

पथरी—तीन माशे अजमोद का चूर्ण एक तोले मूली के पत्तों के रस के साथ पिलाते रहने से पथरी गल जाती है।

बनावटें—अतिसार नाशक चूर्ण—अजमोद, मोचरस, धाय के फूल और अदरख इन चारों वस्तुओं को कूट कर इनका चूर्ण बनाकर बोतल में भर लेना चाहिये। इस चूर्ण को तीन माशे से छः माशे तक गाय की दही के साथ देने से प्रवाही अतिसार बन्द होता है।

वातनाशक चूर्ण—अजमोद, पीपर, रासना, गिलोय, सूँठ, असगन्ध, शतावरी, और सौंफ इन सबों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को गाय के घी के साथ देने से सब स्थानों के वात विकार नष्ट होते हैं।

अजमोदादि वटी—अजमोद, पीपर, वायबिडंग, बड़ी सौंफ, नागर मोथा, काली मिरच, सेन्धा निमक एक एक तोला, हरड़ ५ तोला, सूंठ १६ तोला, वृद्धदारु (विधायरा) १० तोला, भारंगी का जड़ ६ तोला इन सब औषधियों को लेकर चूर्ण करके सब वजन से दुगना गुड़ लेकर झड़बेर के समान गोली बनालें। इन गोलियों को गरम पानी के साथ लेने से सब प्रकार की वात व्याधि दूर होती है।

दूसरी अजमोदादि वटी—अजमोद १ सेर, हरड़ बहेड़ा, आँवला, सोंठ मुल्तानी, विदारीकन्द, धनियाँ, मोथा, मोचरस, गजपीपल, लौंग, जायफल, पीपर, चित्रक, अनारदाना, भा ंगी, कमलगट्टा, कालीमिरच, सफेद जीरा, स्याह जीरा, कुटकी, अजवायन, पीपलामूल, रेणुका, वायविडङ्ग, वच, कायफल, पित्तपापड़ा, विधारा, दन्ती की जड़, कुरदानासार इन सब वस्तुओं को एक-एक तोला लेकर १ सेर पुराने गुड़ के साथ मिलाकर एक-एक तोले के लड्डू बना लें। इनको गर्म पानी के साथ लेने से सब प्रकार के उदर विकार दूर होते हैं।

अजमोदादि चूर्ण—अजमोद, वायविडंग, सेंधानमक, देवदारु, चित्रक, पिपरामूल, सौंफ, पीपर, मिर्च, एक-एक तोला, हरड़ ५ तोला, विधारा १० तोला, सोंठ १० तोला, इन सबको कूट पीस चूर्ण कर ६ माशे की खुराक में एक तोला पुराने गुड़ के साथ खाकर ऊपर से गरम जल पीने से सूजन, आमवात, संधियों का दर्द, पीठ व जांघ का दर्द तथा सब प्रकार के वायुरोग दूर होते हैं।

अजमोदादि मोदक—अजमोद १२ तोला, चित्रक ११ तोला, हरड़ १० तोला, कूट ६ तोला, पीपर ८ तोला, काली मिर्च ७ तोला, सोंठ ६ तोला, जीरा ५ तोला, सेंधा नमक ४ तोला, वायविडंग ३ तोला, वच २ तोला, हींग १ तोला, पुराना गुड़ २ सेर। इन सब औषधियों को कूट, छान, मिलाकर आधी आधी छटांक के लड्डू बना लें। इन लड्डुओं में से सवेरे शाम एक-एक लड्डू गरम पानी के साथ लेने से सब प्रकार के वातरोग, १८ प्रकार के गोले के रोग, २० प्रकार के प्रमेह तथा हृदय रोग, शूल, कुष्ठ, गलग्रह, श्वास, संग्रहणी, पाण्डुरोग, अग्निमांद्य, अरुचि इत्यादि नष्ट होते हैं।

अजवायन

नाम—संस्कृत—यवानी, दीप्यक। हिन्दी—अजवायन। मराठी—ओंवा। गुजराती—अजमोद। बंगला—यमानी। लेटिन—Carum Copticum (केरम कोप्टिकम)।

वर्णन—अजवायन की खेती सारे भारतवर्ष में सब ओर की जाती है। इस वस्तु से सब लोग भली प्रकार परिचित हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

गुण-दोष—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार, अजवायन पाचक, रुचिकारक, तीक्ष्ण, गरम, चरपरी, हलकी, दीपन, कड़वी, पित्तवर्द्धक तथा शूल, वात, कफ, आध्मान, बवासीर, कृमि, वमन, गुल्म और प्लीहा का नाश करने वाली है।

पाचक औषधियों की दृष्टि से इस औषधि ने बहुत प्रसिद्धि पा रक्खी है। संस्कृत के अन्दर तो इसके लिये यहां तक कहा गया है—

'एका यवानी शतमन्नपाचिका'

अर्थात् अकेली अजवायन ही सैकड़ों प्रकार के अन्न को पचानेवाली है। यह कहावत बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। कई अंशों में यह कहावत सच्ची भी है। क्योंकि इस एक ही वस्तु में चिरायते का कटुपौष्टिक, हींग का वायुनाशक और कालीमिर्च का अग्निदीपन यह सब गुण समाये हुए हैं। इन्हीं गुणों की वजह से यह औषधि वायु, कफ, पेट का दर्द, वायगोला, आफरा तथा कृमिरोग को नष्ट करने के लिए बहुत काम में लायी जाती है। हैजे की बीमारी में भी देशी तथा एलोपैथिक चिकित्सकों की तरफ से इस औषधि को प्रधान स्थान दिया गया है। विशेष कर हैजे की प्राथमिक स्थिति में इससे बहुत लाभ होता है।

प्रसूता स्त्रियों को अजवायन देने का तरीका भारतवर्ष में प्रचलित है। यह तरीका शास्त्र-सम्मत है क्योंकि इससे प्रसूता को भूख लगती है, अन्न पचता है कमर का दर्द कम होता है और गर्भाशय की गन्दगी साफ हो जाती है। प्रसूतिका ज्वर में भी अजवायन बहुत लाभदायक होता है।

फुफ्फुस सम्बन्धी रोगों में अजवायन को देने से कफ का उत्पन्न होना कम हो जाता है और घबराहट मिट जाती है। दमे के रोग में इसको गरम पानी के साथ देने से अथवा इसको चिलम में रख कर धूम्रपान करने से लाभ होता है। फुफ्फुस के जीर्ण रोगों में यह बहुत लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह तीसरे दर्जे में गरम और रूक्ष, तथा गरम प्रकृति वालों को हानिकर है। मखजनूल अदविया के लेखक हकीम मीर मुहम्मद हुसैन के मतानुसार अजवायन शरीर की वेदना को मिटानेवाला, कामोद्दीपक, कोठे को नरम करने वाला और वायु को नष्ट करने वाला है। इसका शर्बत लकवा और कम्पन वायु में लाभ पहुँचाने वाला है। इसके काढ़े से आँख धोने से आँखें साफ होती हैं तथा कानों में डालने से बहरापन मिटता है। छाती के दर्द में भी यह लाभकारी है। यकृत तथा प्लीहा की कठोरता को मिटाकर यह हिचकी, वमन, मिचलाहट, दुर्गन्धि, डकार, बदहज्मी, मूत्र का रुकना, पथरी इत्यादि बीमारियों में भी लाभ पहुँचाता है।

नींबू के रस में यदि इसे सात बार डुबोकर सुखा लिया जाय तो नपुंसकता के अन्दर लाभ पहुँचाता है। इसका शर्बत चौथे दिन आने वाले बुखार में लाभदायक है।

रासायनिक विश्लेषण—इसके अन्दर एक प्रकार का सुगन्धियुक्त उड़नशील द्रव्य रहता है, जिसको अजवायन का फूल, अजवायन का सत तथा अंग्रेजी में थायमल (Thymol) कहते हैं। इस द्रव्य की खोज सब से पहिले मिस्टर स्टॉक ने की। उसके पश्चात् मि० स्टेन हाउस और मि० हेन्स ने परीक्षा करके जंगली पुदीने के सत (Thymus Vulgaris) के साथ इसकी समानता दिखलाई है। अजवायन के सत निकालने के अब तो बड़े-बड़े कारखाने खुल गये हैं, जहाँ पर बहुत बड़े परिमाण में यह वस्तु तैयार होती है। एक कारखाना इन्दौर के पास राऊ नामक गांव में भी इसका बना हुआ है।

अजवायन का तेल—अजवायन को पानी में भिगोकर भपके के द्वारा अर्क खींचा जाता है। इस अर्क के ऊपर अजवायन का तेल तिरकर आ जाता है। अजवायन के तेल को अंग्रेजी में ओमम वाटर (Omum Water) कहते हैं।

उपयोग—जुकाम व प्रतिश्याय—अजवायन को गरम कर के मलमल के कपड़े में पोटली बाँधकर सुँघाने से छींकें आकर जुकाम व प्रतिश्याय का वेग कम होता है। अजवान के कपड़छन चूर्ण को सूंघने से भी सिरदर्द, नजला और मस्तक के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

अफारा—६ माशे अजवायन में १॥ माशा काला नमक मिलाकर फंकी देकर गरम पानी पिलाने से अफारा मिटता है। इसी चूर्ण की दोनों टाइम तीन २ माशे की फंकी देने से वायु गोला का नाश होता है और पेट का फूलना बन्द हो जाता है।

मन्दाग्नि—अजवायन, कालीमिर्च और सेंधा नमक तीनों चीजों को पीसकर गरम जल के साथ प्रातःकाल फंकी लेने से उदर शूल, पेट का दर्द और मदाग्नि मिटती है।

आंतों की वेदना—अजवायन, सेन्धानिमक, सोंचरनिमक, यवक्षार और हरड़ इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण कर के ५ से १० रत्ती तक की मात्रा में मद्य के साथ देने से अँतड़ियों की वेदना और उदरशूल दूर होता है।

सूखी खांसी—अजवायन को पान में रखकर चबा २ कर पीक उतारने से सूखी खांसी में लाभ पहुचता है।

जोड़ों का दर्द—इसके तेल का मर्दन करने से जोड़ों के दर्द में लाभ होता है।

बच्चों की उल्टी—बच्चों की उल्टी और दस्तें मिटाने के लिये इसको मां के दूध के साथ देने से लाभ होता है।

चर्म रोग—अजवायन को पानी में गाढ़ा पीसकर दिन में दो बार लेप करने से दाद, खाज, कृमि पड़े हुए घाव यथा अग्नि में जले हुए स्थान में लाभ होता है।

रजोदोष—अजवायन के चूर्ण को तीन माशे की मात्रा में दिन में दो बार गरम दूध में देने से स्त्रियों का रुका हुआ रज खुल कर आने लगता है।

कृमि रोग—इसके चूर्ण की चार माशे की मात्रा छाछ के साथ देने से पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

नेत्र रोग—अजवायन को जलाकर उसका कपड़छन चूर्ण करके जस्ते की सलाई से सुर्मे की तरह सात दिन तक आँखों में आँजने से आँखों की फूली कट जाती है। इसी चूर्ण को दाँतों पर मलने से दांत साफ होते हैं तथा दाँत और मसूड़ों के रोग भी मिट जाते हैं।

बनावटें—अग्निवर्धक चूर्ण—बढ़िया अजवायन ६ तोला, यवक्षार ४ तोला, सेंधानमक ४ तोला, कालीमिर्च ४ तोला, कालानमक ४ तोला, सच्चर नमक ४ तोला, पेपीन (अरण्ड ककड़ी का सत) १ तोला इन सब औषधियों को कूट-पीसकर एक चीनी की बरनी में डालकर उसमें एक सेर नीबू का रस मिलाकर एक महीने तक दिन में सूर्य की धूप में और रात्रि में मकान के अन्दर पड़ा रहने देना चाहिए। इस चूर्ण को तीन माशे से छः माशे तक की खुराक में जल के साथ लेने से पाचन शक्ति तीव्र होती है। कब्जियत मिटकर दस्त साफ होता है तथा अजीर्ण, अम्लपित्त, संग्रहणी इत्यादि रोगों में भी फायदा पहुँचता है।

जीवन रक्षक सुधा—पीपरमेन्ट का सत (पोदीने का फूल) १ तोला, अजवायन का सत १ तोला, देशीकपूर २ तोला इन तीनों चीजों को लेकर मजबूत बूचवाली शीशी में डालकर बूच लगा देने से थोड़ी देर में सब दवाइयाँ

गलकर पानी हो जाती हैं। मनुष्य शरीर के अन्दर जितनी व्याधियाँ होती हैं उन सब में यह औषधि अस्थायी रूप से अपना प्रभाव जरूर दिखाती है। सिर का दर्द, दाढ़ का दर्द, पसलियों का दर्द, छाती और कमर का दर्द संधि-वात इत्यादि रोगों में इस दवा की मालिश करने से तुरन्त फायदा मालूम होता है। हैजे के अन्दर तो यह दवा अपना बहुत ही प्रभावशाली असर दिखाती है।

हैजे की बीमारी के प्रारम्भ में इस औषधि की पांच २ बूदें १-१ बताशे के ऊपर डालकर देने से सैकड़ों हैजे के बीमार बच गये हैं। इसी प्रकार अतिसार (दस्तें लगना), मरोड़ी चलना, पेट दर्द, श्वास, गोला, उल्टी वगैरह बीमारियों में भी इस औषधि को शक्कर के साथ देने से बहुत लाभ पहुंचता है। इसी प्रकार बिच्छू, ततैया, भंवरी, मधुमक्खी इत्यादि जहरी जानवरों के डंक पर भी इस दवा की मालिश करने से बहुत फायदा होता है।

नामर्दी के मरीज जिनकी जननेन्द्रिय खराब आदतों से शिथिल और निर्बल हो गई है वे अगर इस औषधि की दो-तीन बूदें जननेन्द्रिय पर मसल कर ऊपर से नागरवेल का पत्ता बांध दें तो नामर्दी दूर होकर जननेन्द्रिय बलवान् व सतेज हो जाती है। इसी प्रकार दिन में तीन बार इसकी पाँच २ बूदें शहद के साथ लेने से स्त्रियों के ऋतुसम्बन्धी सब रोग नष्ट हो जाते हैं। गत आठ-दस वर्षों से यह दवा प्रायः सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो चुकी है। इसके विषय में विशेष विवेचन करने की आवश्यकता नहीं।

अजवायन खुरासानी

नाम—संस्कृत--पारसीक यमानी, तुरुष्का मदकारिणी। हिन्दी—खुरासानी अजवायन। गुजराती—खुरासानी अजमो। मराठी—खुरासानीओंवा। बङ्गाली—खोरासानी यमानी। तैलंगी—खुरासानी वाममु। द्राविड़ी—कुरीशानी वामम। अरबी—तेरालबंज, फारसी—तुख्मेबङ्ग। लेटिन—Hyosyamus Niger. हायोसायमस नायगर।

वर्णन—खुरासानी अजवायन के वृक्ष हिमालय में काश्मीर से गढ़वाल तक ८००० से ११००० फीट तक की ऊँचाई पर पैदा होते हैं। यह एक क्षुप जाति का पौधा होता है। इसका प्रकाण्ड सीधा और पुष्ट होता है। इसमें एक प्रकार की तेज सुगन्ध आती है, जो कुछ-कुछ अप्रियसी होती है। इसके पत्ते कटे हुए और कंगूरेदार होते हैं। इसके फूल पीलापन लिए हुए हरे रङ्ग के होते हैं। इनमें कहीं २ बैगनी रंग की धारियाँ होती हैं।

भारतीय चिकित्सकों ने इस औषधि को अजवायन के समान समझकर इसका नाम खुरासानी अजवायन या पारसीक यमानी रख दिया मगर वास्तव में यह औषधि अजवायन के वर्ग की नहीं है, बल्कि उससे बिल्कुल भिन्न बादञ्जान या सोलेनेसोई (Solanaceoe) वर्ग की औषधि है, जिसमें बेलेडोना, धतूरा आदि विषैली दवाइयाँ सम्मिलित हैं।

यूनानी चिकित्सक मीरमुहम्मद हुसेन ने बंज के नाम से इस औषधि का वर्णन किया है। वे इसको सफेद, काली और लाल के भेद से तीन प्रकार की मानते हैं। इनमें सफेद जाति ही सबसे उत्तम मानी जाती है। इसके अतिरिक्त इसका एक भेद और होता है, जिसे कोही भंग कहते हैं। यह बहुत जहरीला होता है।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मतानुसार खुरासानी अजवायन अर्थात् पारसीक यमानी के बीज तीखे कड़वे, गरम, अग्नि को दीप्त करनेवाले, आँतों को सिकोड़नेवाले, मादक, भारी, अग्निवर्द्धक तथा अजीर्ण, पेट के कीड़े, आमशूल और कफ रोग को नष्ट करनेवाले हैं।

खुरासानी अजवायन वेदनानाशक, निद्राजनक, सङ्कोच-विकास-प्रतिबन्धक, अवसादक और कुछ मूत्रल होता है। छोटी मात्रा में यह हृदय की गति को धीमाकर उसे बल देता है मगर अधिक मात्रा में यह हृदय के लिए हानिकारक होता है। इसकी अवसादक क्रिया मस्तिष्क पर, जननेन्द्रिय पर और आँतों पर विशेष रूप से दिखलाई देती है। इस औषधि के देने से गहरी निद्रा आ जाती है। नींद लाने के लिए और वेदना को शमन करने के लिए इसी के मुकाबिले की दूसरी औषधि अफीम है परन्तु जिन रोगियों को अफीम नहीं दी जा सकती है उन रोगियों को भी यह दी जा सकती है। अफीम को देने से कब्जियत हो जाती है मगर खुरासानी अजवायन से कब्जियत बिलकुल नहीं होती बल्कि इसको लेने से दस्त साफ होता है। इस औषधि की समता करनेवाली दूसरी औषधि धतूरा है। मगर धतूरे की अपेक्षा भी यह औषधि श्रेष्ठ है क्योंकि धतूरे से रोगी को भ्रम और मद पदा

होता है। खुरासानी अजवायन से भ्रम नहीं होता। यह औषधि सब स्नायुओं पर शामक असर डालता है, इससे मन शान्त होता है और गाढ़ निद्रा आती है। धतूरे से आनेवाली नींद गाढ़ी नहीं होती है। इस औषधि को प्रारम्भ में छोटी मात्रा में लेना चाहिए और धीरे-धीरे इसकी मात्रा बढ़ानी चाहिए। छोटे बच्चों के लिए यह औषधि उत्तम होती है मगर वृद्धों के लिए यह हानिकारक होती है। यह एक हुक्मी औषधि है और तमाम उन्नतिशील राष्ट्रों के फर्माकोपिया में यह सम्मत है।

इस औषधि का प्रधान उपयोग मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों में होता है। नवीन उन्माद रोग, मस्तिष्क के परदे में होनेवाली सूजन इत्यादि में खुरासानी अजवायन को देने से गाढ़ी नींद आती है। ऐसे रोगों में अफीम नहीं दी जा सकती क्योंकि अफीम से प्रारम्भमें कुछ उत्तेजना होती है और मस्तिष्क की क्रिया एक दम शान्त नहीं होती। प्राचीन उन्माद रोग में जब रोगी धूम-धाम और उपद्रव करता है ऐसे समय में खुरासानी अजवायन को जरा बड़ी मात्रा में देने से रोग का जोर कम हो जाता है। किसी भी कारण से मानसिक अस्वस्थता और अनिद्रा होने पर यही एक औषधि है जो तत्काल लाभ पहूँचाती है। इस से मन शान्त होता है, दस्त साफ होता है और सुखदायक नींदआ जाती है।

यनानी मत—यूनानी मतानुसार खुरासानी अजवायन (सफेद) दूसरे दर्जे में ठंडी और रूक्ष तथा काली खुरासानी अजवायन, तीसरे दर्जे में ठंडा और रूक्ष है। यह नशा लाने वाली और कंठमाला रोग में नुकसान करने वाली है।

इसके पत्ते कफ-निस्सारक हैं। दाँतों के दर्द में ये कुल्ले करने के काम में लिये जाते हैं। इनसे मसूड़ों से खून जाना भी बन्द हो जाता है। यकृत् की पीड़ा में यह एक उत्तम बाह्य उपचार है। संधिवात की सूजन और छाती की जलन में भी ये लाभ पहुँचाते हैं।

इसके बीज-स्वाद में कुछ कड़वे और कामोद्दीपक होते हैं। ये नशीले और नींद लाने वाले होते है। आँखों से पानी जाने में, कान के रोगों में, नाक की तकलीफों में, सिर-दर्द में व जोड़ों के दर्द में भी ये मुफीद हैं। इसका धुआँ खाज और खुजली में, दाँतों की सड़न में, खाँसी में और वायु-नलियों के प्रदाह में उपयोगी है। यह पेट के शूल को भी नष्ट करता है।

श्वास, कुक्कुरखाँसी इत्यादि रोगों में ये उपशामक औषधि की तरह काम में लिए जाते हैं। बच्चों की शिकायतों में जहाँ पर अफीम काम में नहीं ली जा सकती, उसके बदले ये काम में लिये जा सकते हैं।

यह औषधि सब प्रकार के नजले में लाभ पहुँचाने वाली, कान की पीड़ा को शान्त करने वाली, कफ की खाँसी को मिटाने वाली, कफ के अन्दर खून का आना बन्द करने वाली तथा रूक्षता पैदा करने वाली है। तिल के तेल में इसको सिद्ध करके मालिश करने से संधिवात, गृध्रसी, कमर का दर्द इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचता है। इस तेल को थोड़ा सा गरम करके कान में टपकाने से कान की पीड़ा नष्ट होती है। इसका लेप करने से पुरानी यकृत् की पीड़ा और छाती के दर्द में बहुत लाभ पहुँचता है।

इसके बीजों को ब्राण्डी में पीस कर इनकी पुल्टिस बाँधने से छातियों की सूजन और अण्डवृद्धि में लाभ पहुँचता है, इसके बीजों को घोड़ी के दूध में पीस कर उसकी लुग्दी जंगली साँड के चमड़े में बाँधकर पहिनने से स्त्रियों के गर्भ नहीं रहता ऐसा कहा जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि विरेचक, उपशामक, पेट के आफरे को दूर करने वाली तथा निद्राकारक है। यह श्वास की बीमारी में भी लाभ पहुँचाती है।

खुरासानी अजवायन के बीज मुसलमान वैद्यों के द्वारा कई वर्षों से उपयोग में लिये जा रहे हैं। यद्यपि यह औषधि हिमालय में पैदा होती है फिर भी प्राचीन हिन्दू आयुर्वेद ग्रन्थों में इसका कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता।

रासायनिक विश्लेषण—इसके बीजों में हायोसायमीन नामक एक नशीला उपक्षार और एक तेल पाया जाता है। ब्रिटिश फरमाकोपिया में इस औषधि के रासायनिक विश्लेषण में पाये जाने वाले उपक्षार का जो अंक दिया हुआ है, उसकी अपेक्षा कलकत्ते के ट्रापिकल मेडीसिन और हयजन्स स्कूल में इस औषधि का विश्लेषण करने पर यह उपक्षारीय तत्त्व कम पाया गया। ब्रिटिश फरमाकोपिया में जहां इस औषधि में१०६५ उपक्षारीय तत्व बतलाये

गये हैं, वहां यहां पर इसमें केवल .०३ उपक्षारीय तत्व पाया गया, इससे मालूम होता है कि यूरोप में पाई जाने वाली खुरासानी अजवायन से देशी खुरासानी अजवायन में उपक्षारीय तत्व कम है।

एलोपेथिक चिकित्सा के अन्तर्गत इस औषधि की समानता एट्रोपीन और बेलेडोना के साथ की जाती है, पर इसके और इनके प्रभाव में कई महत्त्व के भेद हैं जैसे :—

(१) बेलेडोना की अपेक्षा हायोसायमस (खुरासानी अजवायन) से उन्मत्तता तो कम पैदा होती है, पर मस्तिष्क के अन्दर शून्यता लाने का प्रभाव उससे अधिक शीघ्र और अधिक बलवान होता है।

(२) बेलेडोना के सदृश हृदय के ऊपर इसका सबल और उत्तेजक प्रभाव नहीं होता, प्रत्युत अत्यन्त निर्बल प्रभाव पड़ता है।

(३) मूत्रेन्द्रिय पर बेलेडोना की अपेक्षा इसका प्रभाव अधिक अवसादक होता है।

इसका उपयोग भिन्न २ रोगों की कठिन पीड़ा में, मस्तिष्क की उत्तेजना को कम करके नींद लाने के लिये किया जा सकता है। स्त्रियों के हिस्टीरिया रोग तथा प्रसूतिका के पागलपन में तथा वात-वेदनाओं में भी इसको दिया जा सकता है। इसके लिये इसके अर्क की ३० बूंदें, एक एक घण्टे के अन्तर से ढाई-ढाई तोले पानी में मिलाकर देना चाहिये। इसी प्रकार मूत्रेन्द्रिय—सम्बन्धी चीस, चवक, पथरी इत्यादि रोगों में भी इसका सत्त्व देने से मूत्रविरेचन होकर शान्ति मिलती है।

ब्रौंकाइटीज की खांसी को कम करने के लिये भी इसका उपयोग किया जा सकता है। छोटी मात्रा में यह हृदय को बल देने वाला और अवसादक है, मगर अधिक मात्रा में यह उत्तेजक और निर्बलताजनक है।

इस औषधि के सत्त्व से एलोपैथी के अन्दर और भी कई औषधियां तैयार की जाती हैं जो अर्द्धाङ्ग कम्पन, वृद्धावस्था और निर्बलताजन्य कम्पन, अनिद्रा, पागलपन, भ्रम, दमा, वात-वेदना, आक्षेप, मृगी इत्यादि रोगों में अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं।

उपयोग—वातव्याधि—गठिया, सन्धिवात, जोड़ों की सूजन, रक्तपित्त इत्यादि रोगों पर इसका लेप करने से लाभ पहुँचता है।

दन्त पीड़ा—खुरासानी अजवायन को राल के साथ पीसकर दांतों की खोखल में रखने से दन्त पीड़ा दूर होती है।

पेट का दर्द—इसकी गुड़ में गोली बनाकर देने से पेट की वायु-पीड़ा मिटती है।

पेट के कीड़े—प्रातःकाल के समय थोड़ा गुड़ खिलाकर बासी पानी के साथ इसकी फंकी देने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

सत्त्व निकालने की विधि—खुरासानी अजवायन का पौधा जब फूलने-फलने लगे तब उसका पंचांग लेकर पानी से भलीभांति धोकर उसका स्वरस निकाल लें इस स्वरस को छानकर अग्नि पर औटावें, १५—२० मिनट औटने के बाद जब उस पर झाग आने लगे तब उसे उतारकर छान लें, उसके पश्चात् चीनी के प्यालों में उसे १२ घण्टे तक पड़ा रहने दें, उसके बाद उसे सावधानी से नितारकर ब्लाटिंग में छान लें और फिर आग पर पकावें, जब गाढ़ा अवलेह की तरह हो जाय तब उतार लें, इस सत्त्व की (हायोसायमीस) मात्रा ३ से ४ रत्ती तक की है, इसका उपयोग ऊपर लिखा जा चुका है।

अजवायन जंगली

नाम--संस्कृत—बनयवानी, बनेमनि। हिंदी—अजवायन जंगली, अजगन्धिका, बन अजवायन। बंगाली--बन जोआन। मराठी—किरमानिअजवा। लेटिन—Seseli Indicum (सेसेली इन्डिकम)।

वर्णन—यह औषधि देहरादून से गोरखपुर तक हिमालय की तराई में तथा आसाम से कारोमण्डल तक और बिहार तथा मध्य बंगाल में पाई जाती है। यह एक प्रकार का सीधा और झाड़ीनुमा वर्षजीवी पौधा होता है। इसकी शाखाएँ ४ से १२ इन्च तक लम्बी, सघन, सीधी, और फैली हुई रहती हैं। पत्ते प्रायः तीन भागों में विभक्त

होते हैं। इनका प्रत्येक भाग कटा हुआ और नोकदार होता है। इसके फूल छत्तेदार, सफेद, अथवा हलके गुलाबी रंग के होते हैं। फल गोल और बारीक, हलके पीले रंग का होता है।

कुछ वैद्य इसी को अजमोद समझकर अजमोद के स्थान पर इसे काम में लेते हैं।

गुण-दोष--जंगली अजवायन के बीज विशेषकर मवेशियों के उपचार में काम आते हैं। यह पेट के आफरे को दूर करने वाला होता है तथा उत्तेजक, शूलनाशक, आंतों को बल देने वाला और पेट के गोल कृमियों को नष्ट करने वाला है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पेट के आफरे को दूर करती है।

डाक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार ये बीज उत्तेजक, कृमिनाशक, पेट के आफरे को दूर करने वाले और अग्निवर्द्धक हैं। इनकी मात्रा १० रत्ती से लेकर ३॥ माशे तक की है। इतनी मात्रा में लेने से यह औषधि आंतों के कीड़ों को मारने में सफल होती है।

एक और दूसरी तरह का बन अजवायन भी होता है, जिसको लेटिन में (Thymus Serpyllum) तथा पंजाबी में 'माशो' या 'रांगस्बुर' कहते हैं। यह औषधि भी काश्मीर से कुमाऊं तक हिमालय के गरम प्रांतों में पैदा होती है। पंजाबी में इसके बीज पेट के कीड़ों को नष्ट करने के लिये उपयोग में लिये जाते हैं। हकीम लोग आंतों की पीड़ा, दाद, मूत्र की रुकावट, दृष्टि की कमजोरी आदि पर इसका प्रयोग करते हैं, फ्रांस में इसके पंचांग का काढ़ा, खुजली और अन्य चर्म रोगों के लिये उपयोग में लिया जाता है।

अजगरी

परिचय—आयुर्वेद में पारे की गोली बांधने के विषय में जिन ६४ वेलों का वर्णन आया है, उनमें से यह एक है—यह बेल देखने में अजगर सी नजर आती है व इसके ऊपर अजगर के शरीर के समान चकत्ते होते हैं, इसी से इसे अजगरी कहते हैं। यह बेल पांच छः हाथ लम्बी व रस युक्त होती है। इसके पत्ते कम होते हैं।

उपयोग—इस बेल को कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन लाकर उसके टुकड़े कर डालना चाहिये, फिर उन्हें दूध में डालकर उस दूध को औटाकर पीना चाहिये। इसके ऊपर कुछ पथ्य रखना चाहिये। इसके सेवन से शरीर बलवान होता है और कांति, बुद्धि तथा आयुष्य बढ़ती है। ऐसा सुश्रुत का मत है। (बनौषधि गुणादर्श)

अंजीर

नाम—संस्कृत—काकोदुम्बरिका, मञ्जुल। हिन्दी—अंजीर। गुजराती—अंजीर। पंजाबी—किमरी फगवारा। लेटिन—Ficus Carica (फायकस केरिका)

वर्णन—अञ्जीर के झाड़ अरब स्थान, ईरान, टर्की, अफ्रिका तथा भारतवर्ष के बगीचों में होते हैं। यह दो प्रकार का होता है। (१) एक बोया हुआ, जिसके फल और पत्ते बड़े होते हैं। (२) दूसरा जंगली, जिसके फल और पत्ते इससे छोटे होते हैं। अञ्जीर का वृक्ष ६ से ६ फीट तक ऊँचा होता। तोड़ने या चीरा देने से इसके हर एक अंग से दूध निकलता है। इसके पत्ते ऊपर की ओर से अधिक खुरदरे होते हैं। इसके फल का आकार प्रायः गूलर के फल के आकार के समान होता है। कच्चे फल का रंग हरा और पके हुए का रङ्ग पीला या बैगनी और अन्दर से बहुत लाल होता है। यह फल बड़ा मीठा और स्वादिष्ठ होता है। भारत में पूने के पास खड़ाशिव नामक गांव के अञ्जीर सब से अच्छे होते हैं मगर अफगानिस्तान तथा फारस के अञ्जीर सबसे अच्छे होते हैं। जिस जमीन में चूने का अंश अधिक होता है उस जमीन में अञ्जीर बहुत फलते--फूलते हैं।

गुण—दोष—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अञ्जीर अत्यन्त शीतल, तत्काल रक्तपित्तनाशक, सिर व खून की बीमारी में तथा कोढ व नकसीर में लाभकारी है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पहली कक्षा में गर्म और दूसरी कक्षा में तर है। इसकी जड़ पौष्टिक तथा धवल रोग (श्वेत कुष्ठ) और दाद पर उपयोगी है। इसका फल मीठा, ज्वरनाशक, पौष्टिक, रेचक, कामोद्दीपक, विषनाशक, सूजन में लाभदायक, अश्मरी (पथरी) को दूर करनेवाला और कमजोरी, लकवा, प्यास, यकृत् तथा तिल्ली की बीमारी व सीने के दर्द को दूर करता है।

कच्चा अंजीर कांतिकारी और सूखा अंजीर शीतोत्पादक है। जल के अंश की कमी के कारण यह पहले दर्जे में गर्म है। इससे पतला खून उत्पन्न होता है, जो बाहर की ओर गति करता है। इसीसे यह कांतिवर्द्धक भी माना जाता है। यह फल सभी मेवों से अधिक पोषण करता है। इसमें अन्तिम दर्जे की कुव्वते तलय्यन (दोषों को मुलायम करने की शक्ति) है। यह पसीना लाने वाला और गर्मी को शांत करने वाला है।

अपनी तीक्ष्णता और मधुरता के द्वारा आमाशय में गर्मी उत्पन्न करने के कारण यह गर्म प्रकृति वालों में प्यास पैदा करता है और उस प्यास को जो कफ के कारण पैदा होती है, शमन करता है, क्योंकि यह कफ को पतला करता है और उसे काटता और छांटता है।

यह अञ्जीर पुरानी खांसी को लाभ पहुंचाता है क्योंकि यह खांसी केवल बलगम से ही पैदा होती है। इसका दूध अपनी तीक्ष्णता के कारण रेचक है।

पथ्यरूप में अंजीर बहुत सहज में पच जाने वाला और औषधि रूप से उपयोग करने पर किडनी एवं बस्ति सम्बंधी पथरियों को तथा यकृत् और प्लीहा के रोगों को दूर करने वाला है। गठिया और बवासीर में भी यह लाभ पहुँचाता है।

यूरोप के अंदर भूंजे हुए अंजीर का पुल्टिस सांघातिक फोड़े, बालतोड़ (बरटुट) तथा मसूड़े के ऊपर के फोड़े पर बांधा जाता है। सूखे हुए अंजीर का पुल्टिस दूध के साथ में पीबदार जखम और नासूर की दुर्गन्धि को दूर करने के काम में लिया जाता है। बड़े सवेरे खाली पेट इसको खाने से अन्न प्रणाली को खोलने में यह आश्चर्य-जनक लाभ दिखाता है। अंजीर बादाम और पिस्ते के साथ खाने से बुद्धिवर्द्धक, अखरोट के साथ खाने से कामो-द्दीपक तथा बादाम के साथ खाने से विष को दूर करने का काम करता है।

इसके अतिरिक्त स्त्री समाज के अंदर भयंकर रूप से प्रचलित, प्रदर रोग के अंदर भी यह औषधि बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

रासायनिक विश्लेषण—इसके फल के रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि इसके अंदर ६२ अंगूरी शक्कर (Grapesugar) तथा निर्यास, वसा और लवण का भाग होता है। सूखे अंजीर में शक्कर, वसा, अलब्यूमिन (अंडे की सफेदी) और लवण का भाग होता है। इसके दूध में (Peptonioing Ferment) होता है।

उपयोग—बवासीर—दो सूखे अंजीर को शाम को पानी में भिगो देना चाहिये। सबेरे उनको खा लेना चाहिए। इसी प्रकार सबेरे के भिगोये हुए अंजीर संध्या को खा लेना चाहिये। इस प्रकार ८--१० रोज तक खाने से खूनी बवासीर के अंदर बहुत लाभ पहुँचता है।

श्वेत कुष्ठ—सफेद कोढ़ के आरम्भ में ही अंजीर के पत्तों का रस लगाने से उसका बढ़ना बंद होकर आराम होने लगता है।

रुधिर का जमाव—अंजीर की लकड़ी की राख को पानी के अंदर घोलकर गाद के नीचे बैठ जाने के बाद उसका निथरा हुआ पानी निकाल कर उसमें फिर वही राख घोल देना चाहिये, ऐसा सात बार राख घोल २ कर नितरा हुआ पानी पिलाने से रुधिर का जमाव बिखर जाता है।

गांठ व फोड़े—सूखे या हरे अञ्जीर पीसकर जल में औटाकर गुनगुना लेप करने से गांठों व फोड़ों की सूजन बिखर जाती है।

श्वास—अंजीर और गोरख इमली का चूर्ण समान भाग लेकर प्रातःकाल छः माशे की खुराक में खाने से दमे के अंदर लाभ होता है।

बनावटें—प्रदर नाशक चूर्ण—करंज के बीज की मगज ५ तोले, राल २॥ तोला, दाडिम के फूल की सूखी कलियां २ तोला, कुड़ा की छाल २॥ तोला, बढ़िया चंदन का बुरादा २ तोला, नागकेसर २॥ तोला, शीतल चीनी २ तोला, सूखे आंवले २ तोला, हरड़ का चूर्ण २॥ तोला, लोध २॥ तोला, इन सब औषधियों को कूट-पीस कर कपड़े में छान लेना चाहिए। इस चूर्ण को अंजीर के हरे फल के रस की सात भावना देना चाहिये अर्थात् इस चूर्ण को उस रस में तर करके सुखाना चाहिये। इस प्रकार सात बार करना चाहिये। अगर हरे अंजीर न मिलें तो सूखे अंजीर को संध्या को भिगोकर सवेरे उनको मसल कर उस पानी को छानकर उसकी भावना देनी चाहिये। उसके पश्चात् काली दाख का काढ़ा बनाकर उसकी भी इस चूर्ण में सात भावना देनी चाहिए। जब चूर्ण सूख जाय तब उसमें वंशलोचन २ तोला, कपूर ६ माशे, सोना गेरू २ तोला, शंखजीरा (शंखजरात) २ तोला और मिश्री १४८ तोला इन सब चीजों को मिलाकर बोतल में भरकर रख देना चाहिये। इस चूर्ण को प्रतिदिन दोनों टाइम ६ माशा से १ तोला तक लेने से जाति के सफेद, लाल, काले, नीले, प्रदर रोगों में चमत्कारिक फायदा होता है और २१ दिन में तो प्रदर जड़ मूल से नष्ट हो जाता है।

अञ्जीर का अचार—दो सेर सूखे अंजीर लेकर गरम पानी से दो-तीन बार धोकर उनके छोटे २ टुकड़े कर लेना चाहिये, फिर बादाम की मगज १ सेर लेकर ऊपर का छिलका उतार कर उसके भी बारीक टुकड़े कर लेना चाहिये, फिर उसके बाद एक कलईदार कढ़ाई में अंजीर और बादाम की मगज के टुकड़े डालकर उसमें चार सेर शक्कर तथा इलायची २॥ तोला, केशर १ तोला, चिरौंजी १० तोला, पिस्ते १० तोला, सफेद मूसली ४ तोला, अभ्रक भस्म डेढ़ तोला, प्रवाल भस्म २॥ तोला, मुगलाई वेदाना २। तोला, शीतल चीनी १॥ तोला इन सब चीजों को कूट करके थोड़ी देर तक उसे अग्नि पर चढ़ा देना चाहिये, जब घी अच्छी तरह से पिघल जाय और वे सब चीजें मिल जाँय तब उसे उतार कर चीनी की बर्नियों में भर देना चाहिये।

इस अचार की खुराक आधी छटांक की है। इस औषधि को दोनों टाइम खाने से खून व त्वचा की तमाम गर्मी, पित्तविकार, रक्तविकार, कब्जियत, बवासीर और तमाम प्रकार के वीर्यदोष नष्ट होते हैं। यह औषधि जीवन-शक्तिवर्धक, कामोद्दीपक और अत्यंत पौष्टिक है।

बवासीरनाशक गोलियां—सूखे अंजीर दो तोला, काली दाख २ तोला, हरड़ का चूर्ण २ तोला, मिश्री दो तोला, इन चारों औषधियों को कूट कर सुपारी के बराबर गोलियां बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से सबेरे शाम एक-एक गोली खाने से बवासीर में लाभ होता है। (जङ्गलनी जड़ी बूटी भाग १—२)

अंजीरी

नाम—हिंदी—अंजीरी, बेदू, बेरु, खबारा, खेमरी। गुजराती—पेपरी। मध्यप्रदेश—घौरा। मारवाड़—केमरी। राजपूताना—केमरी। उत्तर भारत—फगवारा। लेटिन—Ficus Palmata. (फायकस पेलमेटा)।

वर्णन—यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा छोटे कद का वृक्ष है, जो विशेष कर पंजाब, आबूपर्वत, उत्तरीय हिमालय और बिलोचिस्तान में पैदा होता है। इसके पत्ते कटी हुई किनारी के रहते हैं। इसका फल पकने पर बैंगनी रंग का होता है।

गुण-दोष—इसके फल में विशेष शक्कर और लुआब का भाग रहता है, इस कारण यह फल कोठे को मुलायम करनेवाला, शान्तिदायक और मृदुविरेचक है। कब्जियत तथा फेफड़े और मूत्राशय की बीमारियों में यह लाभदायक है। इसका उपयोग बाह्य उपचार के लिए पुल्टिस के रूप में भी होता है।

अंजुबार

नाम—संस्कृत—मिरोमती। हिंदी—मचूटी निसोमली, इन्द्राणी, बीजबंद। पंजाबी—केसरू, मसलून, बिल्लोरी, अंजबार। फारसी—अंजुबार हुजार, बंदक। अरबी—चतबत, असराराई। लेटिन—Polygonum Avicularа Pviveparum.

वर्णन—यह हिमालय पहाड़ की चोटियों पर काश्मीर से कुमाऊँ तक छः हजार से बारह हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसका पौधा छोटा क्षुप जाति- का होता है। इसकी शाखायें चारों ओर फैली हुई रहती हैं। यह पौधा नरम पत्तेवाला, फैला हुआ और फूलदार होता है। इसके पत्ते बरछी के आकार से मिलते हुए होते हैं। इसके फूल लाल रङ्ग के धब्बेदार और छोटे तथा किञ्चित् तिकोने होते हैं।

गुण दोष—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में शीतल और रूक्ष है, इस पौधे की जड़ रक्तस्राव को रोकनेवाली, संकोचक, ज्वर को नष्ट करनेवाली, विरेचक और मूत्रल है। पेट की जलन और मूत्राशय की तकलीफ में यह लाभ पहुँचाती है। हाथीपाँव (श्लीपद) और विसर्प रोग में भी यह लाभदायक है। फेफड़े और वक्षस्थल के रक्तस्राव में यह औषधि खास तौर से उपयोगी है।

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि जरिश्क और गिले अरमानी हैं और इसकी दर्पनाशक सोंठ है।

मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसकी जड़ सूजन में लाभ पहुँचानेवाली और संकोचक है। इसका क्वाथ सोमरोग और प्रदर रोग में लाभ पहुँचाता है। इसके कुल्ले करने से मसूड़े की सूजन और गले की बीमारी में लाभ पहुँचता है। इन वनस्पति का ठण्डा काढ़ा रक्तातिसार में लाभ पहुँचाता है। मलाया के अन्दर यह सुजाक की बीमारी में काम में लिया जाता है।

इसकी जड़ का क्वाथ ढाई तोले से पाँच तोले तक की मात्रा में मलेरिया बुखार, पुराना अतिसार, पथरी, हुपिंग कफ (कुक्कुरखांसी) इत्यादि रोगों में लाभदायक होता है।

रासायनिक विश्लेषण—इस औषधि के अन्दर पोलीगॉनिक एसिड (अंजुबार का सत्व), टेनिन एसिड, गैलिक एसिड, केलसियम ऑक्झेलेट और इसेंशियल आइल पाया जाता है।

इस औषधि का एक भेद और होता है, जिसे लेटिन में (Viviparum) और अरबी में अञ्जबार पोल कहते हैं। यह औषधि भी पौष्टिक, रक्तस्रावरोधक, संकोचक तथा गले के रोगों में मुफीद है।

अंजरूत

नाम—हिन्दी—लाई, लाही। फारसी—गूजद्, अञ्जदक। अरबी—कुहल फारसी, कुहलकिरमानी। लेटिन—Astragalus Sarcocolla.

वर्णन—यह एक वृक्ष का गोंद है, जिस वृक्ष से यह निकलता है, उसका नाम मख्जनूल अदविया के लेखक मीरमुहम्मद हुसेन के मतानुसार शाइ कहा है। यह वृक्ष शीराज के नजदीक शबानकारह की पहाड़ियों में पाया जाता है। यह वृक्ष छः फीट ऊँचा और कांटेदार होता है। इसके पत्ते लोबान के पत्तों की तरह होते हैं। इसका गोंद निकलते समय सफेद होता है और हवा लगने पर लाल हो जाता है। इसका स्वाद कड़वा और मधुर होता है, आग पर जलाने से यह फूलता है और उस समय शक्कर जलाने की सी बास आती है।

गुण दोष—यूनानी मत मख्जनूल अदबिया के लेखक मीरमुहम्मद हुसेन के मतानुसार यह रेचक और कफ के दोषों को मिटाने वाला है, निसोत और हरड़ के साथ मिलाकर उपयोग में लेने से यह बहुत लाभदायक होता है। इसका प्लास्टर सब प्रकार की सूजन को नष्ट करता है। प्याज के अन्दर इसे रख अग्नि पर भूनकर इसका रस कानों में टपकाने से कान का दर्द दूर होता है।

अञ्जरूत की प्रधान उपयोगिता लेपन के द्रव्य में होती है। फारसी लोग इसे रूई के साथ मिलाकर टूटी हुई अथवा मोच आई हुई हड्डियों पर इसका लेप करते हैं।

डॉयमाक के मतानुसार अंजरूत ६ भाग, जदबार १ भाग, एलवा सकोतरी १६ भाग, फिटकरी ८ भाग, मैदा लकड़ी ४ भाग, गूगल ४ भाग, लोबान ७ भाग, और उसारह रेबन्द १२ भाग, इन सब औषधियों को बारीक चूर्ण कर जल में मिलाकर, सिल पर पीसकर लुगदी बनाकर लेप के उपयोग में लेना चाहिए।

अडूसा

नाम—संस्कृत—वासक, आटरूष। मराठी—अडूसा। बंगाली—वसाका। गुजराती—अडूसा। लेटिन—Adhatoda Vasica (अधाटोडा वासिका)

वर्णन—आयुर्वेद के अन्दर, वर्णित की हुई औषधियों में अडूसा भी एक दिव्य औषधि है। इसके अन्दर ऐसे अनेकों दिव्य गुण छिपे हुए हैं जो समय पर मनुष्य को भयंकर कष्ट और मौत के मुँह से बचा सकते हैं। इसके पौधे ४ से लेकर ८ फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते लम्बे और अमरूद की तरह होते हैं। अडूसे के वृक्ष दो तरह के होते हैं। काले और सफेद। काले अडूसे के पत्ते कुटकी के पत्ते की तरह मृदु होते हैं। सफेद अडूसे के पत्तों का रंग हरा होता है और उनपर सफेद धब्बे होते हैं। अडूसे के फूल सफेद होते हैं, इसकी लकड़ी कोमल और हलकी होती है। इसलिए इसके कोयले का चूर्ण बारूद बनाने के उपयोग में लिया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—अडूसा अत्यन्त प्राचीन काल से भारत वर्ष में औषधि रूप में व्यवहार होता हुआ चला आया है। इसी कारण जिस प्रकार आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। उसी प्रकार अशिक्षित और ग्रामीण लोग खांसी, अतिसार, वमन, बुखार, सूजन इत्यादि रोगों में इसका उपयोग करते हैं परन्तु आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थकार इसको खांसी, श्वास और क्षयरोग की अद्‌भुत औषधि मानते हैं।

भावप्रकाश के कर्त्ता भावमिश्र के अनुसार अडूसा वातकारक, स्वर को उत्तम करने वाला, कफघ्न, रक्तपित्त-नाशक, कडुवा, कसैला, हृदय को हितकारी, हलका, शीतल तथा तृषा, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, मोह, कोढ़, क्षय आदि रोगों को नष्ट करने वाला है।

राज-निघण्टु के मतानुसार अडूसा तिक्त, कटु, शीतल तथा खांसी, रक्तपित्तघ्न, कामला नाशक, कफ निकालने वाला और ज्वर, श्वास व क्षय रोग को नष्ट करने वाला है।

इसकी प्रशंसा करते हुए एक स्थान पर कहा है:—

श्लोक—वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च। रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति॥

अर्थात् जीवन अवशेष और अडूसे के विद्यमान रहते हुए रक्तपित्त, क्षय और खांसी के रोगी किस लिये दुःख पा रहे हैं। इससे मालूम होता है कि प्राचीन ग्रन्थकार रक्त-पित्त, खांसी, श्वास और क्षय की बीमारी में निःशंक होकर इसका उपयोग करते थे।

इसी प्रकार यूनानी ग्रन्थकार भी अडूसे के फूल को क्षय, रक्तपित्त, खांसी और श्वास में लाभदायक मानते हैं।

डा० देसाई के मत से अडूसा, एक उत्कृष्ट उत्तेजक, संकोच-विकास-प्रतिबन्धक और कफनिस्सारक होता है। शरीर के अन्दर इसकी क्रिया इपिकेकोना के समान होती है। इसके पत्ते, फूल और जड़ के गुण-धर्म में कुछ अन्तर होता है। इसके फूल कड़वे, कसैले, ज्वरनाशक, मूत्रल और रक्त की गर्मी को शांत करने वाले होते हैं। इसके फूलों का ज्वरनाशक धर्म, चढ़ने उतरनेवाले ज्वर में उत्तम रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसकी जड़ें ज्वर-नाशक, मूत्रल, कफनिस्सारक, पार्यायिक ज्वरों को दूर करने वाली और कृमिनाशक होती है। इसके पत्तों और इसकी जड़ों की अपेक्षा इसके फूलों में संकोच-विकास-प्रतिबन्धक धर्म अधिक होता है और इसके पत्तों की अपेक्षा इसकी जड़ों में कफनिस्सारक धर्म अधिक जोरदार होता है। इसके पत्तों की क्रिया त्वचा पर विशेष रूप से होती है। अडूसा में ज्वरनाशक और पसीना लाने का धर्म थोड़ी मात्रा में होता है मगर कफ को पतला करने और खाँसी के झटके को दूर करने का धर्म इसमें प्रधान रूप से रहता है।

कफ रोग और चढ़ने उतरनेवाले ज्वर में इसका विशेष उपयोग होता है। नवीन और प्राचीन कफ रोग अथवा खाँसी में अथवा श्वासनलिका की सूजन में अडूसा बहुत लाभ पहुँचाता है। इससे कफ पतला होकर शीघ्र बाहर निकल जाता है, जिससे खाँसी और दमा में लाभ होता है। पुराने कफ रोगों में हृदय के अन्दर बहुत शिथिलता आ जाती है, वह इसकी जड़ों के सेवन से कम हो जाती है। नवीन कफ रोगों की अपेक्षा प्राचीन कफ रोगों में यह विशेष रूप से लाभदायक होता है।

इपिकेकोना से जिस प्रकार छोटी रक्त वाहिनियों का संकोचन होता है और रक्तस्राव रुक जाता है उसी प्रकार अडूसा से भी छोटी रक्तवाहिनियों का संकोचन होकर रक्तस्राव रुक जाता है। इसलिए रक्तपित्त, रक्तमिश्रित दस्त, खूनी बवासीर, अत्यार्तव और क्षय रोग में कफ के साथ गिरनेवाले रक्त में इसका स्वरस देने से लाभ होता है।

आधुनिक शोध खोज—भारत सरकार के द्वारा निर्मित की हुई 'इन्डीजेनस ड्रग कमेटी ऑफ् इण्डिया' अपनी रिपोर्ट में इस औषधि के लिए लिखती है—'यह बात यहाँ पर बतलाना आवश्यक है कि भारतवर्ष के अस्पतालों में किये हुये परीक्षणों के परिणाम स्वरूप अडूसे का पौधा, ब्रोङ्काइटीज (श्वास नली की खाँसी) और दमे के रोगियों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है। परन्तु क्षय के रोग को नष्ट करने की जो प्रशंसा इस पौधे के सम्बन्ध में की गई है, वह सन्देहास्पद है।'

फरमाकोपिया ऑफ् इण्डिया नामक पुस्तक के लेखक खाँसी और दमे के रोग को नष्ट करने के लिए अडूसे की जोरदार सिफारिश करते हैं। परन्तु जिस खाँसी और दमे के साथ बुखार होता है, उसमें उनके मतानुसार इस औषधि से लाभ नहीं होता।

रासायनिक विश्लेषण—इस औषधि की रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें तीन मुख्य तत्त्व पाये गये हैं। एक उपक्षार (Alkloid), एक तिक्तक्षारी सत्त्व और एक (Oil) तेल, इसमें पाये जानेवाला उपक्षार खून की गति को ढीला करता है और हार्ट (हृदय) की गति को मामूली दर्जे पर ले आता है। यह उपक्षार और भी हृदय रोगों का नाश करता है और वायुनलियों को साधारण तौर से फैला देता है। इसके पत्तों का रस कफ की बीमारी पर फायदेमन्द है। यह कफ को ढीला कर देता है, जिससे कि बिना किसी कष्ट के वह बाहर फेंका जा सकता है (Indian Journal Medical Research Oct. 1925)।

कर्नल चोपड़ा और घोष के सिद्धान्त के अनुसार यह औषधि फेफड़ों के क्षय में बिलकुल लाभदायक नहीं है।

मेजर वसु और डाक्टर कीर्तिकर के मतानुसार यह वनस्पति वायुनलियों के प्रदाह में, कोढ़ में, रक्तविकार में, हृदय रोग में, प्यास में, श्वास में, ज्वर में, वमन में, स्मरणशक्ति के नाश, क्षय, पीलिया, व मुँह के रोगों में लाभकारी है। इसकी जड़ गर्भस्थ सन्तान को निकालने में मुफीद मानी जाती है। मूत्रकृच्छ्र, श्वेत प्रदर व नलियों के प्रदाह में भी यह लाभकारी और मूत्रवर्धक है। इसके पत्ते ऋतुस्राव को नियमित करनेवाले हैं। इसके फूल रक्त की गति (Circulation of Blood) को नियमित करनेवाले हैं। इसके फल वायुनलियों के प्रदाह में उपयोगी हैं।

इस वृक्ष की जड़ और पत्ते सब प्रकार की खांसियों पर एक उत्तम औषधि मानी गई है। इसके पत्ते गठिया के रोग में उपयोग के आते हैं। इसके पत्तों को सुखाकर उनकी सिगरेट बनाकर पीने से दमे के रोग में लाभ होता है।

उपयोग—पटना के सर्जन आर० एल० दत्त के मतानुसार लाल फूल वाला अडूसा क्षय तथा खाँसी के लिए बहुत लाभदायक है।

सर्जन पी० किसली मेकाकोल के मतानुसार अडूसे के पत्तों को बाफकर उनका सेवन करने से चीभे चलना और संधिवात की पीड़ा में फायदा होता है। सूजन को कम करने में भी यह औषधि फायदेमन्द है।

सर्जन मेजर फिट्स पेट्रीक के कथनानुसार देशी वैद्य पाण्डु रोग के साथ वाली जलोदर की व्याधि में मूत्रल औषधि की तरह इसका व्यवहार करते हैं।

सर्जन मेजर रोव के मतानुसार आमातिसार, रक्तातिसार और मरोड़ी के दस्तों में इसके पत्तों का रस बहुत उपयोगी है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक मि० नाडकरनी का कथन है कि अडूसे के पत्ते का ताजा रस साढ़े सात माशा लेकर शहद या अदरख के रस के साथ देने से अथवा इसके पत्तों को उबालकर उसमें कालीमिर्च और छोटी पीपल का चूर्ण डालकर पिलाने से पुरानी खाँसी, श्वास और क्षय के रोग में बहुत फायदा होता है। इसके पत्तों का रस खून और मरोड़ी की दस्तों में बहुत उपयोगी है और इसके पके हुए पत्तों के द्वारा किया हुआ सेंक सन्धिवात, लकवा और वेदना युक्त सूजन में लाभ पहुँचाता है।

अडूसे के पत्तों को और नीम के पत्तों को बाफकर पेडू के ऊपर उनसे सेंक करने से तथा अडूसे के पत्तों के आधे तोले रस में उतनी ही शहद मिलाकर पिलाने से गुर्दे का भयंकर दर्द जिसे अंग्रेजी में (Brights Disease) कहते हैं, चमत्कारिक लाभ पहुँचाता है।

बनावटें—वासावलेह—अडूसे का रस ६४ तोला, शक्कर ३२ तोला और घी ७ तोला, लेकर धीमी आंच से पकाते-पकाते जब गाढ़ा हो जाय, तब उसे नीचे उतार कर आठ तोला पीपल का चूर्ण डालना चाहिये। जब वह अवलेह ठण्डा हो जाय तब उसमें ३२ तोला शहद डालकर चीनी के पात्र में भर के रखना चाहिये। इसकी मात्रा आधे से एक तोले तक है। यह अवलेह खांसी, श्वास, हृदय रोग और रक्तपित्त पर बहुत लाभदायक है।

वासासव—अडूसे के पत्ते १० सेर लेकर उनको १०२४ तोला पानी में उबालना चाहिये। जब २५६ तोला पानी बाकी रह जाय, तब उसे उतार कर छान कर उसमें २०० तोला गुड़, १६ तोला धावड़ी का चूर्ण तथा तज, इलायची, तमालपत्र, नागकेशर, कंकोल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, नागरमोथा ये सब वस्तुएँ दो दो तोला लेकर उनका चूर्ण करके उसमें डाल देना चाहिये। उसके बाद बोतलों में भरकर १५ दिनों तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके पश्चात् उसको छानकर काम में लेना चाहिये। यह आसव आधे से लेकर एक तोला तक पानी के साथ मिलाकर लेने से जलोदर, पांडु और सूजन के दर्द पर फायदा करता है।

अडूसे की सिगरेट—इसके ताजे पत्तों को सुखा कर उनमें थोड़े से काले धतूरे के सूखे हुए पत्ते मिलाकर उनका चूर्ण करके उसकी बीड़ी बनाकर पीने से दमे की बीमारी में आश्चर्यजनक लाभ होता है।

अडूसे का क्षार—अडूसे के पंचांग को जलाकर उसकी राख से क्षार निकालकर उस क्षार को चार-चार रत्ती की मात्रा में देने से खांसी और दमें में आश्चर्यजनक लाभ होता है।

अडूसे का अर्क—अडूसे के पत्ते एक सेर और अडूसे के फूल दस तोला इन को चार सेर जल में शाम को भिगो देना चाहिये। सवेरे आग के नीचे एक जोश देकर चार सेर दूध मिला देना चाहिये। उसके पश्चात् भपके के द्वारा उसका अर्क खींच लेना चाहिये। अडूसे का यह अर्क दश तोला लेकर पाँच तोला शर्बत एजाज के साथ सवेरे और शाम पिलाने से प्रथम और द्वितीय श्रेणी के क्षय रोग में लाभ पहुँचाता है। दो सप्ताह के पश्चात् रोगी के वजन में आश्चर्यजनक वृद्धि दीख पड़ती है। शरीर लाल और ओजपूर्ण हो जाता है। मूत्र की ललाई, जलन और गर्मी को दूर करने के लिये यह अर्क अनुपम है। (आयुर्वेदीय कोष)

अडूसे का क्वाथ—अडूसे के पत्ते २ सेर, अडूसे की जड़ की छाल २ सेर, अडूसे के फूल २ सेर इन तीनों वस्तुओं को थोड़ी कूटकर बीस सेर पानी में उबालें, आधा रह जाने पर छानकर फिर तीनों चीजें एक-एक सेर डालकर उबालें। जब आधा अर्थात् पांच सेर पानी रह जाय तब उसको मल छान कर फिर उपर्युक्त तीनों वस्तुएँ आधा २ सेर डालकर फिर उबालें। उसमें जब ढाई सेर पानी रह जाय तब मल छानकर बोतलों में भरकर रख लें। इसमें से ढाई तोला क्वाथ, एक तोला शहद मिलाकर दिन में तीन बार पिलाने से खांसी, ज्वर, मुँह से खून का गिरना, खून की उल्टी, खूनी बवासीर, इत्यादि में लाभ पहुँचाता है। आयुर्वेदीय कोष)।

वासकारिष्ट—अडूसे के पत्तों का रस १०० तोला लेकर रेक्टी फाइड स्पीरिट ऑफ् वाइन (Rectified Spirit of Wine) एक सौ तोला में मिलाकर चीनी की बरनी में डालकर उसमें मुलेठी का सत दो तोला, कपूर एक तोला, अफीम एक तोला, बहेड़े का चूर्ण दो तोला, लौंग दो तोला, इलायची दो तोला, कालामिर्च एक तोला, तालीस पत्र दो तोला, काकड़ासिंगी एक तोला, धतूरे के शुद्ध बीज एक तोला, कूठ दो तोला और शक्कर ४० तोला डालकर उस बरनी का मुँह बन्द करके एक महीनेतक पड़ी रहने देना चाहिये। इस औषधि में से तीन माशे से छः माशे तक दो तोला पानी के साथ मिलाकर दिन में तीन बार पिलाने से खांसी और श्वास में अद्भुत गुण करती है। औषधि पीने के साथ ही श्वास का वेग दूर हो जाता है। रेक्टिफाइड स्पिरिट के बदले यदि मृतसंजीवनी सुरा ले ली जाय तो अजीब गुण करती है। (जङ्गलनी जड़ी-बूटी)।

गोदन्ती भस्म—अडूसे के फूलों के रस में गोदन्ती हड़ताल को खरल कर के गजपुट में फुंक दे, इस प्रकार सात बार घोटकर फूंकने से गोदन्ती हड़ताल की बढ़िया भस्म तय्यार हो जायगी। इस भस्म की मात्रा एक रत्ती

की है। जीर्ण ज्वर में यह भस्म अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई है। जिसको खून की उल्टी होती हो, उसे पांच माशा कहरुआ में एक रत्ती भस्म रखकर शर्बत अन्जुबार के साथ खिलाने से थोड़ी खुराकों में लाभ होता है। पुरानी खांसी में यह भस्म शर्बत एजाज के साथ खिलाने से आश्चर्यजनक काम करती है। (आयुर्वेदीय कोष)।

अटवी-जम्भीरी

नाम—संस्कृत-अटवी-जम्भीरी। हिन्दी--जंगली निम्बू। मराठी—रणनींबु, मकदनींबु। कनाड़ी—अद बी नीबू। तामील—कटरगम, कट्टेलुमिचय। तेलगू—अदवीनीम्बा, करुनीम्बा। उड़िया—कटनरंग, नरंगुनी। लैटिन—Atalantia Monophilla. एटेलेंटिया मोनोफिला

वर्णन—अटवी जम्भीरी, यह एक काँटेदार और फैलने वाली झाड़ी है। इसकी शाखाएं छोटी होती हैं। इसके पत्ते बल्लम के आकार के कुछ गोलाई लिए हुए होते हैं। इनमें नारङ्गी के पत्तों की तरह खुशबू आती है। इसके फूल सफेद रङ्ग के होते हैं। फल गोलाकार पीले तथा नीबू की तरह होते हैं। इसका ताजा बीज बहुत खुशबूदार होता है। इसके बीज का चूर्ण मीठे तेल में डालने से तेल खुशबूदार और गहरे पीले रंग का हो जाता है। इस तेल की मालिश करने से त्वचा में गरमी पैदा होती है। यह औषधि कोकण, उत्तरी कनाड़ा, मद्रास, पश्चिमी समुद्र तट, कर्नाटक, दक्षिणी सिलोन, सिलहट इत्यादि स्थानों पर पैदा होती है।

गुण-दोष—डा० राबर्ट्स के मतानुसार सिलोन में इसके ताजे पत्ते कुचल कर नमक के साथ पिलाये जाते हैं। फिर उन्हें गरम करके सांप के काटे हुए स्थान पर लगाते हैं। इसका खास उपयोग ट्री स्नेक्स (वृक्ष पर रहने वाले सांप) के दंश पर किया जाता है मगर केस और मस्कर का मत है कि सर्पदंश के उपचार में इसके पत्ते बिलकुल निरुपयोगी हैं। ट्री स्नेक्स तो वैसे ही जहरी और प्राणघातक नहीं होते हैं।

डा० एन्सली का मत है कि इसके फूलों से एक प्रकार का उष्ण तेल बनाया जाता है। यह तेल दक्षिणी भारत में गठिया रोग के बाह्य उपचार में बहुत मूल्यवान माना जाता है। पक्षाघात में भी यह लाभ पहुँचाता है।

कोकण में इसके पत्तों के रस का लेप अर्द्धांग (लकवा) में उपयोगी माना जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ आक्षेपनिवारक और उत्तेजक है। यह औषधि सर्पदंश में भी काम आती है।

अत्यम्लपर्णी (खट्टुआ)

नाम—संस्कृत—अत्यम्लपर्णी, कण्डूला। हिन्दी—रामचना। गुजराती-खाटखदुम्बा। मराठी—आमबेल। बंगला-कड़वड़वेनि। तेलगू--मण्डलमारी। लेटिन—Vitis Carnosa.(विटिस करनोसा)।

वर्णन—यह एक प्रकार की बेल होती है, जो बहुधा थूहर पर फैला करती है। इसके तीन २ पत्ते लगते हैं। वे फटे हुए कंगूरेदार किनारे के होते हैं, इसकी जड़ में करीब नौ इञ्च लम्बा एक कन्द निकलता है। इस कन्द पर से तन्तु निकल कर जमीन के भीतर ही भीतर फैलते हैं और स्थान स्थान पर उनके वैसे ही कन्द लगते हैं। इसके फल कुछ हरापन लिये हुए सफेद होते हैं। इसके फल कच्ची हालत में हरे और पकने पर बैगनी हो जाते हैं। इन फलों में से बीज निकलते हैं। इस वनस्पति का एक २ अणु अत्यन्त खट्टे रस से भरा रहता है। अगर इसको खाया जाय तो गले में जलन पैदा करता है। हिन्दुस्तान के प्रायः सभी भागों में यह वनस्पति मिलती है। इसलिये सब लोग इसको जानते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—राजनिघण्टु के मतानुसार यह औषधि तीक्ष्ण, खट्टी अग्नि को दीपन करने वाली, रुचिकारक तथा प्लीहा, शूल, वात, वाय गोला और कफ, इन रोगों को दूर करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि रक्तशोधक—पित्तशामक और यकृत् तथा हृदय की पीड़ाओं को दूर करने वाली है। तिल्ली के प्रदाह में भी यह गुणकारी है तथा पौष्टिक, अग्निवर्द्धक और कफ को पैदा करने वाली है।

इस औषधि के सम्बन्ध में आयुर्वेद तथा यूनानी में अधिक वर्णन नहीं मिलता, लेकिन 'धन्वन्तरि' नामक वैद्यकपत्र के अन्दर सन् १६१६ के फरवरी मास के अंक में इस औषधि के सम्बन्ध में कुछ चमत्कारिक बातें निकली थीं, उसका कुछ अंश यहां पर दिया जाता है—

'मेरे पड़ोस में हरजी भगत नामक एक वृद्ध भाटिया गृहस्थ रहते थे। वे दाद के रोगियों को चित्रक की जड़ घिसकर लगाने के लिये कहते थे जिससे लगाये हुए स्थान पर फोड़ा होकर वहां की दाद जल जाती थी। मैंने उनको बतलाया कि यह औषधि अत्यन्त दाहक और उग्र है। इसलिये कभी-कभी यह आपको बहुत कष्टप्रद होगी। पर उन्होंने इस बात को नहीं माना। कुछ दिनों के बाद ऐसा प्रसङ्ग आया कि उनके खुद के गले में दाद हुई। हमेशा की आदत के मुताबिक उन्होंने तत्काल चित्रक की जड़ को घिसकर गले के ऊपर लगादी। बद किस्मती से वे बरसात के दिन थे जिससे वह जगह सज गई और सूखने के बदले उसमें पीब पैदा हो गई और उसमें कीड़े पड़ गये। पर शरम के मारे उन्होंने मुझसे वह बात न कही। पर जब तकलीफ बहुत बढ़ गई, तब मुझे उनकी हालत मालूम पड़ी तब मैंने उन जन्तुओं का नाश करने के लिए कारबोलिक तेल की तलाश की। मगर वह उस छोटे से गाँव में न मिल सका। तब मैंने धोया हुआ घी और शक्कर मिलाकर पके हुए हिस्से पर लगाना प्रारम्भ किया जिससे कुछ कीड़े ऊपर आने लगे और हम उनको चिमटी से पकड़ २ कर बाहर निकालते थे। यह मगजपच्ची चल ही रही थी कि एक दिन एक ठाकुर सिर पर लकड़ी का बोझ लेकर आया और उसने यह हालत देखकर मुझसे कहा कि तुम इतनी मगजपच्ची क्यों करते हो, विना परिश्रम के ही अगर सब कीड़े जिन्दा स्थिति में बाहर निकल जाँय तो कैसा हो। मैंने कहा कि अगर ऐसा हो तो फिर क्या कहना है। तब वह अपनी मजदूरी के चार आने पैसे ठहराकर गाँव के बाहर गया और एक वनस्पति की गाँठ लेकर आ गया। उसने उस गाँठ को चन्दन की तरह घिसकर रूई के फुए के ऊपर लगाया और उसको उस नासूर के ऊपर चिपकाकर लगा दिया। दस-बारह मिनट के बाद उसने उस रूई के फुए को हटाया तो जिन्दे कीड़ों का एक गुच्छे का गुच्छा उस रूई के फुए के साथ चिपका हुआ चला आया।

मुझे सन्देह हुआ कि कहीं इसने हाथ की चालाकी तो नहीं की है। इस सन्देह को दूर करने के लिये मैंने स्वयं दूसरी बार अपने हाथ से उस गाँठ को घिसकर लगाया और दूसरी बार भी बहुत से कीड़े उसके साथ चले आये। इस प्रकार तीन बार करने से उस नासूर के सब कीड़े बाहर निकल आये और रोगी को बड़ा आराम हुआ। अन्त में मुझे उस गाँठ का परिचय जानने की इच्छा हुई और बहुत कुछ खुशामद बरामद के बाद उसने बतलाया कि यह गांठ खाटखटुमढ़ा की है। उसके पश्चात् और भी कई स्थानों पर मनुष्यों एवं ढोरों पर इसका उपयोग किया गया और सब स्थानों पर कृमियों को बाहर निकाल देने में यह गाँठ कामयाब हुई है।

उपयोग—बैलों के कन्धे पर जूआ रखने से जो घाव हो जाते हैं, उस पर इसके पत्तों का पुल्टिस बाँधने से बहुत लाभ होता है।

बिच्छू का जहर—बिच्छू के काटे हुए स्थान पर इसका कन्द घिसकर लगाने से लाभ होता है।

फोड़े-फुन्सी—सूजन और फोड़े-फुंसियों पर कंद घिसकर लगाने से लाभ होता है।

अतीसार—इसके फलों का शाक बनाकर खाने से लाभ होता है।

अतिबला (कंघी)

नाम—संस्कृत—अतिबला, बालिका, बल्या, शीतपुष्पा, वृषगन्धिका। हिन्दी—कंघी, कंघनी, झम्पी। गुजराती—कंसकी। मराठी—मुद्रिका, करडि, चिकणाथोरला। सिन्धी—खपटो। तामील—पेरदुति। तेलगू—तूति। अरबी—मस्तुल घौल। उर्दू—कंघी। अंग्रेजी—Indian Malow (इन्डियन मेलो)। लेटिन—Abutilon Indicum (एब्यू—टीलन इन्डीकम)।

वर्णन—यह वनस्पति गरम आब-हवा वाले प्रायः सभी प्रान्तों में होती है। इसका वृक्ष कुछ फिसलता और रुयेंदार होता है। यह औषधि संस्कृत के प्रसिद्ध बलाचतुष्टय (बला, अतिबला, नागबला और महाबला) से एक है और प्रायः सब दूर परिचित है। इसके बीज छोटे २ बुआबदार, चिकने और कुछ काले होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से कंघी कड़वी, चरपरी और वात, कृमि, दाह, तृषा, विष, वमन और क्लेद को शान्त करनेवाली है। यह वीर्यवर्द्धक, बलकारक, अवस्थास्थापक, वात-पित्तनाशक और मूत्र रोग को दूर करनेवाली है।

इसकी छाल कड़वी, ज्वरनिवारक, कृमिनाशक और जहर के दोष को उपशम करनेवाली है। इसके अतिरिक्त प्यास, त्रिदोष और वात पीड़ा को भी यह नष्ट करनेवाली है। इसकी जड़ गर्भाशय से होनेवाले रक्तस्राव में लाभदायक है। इस वृक्ष का दूध पेशाब-सम्बन्धी बीमारियों में लाभ पहुंचाता है। आयुर्वेद के अन्दर बल बढ़ानेवाली, धातुपौष्टिक जितनी औषधियाँ मानी गई हैं, उनमें यह औषधि अपना प्रधान स्थान रखती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसके लुआबदार बीज पौष्टिक होते हैं। और सीने की तकलीफों में लाभ पहुँचाते हैं। ये बच्चों की खाँसी, वायुनलियों की जलन, बवासीर और सुजाक के अन्दर बहुत मुफीद हैं। इसके पत्ते दाँतों की पीड़ा, कमर की बादी और बवासीर में उत्तम है। इसकी छाल पथरी और पेशाब सम्बन्धी बीमारियों में अपना असर दिखाती है। इसकी जड़ का ठंडा काढ़ा ज्वर के अंदर ठंडी औषधि के रूप में दिया जाता है। यह पथरी और मूत्र के अंदर रक्त के कण आने की बीमारी में लाभदायक है।

खूनी बवासीर के अंदर इसके पत्तों का काढ़ा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त वायुनलियों के प्रदाह, सुजाक, मूत्राशय की जलन, पैत्तिक आमातिसार और ज्वर में भी इसका काढ़ा लाभदायक है।

इसके बीज अत्यन्त पौष्टिक और कामोद्दीपक हैं। बवासीर के अन्दर ये विरेचक औषधि के बतौर काम में लिये जाते हैं। खाँसी के अंदर भी ये लाभदायक हैं। बच्चों के गुदा द्वार में जब कृमि पड़ जाते हैं, तब लकड़ी के अङ्गारे पर इसके बीजों को डालकर उनका धुआँ देने से वे कृमि नष्ट हो जाते हैं।

चीन और हांग-कांग के लोग मूत्रल औषधि की तरह इसकी जड़ का उपयोग करते हैं। वे इसे दमे की बीमारी में भी लाभकारी मानते हैं।

पोर्टर स्मिथ के मतानुसार इसके बीज और यह सारा वृक्ष मूत्रल, शांतिदायक और मृदुविरेचक है। यह मूत्र-सम्बन्धी बीमारियों में, पुराने अतिसार में, जीर्ण ज्वर में तथा सूतिका रोग में उपयोगी है। औषधि प्रयोग में विशेषकर इसके बीज ही काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका छिलका, जड़, पत्ते और बीज सभी का उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है। इसके पत्तों को पानी में गलाने से एक प्रकार का चिकना लुआब निकलता है। यह लुआब ज्वर में शान्तिदायक, मूत्रनिस्सारक, सीने के दर्द में मुफीद तथा सुजाक और मूत्रनली की सूजन में लाभदायक माना गया है। इसके बीजों को अच्छी तरह पीसकर विरेचक और कफनिस्सारक औषधि की तौर पर दिये जाते हैं। इनकी खुराक एक से लगाकर दो ड्राम तक की है। इसकी छाल संकोचक और मूत्रल है। इसकी जड़ ज्वर में फायदेमन्द है।

उपयोग—**विद्रधि व्रण**—अतिबला की कोमल पत्तियों को बारीक पीसकर लुग्दी बनाकर फोड़े पर रखना चाहिए और उस पर कपड़े का तह रखकर उसपर ठंडा पानी डालते रहना चाहिये। इस प्रयोग से गांठ में होनेवाली जलन और झपका बन्द होता है और गाँठ जल्दी पककर फूट जाती है। (वनौषधि गुणादर्श)

गरमी के चट्टे—अतिबला की छाल और पुराने पत्तों को पीसकर उनको पानी में औटाना चाहिये और जब अष्टमांश पानी शेष रह जाय तब उस काढ़े से गरमी के चट्टों को धोने से लाभ होता है।

ज्वर—अतिबला की जड़ और सूंठ का काढ़ा पिलाने से शीत, कम्प और दाह युक्त ज्वर दो-तीन दिन में नष्ट हो जाते हैं।

बिच्छू का जहर—अतिबला की जड़ को घिस कर लगाने से लाभ होता है।

अतीस

नाम—संस्कृत—भंगुरा, विषा, अतिविषा। मारवाड़ी-अतीस। गुजराती—अतवस। मराठी-अतिविष। बंगाली-आतइच। पंजाबी—अतीस। तेलंगी-अतिवस। द्राविड़ी-अतिविष। लेटिन—Aconitum Haterophylum (एकोनीटम हेट्रोफीलम)।

वर्णन—अतीस के पौधे हिमालय में कुमायूँ से हसोरा तक, शिमला और उसके आस-पास तथा चम्बा में बहुत होते हैं। इसका पौधा एक से तीन फुट तक ऊंचा होता है। उसकी डण्डी सीधी और पत्तेदार होती है, इसके पत्ते दो से चार इञ्च तक चौड़े और नोकदार होते हैं। डण्डी की जड़ से शाखाएं निकलती हैं। इसके पुष्प बहुत लगते हैं। वे एक या डेढ़ इंच लम्बे, चमकदार, नीले या पीले, कुछ हरे रंग के बैंगनी धारी वाले होते हैं। इसके बीज चिकने-छाल वाले और नोकदार होते हैं। इसके नीचे डेढ़ दो इंच लम्बा और प्रायः आधा इंच मोटा कंद निकलता है। इसी को अतीस कहते हैं। इसका आकार हाथी की सूँड़ के सदृश होता है जो ऊपर से मोटा और नीचे की ओर से पतला होता चला आता है। यह बाहर से खाकी और भीतर से सफेद रंग का होता है। इसका स्वाद कसेला होता है। अतीस सफेद, काला और लाल तीन प्रकार का होता है। इसमें से सफेद अधिक गुणकारी होता है।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—भावप्रकाश के मतानुसार अतीस गरम, चरपरा, कड़वा, पाचक, जठराग्नि को दीपन करने वाला तथा कफ, पित्त, अतीसार, आम, विष, खांसी और कृमिरोग को नष्ट करने वाला है।

निघण्टुरत्नाकर के मतानुसार अतीस किंचित् उष्ण, कड़वा, अग्निप्रदीपक, ग्राही, त्रिदोष-पाचक तथा कफ, पित्त, ज्वर, आमातिसार, खांसी, विष, यकृत्, वमन, तृषा, कृमि, बवासीर, पीनस, पित्तोदर और सर्व प्रकार की व्याधि को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरी कक्षा में गर्म और पहली कक्षा में रूक्ष है। यह काबिज और आमाशय के लिए हानिकारक है। इसके अतिरिक्त यह कामोद्दीपक, क्षुधावर्धक, ज्वरप्रतिरोधक, कफ तथा पित्तजन्य विकारों को नाश करने वाला तथा बवासीर, जलोदर, वमन और अतिसार में लाभ करने वाला है।

रासायनिक विश्लेषण—इसके अन्दर अतिसीन (Atisine) और एकोनाइटिक एसिड (Aconitic Acid) तथा टेनिन एसिड नामक क्षार और आक्ज़ीइक, पामीटिक स्टीयरिक, ग्लिसराइट्स सुगर और वानस्पतिक लुआब इत्यादि द्रव्य होते हैं।

आधुनिक अन्वेषण—डाक्टर कोमान के मत से अतीस की जड़ ने भयंकर पेचिश के रोगियों को तन्दुरुस्त किया और आंतों की सूजन के पुराने रोगियों को भी ठीक किया।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ सामयिक ज्वरनिवारक, संकोचक, कमोत्तेजक और पौष्टिक होती है। इसमें क्षार की मात्रा भी अधिक होती है। इसकी मात्रा एक से दो ड्राम तक अर्थात् तीन से छः माशे तक है। ढाई ड्राम तक यह सर्वथा निरापद है।

सुश्रुत, वाग्भट इत्यादि आचार्यों ने इसकी जड़ को सर्प और बिच्छू के विष को नष्ट करने वाली माना है। मगर आधुनिक खोजों के अनुसार इस सम्बन्ध में यह निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

उपर्युक्त अवतरणों से यह बात मालूम होती है कि यह औषधि अग्नि को दीप्त करने वाली तथा ज्वर, खून की दस्तें और पेट के कृमियों को नष्ट करने में अद्भुत शक्ति रखती है। इसके अतिरिक्त बालकों के तमाम रोगों पर यह औषधि अमृतोपम अक्सीर साबित हुई है। बालकों की बुखार, खांसी, दस्तें, सर्दी, अजीर्ण, उल्टी, कृमि, कफ, यकृत् की वृद्धि इत्यादि तमाम रोगों को यह औषधि नष्ट करती है।

उपयोग ज्वर—ज्वर आने के पहिले इसके दो माशे चूर्ण की फंकी चार २ घण्टे के अन्तर से देने से ज्वर उतर जाता है।

विषम ज्वर—विषमज्वर, जूड़ी बुखार और पाली के बुखार में इसके चूर्ण को छोटी इलायची और वंश-लोचन के चूर्ण में मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

अतिसार—अतिसार और आमातिसार में दो माशे चूर्ण की फंकी देकर आठ पहर की भिगी हुई दो माशे सोंठ को पीसकर पिलाना चाहिए।

कृमिरोग—इसके चूर्ण में बायबिडंग का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से कृमिरोग दूर होता है।

बालरोग—(१) अकेली अतीस को पीसकर चूर्ण कर शीशी में भरकर रखना चाहिए। बालकों के तमाम रोगों के ऊपर आंख मीचकर इसका व्यवहार करना चाहिए। इससे बहुत लाभ होता है। बालक की उम्र को देखकर इसे एक से चार रत्ती तक शहद के साथ चटाना चाहिए।

(२) अतीस, काकड़ासिंगी, नागरमोथा और बच्छ चारों औषधियों का चूर्ण बनाकर ढाई रत्ती से १० रत्ती तक की खुराक में शहद के साथ चटाने से बालकों की खांसी, बुखार, उल्टी, अतिसार वगैरह दूर होता है।

(३) अतीस, नागरमोथा, पीपर, काकड़ासिंगी और मुलेठी इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण करके ४ रत्ती से ६ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ चटाने से बचों की खांसी, बुखार व अतिसार बन्द होता है।

(४) अतीस और बायबिडंग का समान भाग चूर्ण शहद के साथ चटाने से बचों के कृमि नष्ट होते हैं।

बनावटें—अतिविषादि अर्क—अतीश, नागरमोथा, मुलेठी, काकड़ासिंगी, पीपर, बच, बायबिडङ्ग, जायपत्री, जायफल, केशर ये सब वस्तुएं एक-एक रुपये भर लेकर चूर्ण कर उसमें ३ माशे कस्तूरी मिलाकर उस चूर्ण को कांच के काग वाली स्टॉपर्ड बाटली में भरकर उसमें ४० रुपये भर रेक्टीफाइड स्पिरिट डालकर काग लगाकर ७ दिन तक धूप में रखना चाहिये। आठवें दिन दवा को मसलकर ब्लाटिंग पेपर में छान लेना चहिये। इस दवा में से १ बूंद से लेकर १० बूंद तक अवस्थानुसार पानी या मां के दूध में मिलाकर देने से बचों को होनेवाली सर्दी, बुखार, खांसी कफ, निमोनिया, कमजोरी, बेहोशी तथा शीतकाल में बालकों के ऊपर होने वाले अनेक भयंकर रोग आराम होते हैं।

अदरक

नाम—संस्कृत—आर्द्रकं, शृङ्गबेरं, कटुभद्र, आर्द्रशाक, आर्द्रिका। हिन्दी—आदा, अदरख। गुजराती—आदु। मराठी—आलें। बंगाली—आदा। पञ्जाबी—अदरक। तैलङ्गी—अल्लम। द्राविड़ी—हमिशोठ। फारसी—जञ्जबील रतब। लेटिन—Zingiber Officinale, Amomum Zingiber.

परिचय—अदरख हिन्दुस्तान में सब स्थानों में बोया जाता है। इसका झाड़ प्रायः एक हाथ ऊँचा होता है। इसके पत्ते बांस के पत्ते जैसे होते हैं। इसकी जड़ में एक प्रकार का कन्द होता है। उसको अदरख कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक चूंसेदार और दूसरा बिना चूंसेदार। यह चैत्र, वैशाख में बोया जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अदरख भेदक, भारी, तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन, चरपरा, पाक में मधुर, रूक्ष तथा वात व कफ नाशक है।

लवण-मिश्रित अदरख अग्नि को दीपन करने वाला, रुचि को उत्पन्न करने वाला, प्रिय, सारक तथा सूजन, वात व कफ का नाशक है। एक स्थान पर लिखा है:—

वातपित्तकफेभानां, शरीरवनचारिणाम्। एक एव निहन्त्यत्र लवणार्द्रककेसरी॥

अर्थात् वात, पित्त और कफ रूपी हाथी जो शरीर रूपी वन में विचरण करते फिरते हैं। उनको मारने के लिये एक ही महापराक्रमी लवणयुक्त अदरखरूपी सिंह है।

अदरख कुष्ठ, पांडुरोग, मूत्रकृच्छ्र, रक्त-पित्त, व्रणरोग, ज्वर, दाह, ग्रीष्मऋतु और शरदऋतु में अपथ्य है, ऐसा भाव मिश्र का कथन है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार अदरख तीसरे दर्जे में गरम, पहिले दर्जे में रूक्ष, पाचक, आध्मान व वायु को नाश करने वाला, क्षुधावर्द्धक, पक्वाशय की स्निग्धता व कफ को नाश करने वाला तथा पाचन-शक्ति को बढ़ाने वाला है। यह शीत प्रकृति वाले के लिये गुणकारी और उष्ण प्रकृति वाले के लिये हानिकारक है, इसकी जड़ें चरपरी, अग्निवर्द्धक, कामोद्दीपक, पौष्टिक, कफनिस्सारक व पेट के आफरे को दूर करने वाली होती हैं। यह नेत्र की ज्योति को बढ़ाने वाला, मस्तक के कृमियों को नष्ट करने वाला, गठिया, सिर दर्द तथा दूसरी तकलीफों में फायदा पहुँचाने वाला है।

छोटे नागपुर में इसकी ताजी जड़ को पीसकर शहद के साथ मिलाकर आग पर गरम कर के खांसी के रोगियों को दी जाती है।

कम्बोडिया में इसकी जड़ें, सुगन्धित व पौष्टिक द्रव्यों के रूप में काम में ली जाती हैं। फोड़े व ग्रन्थियों के ऊपर लगाने पर भी यह काम में लिया जाता है।

पेरक में इसकी जड़ की पतली २ फांकें कृमिनाशक औषधि के रूप में प्रसिद्ध हैं।

मलावार में पयानू नाम के स्थानों में अदरख का ताजा रस जलोदर रोग में लाभ पहुँचाने वाला और मूत्र निस्सारक माना जाता है। ऐसे करीब तीन केस देखे गये हैं, जिनमें कि इसे जलोदर में औषधि के रूप में देने में लाभ हुआ है। इसके देने से पेट की सूजन में भी फायदा हुआ है। इस वनस्पति का ताजा रस तेज मूत्रनिस्सारक औषधि मानी गई है। इसके देने से बीमार लोगों को दिन पर दिन मूत्र की मात्रा बढ़ती गई है। लेकिन यह औषधि पुराने हृदय रोग और ब्राइट्स डिसीज (गुर्दे की खास बीमारी जिसका सब से प्रथम डाक्टर ने वर्णन किया था) में उपयोगी सिद्ध नहीं हुई बल्कि इसके उपयोग से रोगी की हालत दिन प्रतिदिन खराब होती गई है (इण्डियन मेडिकल प्लांट्स)

कर्नल चोपरा के मतानुसार अदरख पेट के आफरे को दूर करने वाला और पाकस्थली की अतड़ियों को उत्तेजित करने वाला है। यही कारण है कि भारतीय चिकित्सा शास्त्रों के अन्दर इसको इतना अधिक महत्त्व दिया गया है। यह कोष्ठ वायु के लिये एक प्रकार का भेदक इलाज है। इसके मिश्रण से भारतीय व ब्रिटिश औषधि विज्ञान में कई औषधियां बनाई जाती हैं।

रासायनिक विश्लेषण—अदरख में १ प्रतिशत से लगाकर ३ प्रतिशत तक एक प्रकार का तेल रहता है। जो कि उड़नशील होता है। जेमिका के अदरख में यह एक प्रतिशत रहता है, अफ्रिका के अदरख में [दाहक तत्त्व] तीक्ष्ण तत्त्व रहते हैं वे उड़नशील नहीं होते। इसके वैज्ञानिक तत्त्व क्या हैं? इसका पता अभी नहीं लगा है।

सोंठ व अदरख ये दोनों एक ही वस्तु हैं। गीली हालत में जब सोंठ रहता है तब उसे अदरख कहते हैं जब सूख जाती है तब सोंठ कहते हैं। भारतीय वैद्यक काल में प्राचीन काल से ही सोंठ का उपयोग इतना अधिक किया जाता है कि जिसका विवेचन नहीं किया जा सकता। इस औषधि पर आर्यग्रन्थकारों की इतनी श्रद्धा रही है कि प्रत्येक औषधि, चूर्ण, काढ़ा, गोली, पाक, अवलेह इत्यादि सब में इसका उपयोग उन लोगों ने किया है। इसका वर्णन हम आगे जाकर सोंठ के प्रकरण में करेंगे। अदरख के रस का उपयोग भी स्थान-स्थान पर किया गया है।

उपयोग—जलोदर—पांच तोले ताजे अदरख को कूटकर उसका रस निकाल लेना चाहिये। उस रस के बराबर की मिश्री उसमें मिलाकर जलोदर के रोगी को पहले दिन प्रातःकाल देना चाहिये। दूसरे दिन ७॥ तोले अदरख का रस निकाल कर समान भाग मिश्री के साथ देना चाहिये। इस प्रकार प्रतिदिन २॥ तोले अदरख का रस बढ़ाते हुए चले जाना चाहिये। जब यह मात्रा २५ तोले तक पहुँच जाय तब फिर उसको २॥ तोले प्रतिदिन के हिसाब से घटाना चाहिये। जब वह पूर्व की अर्थात् ५ तोले की मात्रा पर आ जाय, तब औषधि को बन्द करना चाहिये। अगर इतने पर भी सूजन का कुछ अंश बाकी रह जाय तो फिर उसे घटती-बढ़ती मात्रा में अदरख के स्वरस का सेवन करना चाहिये। जब तक औषधि चालू रहे तब तक रोगी को केवल दूध का आहार देना चाहिये। मगर औषधि की बनिस्बत अनुपान के अन्दर अदरख का रस ज्यादा पसन्द किया गया है।

वमन—एक तोले अदरक के रस को १ तोला प्याज के रस के साथ देने से उल्टी व जी की मिचलाहट बन्द होती है।

हैजा—अदरख का रस एक तोला, आँक की जड़ १ तोला, इन दोनों को यहाँ तक खरल करे कि गोली बनाने योग्य हो जावे, फिर इसकी कालीमिर्च के बराबर गोली बना लेनी चाहिये। इन गोलियों को कुनकुने पानी के साथ देने से हैजे में लाभ पहुँचता है। इसी प्रकार अदरख का रस व तुलसी का रस समान भाग लेकर उसमें थोड़ी-सी शहद अथवा उसमें थोड़ी-सी मोर के पंख की भस्म मिलाने से भी हैजे में लाभ पहुँचता है।

खाँसी व श्वास—अदरक के रस में शहद मिलाकर चटाने से श्वास, खाँसी, जुकाम व कफ मिटता है।

सूजन—अदरक के स्वरस में पुराना गुड़ मिलाकर पिलाने से सारे शरीर की सूजन उतरती है। परन्तु इस प्रयोग का सेवन करते समय केवल बकरी का दूध पिलाना चाहिये।

कान का दर्द—अदरक के रस को कुन-कुना करके कान में डालने से कान का दर्द मिटता है।

जोड़ों का दर्द—अदरक के एक सेर रस में तिल्ली का आधा सेर रस डालकर आग पर चढ़ाना चाहिये। जब रस जल कर तैल मात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये। इस तेल की शरीर पर मालिश करने से जोड़ों की वात पीड़ा मिटती है।

कामला—अदरक, त्रिफला और गुड़ तीनों को मिलाकर पीने से कामला रोग मिटता है।

मन्दग्नि—इसके रस में निंबू का रस मिलाकर पिलाने से मन्दाग्नि दूर होती है।

दन्त पीड़ा—सर्दी की दन्त पीड़ा में इसके टुकड़े को दाँतों के बीच में दबाने से लाभ होता है।

बनावटें—आर्द्रक अवलेह—पुराना गुड़ १ पाव, १ सेर अदरक के रस में मिलाकर उसकी पतली चासनी करें, फिर उसमें तज, पत्रज, नागकेसर, छोटी इलायची, लवङ्ग, सोंठ, कालीमिर्च और पीपर आधी-आधी छटाँक लेकर महीन चूर्ण कर उस चासनी में मिला दें। इस अवलेह को ३ माशे से १ तोले सवेरे-शाम चाटने से श्वास, खाँसी, मन्दाग्नि, कब्जियत तथा अरुचि रोग दूर होते हैं।

अन्तमूल (खड़ की रास्ना)

नाम—संस्कृत—मलाएड, अराडमल, पूति, अम्भपर्ण। हिन्दी—खड़ की रास्ना, जङ्गली पिकवन। बंगाली—अन्तोमूल। उड़िया—मेराडी। मराठी—पितकारी। तेलगू—कुक्कपाल। लेटिन—Tylophora Asthmatica.

वर्णन—यह एक प्रकार की बहुं-वर्षजीवी लता है। इसकी जड़ें घनी और रस पूर्ण होती हैं। इसकी लकड़ी नरम होती है। इसकी शाखायें अधिक नहीं होतीं। इसके फूल बड़े और छत्र के आकार के होते हैं। इसके पुष्पकोष बाहर से रूयेंदार होते हैं। इसके बीज पीलापन लिए हुए हरे रंग के होते हैं। ये बीज चौकोर आकार के लम्बाई लिये हुए होते हैं। यह औषधि भारत के मैदानी सिलोन, श्याम और मलाया द्वीपसमूह में पायी जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक और यूनानी निघण्टुओं में इस औषधि का कहीं भी वर्णन नहीं पाया जाता है सिर्फ भावप्रकाश के अन्दर मलाएड नाम से एक औषधि का वर्णन पाया जाता है और उसके सम्पूर्ण गुण व स्वभाव इस औषधि से मिलते हैं। इससे कई लोगों का अनुमान है कि मलाएड और अन्तमूल एक ही वस्तु है।

लेकिन आधुनिक औषधि-विज्ञान के अन्वेषणों में यह औषधि बहुत नामांकित साबित हुई है। यह औषधि एलोपैथिक की प्रसिद्ध औषधि इपिकोना की उत्तम प्रतिनिधि सिद्ध हुई है। आयुर्वेद के अन्दर वमनकारक द्रव्यों में जिन प्रसिद्ध औषधियों के नाम आते हैं, यह औषधि भी अपने में उनसे कम प्रभाव नहीं रखती है, इसके सूखे पत्ते वमनकारक, ज्वरनिवारक और कफनिस्सारक होते हैं। यह पेट के ज्यादा भर जाने पर या उन बीमारियों में—जिनमें वमनकारक औषधियों की आवश्यकता होती हैं–बहुत ही उपयोगी है। पेचिस, जुकाम और उन बीमारियों में—जिनमें अंग्रेजी दवा इपिकोना व्यवहृत होती है–यह बहुत अच्छा प्रभाव दिखलाती है।

कोकण में इस औषधि के रस को सुखाकर गोलियाँ बनाई जाती हैं जो पेचिश की बीमारी के काम में आती हैं। इसके पत्तों का काढ़ा व इसकी जड़ की छाल का काढ़ा, पेचिश, श्वास और वायुनलियों के प्रदाह को दूर करने के उपयोग में लिया गया है और इसका बड़ा सन्तोषजनक परिणाम हुआ है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके सूखे पत्तों का चूर्ण पाँच से लेकर, सात रत्ती की मात्रा में या इसकी जड़ की छाल का चूर्ण भी इसी मात्रा में दो-तीन बार देने से प्रवाहिका और पेचिश में लाभ पहुँचता है। वायुनलियों के प्राचीन प्रदाह में और खाँसी में भी यह एक उत्तम कफनिस्सारक औषधि मानी गई है। यह औषधि इपिकोना की प्रतिनिधि है, इसमें टाइनी-कोराइन नामक एक क्षारीय सत्त्व रहता है।

यह वनस्पति पसीना लानेवाली, वामक, आनुलोमिक, पित्तस्रावी और आम को पचानेवाली होती है। इसके पत्तों में जड़ की अपेक्षा ये धर्म विशेष रूप में रहते हैं। इसके पत्तों को छोटी मात्रा में देने से पसीना छूटता है, कुछ जी मिचलाता है और कफ छूटने लगता है। इसको बड़ी मात्रा में देने से वमन और दस्त होते हैं। इसके अन्दर रहनेवाले तत्त्व रक्त में शीघ्रता से मिलकर, रक्त के प्रवाह के साथ श्वासोच्छ्वास और वमन के केन्द्र स्थान को उत्तेजित करते हैं जिससे इसका कफनाशक और वामक धर्म तत्काल दृष्टिगोचर होता है। सूखी जड़ों की अपेक्षा इसकी ताजी जड़ें विशेष गुणकारी होती हैं।

मात्रा—पसीना लाने और कफ को छाँटने के लिये १ से २ रत्ती तक, वमन लाने के लिए १० से १५ रत्ती तक है।

डाक्टर मोहीदीन शरीफ का कथन है कि 'इस देश के सँपेरों में सर्प विष को दूर करने के लिये यह औषधि प्रसिद्ध है। ऐसा कहा जाता है कि जब नेवले को सांप काट लेता है तब वह इसी पौधे से अपना विष नष्ट करता है।'

वमन करानेवाली औषधियों में तथा प्रवाहिका (पतले दस्त) की चिकित्सा में यह औषधि देशी औषधियों में इपिकोना की सर्वोत्तम प्रतिनिधि है। दस से बीस रत्ती तक इसका चूर्ण लेकर उसमें दस बूंद टिंचर ओपियाई मिलाकर दिन में तीन--चार बार देने से यह सफलतापूर्वक उपर्युक्त रोगों को दूर करता है।

सर्प दंश को दूर करने में एमोनिया के पश्चात् दूसरी औषधियों की अपेक्षा अन्तमूल पर मेरा अधिक विश्वास है। सर्पदंशित मनुष्य को जब तक स्वतन्त्ररूप से वमन न आने लगे तब तक अन्तमूल का ताजा रस थोड़ी २ देर पर देते रहने से अच्छा प्रभाव होता है। देशी औषधियों के व्यापक अनुभव के पश्चात् मुझे विश्वास हो गया कि इस देश की चार--पांच सर्वोत्तम वामक (उल्टी लाने वाली) औषधियों में अन्तमूल भी एक प्रधान औषधि है। निर्मली तथा मैनफल के पश्चात् वामक औषधियों में इसका नम्बर है, वैसे तो इसका पञ्चांग ही वामक है, पर प्रवाहिका रोग में इसकी जड़ ही प्रधान रोग निवारक है।

उपयोग—प्रवाहिका रोग में इसके पत्तों का चूर्ण साढ़े सात रत्ती, अफीम आधी रत्ती और थोड़ा सा बबूल का गोंद मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है।

शिर दर्द और वात वेदना—इसकी जड़ को घिसकर शिर पर लेप करने से वातजनित शिर-पीड़ा दूर होती है।

हूपिंग कफ—(कुक्कुर खांसी) हूपिंग कफ की प्रथम अवस्था में इसका ढाई रत्ती चूर्ण २ माशे, मुलेठी के शर्बत और सवा तोला पानी के साथ दिन में २ बार देने से लाभ होता है।

अतिसार—अतिसार की प्रथमावस्था में अगर ज्वर भी हो तो इसका पांच रत्ती चूर्ण, ढाई तोला जल, तीन माशे कीकर का लुआब और २ चावल भर अफीम के साथ देने से लाभ होता है।

अंधाहूली

नाम—संस्कृत—अधःपुष्पी, रोमालु, दारपिका। हिन्दी—अन्धाहूली। मराठी—जिन्वी, गावोजा। गुजराती—ऊँधाहुली। बंगाली—केतरहूली। लेटिन—**Trichodesma Indicum** (ट्राईकोडेस्मा इण्डिकम)।

वर्णन—अंधाहूलि के झाड़ बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। ये १ लेकर २॥ फीट तक ऊँचे होते हैं। इनकी शाखायें, जमीन के ऊपर फैली हुई रहती हैं। इन शाखाओं का रङ्ग हलका हरा तथा लाल होता है। इसके पत्ते रुएँवाले चार इञ्च लम्बे तथा १ से १॥ इञ्च तक चौड़े होते हैं, इसके फूल कुछ हलके हरे रङ्ग के तथा नीले होते हैं। ये उल्टे लटके हुए रहते हैं। इसका फल जब पूरा पक जाता है, तब कुछ हरा रङ्ग लिये हुये या पूरा सफेद हो जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—प्राचीन आयुर्वेदिक निघण्टुओं में इस वनस्पति का कुछ भी वर्णन नहीं पाया जाता। केवल शालिग्राम निघण्टु के अन्दर इसके विषय में इतना ही लिखा हुआ है कि अंधाहूली नेत्रों को हितकारी, और मूढगर्भ को अपकर्षण करने वाली है।

मूढगर्भ के सम्बन्ध में आधुनिक खोजों के अनुसार भी यह औषधि बहुत उपयोगी साबित हुई है। वात दोप से अथवा दूसरे कारणों से कुछ स्त्रियों के पेट में रहा हुआ गर्भ सूख जाता है। यह गर्भ ज्यों २ सूखता जाता है त्यों त्यों पेट की वृद्धि इत्यादि गर्भ चिह्न मिटते चले जाते हैं। इस प्रकार कुछ दिन महीने या वर्षों तक चलता रहता है, फिर जब अनुकूल संयोग मिलते हैं, तब यह गर्भ फिर पीछे बढ़ने लगता है और पीछे सब गर्भ के चिह्न नजर आने लगते हैं। मगर थोड़े ही समय बाद फिर वह गर्भ सूखने लगता है और इस प्रकार वर्षों गुजर जाते हैं। मगर न तो वह गर्भ नष्ट होता है और न प्रसव होता है। इसीको मूढगर्भ कहते हैं।

इस रोग के लिए कोई सफल चिकित्सा नहीं पाई गई है। परन्तु इस औषधि के उपयोग लेने वालों का कथन है कि इस वनस्पति के झाड़ का स्वरस प्रतिदिन सवेरे-शाम चार २ तोले की खुराक में मूढगर्भा स्त्री को पिलाया जाय तो कुछ ही समय में मूढगर्भ निकल जाता है। इस प्रकार जो कार्य दूसरी किसी भी औषधि और अन्य क्रिया से नहीं हो सकता, वह इस दवा के द्वारा चमत्कारिक ढंग से हो जाता है।

उपयोग—जोड़ की सूजन—इसकी जड़ को पीस कर लेप करने से जोड़ों की सूजन में लाभ पहुँचता है।

बच्चों की पेचिश—इसको पानी के साथ मिलाकर देने से बच्चों की पेचिश में लाभ पहुँचता है।

ज्वर—हक्स मूलर का कथन है कि लासबेला में इस औषधि को ज्वर दूर करने के उपयोग में लेते हैं।

सर्प दंश—मेडिकल प्लांट्स के मेजर वसु और डाक्टर कीर्तिकर इसे सर्पदंश में भी उपयोगी मानते हैं। गारुडी ग्रन्थों में भी इसको सर्पदंश के लिये उपयोगी माना है। एक स्थान पर कहा है—

ऊंधा फली जड़ को आन, दो पैसा भर जल सँग पान। सर्प विष कोई ना रहे, सिद्धनाथ योगी यूँ कहे॥

मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्प दंश में बिलकुल निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

अनन्नास

नाम—संस्कृत—अनन्नास, कौतुलसंज्ञक। हिन्दी—अनन्नास। मराठी—अन्नस। गुजराती—अनंनास। लेटिन—Ananas Sativia (अननास सेटिविया)।

वर्णन—यह वृक्ष आजकल हिन्दुस्तान के दक्षिणी और पूर्वी प्रान्तों में बहुत पैदा होता है। पहिले यह हिन्दुस्थान में पैदा नहीं होता था। इसके पत्ते केवड़े के पत्तों के समान होते हैं। पौधे के बीज में से बालियां निकलती हैं, जिस पर फल उत्पन्न होते हैं। फल के ऊपर कटे हुए आकार के छिलके होते हैं फल का रङ्ग कुछ पीला या ललाई लिए होता है। इसकी जड़ गुवार के पाठे की जड़ के समान होती है। इसके कच्चे फल का स्वाद खट्टा और पके हुए का खटमीठा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—निघण्टुरत्नाकर के मतानुसार कच्चा अनन्नास रुचिकारक, हृदय को हितकारी, भारी, कफ-पित्तकारक, रुचिवर्धक तथा श्रमनाशक है। इसका पका फल स्वादिष्ट, पित्तकारक तथा रस-विकार और आतपविकार को दूर करता है।

यूनानी मत—मखजनूल अदविया के लेखक मीर महम्मदहुसेन के मतानुसार अनन्नास दो प्रकार का होता है। पहला साधारण, दूसरा क्षुद्र जो अत्यन्त मधुर और स्वादिष्ट होता है। इसकी प्रकृति दूसरे दर्जे में सर्द और तर तथा किसी-किसी के मत से पहिले दर्जे में गर्म और दूसरे दर्जे में तर है। यह स्वर यन्त्र और श्वासोछ्वास-सम्बन्धी अङ्गों को नुकसान पहुँचाता है। अनन्नास का प्रतिनिधि सेव है।

अनन्नास पित्त की तेजी तथा यकृत् और आमाशय की तेजी को नष्ट करनेवाला, हृदय को बल देने वाला, प्रसन्नता पैदा करने वाला और मूर्च्छा को दूर करनेवाला है। यह मस्तिष्क और आमाशय को ताकत देने वाला और निर्बल तथा शीत प्रकृति को बल देने वाला होता है।

डा० देसाई के मतानुसार इसके कच्चे लेकिन पकने की मुराद पर आये हुए फल गर्भाशय के लिए उत्तेजक होते हैं। इन फलों की छाल और बीजों को निकाल कर थोड़े सेंधे नमक के साथ कूटकर देने से गर्भाशय का संकोचन होता है, इससे दस्त होते हैं और करीब दस-बारह घण्टे में गर्भाशय से रक्त बहने लगता है और बारह घण्टे के बाद गर्भपात हो जाता है। इस औषधि से विशेष रक्त नहीं बहता है। गर्भावस्था में प्रथम दो-तीन महीने के गर्भ में इस औषधि से गर्भपात हो जाने के उदाहरण मिलते हैं इसलिए गर्भवती स्त्रियों को इससे बचना चाहिये। मधुमेह में यह फल लाभदायक होता है।

मेजर वसु और डा० कीर्तिकर के मतानुसार इसके पत्तों का ताजा रस एक उत्तम कृमिनाशक औषधि मानी गई है और इसके फलों का रस शीतादि रोगों को नष्ट करने वाला माना गया है। कम्बोडिया में इसके फल और इसके वृक्ष की जड़ें मूत्रनिस्सारक मानी जाती हैं। इसका इस्तेमाल सुजाक और मूत्रकृच्छ्र की बीमारी में भी किया जाता है। गुरदे की पथरी में भी यह उपयोगी माना गया है। कहीं-कहीं पर इसके कच्चे फल को काटकर उबालते हैं और मूत्रेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारी के अन्दर पीने के काम में लेते हैं।

डा० चोपड़ा के मतानुसार इसके ताजे फलों का रस शक्कर के साथ मिलाकर कृमिनाशक और दस्तावर औषधि के रूप में दिया जाता है। इसके पत्ते कृमिनाशक हैं और फल एक प्रकार की गर्भस्रावक औषधि है।

प्रयोग—आंतों के रोग—इसके पत्तों का रस पिलाने से आंतों के कीड़े मरते हैं।

हिचकी—इसके पत्तों के रस को शक्कर के साथ पिलाने से हिचकी बन्द होती है।

पेट की जलन—इसके पके फल का रस पिलाने से ज्वर से उत्पन्न हुई पेट की जलन शान्त होती है।

मूत्रवृद्धि—इसके फल के रस में मिश्री मिलाकर पीने से मूत्रवृद्धि होती है और चित्त प्रसन्न हो जाता है।

मासिक धर्म—इसके पत्तों का रस पिलाने से असमय में रुका हुआ मासिक धर्म फिर से शुरू होता है।

पित्तोन्माद—इसके एक भाग रस में दो भाग बूरा मिलाकर पिलाने से पित्तोन्माद मिटता है।

कृमिरोग—इसके पत्तों के सफेद भाग को मिश्री के ताजे रस के साथ पिलाने से कृमि रोग मिटता है और साफ दस्त आता है।

अनार

नाम—संस्कृत—दाडिम। हिन्दी—अनार। मराठी—डालिंब। गुजराती—दाडम। बंगला—दाड़िम। करनाटकी—दारलिव। तेलंगी—डानिबचेट्टु। तामील—मादलई चेट्टि। फारसी—अनार। अरबी—रूमान हामिज। लेटिन—Punica Granatum (प्यूनिका ग्रेनेटम)

वर्णन—अनार का वृक्ष प्रायः सर्वत्र बगीचों में होता है। इसे प्रायः सभी लोग जानते हैं, इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—भावप्रकाश के मतानुसार अनार तीन प्रकार का होता है। एक मीठा, दूसरा खटमीठा, तीसरा केवल खटटा। मीठा अनार—त्रिदोषनाशक, तृषा, दाह, ज्वर, हृदय रोग, कण्ठ रोग और मुख रोग को दूर करनेवाला, तृप्तिकारक, वीर्यवर्द्धक, हलका, किंचित् कसेला, मलरोधक, स्निग्ध, मेधाजनक और बलवर्द्धक है। खट-मीठा अनार—दीपन, रुचिकारक, किंचित् पित्तकारक और हल्का है। खट्टा अनार—पित्तकारक, खट्टा तथा वात और कफ नाशक है।

आयुर्वेद के मतानुसार इसकी छाल और जड़ वायुनलियों के प्रदाह में उपयोगी तथा अतिसार को रोकने वाली और कृमिनाशक है। इसके फूल नाक से बहने वाले खून में बहुत लाभदायक हैं। इसका कच्चा फल पौष्टिक, पाचक, क्षुधावर्द्धक, पित्तकारक और वमन को रोकने वाला है। इसका पका हुआ फल पौष्टिक, आंतों को सिकोड़ने वाला, कामोद्दीपक, पित्तनाशक, और त्रिदोष को नाश करने वाला है। प्याज, शरीर की जलन, बुखार, हृदय रोग, गले की बीमारियां और मुख की सूजन में भी इसका पका फल उपयोगी है। इसके फल का छिलका कृमिनाशक, रक्तातिसार और खांसी में लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी चिकित्सा के मतानुसार मीठा अनार पहले दर्जे में सर्द और तर है। खट्टा अनार दूसरे दर्जे में सर्द और रूक्ष है। खट मीठा अनार, पहिले दर्जे में सर्द और तर है। अनार के बीज पहले दर्जे में सर्द और तर हैं।

मीठा अनार—खून को पैदा करने वाला, रसक्रिया को दुरुस्त करनेवाला, मूत्रानिस्सारक, पेट को मुलायम करने वाला, यकृत् को शांति देने वाला, कामोद्दीपक तथा कामेंद्रियों को बलप्रदान करने वाला है।

खट्टा अनार—छाती की जलन तथा आमाशय और यकृत् की गर्मी को शांत करने वाला तथा खून के प्रकोप, ज्वरजन्य अतिसार और वमन में लाभदायक है।

खट-मीठा अनार—पैत्तिक वमन, अतिसार और खुजली में लाभ पहुँचाने वाला, आमाशय को बलप्रदान करने वाला व हिचकी को नष्ट करने वाला है।

सब तरह के अनार—मूर्च्छा में लाभ पहुँचाने वाले, हृदय को बल देने वाले और खांसी को नष्ट करने वाले होते हैं। बेदाना अनार सब अनारों में उत्तम होता है।

उपर्युक्त वर्णन से मालूम होता है कि अनार के अन्दर हृदय को बल देने की और कृमियों को नष्ट करने की अच्छी शक्ति है। विशेषकर पेट के अन्दर चपटी जाति (Tape Worm) के कीड़े पड़ते हैं, उनको नष्ट करने में अनार बहुत अक्सीर वस्तु है। ब्रिग्रेडियर सर जयन्सी-जाइंट एम० डी० का कथन है कि अनार की जड़ की छाल के समान कृमियों को नष्ट करने वाली दूसरी कोई दवा नहीं है। इसका उपयोग करने की तरकीब यह हैः—

अनार की जड़ की छाल ५ तोला लेकर २।। सेर पानी में २४ घण्टे तक भिगोना चाहिये। उसके बाद मल-छानकर उबालना चाहिये, जब सवा सेर पानी रह जाय तब उसके तीन भाग करके दो-दो घण्टे में एक-एक भाग रोगी को भूखे पेट पिलाना चाहिये, उस रोज रोगी को कुछ भी खाने के लिये नहीं देना चाहिये। दूसरे दिन

प्रातःकाल एरंडी के तेल का जुलाब देना चाहिये। जिससे तमाम टेप वर्म्स मरी हुई हालत में सही सलामत ढंग से निकल जाते हैं। इन कृमियों को नष्ट करने में जहाँ अन्य औषधियां निष्फल हो जाती हैं, वहाँ यह औषधि कभी निष्फल नहीं जाती।

कर्नल चोपड़ा का कथन है कि यह फल बहुत उपयोगी है। कृमि उपचार के लिये इसकी उपयोगिता अमूल्य मानी गई है। टेप वर्म्स के नाश के लिये इसकी बहुत तारीफ की गई है। इसके देने की तरकीब यह है कि इसकी जड़ का ताजा छिलका लेकर १ छटांक १। सेर पानी में औटाया जाय, जब आधा सेर पानी रह जाय तब ठण्डा पानी करके छान लिया जाय। इसमें से एक छटांक भर पानी प्रातःकाल ही खाली पेट दिया जाय। शेष पानी की चार खुराक करके हरएक खुराक आधे २ घंटे के बाद दे दी जाय। उसके पश्चात् एरण्डी के तेल का जुलाब दे दिया जाय। इससे आँतें साफ होकर पेट के सब कीड़े बाहर निकल पड़ते हैं।

डाक्टर नाडकरनी का कथन है कि दाडिम के फूल का रस और दूर्वा का रस समान भाग लेकर सुंघाने से बहुत लाभ होता हुआ दिखलाई दिया है।

बङ्गाल के सिविल सर्जन डाक्टर वसु लिखते हैं कि नक्सीर के कई एक केसों में अनार के फूलों का रस सुँघाने से नाक के अन्दर से गिरने वाला खून बन्द हो जाता है।

उपयोग—सूखा रोग—यह रोग प्रायः बच्चों को होता है। रोग होने पर बच्चा दिन-ब-दिन सूखता चला जाता है। उसका पेट कठिन हो जाता है। इस रोग में अनार की जड़ की छाल का क्वाथ (काढ़ा) बनाकर देने से बहुत लाभ होता हुआ दिखाई दिया, यह काढ़ा बड़े मनुष्यों की कमजोरी, यकृत् की वृद्धि, जीर्ण ज्वर इत्यादि रोगों में भी लाभ पहुँचाता है।

कामला—अनार का रस ६-७ तोले और जरिश्क ६ माशे मिलाकर दोनों टाइम पिलाने से कामला रोगी को लाभ पहुँचता है।

खाँसी—अनार के फल के छिलके को मुँह में रखकर उसका रस चूसने से खांसी में लाभ होता है।

खूनी अतिसार—कुटज और अनार के वृक्ष की छाल इन दोनों का काढ़ा बनाकर शहद के साथ देने से दुर्दमनीय अतिसार तथा रक्तातिसार में फौरन लाभ पहुँचता है।

बवासीर—अनार के वृक्ष की छाल के काढ़े में सोंठ का चूर्ण मिलाकर पिलाने से बवासीर से बहता हुआ खून बन्द होता है।

उन्माद और हिस्टिरिया—अनार के पत्ते १ तोला, गुलाब के ताजे फूल १ तोला, दोनों को आधा सेर पानी में औटाकर, आधा पाव पानी शेष रहने पर उसको छानकर १ तोला गरम-गरम गाय का घी मिलाकर सुबह-शाम पिलाने से हिस्टिरिया और उन्माद में लाभ होता है।

स्त्री-प्रदर—अनार की जड़ की छाल ५ रुपये भर लेकर एक सेर पानी में उबालना चाहिये। जब आधा सेर पानी शेष रह जाय तब उसमें ३ माशे फिटकरी डालकर उस पानी की पिचकारी लेने से स्त्रियों के श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, गर्भाशय के व्रण इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचता है।

कंठमाला भगन्दर इत्यादि—अनार के पत्तों का रस १ सेर, सत्यानाशी का रस १ सेर, गोमूत्र १ सेर, काले तिलों का तेल २ सेर, अनार के पत्तों की लुग्दी आधा सेर, सब को मिलाकर आग पर चढ़ाना चाहिये। जब सब द्रव्य जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उतारकर ठण्डा कर लें, इस तेल के लगाने से कंठमाला, भगन्दर, कोढ़ के जखम, दाद, चेहरे के काले धब्बे, कील, झांई इत्यादि रोग दूर होते हैं। इसको दिन में तीन बार लगाने से हाथी पांव (श्लीपद) में भी लाभ पहुँचता है।

सिर की गंज—अनार के पत्तों को पानी में पीसकर दिन में दो बार मालिश करने से गंज दूर होती है।

बहरापन—अनार के पत्तों का रस १ सेर, बिल्व पत्रों का रस १ सेर, गाय का घी १ सेर तीनों वस्तुओं को मिलाकर हलकी आंच पर पकाना चाहिए। जब घी मात्र शेष रह जाय तब उतारकर ठंडा कर लेना चाहिए। इसमें से दो तोला घी, पाव भर गाय के दूध के साथ मिश्री मिलाकर पीने से कानों का बहिरापन दूर होता है।

जहरी जानवरों का डंक—अनार के हरे पत्तों को पीसकर भिड़, बर्र, ततैया, मधुमक्खी, बिच्छू इत्यादि जहरी जानवरों के डंक पर मसलने से लाभ होता है।

बनावटें—बृहत् दाडिमाष्टक चूर्ण—अनारदाना ३२ तोले, मिश्री ३२ तोले, पीपर ४ तोले, पीपलामूल ४ तोले, अजमोद ४ तोले, काली मिर्च ४ तोले, धनियां ४ तोले, जीरा ४ तोले, सोंठ ४ तोले, बंशलोचन १ तोला, दालचीनी ८ माशे, तेजपात ८ माशे, इलायची के बीज ८ माशे, नागकेशर ८ माशे, इन सब वस्तुओं को कूट पीसकर चूर्ण कर लेना चाहिए। इस चूर्ण की तीन माशे की खुराक दिन में दो-तीन बार लेने से अतिसार, क्षय, गोला, संग्रहणी, मन्दाग्नि, खांसी, गले के रोग इत्यादि में लाभ पहुँचता है।

दाडिम पुटपाक—एक अनार को साबित लेकर उस पर वड़ के पत्ते लपेटकर डोरे से बांध दो। फिर उस-पर कपड़मिट्टी कर सुखा लो, जब सूख जाय तब उसे जंगली कंडों की आग में पका लो। पकने पर ठण्डा कर उसकी मिट्टी दूर कर लो। फिर इस अनार को कपड़े में रखकर जोर से दबाकर रस निकाल लो। इस रस में शहद मिला कर तीन तोले तक की खुराक में लेने से अतिसार, आम के दस्त, खूनी दस्त इत्यादि रोग आराम होते हैं।

शर्बत अनार—पानी के अन्दर १ सेर चीनी डालकर उसकी चासनी कर लो, उसके बाद उसमें आधा सेर अनार का रस डालकर उसकी एक तार की चासनी करके बोतलों में भर दो। इस शर्बत को २ तोले से ढाई तोले तक की मात्रा में लेने से दिल की जलन, आमाशय की जलन, घबराहट, मूर्च्छा, प्यास इत्यादि शिकायतें दूर होती हैं। यह शर्बत हृदय को बलकारी है।

अनास-फल

नाम—हिन्दी—अनासफल। बंगाली—बांदियान। मराठी—अनासभल। फारसी—बादियाने खताई, राजियामहे खताई। तैलगू—अनासा पुब्बू। लेटिन—Illicium Religisum.

पहिचान—यह एक प्रकार का झाड़ीदार वृक्ष होता है। इसकी शाखायें नीचे से ही फूटती हैं। इसके पत्ते नरम और दोनों तरफ से नोंकदार होते हैं। इसके फूल में अठारह के करीब पंखड़ियां होती हैं। यह हिमालय में चार हजार से पांच हजार फीट तक की ऊँचाई पर होता है।

गुण—इसके बीज सुगन्धित, उत्तेजक और पेट के आफरे को दूर करनेवाले होते हैं। इनको परिस्रुत करने से इनमें से सौंफ की तरह हर प्रकार का तैल प्राप्त होता है। इसी से यह औषधि सौंफ के स्थान में व्यवहृत होती है।

अनन्तमूल

नाम—संस्कृत—उत्पलसारिवा। हिन्दी—गौरीसर, अनन्तमूल। बङ्गाली—अनन्तमूल। मराठी—ऊपरसाल। गुजराती—उपलसरी, काबरबेल, धूरीबेल, कालीबेल। लेटिन—Hemi Desmus Indicus (हेमी डेसमस इण्डिकस)। अंग्रेजी—Indian Sarsaparilla. (इण्डियन सार्सापरीला)।

वर्णन—यह औषधि उत्तर हिन्दुस्तान में बांदा से अवध और सिक्किम तक और दक्षिण में ट्रावनकोर और सिलोन तक पहाड़ी प्रदेशों में पैदा होती है। इसकी लतायें गहरे लाल रंग की होती हैं। पत्ते तीन-चार अंगुल लम्बे जामुन के पत्तों के समान होते हैं। इन पत्तों पर सफेद रंग की लकीरें होती हैं। इन पत्तों को तोड़ने से उनमें दूध निकलता है। इसके फूल छोटे और सफेद रङ्ग के होते हैं। उनके ऊपर फलियां लगती हैं और फलियां फटने पर उनमें से रूई निकलती है। इसकी जड़ लम्बी, गोल और टेढ़ी-मेढ़ी रहती है। जड़ की ऊपर की छाल का रंग लाल होता है। जड़ के अन्दर कपूरकचरी के समान मनोहर सुगन्ध आती है। जिन जड़ों के अन्दर सुगन्ध आती हो, वे ही जड़ें औषधि से काम में लेने योग्य होती हैं। इसकी जड़ में एक उड़नेवाला और सुगन्धित द्रव्य रहता है। उसी द्रव्य के ऊपर इसके सारे गुण अवलम्बित हैं। अनन्तमूल दो प्रकार की होती है, एक सफेद और एक काली, सफेद को गौरीसर और काली को कालीसर कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—निघण्टुरत्नाकर के मतानुसार अनन्तमूल शीतल, मधुर, शुक्रजनक,

भारी, स्निग्ध, कड़वी, सुगन्धित तथा कोढ़, कंडू, ज्वर, देह की दुर्गन्ध, मन्दाग्नि, श्वास, खांसी, अरुचि, आम, त्रिदोष, विष, रुधिरविकार, प्रदररोग, कफ, अतिसार, तृषा, दाह, रक्तपित्त और वात को हरनेवाली है।

अनन्तमूल मूत्रविरेचक, पसीना लानेवाली, क्षुधावर्द्धक, धातुपरिवर्त्तक, बलकारक, रक्तशोधक और चर्म रोग नाशक होती है। इसका मूत्रविरेचक धर्म बहुत स्पष्ट और उत्कृष्ट होता है। इसकी फांट बनाकर देने से पेशाब की मात्रा तिगुनी-चौगुनी हो जाती है और उससे मूत्रपिण्ड को कुछ भी वेदना नहीं होती। इसका पसीना लाने का धर्म साधारण होने पर भी उपयोगी होता है। इसका जीवन-विनिमय क्रिया को उत्तेजन देने का धर्म बहुत मूल्यवान् होता है और इसका क्षुधावर्द्धक धर्म मध्यम दर्जे का होता है। गिलोय के साथ इसको मिलाकर देने से इसके गुण बढ़ जाते हैं।

मूत्रपिण्ड की सूजन और मूत्रपिण्ड के संकोचन में अनन्तमूल की फांट बनाकर देने से बहुत लाभ होता है। ऐसे रोगों में मूत्र बहुत कम, गँदला और लाल रंग का होता है ऐसे रोग में अगर किसी विदेशी दवा से लाभ नहीं होता हो तो अनन्तमूल को गिलोय और जीरे के साथ देना चाहिये! इससे मूत्र मार्ग की सूजन और जलन दूर होती है और पेशाब साफ होता है।

सब प्रकार के रक्त रोग और चर्म रोगों में तथा उपदंश की दूसरी अवस्था में अनन्तमूल को गिलोय के साथ देने से बड़ा लाभ होता है। गण्डमाला में अनन्तमूल को वायबिडंग के साथ देना चाहिये।

क्षुधनाश और अपचन रोग में अनन्तमूल को देने से आमाशय की शक्ति बढ़ती है, रोगी को भूख लगती है और अन्न भली प्रकार पचता है।

शारीरिक कमजोरी, थकावट, वजन का कम होना और रक्त-दोष से होनेवाले पाण्डु रोग में अनन्तमूल को देने से अच्छा लाभ होता है। इससे शरीर की जीवन-विनिमय क्रिया सुधरती है, खाया हुआ अन्न भली प्रकार पचता है और शरीर में सञ्चित दोष सब मार्गों से बाहर निकल जाते हैं जिससे रोगी का रंग लाल हो जाता है और उसका वजन बढ़ता है।

बालकों के लिए यह वनस्पति अमृत के समान है। इसको वायबिडंग के साथ देने से मरणोन्मुख बच्चे भी नवजीवन पा जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पोषण शक्ति के क्षय में उपयोगी, रक्तशोधक, उपदंश व गठिया में हितकारक, सर्पदंश व वृश्चिकदंश में उपयोगी है।

आधुनिक खोजों से यह पता चला है कि यह औषधि रक्त के ऊपर अपना सीधा असर दिखलाती है और इसीलिये अंग्रेजी में इसे (Indian Sarsaparilla) इण्डियन सार्सापरिला के नाम से संबोधित किया गया है। डा० नाडकरनी (इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक) का कथन है कि :—

'Indian Sarsaparilla is said to be more useful than the American Sarsa root as an alterative tonic.'

अर्थात् रक्त की शुद्धि और धातु-परिवर्तन के लिए अनन्तमूल अमेरिकन सार्सापरिला की अपेक्षा विशेष उपयोगी कहा जाता है। रक्त के अतिरिक्त मूत्राशय, आमाशय और स्नायुमण्डल पर भी इस औषधि का अच्छा असर होता है। इसके बनाये हुये शीतल क्वाथ से मूत्राशय पर किसी प्रकार का खराब असर नहीं होते हुए मूत्र विरेचन (पेशाब का जुलाब) होकर साधारण तौर से तिगुना-चौगुना पेशाब उतरता है, पसीना होता है, भूख लगती है और रक्त की शुद्धि होती है।

कर्नल चोपड़ा का कहना है कि सार्सापरिला के अन्दर दो मुख्य अङ्ग हैं। पहला 'Enzyme' जो कि एक प्रकार का तैल है और दूसरा 'Saponin'। मगर इन दोनों तत्त्वों में उपदंश के विष को नाश करने का गुण नहीं पाया जाता।

बालकों के रोगों पर भी यह औषधि बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। वायबिडंग के साथ इस औषधि का सेवन करने से भयंकर 'सूखा' (Rickets) रोग में लाभ पहुँचता है।

प्रतिनिधि—इस औषधि की प्रतिनिधि उसबा है।

उपयोग—आंख की फूली—अनन्तमूल के पत्तों की राख करके उसको शहद के साथ आंजने से या इसकी जड़ को बासी पानी में घिसकर आंजने से आंख की फूली नष्ट हो जाती है।

सर्पदंश—अनन्तमूल की जड़ को घिसकर चावल के धोवन के साथ पिलाने से या उसको आँख में आँजने से सर्पदंश में लाभ होता है।

बवासीर—दूधेली के पत्ते के रस में अनन्तमूल की जड़ का चूर्ण एक चावल के बराबर देने से सात दिन में बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रावरोध—खांखरे के फूल का पानी बनाकर उस पानी में अनन्तमूल की जड़ घिसकर देने से रुका हुआ पेशाब होने लगता है।

पथरी रोग—इसकी जड़ के चूर्ण को गाय के दूध के साथ देने से पथरी और मूत्र की पीड़ा बन्द हो जाती है।

कंठमाला—अनन्तमूल का शीतल क्वाथ दिन में तीन बार ढाई-ढाई तोला पिलाने से कण्ठमाला, फोड़े, फुंसी और उपदंश सम्बन्धी बीमारियों में लाभ पहुंचता है।

मूत्र रोग—इसकी छोटी जड़ को केले के पत्ते में लपेटकर आग में भूनकर जीरे और शक्कर के साथ पीसकर घी में मिलाकर चटाने से वीर्य और मूत्र सम्बन्धी कई रोग मिटते हैं। इसी वस्तु को लेप के रूप में मूत्रेन्द्रिय पर लगाने से मूत्रेन्द्रिय की सूजन भी मिटती है।

जिन स्त्रियों को गर्मी की वजह से या और किसी कारण से गर्भपात होता हो या बालक जन्मते ही मर जाता हो, उस स्थिति में स्त्री के गर्भवती होते ही अनन्तमूल का शीतल कषाय देते रहने से गर्भपात होना बन्द हो जाता है तथा अत्यन्त निरोगी, हृष्ट-पुष्ट और गौरवर्ण बालक पैदा होता है।

दंत रोग—इसके पत्तों को पीसकर दांतों के नीचे दबाने से दंतरोग दूर होता है।

बनावटें—बालोपयोगी शर्बत—अनन्तमूल १० तोला, बायबिडंग १० तोला, दोनों औषधियों को पीसकर १ सेर पानी में जोश देकर जब डेढ़ पाव पानी शेष रहे तब छानकर उस पानी में १ सेर शक्कर का चूरा डालकर फिर आग पर चढ़ा देना चाहिए। जब एक तार की चाशनी हो जाय तब उसमें 'कैलशियम हायपो फासफेट' और 'हायपो फासफेट आफ सोडा' नामक दोनों अंग्रेजी दवायें छः-छः माशे डालकर अच्छी तरह से मिलाकर बोतल में भर देना चाहिये। यह दवा बालकों की उम्र के अनुसार २ माशे से ६ माशे तक दिन में ३-४ बार देने से बालकों का सूखा रोग नष्ट होता है तथा उनकी पाचनशक्ति बढ़कर उनका रक्त साफ होता है।

अनन्तमूलादि चूर्ण—अनन्तमूल १० तोला, शतावरी ५ तोला, चोपचीनी ५ तोला, रासना ५ तोला, मुलेठी २॥ तोला, हरड़ का चूर्ण २॥ तोला, वायबिडंग २ तोला, उपलेट १॥ तोला, लवंग ६ माशा, नागरमोथा ६ माशा, गिलोय का सत २॥ तोला इन सब चीजों को मिलाकर कूट-पीसकर, छानकर बोतल में भरकर रख देना चाहिए। इस चूर्ण में से तीन माशा चूर्ण सुबह-शाम लेकर ऊपर से दूध पीने से प्रमेह, जीर्ण ज्वर, कमजोरी, कब्जियत, मन्दाग्नि और रक्तविकार दूर होते हैं।

सार्सापरिला—अनन्तमूल २० तोला और मंजिष्ठादि क्वाथ का चूर्ण २० तोला लेकर ४ सेर पानी के अन्दर जोश देकर जब एक सेर पानी बाकी रहे तब उतार कर छान लेना चाहिए। उसके बाद उसको फिर से उबालकर आधा सेर पानी बाकी रहे तब उसमें एक्स्ट्रेक्ट सार्सापरिला लिक्विड ५ तोला, रेक्टीफाइड स्पिरिट ५ तोला और पोटास आयोडाइड ५॥ माशा मिलाकर बोतल में भर लेना चाहिए इस सार्सापरिला में से ३ माशे से ६ माशे तक की खुराक दिन में तीन बार पानी के साथ लेने से रक्तविकार, खाज, खुजली तथा गर्मी के उपद्रव मिटते हैं।

रक्तशोधक अरिष्ट—अनन्तमूल, उसबे की जड़, खैर की छाल, गोरखमुण्डी, इन्द्रायण की जड़—ये सब वस्तुयें आधा २ पाव, मजीठ, नीम गिलोय, उन्नाव, सरपुंखे की जड़, चिरायता, सिरस की अन्तर्छाल, चोबचीनी, गुलाब के फूल, बावची के बीज, ये सब चीजें छटाँक २ भर लेकर सबको कूटकर सोलह सेर पानी में औटा लें, जब औटते ४ सेर पानी शेष रह जाय, तब उतारकर छान लें, पश्चात् इन्द्रायण की जड़ सवा तोला तथा नीम के फूल, बरियारी, खैरसार, मेंहदी, कूठ, कासनी की जड़, गुलबनफशा, ये सब औषधियां साढ़े सात २ माशे, धावड़ी के फूल ८ तोला और कालीदाख पांच तोला इन सबका चूर्ण करके उपर्युक्त क्वाथ में अच्छी तरह मिलावें। उसके बाद उसमें ५० तोला शहद और सवा सेर गुड़ डालकर खूब मिलाया जाय, जब सब चीजें एक जीव हो जायँ, तब उसको चीनी की बरनियों में भरकर, मुँह बन्द करके एक मास तक पड़ी रहने दें। उसके बाद छानकर बोतल में भर लें।

इस औषधि को एक तोले से ढाई तोले तक भोजन के पश्चात् दोनों टाइम पानी के साथ लेने से हर तरह का रक्तविकार, कोढ़, खुजली, उपदंश के विकार, फोड़े फुन्सी आदि रोग नष्ट होते हैं।

अपराजिता

नाम—संस्कृत—विष्णुक्रान्ता, अपराजिता, गोकर्णिका, गिरिकर्णिका। हिन्दी—कोयल, कालीजीर। बङ्गाली—अपराजिता। मराठी—काजली, गोकर्णी। गुजराती—गरणी। मारवाड़ी—कोयली का बीज। लेटिन—Clitoria Ternatia (क्लिटोरिया टरनेटिआ)। फारसी—अशखीस। अरबी—माजरीयून।

वर्णन—यह बहुवर्षजीवी एक वानस्पतिक लता है। यह दो प्रकार की होती है। एक सफेद दूसरी नीली। नीले फूलों की बेल भी दो प्रकार की होती है एक के इकहरे और दूसरी के दोहरे फूल लगते हैं। इसके पत्ते बनमूँग के पत्तों के समान पर उन से कुछ बड़े और एक २ सींक पर सात २ लगते हैं। इसके फूल का आकार गाय के कानों के समान होता है। इसीसे इसको गोकर्णी भी कहते हैं। इसकी कुछ बेलों पर नीले रङ्ग के सुन्दर फूल आते हैं। जिससे इसको विष्णुक्रान्ता भी कहते हैं। इसके फूल दो इञ्च लम्बे और डेढ़ इञ्च चौड़े होते हैं। इसके फूल बहुत सुन्दर और आकर्षक होते हैं और इसीसे अनेक धनी और शौकीन लोग अपनी पुष्पवाटिका में वितान बनाकर उस पर इस बेल को छाते हैं। इसके ऊपर मटर की फलियों के समान चपटी फलियां लगती हैं, जिसमें से उड़द के समान काले बीज निकलते हैं।

आजकल के कुछ वैद्य कालादाना और अपराजिता के बीजों को एक ही वस्तु मानते हैं। तामील भाषा के अन्दर अपराजिता और कालादाना दोनों औषधियों के लिये एक ही नाम का प्रयोग हुआ है। मगर आयुर्वेदीय कोष के रचयिता के मतानुसार ये दोनों अलग २ वस्तुएं हैं। उनके मतानुसार कालेदाने का गात्र एवं वर्ण रूद्द और कृष्ण होता है। इसके विपरीत अपराजिता के बीजों का रंग कृष्ण और गात्र चिकना है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद मत के अनुसार सफेद कोयल, चरपरी, शीतल, कड़वी, बुद्धिदायक, नेत्रों के लिये हितकारी, कसैली, दस्तावर, विषनाशक तथा त्रिदोष, मस्तकशूल, दाह, कोढ़, शूल, आम, पित्तरोग, सूजन, कृमि, व्रण, कफ, ग्रहपीड़ा, मस्तकरोग, और सर्प के विष को नष्ट करती है।

नीली कोयल कड़वी, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, शीतवीर्य तथा वातपित्त, ज्वर, दाह भ्रम और पिशाचबाधा, रक्तातिसार, उन्माद, मद अत्यन्त खांसी, श्वास, कफ, कोढ़, जन्तु और क्षयरोग को दूर करती है।

सफेद फूल वाली कोयल की जड़ स्वाद में कड़वी, ठंडी, विरेचक, मूत्रनिस्सारक, कृमिनाशक और विषनिवारक होती है। यह दिमाग को पुष्ट करती है, नेत्र रोग में लाभ पहुँचाती है। आँखों की पलकों के फोड़ों को नष्ट करती है तथा क्षयरोगजन्य ग्रन्थियां, श्लीपद, सिरदर्द, त्रिदोष, धवलरोग, जलन, पित्त, सूजन, फोड़ा, कफ तथा सर्पदंश में उपयोगी है।

नीले फूल वाली—इसमें भी सफेद फूल वाली जाति के सभी गुण मौजूद हैं। इसके अलावा यह कामोद्दीपक और पेचिश को ठीक करने वाली है। भयंकर वायुनलियों के प्रदाह में, श्वास में, जलोदर में तथा पेट के बढ़ जाने में भी यह लाभ पहुँचाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसकी जड़ मूत्रनिस्सारक और विरेचक है। यह उदरशोथ (पेट की सूजन) में भी उपयोगी है तथा ज्वर में भी लाभ पहुँचाती है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डॉक्टर नॉडकरनी के मतानुसार यह औषधि दृष्टिनैर्बल्य, कंठक्षत, श्लेष्मविकार, अर्बुद तथा शोथ इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाती है। उनका कथन है कि अपराजिता के बीज को भून कर १० से लेकर ३० रत्ती की मात्रा तक देने से जलोदर, प्लीहा व यकृत् की वृद्धि में बहुत लाभ पहुँचता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार अपराजिता की जड़ मलशोधक तथा मूत्रल है और सर्पविष में प्रयोग की जाती है।

मटेरिया मेडिका ऑफ् इण्डिया के लेखक डॉक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार अपराजिता की जड़ स्निग्ध, मूत्रकारक एवं मृदुरेचक है और पुरानी खांसी, जलोदर, प्लीहा, यकृत् की वृद्धि और क्रप (Croup.) खांसी में व्यवहृत होती है।

डॉक्टर ए० सी० मुकर्जी के मतानुसार कर्णशूल (कानों की पीड़ा) में विशेषतया उस अवस्था में जबकि कान के आसपास की ग्रन्थियां सूज गई हों, कान के चारों ओर अपराजिता के पत्ते के रस में सेन्धा निमक मिलाकर गरम-गरम लेप करने से लाभ होता है।

हिन्दी आयुर्वेदीय कोष के लेखकों के मतानुसार अपराजिता के पत्तों की लुग्धी नरकहिया (Whit Iow) फोड़े पर बांधने और निरन्तर जल में तर रखने से बहुत लाभ होता है।

सर्प विष—जङ्गलनी जड़ी-बूँटी नामक गुजराती ग्रन्थ के लेखक के मतानुसार इस औषधि में सब से अधिक चमत्कारिक गुण यह है कि सर्पविष को उतारने के लिये यह एक उत्तम दवा है। इसकी जड़ का चूर्ण एक तोला लेकर घी के साथ मिलाकर पिलाने से चमड़ी के अन्दर पहुँचा हुआ सांप का जहर दूर होता है। दूध के साथ पिलाने से खून तक पहुँचा हुआ सर्पविष नष्ट होता है। कूठ के चूर्ण के साथ पिलाने से मांस में व्याप्त हुआ सर्पविष, हल्दी के चूर्ण के साथ खिलाने से हड्डी में पहुँचा हुआ सर्पविष, असगन्ध के चूर्ण के साथ खिलाने से चर्बी में फैला हुआ सर्पविष और चंडाल कंद या ईसरमूल कंद के चूर्ण के साथ देने से ठेठ वीर्य तक पहुँचा हुआ सर्पविष नष्ट होता है, मगर यह गुण सफेद फूल की अपराजिता में ही विशेष रूप से रहता है। ऐसा वृद्ध वैद्यों का कथन है।

उपर्युक्त कथन की मान्यता हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी पाई जाती है। सुश्रुत संहिता के अन्दर दर्वीकर सर्प की चिकित्सा में और द्रव्यों के साथ २ अपराजिता का प्रयोग भी दिया हुआ है। चरक संहिता में भी दर्वीकर सर्प के काटने पर निर्गुण्डी की जड़ की छाल और अपराजिता की जड़ की छाल को समान भाग लेकर जल के साथ पीस कर पिलाने का आदेश किया गया है। अथर्ववेद में भी इस औषधि को चितकबरे, कौड़िये और वज नामक सांप और बिच्छू के विष को नाश करने वाली माना है। लेकिन केस और महस्कर इस औषधि के सम्बन्ध में भी निराश हैं और वे इस औषधि को भी सर्प तथा बिच्छू के विष में निरुपयोगी मानते हैं।

उपर्युक्त अवतरणों से मालूम होता है कि यह औषधि आमाशय पर असर पहुँचा कर विरेचन करने में सहायता देती है तथा मूत्रनिस्सारक भी है, यकृत् के ऊपर भी यह प्रभाव डालती है और सांप तथा बिच्छू के जहर को दूर करने में भी यह प्रभावशाली मानी जाती है।

उपयोग—जलोदर-अपराजिता की जड़, शंखपुष्पी की जड़, दन्तीमूल और नील की जड़ चारों औषधियों को छः २ माशे लेकर पानी के साथ पीसकर इनका रस निचोड़ कर चार तोला गोमूत्र के साथ पिलाने से जलरेचक असर होकर जलोदर आराम होता है।

इसी प्रकार इसके बीजों को भूनकर उसका चूर्ण १॥ माशे से ३ माशे तक देने से प्लीहा, यकृत् की वृद्धि तथा जलोदर में चमत्कारपूर्ण लाभ होता है।

भूतोन्माद—श्वेत अपराजिता की जड़ की छाल के स्वरस को चावलों की धोवन और गौ के घृत के साथ पिलाने से भूतोन्माद का नाश होता है।

सूजन—अपराजिता की जड़ की छाल को जल में घोट कर पिलाने से सूजन में लाभ होता है।

परिणामशूल—नीली अपराजिता की जड़ की छाल को १॥ से ३ माशे तक शहद और गौ के घृत के साथ एक सप्ताह तक सेवन कराने से परिणाम शूल नष्ट होता है।

नोट—शहद और घी समान भाग लेने से जहरीले हो जाते हैं, इस लिए इन दोनों वस्तुओं को मिलाते समय इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि दोनों चीजें समान भाग न हों।

पुरानी खांसी—अपराजिता की जड़ का स्वरस २ तोला ठण्डे दूध के साथ पिलाने से पुरानी खांसी में लाभ होता है।

आधाशीशी—इसके बीजों का रस नाक में टपकाने से आधाशीशी में फायदा होता है।

गर्भपात—सफेद अपराजिता की छाल को दूध में पीसकर शहद मिलाकर पीने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है।

कमलारोग—इसकी जड़ के चूर्ण को छाछ के साथ पीने से कमला रोग में लाभ होता है।

हिचकी—इसके बीजों को पीसकर चिलम में रख कर धूम्रपान करने से हिचकी मिटती है।

अण्ड वृद्धि—इसके बीजों को पीसकर गरम कर लेप करने से अण्डकोष की सूजन बिखर जाती है।

गलगंड—सफेद अपराजिता की जड़ को पीसकर घी के साथ सेवन करने से गलगंड में फायदा होता है।

अपामार्ग

नाम—संस्कृत—अपामार्ग। हिन्दी—चिरचिरा, लटजीरा, औंगा। गुजराती—अघेढ़ो। मराठी-अघाढ़ा। बङ्गाली—आपांग। मारवाड़ी—आंधीझाड़ो। सिन्धी—मर्जिका। कर्नाटकी—उत्तरेणी। तेलंगी—दुच्चेणीके। लेटिन—Achyranthus Aspera. (एचीरेन्थस एस्पेरा)। फारसी—खारेवाजूं। अरबी—अत्कूमह।

वर्णन—अपामार्ग का छोटा झाड़ (क्षुप) होता है, जो विशेष कर बरसात में स्थान २ पर पैदा होते हुए देखा जाता है। कहीं २ पर यह बारह मास भी होता है। इसकी ऊंचाई एक से तीन हाथ तक होती है, पत्ते लम्बाई लिए हुए कुछ गोल और नोकदार होते हैं। पत्तों के बीच में से एक मंजरी निकलती है। उसमें सूक्ष्म और कांटे युक्त बीज होते हैं।

अपामार्ग दो प्रकार का होता है। एक लाल दूसरा सफेद। लाल अपामार्ग के डंठल का रंग लाल होता है और उसके ऊपर जो बीज लगते हैं, उनके ऊपर कांटे के समान वस्तु होती है। (दूसरी जात के) सफेद अपामार्ग के डंठल और पत्तों का रंग हरा कुछ सफेदी लिये हुए होता है और उसके ऊपर जौ के समान लम्बे बीज आते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के अंदर अपामार्ग की गणना अत्यन्त प्रभावशाली दिव्य औषधियों में की गई है। वैदिकयुग से ही इस औषधि की जानकारी यहां के लोगों को थी। शुक्ल यजुर्वेद में नमुचि के कथानक में लिखा है कि नमुचि को वरदान था कि उसे किसी ठोस या द्रव पदार्थ से दिन और रात्रि में कोई न मार सकेगा, तब इन्द्र ने कुछ ऐसे फेन एकत्रित किये कि जो न तो द्रव्य थे न ठोस और उसे दिन और रात्रि के मध्यकालं में मार डाला, उस दैत्य के सिर से अपामार्ग का पौधा हुआ, जिसकी सहायता से इन्द्र सम्पूर्ण दैत्यों को मार डालने में समर्थ हुआ। अथर्ववेद के ७० सूक्त के चौथे कांड में अपामार्ग की स्तुति की गई है।

श्लोक—क्षुधामारं तृषामारं, मगोतामनपत्यताम्। अमामार्ग त्वया वयं, सर्वं तदपमृज्यहे ॥ १ ॥
तृषामारं क्षुधामारं, मारमथो अक्षिपराजयम्। अपामार्ग त्वया वयं, सर्वं तदपमृज्महे ॥ २ ॥

अर्थात्—हे! अपामार्ग तू हमारे अत्यन्त भूख लगने के रोग को, प्यास लगने के रोग को, इन्द्रिय शक्ति की कमजोरियों को और सन्तान न होने के रोग को दूर कर।

हे! अपामार्ग तू हमारी तृषा और भूख को नष्ट कर और कामशक्ति की हीनता और आँख की शक्ति की हीनता को दूर कर।

राजनिघण्टु के मतानुसार अपामार्ग कडुआ, गरम, चरपरा, कफनाशक तथा कण्डू, उदररोग, आंव और रुधिरविकार को दूर करता है। इसके अतिरिक्त यह वमनकारक व मलरोधक है।

भावप्रकाश के मतानुसार यह दस्तावर, तीक्ष्ण, दीपन, कडुआ, गरम, चरपरा, पाचक, रुचिकारक तथा वमन, कफ, मेदरोग, वात, हृदयरोग, आध्मान, बवासीर, कंडू, शूल, उदररोग और पाचनशक्ति की हीनता को दूर करता है।

शोढल के मतानुसार अपामार्ग अग्निकारक, तीक्ष्ण, नास लेने (सूंघने) से सिर के कीड़ों को नष्ट करने वाला, वमनकारक, रक्त-विकारनाशक और रक्तातिसार-निवारक है। यह औषधि नास व वमन कार्य में अत्यन्त प्रभावशाली है। तथा दाद, खुजली और कफ को नाश करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पौधा पहिले दर्जे में शीतल और रूक्ष है तथा कामोद्दीपक, हर्षोत्पादक, वीर्यवर्द्धक, संकोचक, मूत्रल और धातुपरिवर्तक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस पौधे के फूल के डण्ठल और पौधे के बीजों का चूर्ण सांप व अन्य जहरीले जीवों के डंक पर लगाने के काम में आता है। इस पौधे का काढ़ा एक अच्छी औषधि है, जो गुर्दे की पथरी के उपयोग में आती है। सारे शरीर पर सूजन आ जाने के समय भी इसका काढ़ा दिया जाता है। डायरिया व डिसेन्ट्री की प्रारम्भिक अवस्था में इसके ताजे पत्ते का काढ़ा शहद के साथ देने से बहुत लाभ होता है। काढ़ा

बनाने की तरकीब लिखते हुए कर्नल चोपरा लिखते हैं कि इसके २ औंस पौधे को लेकर डेढ़ पिंट पानी में करीब आधे घण्टे तक औटाना चाहिये। उसके बाद उस पौधे को दबाना चाहिये। उसके दबाने से रस निकलेगा वही काढ़ा कहलाता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डा० नॉडकरनी के मतानुसार अपामार्ग का उत्तम काढ़ा मूत्रल है। बृक्कीय जलोदर में यह लाभदायक पाया गया है। उदरशूल तथा आंतों के विकारों में इसके पत्तों का रस उपयोगी है। अधिक मात्रा में देने से यह गर्भपात और प्रसव-वेदना को उत्पन्न करता है। इसके ताजे पत्तों को पीसकर काली-मिर्च, लहसुन और गुड़ के साथ मिलाकर गोलियां बनाकर देने से काले बुखार में लाभ होता है।

इसके पत्तों के ताजे रस को सूर्य की धूप में गाढ़ा करके इसमें थोड़ीसी अफीम मिलाकर उसका लेप करने से उपदंश के प्रारम्भिक घावों में बहुत फायदा करता है। इसके बीजों को दूध में डालकर बनाई हुई खीर मस्तक के रोगों के लिये उत्तम औषधि है।

डाक्टर देसाई के मत से अपामार्ग कडुवा, कसैला, तीक्ष्ण, दीपन, अम्लता को नष्ट करनेवाला, रक्तवर्द्धक, शोषक, पथरी को गलाने वाला, मूत्रल, मूत्र की अम्लता को नष्ट करने वाला, पसीना लाने वाला, कफनाशक और पित्तसारक होता है। शरीर के अन्दर इसकी क्रिया बहुत शीघ्रता से होती है। दूसरी उपयोगी औषधियों के साथ इसको देने से बहुत उत्तम कार्य होता है। जैसे अमाशय के रोग में इसको कुटकी इत्यादि कड़वे द्रव्यों के साथ, रक्त के रोगों में लोह के साथ, फुफ्फुस के रोगों में सुगन्धित और स्निग्ध द्रव्यों के साथ, मूत्रपिण्ड के रोगों में स्निग्ध द्रव्यों के साथ और सब प्रकार के पित्त रोगों में यकृत् पर क्रिया करने वाले द्रव्यों के साथ अपामार्ग को देना चाहिये।

भोजन के पूर्व अपामार्ग को लेने से आमाशय में पाचक रस की वृद्धि होती है और आमाशय के मज्जातन्तुओं की दाह और उससे होने वाली पीड़ा बन्द हो जाती है। इस कारण अपमार्ग को अपचन रोग, अमाशय की शिथिलता तथा वेदना इत्यादि लक्षणों में कुटकी इत्यादि कडुवे द्रव्यों के साथ भोजन को पहिले देना चाहिए। भोजन के पश्चात् इसको देने से आमाशय की अम्लता कम होती है। इसलिए अम्लतायुक्त अपचन रोग में इसका गरम २ क्वाथ भोजन के पश्चात् दो २ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। आमाशय के रोगों में इसको बड़ी मात्रा में नहीं देना चाहिये। क्योंकि बड़ी मात्रा में इसको देने से आमाशय में दाह पैदा होता है। यकृत् पर अपमार्ग की क्रिया बहुत ही हितकारक होती है। इससे यकृत् की पित्तवाहिनी नली की सूजन कम होती है, यकृत् की सब क्रिया सुधर जाती है और यकृत् में रक्त का सञ्चालन ठीक तरह से होने लगता है। इस कारण से पित्ताश्मरी और बवासीर रोग में इसको देने से लाभ होता है। अपमार्ग को देने से आँतों की अम्लता कम होती है और उनमें अन्न सड़ने नहीं पाता जिससे अपामार्ग गुल्म और शूल रोग में लाभ पहुँचाता है।

अपामार्ग का क्षार रक्त में शीघ्रता से मिल जाता है, यह रक्त के पोषक कणों को बढ़ाता है और उसके रङ्ग को सुधारता है। रक्त के अन्दर मिलकर यह क्षार शरीर के भिन्न २ मार्गों से बाहर निकलता है इसका अधिक भाग मूत्रपिण्ड के मार्ग से और थोड़े २ भाग त्वचा, फुफ्फुस, आमाशय और यकृत् के द्वारा बाहर निकलते हैं। जिन-जिन मार्गों से यह क्षार बाहर निकलता है। उन-उन मार्गों की जीवन-विनिमय-क्रिया को यह सुधारता है और तमाम शरीर की क्रिया को यह उत्तेजना देता है। तरुण आमवात, जीर्ण-आमवात, क्षारयुक्त संधिशोथ इत्यादि रोगों में इसका क्षार गुणकारी होता है।

अपामार्ग सौम्यस्वभावी और मूत्रल होता है। मूत्रपिंड की मूत्रजनक पेशी पर इसकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है। इसलिए सुजाक, बस्तिशोथ और मूत्रपिंड की सूजन में वेदना को कम करने के लिए इसको स्निग्ध और मूत्रल औषधियों के साथ देना चाहिए। इससे मूत्र का परिमाण बढ़ता है और उसकी अम्लता कम होती है।

फुफ्फुस और श्वासनलिका पर भी अपामार्ग का उत्तम प्रभाव होता है। इसके देने से कफ पतला होकर आसानी से बाहर निकल जाता है। श्वासनलिका की नवीन सूजन और प्राचीन सूजन में जब कफ चिकना होकर चिपक जाता है अपामार्ग को देने से बहुत लाभ होता है। जीर्ण कफप्रधान रोगों में अपामार्ग को चौसठ पहरी पीपल, अतीस और शुद्ध कुचले की सूक्ष्म मात्रा के साथ शहद में मिलाकर देने से बहुत लाभ होता है। इससे कफ कम होता है,

जीर्णज्वर निकल जाता है, शरीर का फीकापन दूर हो जाता है, हृदय और नाड़ी को बल मिलता है, अन्न पचने लगता है और रोगी का वजन बढ़ता है। प्राचीन कफ रोगों में अपामार्ग का क्षार एक दिव्य औषधि है।

अपामार्ग में विषनाशक धर्म भी रहता है, ऐसा कहा जाता है। पागल कुत्ते के विष में, बिच्छू के और विषैले चूहे के विष में इसकी जड़ के चूर्ण को खिलाते हैं और इसकी पत्ती को पीसकर काटी हुई जगह पर लगाते हैं।

मज्जातन्तु समूह के रोग में विशेषकर भूतोन्माद में अपामार्ग के स्वरस को पिलाने से बहुत लाभ होता है। इससे हृदय में धड़कन कम हो जाती है।

दाँत के रोगों में इसकी लकड़ी के दतून करने से, इसके पत्तों का रस मसूड़ों पर लगाने से और कान के रोगों में इसके क्षार से सिद्ध किया हुआ तेल टपकाने से बहुत लाभ होता है।

रासायनिक विश्लेषण—अपामार्ग की राख में १३ प्रतिशत चूना, ४ प्रतिशत लोहा, ३० प्रतिशत क्षार, ७ प्रतिशत शोराक्षार, २ प्रतिशत नमक, २ प्रतिशत गन्धक और ३ प्रतिशत मज्जातन्तुओं के उपयुक्त क्षार रहते हैं। इसके पत्तों की राख की अपेक्षा इसकी जड़ की राख में ये तत्त्व अधिक पाये जाते हैं।

मात्रा—अपामार्ग की जड़ और बीज की मात्रा ६ माशे से १ तोला तक, राख की मात्रा ५--१५ रत्ती तक और क्षार की मात्रा २ से ४ रत्ती तक होती है।

उपर्युक्त अवतरणों से मालूम होता है कि क्या प्राचीन और क्या अर्वाचीन सभी लोगों ने इस औषधि के दिव्यप्रभाव को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है, दिल, दिमाग, आमाशय इत्यादि मनुष्य के सभी अङ्गों पर इसका प्रभाव पहुँचता है। खास करके इस औषधि में वामक (उल्टी लाने वाला), कृमिघ्न (पेट के कीड़ों को नष्ट करने-वाला), शिरोविरेचनकारी, कामोद्दीपक, व्रणपूरक, क्षुधानाशक आदि गुण विशेष तौर से रहते हैं।

उपयोग—**शिरोविरेचन**—मस्तिष्क की पुरानी बीमारियाँ, पीनस के भयकंर रोग, आधाशीशी, मस्तक की जड़ता इत्यादि रोगों में जब मस्तक के अन्दर कफ इकट्ठा हो जाता है, कीड़े पड़ जाते हैं और कोई दूसरी औषधियाँ काम नहीं करतीं तब अपमार्ग के बीजों को चूर्ण करके सुंघाने से चमत्कारिक लाभ होता है। इस चूर्ण को सुंघाने से मस्तक के अन्दर जमा हुआ कफ पतला होकर नाक के जरिये निकल जाता है और वहाँ पर पैदा हुए कीड़े भी झड़ जाते हैं। अकेले अपामार्ग के अतिरिक्त इसके चूर्ण में अगर वायबिडङ्ग, सूंठ, मिर्च, पीपर, इलायची, मुलेठी, तुलसी के बीज इत्यादि कृमिनाशक तथा कफनिस्सारक औषधियों का चूर्ण भी मिला दिया जाय तो वह और भी अधिक लाभ पहुँचाता है। अगर इन्हीं औषधियों को पानी के साथ पीसकर लुग्दी बनाकर उसमें चौगुना गोमूत्र और चौगुना काली तिल्ली का तेल डालकर मन्दाग्नि पर पकाकर गोमूत्र जल जाने पर तेल को छानकर रख लिया जाय तो यह तेल सुंघाने से भी मस्तक के कृमियों को नष्ट करता है।

प्रसव विलम्ब चिकित्सा—जिस स्त्री को प्रसव के समय भयङ्कर कष्ट हो रहा हो और प्रसव में विलम्ब हो रहा हो, उसकी कमर में अगर रविवार और पुष्य नक्षत्र के दिन लकड़ी के औजार से खोदकर (कुदाली इत्यादि लोहे के औजार से खोदना हानिकारक है) लाई हुई अपामार्ग की जड़ को बांध दिया जाय तो तुरन्त प्रसव हो जाता है। लेकिन प्रसव होते ही जड़ तुरन्त खोल देना चाहिए, अन्यथा गर्भाशय के बाहर आने का डर रहता है। जंगलनी जड़ी बूटी नामक ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि मूढगर्भ के कई केसों में जिनमें डाक्टरों ने आपरेशन की सलाह दी थी, इस जड़ी ने विचित्र प्रभाव बतलाया है। अगर जड़ी बाँधने के बजाय उसे पीसकर स्त्री के पेडू पर लेप कर दिया जाय तो भी वही फायदा होता है।

पथरी—अपामार्ग की ६ माशा ताजी जड़ को पानी में घोटकर पिलाने से पथरी रोग में बड़ा लाभ पहुँचता है। यह औषधि बस्ति के पथरी को टुकड़े-टुकड़े करके निकाल देती है। वृक्कशूल के लिए भी यह महौषधि है।

खूनी बवासीर—इसके बीजों को पीसकर उनका चूर्ण तीन माशे की मात्रा में सबेरे-शाम चावल की धोवन के साथ देने से बवासीर से पड़ने वाला खून बन्द हो जाता है। अथवा इसकी जड़, बीज और पत्तों को कूटकर उनके चूर्ण में समान भाग मिश्री मिलाकर ६ माशे की मात्रा में जल के साथ देने से भी खूनी बवासीर मिटता है।

नेत्र रोग—इसकी जड़ को पानी के साथ महीन पीसकर आँख में आँजने से आँख की फूली तथा दूसरे

नेत्ररोगों में लाभ पहुँचता है। अगर रतौंधी आती हो तो इसकी जड़ का ६ माशा चूर्ण शाम को भोजन के पश्चात् खाकर ऊपर से पानी पीकर सो जाने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

मलेरिया ज्वर—इसके पत्ते और कालीमिर्चों को समान भाग लेकर गुड़ के साथ दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनाकर बुखार आने के पहले देने से मलेरिया बुखार रुक जाता है।

जलोदर—डा० कर्निश ने जलोदर रोग में इस औषधि का उपयोग किया और इसे काफी लाभदायक पाया।

दन्तशूल—इसकी ताजी जड़ से प्रतिदिन दतून करने से दाँत मोती की तरह चमकने लगते हैं। यह दतून दन्तशूल, दाँतों का हिलना, मसूड़ों की कमजोरी तथा मुँह की दुर्गन्ध को दूर करता है।

कण्ठमाला—इसकी जड़ की राख को खाने और उसको गांठों पर लगाने से कण्ठमाला में लाभ पहुँचता है।

रति-शक्ति की कमजोरी—इसकी जड़ का चूर्ण छः माशे लेकर उसमें दो रत्ती बंगभस्म मिला कर खाने से प्रबल कामोद्दीपन होता है।

बिच्छू का जहर—इस औषधि में विषनाशक प्रभाव भी बहुत है। मेजर मोहीउद्दीन का कथन है कि इसकी फूलवाली डालियों पर अगर बिच्छू को रख दिया जाय तो उसे पक्षाघात हो जाता है। राजवैद्य सन्तशरण के मतानुसार इसके पत्तों के रस को हाथ में चुपड़ कर चाहे जैसे जहरीले बिच्छू को हाथ में लिया जाय और वह चाहे जितने डंक मारे तो भी उनका कुछ असर नहीं होता। जिसको बिच्छू ने काटा हो और वह चढ़ गया हो, उसके यदि चढ़े हुए स्थान पर इसके पत्तों के रस की लकीर खींच दी जाय तो बिच्छू का जहर नीचे उतरने लगता है। ज्यों-ज्यों नीचे उतरे त्यों-त्यों वह लकीर भी नीचे २ करते जाना चाहिये। जब जहर डंक पर आजाय तब इसके पत्तों को पीस कर उनकी लुग्दी डंक पर बांध देना चाहिये। इसके साथ ही भीतरी उपचार की तरह अगर इसकी जड़ को महीन पीस कर दस-बारह गुने पानी में घोलकर उसका पानी थोड़ा-थोड़ा जब तक कडुआ न लगने लगे तब तक पिलाया जाय तो जहर उतर जाता है। पानी ज्योंही कडुआ लगने लगे पिलाना बन्द कर देना चाहिये, क्योंकि यही जहर उतरने का सबूत है।

रक्त-प्रदर—सफेद अपामार्ग का पञ्चांग २ तोला, भेड़ के बालों की भस्म २ तोला, सुनहरा गेरू २ तोला, इन तीनों चीजों को कूट-पीस कर चूर्ण करें। इसमें से छः माशा चूर्ण गाय के कच्चे दूध में पिलाने से रक्त-प्रदर शीघ्र आराम होता है।

श्वास और खाँसी—इसके सूखे पत्तों को हुक्के में रख कर पीने से श्वास रोग में लाभ पहुँचता है। तिब्बे नादरी के लेखक का कथन है कि अपामार्ग की जड़ में कफ की खाँसी और दमे को नष्ट करने का चमत्कारिक गुण विद्यमान है। इसके सारे झाड़ को जड़ समेत उखाड़ कर उसे जलाना चाहिये। फिर इसकी राख दस रुपये भर लेकर उसमें दो तोला सेंधा नमक, दो तोला सज्जीखार, दो तोला यवक्षार, दो तोला नौसादर, तीन तोला हल्दी और दस तोला अजवायन डालकर उसका चूर्ण कर प्रतिदिन डेढ़ माशे के करीब सबेरे-शाम लेने से कफ की खाँसी में बहुत लाभ होता है। इसी प्रकार इसकी जड़ का चूर्ण आधा तोला लेकर उसमें सात काली मिर्च का चूर्ण डालकर दोनों टाइम ठण्डे जल के साथ फंकी लेने से दो वर्ष का पुराना दमे का रोग दूर होता है। यह दवा सात दिन तक पथ्यपूर्वक लेने से नब्बे प्रतिशत लाभ होता है। जब तक दवा चालू रहे तब तक गेहूँ की रोटी, भात इत्यादि खाना चाहिये। तथा छाती और कंठ पर घी की मालिस करते रहना चाहिये। इस प्रयोग से यदि कभी उल्टी हो तो उससे नहीं डरना चाहिये।

नासूर—इसके पत्तों का रस नासूर के ऊपर लगाने से नासूर भर जाता है।

भस्माग्नि—भस्माग्नि का रोग जिसमें बहुत भूख लगती है और खाया हुआ अन्न भस्म हो जाता है, उसमें अपामार्ग के बीजों का चूर्ण एक तोला देने से रोग मिट जाता है।

उदरशूल—भयंकर उदरशूल में अपामार्ग की जड़ छः माशे, कुँकरोंधा के पत्ते छः माशे, सफेद जीरा तीन माशे, काला नमक एक माशा, इन सब को पीसकर इसमें छः माशे की खुराक देने से आराम होता है।

कान का बहरापन—अपामार्ग की जड़ को धोकर उसका रस निकाल लें। जितना यह रस हो, उससे आधा तिल्ली का तेल मिलाकर आग पर चढ़ा दें। जब रस जल कर तेल मात्र शेष रह जाय तब छानकर शीशी में रख लें। इस तेल की २-३ बूँद गरम करके कान में हर रोज डालने से कान का बहरापन दूर हो जाता है।

बनावटें—**अपामार्ग क्षार**—अपामार्ग के झाड़ के पंचांग को (अर्थात् फूल, फल, डंठल, जड़ और पत्ती को) जलाकर उसकी राख को आठगुने पानी में खूब अच्छी तरह से मिलाकर रात भर पड़ा रहने देना चाहिये। जब राख का सब हिस्सा पानी में नीचे बैठ जाय तब ऊपर के स्वच्छ पानी को नितार कर हलकी आंच से उसे उबालना चाहिये। जब उसकी हालत रबड़ी सरीखी हो जाय तब उसको उतार कर ठण्ढा कर उसकी टिकिया बनाकर धूप में सुखा लेना चाहिये। सूखने पर खरल में पीसकर बोतल में भर देना चाहिये। यह क्षार अपामार्ग क्षार कहलाता है। इस क्षार को शहद के साथ चटाने से कफवाली खाँसी आराम हो जाती है। इसके अतिरिक्त बस्ति (आमाशय) के विकार से होने वाली सूजन, जलोदर, यकृत् की वृद्धि और वायुगोला इत्यादि रोगों में भी लाभ पहुँचता है।

अपामार्ग-क्षार तेल—अपामार्ग का बनाया हुआ क्षार २० तोला, तिल का तेल ४० तोला, जल १६० तोला लिया जावे। जल के अन्दर क्षार को २१ बार अच्छी तरह मिलाकर उसमें तेल डाल दिया जाय, उसके पश्चात् अपामार्ग के पंचांग को पानी के साथ पीस कर बनाई हुई लुग्दी १० तोला लेकर उस पानी के बीच में रख कर मन्दाग्नि से जल को उबालना चाहिए। जब इसमें से सारे जल का भाग जल जाय और केवल तेल का भाग मात्र शेष रहे तब उतार कर छान लेना चाहिए। यह तेल कानों के प्रत्येक दर्द के लिए लाभकारी है। इसको कान में टपकाने से कान की सूजन, बहरापन, पीब वगैरह रोग नष्ट होते हैं।

अपामार्ग आसव—अपामार्ग २ सेर, अडूसे के पत्ते २ सेर, केले के नये नरम पत्ते २ सेर, जंगली बेर की जड़ की छाल २ सेर, देशी गुड़ ४ सेर। गुड़ को ६ सेर पानी में भिगो कर इन औषधियों को जौ कुट करके एक मिट्टी के बर्तन में अच्छी तरह मिलाकर डाल दें। दूसरे दिन इसी बर्तन में यवक्षार १ छटांक, सज्जी खार २ छटांक और पपड़िया नौसादर आधी छटांक मिला दें। उसके पश्चात् उस बर्तन का मुँह १५ दिनों तक बन्द कर पड़ा रहने दें। फिर कपड़े से छानकर बोतलों में बन्द करके रख दें। यह आसव तेज शराब की तरह बरता जाता है। श्वास के रोग में बहुत अक्सीर साबित हुआ है। पहली मात्रा में अपना असर दिखाता है।

अपामार्ग अवलेह—जौहरे हिकमत नामक पुस्तक में लिखा है कि अपामार्ग का क्षार, यवक्षार, सज्जीक्षार, केले का क्षार, आंकड़े का क्षार, खांकरे का क्षार, इमली का क्षार, मूली का क्षार और कली चूना ये सब वस्तुएं एक-एक रुपये भर, फूला हुआ टंकन क्षार २ रुपये भर, कलमीशोरा ३ माशा, कालीमिर्च २॥ तोला, सेका हुआ जीरा २ तोला, लींडीपीपल ३ तोला, इन सबको लेकर बारीक चूर्ण कर उसको एक बरनी में भर कर उसमें अदरक का रस ४० तोला, गवार पाठे का रस ४० तोला तथा नींबू का रस ४० तोला अच्छी तरह मिलाकर सात रोज तक धूप में पड़ा रहने देना चाहिये। इसके पश्चात् इसमें से ६ माशे अवलेह सुबह-शाम चाटने से उदरशूल, यकृत् की वृद्धि, वायुगोला, हैजा, जलोदर इत्यादि रोग आराम होते हैं।

अपामार्ग द्वारा दूसरी बनने वाली भस्में—**सिंगरफ भस्म**—बढ़िया सिंगरफ २ तोला खरल में डाल कर २० तोला आंकड़े के दूध में खरल करें। जब सारा दूध खतम हो जाय तब उसकी टिकिया बनाकर छाया में सुखा लें। फिर एक मिट्टी की छोटी हांडी में १० तोला अपामार्ग की राख बिछाकर उसपर सिंगरफ की टिकिया रख ऊपर से और १० तोला अपामार्ग की राख डालकर हाथ से अच्छी तरह दबा दें। फिर हांडी पर ढक्कन लगाकर अच्छी तरह से कपड़मिट्टी करके सुखा लें। उसके पश्चात् १० सेर कंडी की आंच में उस हांडी को रखकर फूँक दें। जब ठण्डी हो जाय तब निकाल लें। सिंगरफ की इस भस्म को एक रत्ती प्रमाण में देने से कामशक्ति बढ़ती है।

सोमल भस्म—दो तोला संखिया लेकर एक शीशी में डालकर उसमें इतना आक का दूध डाले कि वह डूब जाय। फिर २१ रोज तक उसे भूमि के अन्दर गाड़ रखें। फिर एक मिट्टी की हांडी में अपामार्ग की राख को हांडी के आधे हिस्से तक भरकर उसपर संखिया की टिकड़ी रख और उसके ऊपर फिर मुँह तक अपामार्ग की राख भर दें। उसके पश्चात् उसे तीन प्रहर तक हलकी आंच और तीन प्रहर तक मध्यम आंच और तीन प्रहर तक तीव्र आंच देने से संखिया की श्वेत रंग की भस्म तैयार होती है। इस भस्म की परीक्षा के लिये इसे थोड़ी सी आग के ऊपर डालना चाहिये। अगर उसमें से धुँआ न निकले तो समझना चाहिये कि भस्म शुद्ध हो गई है। इस भस्म को चौथाई चावल के बराबर देने से श्वास रोग में बहुत फायदा होता है।

हड़ताल भस्म—शुद्ध हड़ताल एक तोला और एक तोला अभ्रक दोनों को खरल में डालकर अपामार्ग के पानी में चार प्रहार तक खरल करके उसकी टिकड़ी बांधकर छाया में सुखाना चाहिए। फिर उस टिकड़ी को मिट्टी की एक छोटी हांडी में अपामार्ग की राख को आधे हिस्से तक दबाकर भरकर उस पर रख देना चाहिए। उसके पश्चात् शेष हिस्से में भी अपामार्ग की राख को दबाकर भरकर ढक्कन लगाकर कपड़मिट्टी कर एक गज लम्बे, एक गज चौड़े और एक गज गहरे गड्ढे में ऊपले (आरने) कण्डे भर कर बीच में उस हांडी को रखकर फूंक दें। इस प्रकार गजपुट में तीन बार फूंकने से अत्यन्त उत्तम भस्म तैयार हो जायगी। इस भस्म की खुराक आधी रत्ती से लेकर २ रत्ती तक की है। यह भस्म प्राचीन से प्राचीन ज्वर के लिये रामाबाण औषधि है। इससे ज्वर, एकतरा, पाली आदि सभी विषम ज्वर नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त खांसी व श्वांस के अन्दर भी यह अच्छा लाभ पहुँचाती है।

अमृताख्य तैल—अपामार्ग के बीज, सिरस के बीज, दोनों प्रकार की श्वेता (कटभी और महाकटभी) और मकोय इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्र में पीसकर लुग्दी कर लें, फिर २० तोला लुग्दी, २ सेर तिल का तेल और दो सेर गोमूत्र डालकर हलकी आंच पर चढ़ावे, जब तैल मात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान ले। सुश्रुत ने इस तेल को महाविषनाशक बतलाया है।

अफसन्तीन

नाम—संस्कृत—दमर। फारसी—अफसन्तीत। अरबी—अफसन्तीन। हिंदी—विलायती अफसन्तीन। लेटिन—Artemisia Absinthium.

वर्णन—यह औषधि और इसकी कुछ जातियां भारतवर्ष में उत्पन्न होती हैं। पर आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इसका कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता। विशेष कर यह औषधि उत्तरी अफ्रीका, सायबेरिया, मंगोलिया तथा भारतवर्ष में हिमालय पहाड़ के ऊपर १०००० से १२००० फीट तक की ऊँचाई पर काश्मीर, तिब्बत, कुमाऊँ, नेपाल इत्यादि प्रान्तों में पैदा होती है। यह एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा है। इसकी शाखाएं सीधी और सरल होती हैं। पत्ते रेशम की तरह मुलायम, रूएँदार और हरे रंग के होते हैं। इसके फूल पीले रहते हैं। इसके बीज बारीक २ और गोलदाने की तरह होते हैं। इसकी छाल कुछ ललाई लिये हुए बादामी रंग की रहती है। इसकी गन्ध अत्यन्त तीव्र, उग्र, अप्रिय और स्वाद अत्यन्त कड़वा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में रूक्ष है। यह मस्तिष्क और स्नायु-मंडल को अव्यवस्थित करने वाला और सिर दर्द को पैदा करने वाला है। इसके अन्दर संकोचक गुण भी है। यह यकृत् को बल पहुँचाने वाला और कामला रोग में लाभदायक है। इसका शर्बत आमाशय और यकृत् को बल देता है। बवासीर के अंदर भी यह औषधि लाभदायक है। इसके क्वाथ का बफारा देने से कान का दर्द आराम होता है। पेट के कीड़ों को मारने की शक्ति भी इस औषधि में है।

इन्डियन मेडिसिनल प्लांट्स के रचयिता इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि यह सारी वनस्पति एक प्रकार का सुगन्धित पदार्थ है। कुछ समय पहले पाचन-किया की कमजोरी के उपचार में इस औषधि की बहुत तारीफ थी और यह कृमि-नाशक समझी जाती थी। सिनकोना के प्रचार के पहिले पार्यायिक ज्वरों में इसका काफी उपयोग होता था। स्नायु-मण्डल के ऊपर इस औषधि का बड़ा तीव्र असर होता है। स्नायुमण्डल की क्रियाओं में दुर्व्यवस्था पैदा कर यह सिरदर्द उत्पन्न करती है। जो लोग काश्मीर और लद्दाक के मार्ग में इसके खेतों के बीच में से होकर निकलते हैं, वे इसके उपर्युक्त गुण से भली प्रकार परिचित हो जाते हैं, क्योंकि जब मार्ग में इसके विस्तृत खेतों के अन्दर वे यात्रा करते हैं तब उनको यह महान कष्ट सहन करना पड़ता है।

बाह्योपचार में इस औषधि की पुल्टिस बनाकर उपयोग करने से यह अपना कृमिनाशक गुण बतलाती है, मगर केश और मस्कर के मतानुसार इसमें या इसके तेल में कृमिनाशक गुण नहीं है।

इस औषधि में से एक प्रकार का गहरा हरा या पीले रंग का तेल निकाला जाता है, जो कि स्वाद में कड़वा होता है और अधिक मात्रा में मादक और उत्तेजक होता है।

रासायनिक विश्लेषण—कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल जिसको एब्सि-

थोल (Absinthol) कहते हैं–रहती है। इसके अतिरिक्त ग्लुकोसाइड तथा एक प्रकार का रवादार सत्त्व–जिसको एब्सिथीन (Absinthin) कहते हैं–वह भी रहता है। यह औषधि पार्यायिक ज्वरों में एक प्रकार का पौष्टिक पदार्थ है।

एलोपैथिक मतानुसार अफसन्तीन का पौधा कडुआ, बलप्रद, सुगन्धित, आमाशय को बल देने वाला अग्निदीपक, ज्वर और कृमियों को नष्ट करने वाला, रजःप्रवर्तक, दिमागको उत्तेजना देने वाला व निद्राजनक है।

डा० नॉडकरनी अपनी इंडियन मटेरिया मेडिका में लिखते हैं कि इस पौधे का अजीर्ण, केंचुए (Round worms) और सूती कीड़े (Thread worms) को नष्ट करने के लिये उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त विषमज्वर, रजःकष्ट, मृगी, मस्तक की कमजोरी इत्यादि रोगों में भी इसके क्वाथ का उपयोग किया जाता है।

बनावटें—अर्क अफसन्तीन—अफसन्तीन रूमी आधा सेर को अर्क गुलाब ३ सेर में रात भर भिगो दें। सबेरे २ सेर पानी और डालकर अर्क खींच लें। उस अर्क में आधा सेर अफसन्तीन रूमी, ३ सेर गुलाब जल और २ सेर पानी डालकर दुबारा अर्क खींच लें।

१॥ तोला की मात्रा में इस अर्क को ६ तोला अर्क सौंफ और २ तोला शर्बत कसूस के साथ पीने से यह यकृत् की बीमारियों को दूर कर सूजन से होने वाले बुखार को मिटाता है। यह अत्यन्त प्रभावशाली है।

अफीम

नाम—संस्कृत—अहिफेन। हिंदी—अफीम। बंगाली—आफिंग। मराठी—अफू, कड़वो। गुजराती—अफेण। तैलंगी—नाल्लामन्दु। फारसी—अफ्यूनतिर्याक। अरबी—लवनुल खसखस। लेटिन—Opium. (ओपियम)।

वर्णन—अफीम की खेती भारतवर्ष में विशेषकर मालवा, मेवाड़ इत्यादि प्रांतों में की जाती है। आज से करीब ४० वर्ष पहले इसकी खेती बहुत बड़े परिमाण में होती थी और इसके व्यापार से लोग करोड़ों रुपया पैदा करते थे, मगर अब गवर्नमेंट ने इसकी खेती बहुत ही कम कर दी है।

अफीम पोस्तदाने के वृक्ष से पैदा होती है, पौष मास में इस वृक्ष पर अनेक रंगों के रंग विरंगे बड़े सुन्दर फूल लगते हैं और उन पर डोंड़ियां लगती हैं, दो तीन सप्ताह में ये डोंडे अफीम निकालने लायक हो जाते हैं। तब उनको लोहे के तेज औजार से तीन-तीन चार-चार चीरें लगा देते हैं। उन चीरों में से दूध के रूप में अफीम निकलती है और डोड़ों पर जम जाती है। दूसरे दिन सबेरे वह दूध अफीम की शक्ल में जम जाता है और लोग खुरच लेते हैं। इकट्ठा होने पर इसे तेल के हाथ दे देकर साफ करते हैं जिससे जल का अंश निकल जाता है।

अफीम के व्यवसाय पर गवर्नमेन्ट के एक्साइज डिपार्टमेन्ट का आधिपत्य है। जितनी अफीम पैदा होती है, सब सरकारी गोदाम में पहुँचाई जाती है जिसकी बट्टियाँ बाँधकर उसपर गवर्नमेन्ट की सील-मुहर लगाई जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—निघण्टुरत्नाकर के मतानुसार अफीम वीर्यवर्द्धक, बलकारक, ग्राही, सप्तधातु शोधक, वातपित्तकारक, आनन्ददायक, नशीली, वीर्य को स्तम्भन करनेवाली, कड़वी-मधुर तथा सन्निपात, कृमि, कफ, पाण्डुरोग, क्षय, प्रमेह, श्वास, खाँसी, प्लीहा और धातुक्षय को मिटानेवाली है।

चरक के मतानुसार अफीम दूसरी वस्तुओं के साथ सांप और बिच्छू के जहर इलाज में भी दी जाती है।

डाक्टर देसाई अफीम का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि अफीम एक दिव्य वस्तु है। इसमें उत्तेजक, आह्लादकारक, बाजीकरण, निद्राजनक, शांतिदायक, पीड़ाशामक, मादक, कफनाशक, ग्राही, रक्तसंग्राहक, पार्यायिक ज्वरनिवारक, शोथनाशक इत्यादि अमूल्य धर्म पाये जाते हैं। ये सब प्रकार के धर्म इसको भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रयोग करने से प्रत्यक्ष होते हैं।

छोटी मात्रा में यह वस्तु अपना उत्तेजक धर्म बतलाती है। इसका यह उत्तेजक धर्म सबसे पहले मस्तिष्क में प्रकट होता है और वहां से सारे शरीर में व्याप्त होता है। ज्ञानतन्तुओं पर छोटी मात्रा में देने से यह प्रत्यक्ष उत्तेजना बतलाती है। अफीम का यह उत्तेजक धर्म अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयुक्त होता है मगर यह सिर्फ इसको छोटी मात्रा में देने से ही प्राप्त किया जा सकता है। थकावट, भय, उदासीनता, थोड़े परिश्रम से हाथ पैर का कांपना वृद्धावस्था से उत्पन्न होनेवाला कंटाला इत्यादि में छोटी मात्रा में अफीम को देने से बड़ी तसल्ली मिलती है।

रक्ताभिसरण क्रिया को, विशेषकर छोटी रक्तवाहिनियों को अफीम उत्तेजना देती है। रक्तवाहिनियों की शिथिलता से कितने ही लोगों को बारम्बार सरदी, जुकाम हो जाया करता है, कितनों ही के हाथ-पांव ठण्डे रहते हैं, ऐसे लोगों को देने से लाभ होता है।

अफीम फुफ्फुस की नलिका के सङ्कोच-विकास को कम करता है इसलिए इसके देने से खांसी का कष्ट कम होता है। उतरती हुई उम्र के लोगों को और कुछ जवान लोगों को भी कफ अधिक गिरने की और खांसी बनी रहने की आदत हो जाती है। ऐसे लोगों को अफीम देने से लाभ होता है। मगर अफीम देने के पहले यह भली प्रकार सोच लेना चाहिए कि रोगी अफीम ग्रहण करने के योग्य है या नहीं। रोगी का श्वासोछ्वास अगर ठीक चलता हो, उसकी त्वचा मृदु और मुलायम हो और उसका कफ अगर बिल्कुल ढीला हो तो उसको अफीम दी जा सकती है। अगर उसको श्वास लेने में कठिनाई होती हो, उसके होठ काले या बैंगनी हों, उसके मूत्रपिण्ड में किसी प्रकार की खराबी हो तो ऐसे रोगी को अफीम कदापि नहीं देनी चाहिए। जिसका कफ चिकना होकर जमा हुआ हो उसको भी यह वस्तु नहीं देना चाहिये। फुफ्फुस सम्बन्धी रोगों में इसको बहुत छोटी मात्रा में कपूर, नौसादर, आक, लोबान के फूल इत्यादि उत्तेजक और कफ निस्सारक द्रव्यों के साथ देना चाहिये। इस प्रकार के रोगों में अगर इसको बिना समझे-बुझे अथवा अधिक मात्रा में दिया गया तो रोगी के प्राणनाश का भय रहता है।

हृदयपीड़ा, हृदयश्वास और उससे होनेवाले निद्राभङ्ग में अफीम को देने से रोगी की वेदना शमन होकर उसे नींद आ जाती है। हृदय रोग में दुःख, चिन्ता, घबराहट और हृदय की धड़धड़ाहट अफीम को देने से शांत हो जाती है। तीव्र संधिवात में अफीम हृदय का संरक्षण करती है मगर इसका प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए।

अफीम का रक्तस्रावरोधक धर्म अत्यन्त मूल्यवान् है। इसको देने से शरीर के किसी भी अङ्ग से होनेवाला रक्तस्राव रुक जाता है। गर्भाशय, आंतें, आमाशय, फुफ्फुस इत्यादि किसी भी स्थान से होनेवाले रक्तस्राव में अफीम को मध्यम मात्रा में दूसरी रक्तस्रावरोधक औषधियों के साथ देना चाहिए।

सरदी और जुकाम के होते ही अफीम का प्रयोग करने से उसका बढ़ना रुक जाता है। गले की सूजन और दर्द में, सूखी खांसी में और श्वास मार्ग के द्वार में होनेवाले क्षत में अफीम का अवलेह बना कर देना चाहिए। बच्चों के श्वास-मार्ग में सूजन होकर घबराहट पूर्ण खांसी हो जाती है। ऐसे समय में अफीम का अवलेह देने से तत्काल गुण होता है। फुफ्फुस से रक्त बहना भी इससे शीघ्र बन्द हो जाता है। कुक्कुर खांसी और दमे के अन्दर अफीम को गोली के रूप मे देना चाहिए। कुछ लोगों को श्वासनलिका में बार-बार सूजन हो जाने की आदत हो जाती है। ऐसे लोगों को सूक्ष्म मात्रा में अफीम देने से वह आदत बन्द हो जाती है। श्वासोच्छ्वास के केन्द्र स्थान पर इसकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है।

गर्भपात को रोकने के लिए अफीम एक उत्तम वस्तु है, अफीम देने से पीड़ा और रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

अफीम सूजन को नष्ट करने के लिए उत्तम वस्तु है। किसी भी प्रकार की सूजन के प्रारम्भ में अफीम देने पर सूजन की अगली अवस्था पैदा नहीं हो पाती। इतना ही नहीं बल्कि सूजन का प्रथम अवस्था में ही नाश हो जाता है। सूजन के अन्दर रक्तवाहिनियों का विकास होता है। अफीम देने से रक्तवाहिनियों का विकास होना बन्द होकर उनका संकोचन होने लगता। रक्तवाहिनियों का संकोचन होना ही सूजन को रोकने का चिह्न है। इसलिये आंतों के परदे की सूजन, फुफ्फुस के परदे की सूजन, अण्डकोष की सूजन, हृदय के परदे की सूजन, तीव्र सन्धिवात में, सन्धियों की सूजन इत्यादि में अफीम को देने से बड़ा लाभ होता है। फुफ्फुस के परदे की सूजन में अफीम को सोरा तथा दूसरा मूत्रल और पसीना लाने वाली औषधियों के साथ देना चाहिये। आंतों के परदे की सूजन में इसे शिलाजीत के साथ और अण्डकोष की सूजन में निर्गुण्डी के साथ देना चाहिये। कब्जियत होने पर अरण्डी के तेल का जुलाब देना चाहिये।

बड़ी मात्रा मे अफीम 'शामक' धर्म बतलाती है। आमाशय के कुपचन से होनेवाले दर्द, अर्बुद, क्षत तथा इनसे होनेवाले वमन इत्यादि उपद्रवों में अफीम दी जाती है।

अफीम का वेदनानाशक धर्म बहुत उत्कृष्ट होता है। किसी भी प्रकार से होनेवाली भयङ्कर वेदना और उनसे होनेवाला निद्रानाश इसको देने से बन्द हो जाता है और रोगी को सुखप्रद नींद आ जाती है। निद्राभङ्ग को दूर करने के लिये अफीम के समान दूसरी औषधि नहीं है। अफीम का संकोच विकास प्रतिबन्धक धर्म भी बहुत उत्तम

है। इसलिये दमा, कुक्कुरखांसी, मूत्रपीड़ा इत्यादि रोगों में इसको देने से लाभ होता है। अफीम का ज्ञानग्राहक-शक्ति को कम करने का धर्म भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है इसलिये शरीर के जलने पर अथवा आपरेशन के पश्चात् रोगी का भ्रम कम करने के लिये इसे देते हैं।

अफीम का लेप वेदनानाशक होता है। इसलिये संधियों की सूजन, कमर का दर्द, फुफ्फुस के परदे की सूजन और मस्तकशूल में इसका लेप किया जाता है। बच्चों के शरीर पर इसका लेप नहीं करना चाहिये।

उचित मात्रा में अफीम जहाँ ऊपर बतलाये अनेक प्रकार के चमत्कारिक गुण बतलाती है वहाँ अधिक मात्रा में यह एक भयंकर विष है जो रोगी का तत्काल प्राणनाश कर देता है। इसलिये इसका प्रयोग हमेशा बहुत समझ-बूझकर करना चाहिये।

मात्रा—अफीम की न्यून मात्रा पाव रत्ती से आधी रत्ती तक, मध्यम मात्रा आधी रत्ती से डेढ़ तक और बड़ी मात्रा डेढ़ रत्ती से दो रत्ती तक है। कौन से रोग में इसकी कितनी मात्रा दी जाय इसका निर्णय अनुभवी वैद्य से करवाना चाहिये।

कर्नल चोपरा अफीम का वर्णन करते हुए लिखते हैं:—

ऐसा कहा जाता है कि यह रसादि विकारों को दूर करती है व शरीर की शक्तियों को कुछ समय को बढ़ाती है। वीर्य-सम्बन्धी शक्तियों व मांस-पेशियों पर विशेष असर दिखाती है तथा मस्तिष्क में मादकता का सञ्चार कर उसे ढीला बनाती है।

मुसलमान चिकित्सकों के मतानुसार यह शारीरिक अंगों की पीड़ा दूर करने में मुफीद है। आधा शीशी, कटिवात (कमर की वादी) और जोड़ों के दर्द में भी इसका उपयोग किया जाता है। बाह्य उपचार में भी लेप के रूप में इसका उपयोग किया जाता है, रक्तातिसार व अतिसार में भी यह लाभ पहुँचाती है।

सबसे पहिले यह मस्तिष्क की शक्ति को उत्तेजन देती है। फिर शरीर की शक्ति व गर्मी को बढ़ाती हुई दिखलाई देती है, जिससे कुछ आनन्द व सन्तोष मालूम पड़ता है। किन्तु कुछ ही काल के पश्चात् इसको लेने की आदत पड़ जाती है। यह मादकोत्तेजक है। श्वास की क्रिया पर यह अपना उपशामक असर दिखाती है। यही कारण है कि कफ, श्वास व कुक्कुरखाँसी में इसका विशेष रूप में प्रयोग किया जाता है।

मुसलमानी हकीम इसे कामोद्दीपक बतलाते हैं। इनके मतानुसार यह मैथुन में स्तम्भन का काम करती है। वर्तमान काल में बहुमूत्र और मधुमेह में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

अधिकांश लोगों का विश्वास है कि पेशाब में शक्कर जाने की हालत में यह अपना अच्छा असर दिखाती है। लेकिन सन् १९२१ में जब इस बात की जाँच की गई तो मालूम हुआ कि थोड़ी और साधारण मात्रा में दी जाने पर यह शर्करा रोग में निष्फल सिद्ध हुई।

चिकित्सकों का एक यह भी विश्वास है कि मूत्राशय की बीमारी पर यह खराब असर दिखलाती है, मगर इस विषय में जब जाँच की गई व मूत्ररोग से पीड़ित लोगों को १ ग्रेन से ६ ग्रेन तक की खुराक में दी गई तो भी इसने चर्बी पर कोई बुरा असर नहीं बतलाया, बल्कि बहुत से मामलों में इसने चर्बी को घटाने का काम किया।

रासायनिक विश्लेषण—अफीम का रासायनिक विश्लेषण करने पर उसके अन्दर प्रधान रूप से 'मार-फाइन' नामक उपक्षार और 'नॉरकोटाइन' नामक एक पदार्थ का सत्त्व, ये दो तत्त्व पाये गए।

पटने की अफीम में 'मॉरफाइन' ३·६८ परसेंट और 'नॉरकोटाइन' ६·६६ परसेंट पाया गया।

मालवे की अफीम में 'मॉरफाइन' ४·६१ परसेंट व 'नॉरकोटाइन' ५·१४ परसेंट पाया गया।

स्मरना की अफीम में 'मॉरफाइन' ८·२७ व 'नाँरकोटाइन' १·२४ परसेंट पाया गया।

नॉरकोटाइन अफीम में से प्राप्त होने वाला एक प्रकार का सत्व है जिसमें कि निद्रा लाने का खास गुण होता है। यह अफीम में बाकी मात्रा में रहता है। अगर जानवरों की शिराओं में इसका इन्जेक्शन दिया जाय तो उनका ब्लडप्रेशर गिर जाता है। रक्तवाहिनी नलियाँ ढीली हो जाती हैं। ब्लडप्रेशर गिरने से हृदय की गति पर भी प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क की गति पर असर दिखाकर यह उसे ढीला करती है।

दूसरा तत्व 'मॉरफाइन नॉरकोटाइन' से अधिक जोरदार व अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह भी अफीम का एक

उपचार है। प्रारम्भ में लोगों का ध्यान इसकी ओर कम गया लेकिन बाद में इसके ऊपर कई प्रकार के अनुसन्धान हुए और कई बीमारियों के उपचार में इसकी उपयोगिता पाई गई।

ओपियम कमीशन ने भी वैज्ञानिक ढङ्ग से इसका मनन किया। वे भी इसी नतीजे पर आये कि इसमें मॉरफाइन व नॉरकोटाइन ये दो मुख्य पदार्थ रहते हैं। मॉरफाइन में उपशम और निद्रा लानेवाला गुण विशेष है और नॉरकोटाइन एक प्रकार का पुष्टिकारक और सामयिक ज्वरों को नष्ट करनेवाला पदार्थ है। यही गुण क्विनाइन में भी पाये जाते हैं। क्विनाइन और अफीम में इन गुणों की समानता होने से ही यह (अफीम) मलेरिया के बाह्य चिह्नों को दबा देती है पर इस बीमारी के मूलभूत कारण पर कोई असर नहीं पहुँचाती है।

डाक्टर रॉबर्ट्‌स ने नॉरकोटाइन को मलेरिया में मुफीद बतलाया है। किन्तु इस विषय में मतभेद है और इसके पश्चात् के अनुसन्धानों से भी यह मालूम हुआ कि, नॉरकोटाइन में रक्तोपजीवी मलेरिया के कीटाणुओं को मारने की शक्ति नहीं है।

कर्नल चोपरा ने मलेरिया, मधुप्रमेह और निमोनियाँ में ५ ग्रेन से लगाकर २० ग्रेन तक की मात्रा में इसको रोगियों को दिया, किन्तु कोई उल्लेखनीय असर नहीं दिखाई दिया। हृदय पर और श्वास-क्रिया पर इसका किसी भी प्रकार का उत्तेजक प्रभाव दिखलाई नहीं दिया। इतना ही मालूम हुआ कि बीमार के ऊपरी कष्ट नष्ट हो गए, उसकी थकान मिट गई और उसे शीघ्र ही नींद आ गई।

उपर्युक्त विवेचन से मालूम होता है कि अफीम का असर सीधा स्नायु मण्डल के ऊपर होता है। यह स्नायु जाल को एकदम स्तब्ध या मदहोश कर देती है, जिससे सारे शरीर में एक प्रकार की स्तब्धता हो जाती है और रोगी की—चाहे वह किसी भी रोग से ग्रसित हो—यन्त्रणा दब जाती है, जिससे उसे आराम मालूम होता है। इसका दूसरा विशेष गुण स्तम्भन का है। इसलिए अतिसार इत्यादि रोगों में भी फायदा पहुँचाती है तथा वीर्य-स्तम्भन के लिये तो यह मशहूर औषधि मानी गई है। वीर्य-स्तम्भन सम्बन्धी शायद ही कोई नुस्खा होगा जिसमें अफीम का उपयोग न हो। यह छोटी मात्रा में उत्तेजक और बड़ी मात्रा में शामक होती है।

प्रयोग—अतिसार—अतिसार के अन्दर अफीम और केशर को समान भाग लेकर पीसकर एक रत्ती प्रमाण की गोली बनाकर शहद के साथ देने से लाभ होता है।

अजीर्ण—भयङ्कर अजीर्ण में नारियल में छेद कर २ रत्ती अफीम उसमें रखकर आग पर पकाकर खिलाने से लाभ होता है।

आमातिसार और विसूचिका—आमातिसार और विसूचिका में अफीम, जायफल, केशर और कपूर समान भाग खरल करके २ रत्ती की गोलियाँ बनाकर जल के साथ देने से लाभ होता है।

संग्रहणी—अफीम और बच्छनाग तीन २ माशे, लोहे की भस्म १० रत्ती और अभ्रक भस्म १२ रत्ती इन चारों वस्तुओं को दूध में घोटकर एक २ रत्ती की गोलियां बनाकर दूध के साथ सेवन करना चाहिये। किन्तु सेवन करने तक जल का त्याग करके खाने-पीने में दूध का ही व्यवहार करना चाहिए।

नारु—अफीम और साँप की केन्चुली की टिकिया बनाकर नारू पर लगाने से फायदा होता है।

नासूर—मनुष्य के नाखून की राख में दो या ढाई रत्ती अफीम मिलाकर गोलियां बनाकर सेवन करने से लाभ होता है।

गठिया और आक्षेप वायु—गठिया, आक्षेप वायु, हनुस्तम्भ, प्रलाप आदि रोगों में उचित मात्रा में अफीम देने से बहुत लाभ होता है।

स्नायु पीड़ा—स्नायु-सम्बन्धी वात-पीड़ा पर अफीम का लेप करने से बहुत लाभ होता है।

दन्त पीड़ा—अफीम और नौसादर को पीसकर दांत के छिद्र में रखने से दन्तपीड़ा मिटती है।

मस्तक रोग—चार रत्ती अफीम और दो लौंग पीसकर गरम करके लेप करने से सर्दी और वादी का सिर दर्द मिटता है।

नासूर—अफीम और हुक्के के कीट की बत्ती बनाकर भरने से नासूर में लाभ होता है।

पक्वातिसार—अफीम को सेंक कर उचित मात्रा में खिलाने से पक्वातिसार मिटता है।

कर्ण पीड़ा—अफीम की आधी रत्ती भस्म गुलाब के तेल में मिलाकर कान में टपकाने से कान का दर्द मिटता है।

कंठ रोग—अफीम के डोड़े और अजवायन को पानी में औटाकर उस पानी से कुल्ले करने से बैठा हुआ गला दुरुस्त हो जाता है।

गर्भाशय की पीड़ा—अफीम के डोड़ों का क्वाथ पिलाने से बच्चा होने के बाद की गर्भाशय की पीड़ा मिटती है।

खाँसी और जुकाम—अफीम के बीज सहित ६ तोले डोड़ों का काढ़ा बनाकर उस काढ़े में ढाई छटांक मिश्री डालकर शर्बत बना लेना चाहिये। इसमें से तीन तोला शर्बत दिन में २ बार देने से खांसी और जुकाम मिटते हैं।

कमर की पीड़ा—एक तोले पोस्ते दाने में एक तोला मिश्री मिलाकर फंकी देने से कमर की पीड़ा मिटती है।

केश रोग—इसके बीजों को दूध के साथ पीस कर लेप करने से केश का दारुण रोग मिटता है।

आमाशय की सूजन—आमाशय की झिल्ली की सूजन में इसका लेप करने से बड़ा लाभ होता है।

बनावटें—अफीम पाक-अकरकरा, केशर, लवंग, जायफल, भङ्ग, सिंगरफ सब चार २ तोला। दूध में दोला* यन्त्र द्वारा सिद्ध की हुई अफीम २ तोला लेकर पीसकर छः गुनी मिश्री की चासनी में अच्छी तरह से मिलाकर चार २ माशे की गोलियां बनावें। स्त्री-प्रसङ्ग से दो घंटे पूर्व इस गोली को खाकर ऊपर से दूध पी लेना चाहिए, इससे बहुत स्तम्भन होता है।

अफीम का प्लास्टर—अफीम का बारीक चूर्ण २॥ तोला, रेजिनप्लास्टर २२॥ तोला। रेजिनप्लास्टर को गरम पानी के अन्दर पिघला कर उसमें धीरे २ अफीम को मिलाना चाहिए, किसी स्थान की वेदना को मिटाने के लिए इस प्लास्टर का उपयोग किया जाता है।

स्तम्भन बटी—एक जायफल के अन्दर बड़ा छेद करके उसमें अफीम भर कर मुँह बन्द करके उसको किसी बड़ के वृक्ष में छेद करके २१ दिन तक पड़ा रहने देना चाहिए। उसके बाद उसको निकाल कर उसमें से अफीम निकाल कर आधी २ रत्ती की गोलियाँ बनाकर दूध के साथ सेवन करने से स्तम्भन होता है।

अफीम-विष नाशक प्रयोग—(१) अगर किसी ने अफीम खा ली हो और उसके उपद्रव शुरू हो गये हों तो उसी समय उसे हींग पानी में मिला कर पिलाना चाहिए। उसी समय जहर उतर जायगा।

(२) मैनफल, नीम का क्वाथ या तम्बाखू के क्वाथ इनमें से किसी भी एक औषधि के द्वारा वमन कराने से भी अफीम का विष उतर जाता है।

(३) अरीठा भी अफीम का प्रबल शत्रु है, अरीठा के जल को पिलाने से भी अफीम का विष उतर जाता है।

(४) करमूं के शाक का रस निचोड़ कर पिलाने से अफीम द्वारा प्राण त्याग करता हुआ बीमार भी बच जाता है।

अभ्रक

नाम—संस्कृत—अभ्रक। हिन्दी—अभ्रक। बंगाली—अभ्र। फारसी—सितारा जमीन। अरबी—तलूक। लेटिन—Mica।

विवरण—अभ्रक का वर्णन करते हुए आयुर्वेद के अन्दर लिखा है कि प्राचीनकाल में भगवान इन्द्र ने वृत्रासुर को मारने के लिए वज्र उठाया, उस समय वज्र में से चिनगारियां निकल कर आकाश मण्डल में फैल गईं। फिर वे ही चिनगारियां गरजते हुए बादलों में से निकल कर जिन २ पर्वतों की चोटियों पर गिरीं, उन्हीं २ पर्वतों में अभ्रक उत्पन्न हुआ। वज्र से उत्पन्न होने के कारण संस्कृत में इसका नाम वज्र है। बादलों के शब्द से होने के कारण इसको अभ्रक कहते हैं और आकाश से गिरने के कारण इसको गगन कहते हैं।

अभ्रक एक प्रकार का खजिन द्रव्य है। इसकी रचना पतले २ परतों की तरह होती है। पर्वत के अन्दर

---

* दोला यन्त्र—एक कढ़ाई में दूध भरके उसके ऊपर दोनों कड़ों में एक लकड़ी फँसा कर उस लकड़ी में कपड़े में बँधी हुई अफीम की पोटली को बांध कर नीचे आंच लगाना चाहिये। प्रत्येक वस्तु में दोला यन्त्र में इस प्रकार आंच लगाई जाती है।

खदानों में यह बड़े २ ढोकों के अन्दर तह पर तह जमा हुआ मिलता है। साफ करके निकालने पर इसकी कांच की तरह तह निकलती है। यह आग में नहीं जलता है। इसके पत्रक पारदर्शक व मुलायम होते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक युग के अन्दर इस पदार्थ की महत्ता बहुत अधिक बढ़ गई है। इस युग की वैज्ञानिक खोज जनित समुन्नत कला कौशल में विद्युत शक्ति का कितना व्यापक हाथ है, यह किसी जानकार से छिपा नहीं है। इस विद्युत शक्ति के आश्चर्यजनक चमत्कारों को यशस्वी बनाने में यदि कोई पदार्थ सहयोग देता है तो वह एक मात्र अभ्रक है। अभ्रक के प्राकृतिक गुणों ने उसकी अतुलनीय उपयोगिता को पूरी तरह से प्रमाणित कर दिया है। यह पदार्थ विद्युत शक्ति को जिस प्रकार प्रभावशून्य कर देता है, उसी प्रकार अग्नि के प्रचण्ड प्रकोप को भी तृणवत् समझता है। इन्हीं गुणों के कारण आधुनिक युग के विज्ञान विशारद इसके गुणों पर रीझे हुए हैं।

लेकिन हमारे भारतवर्ष के अन्दर अत्यन्त प्राचीन-काल से इस पदार्थ के गुण, धर्म और इसकी उपयोगिता के विषय में जानकारी चली आ रही है। जिस अभ्रक को आजकल के वैज्ञानिक अग्नि के प्रभाव से शून्य मानते हैं, उसी अभ्रक को भारत के पुराने रसायन-शास्त्रियों ने भस्मीभूत कर डाला है, और उसकी ऐसी भस्म बना डाली है कि उसका पुनरुत्थान भी न हो सके। इससे मालूम होता है कि यहाँ के लोगों को हजारों वर्षों से इस पदार्थ की पूर्ण जानकारी रही है।

अभ्रक का भेद—आयुर्वेद के अन्तर्गत अभ्रक की ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार जातियां मानी गई हैं। इनमें से ब्राह्मण अभ्रक सफेद रङ्ग का, क्षत्रिय अभ्रक लाल रङ्ग का, वैश्य अभ्रक पीले रङ्ग का और शूद्र अभ्रक काले रङ्ग का होता है। इनमें से चाँदी बनाने के लिए सफेद, रसायन कार्य के लिए लाल, सोना बनाने के लिए पीला और औषधि कार्य के लिए काला अभ्रक लेने की सूचना दी गई है।

औषधि के कार्य में आनेवाला कृष्णाभ्रक भी पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र ऐसे चार प्रकार का बतलाया गया है। इनमें से पिनाक नाम का अभ्रक अग्नि में डालने से परत २ बिखर जाता है, इसके खाने से महाकुष्ठ रोग उत्पन्न होता है। दर्दुर नाम का अभ्रक आग में पड़ने से मेंढक के समान शब्द करता है और गोलाकार हो जाता है, इसके खाने से मृत्यु होती है। नाग नाम का अभ्रक अग्नि में पड़ने से फुँकार करती है इसके खाने से भगन्दर रोग पैदा होता है। वज्र नाम का अभ्रक अग्नि में डालने से ज्यों का त्यों रहता है, यह अभ्रक सब जातियों में उत्तम होने के कारण औषधि के उपयोग में लिया जाता है। यह सब प्रकार के रोगों तथा वृद्धावस्था और मृत्यु को हरने वाला है।

आधुनिक वैज्ञानिक लोग अभ्रक को दो प्रकार का मानते हैं जिसमें से एक का नाम 'मिस्कोवाइट मायका' (Miscovite Mica) और दूसरे को 'फ्लोगोपी माइका' (Phlogopi Mica) कहते हैं। यह दोनों ही प्रकार की बहुमूल्य जातियाँ भारतवर्ष के अन्दर काफी तादाद में पाई जाती हैं और यहाँ का अभ्रक संसार भर में सर्वोच्च श्रेणी का माना जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—रसायन शास्त्र के अनुसार अभ्रक 'अल्मूमिना' और अन्य खारदार पदार्थों का सम्मिश्रण है। इसमें 'मेगनेशिया' और 'आयरन आक्साइड' नामक पदार्थ भी कभी-कभी सम्मिलित पाये जाते हैं। अभ्रक की एक जाति को अंग्रेजी में 'वियोटाइट' कहते हैं। इसमें 'मेगनेशिया' का अंश १० से ३० प्रतिशत तक पाया जाता है। 'मिस्कोवाइट' की अपेक्षा इसमें लोहे का अंश ज्यादा होता है। मिस्कोवाइट में अल्मूमिना और सीलिसिक एसिड का भाग अधिक पाया जाता है। इसमें जल का भाग १५ प्रतिशत रहता है, परन्तु वियोटाइट में जल का भाग ७ प्रतिशत ही रहता है। अभ्रक के अन्दर सोडियम और पोटेशियम का भाग भी पाया जाता है। जिस अभ्रक में मेगनेशिया का अंश अधिक होता है, वह यदि जोरदार गंधक के तेजाब में डालकर गरम किया जाय तो गलकर विलीन हो जाता है और प्याली में सफेद सिलिका रह जाती है। अभ्रक और तेल का संयोग भी चमत्कारिक होता है। अभ्रक का सम्पर्क तेल से होते ही तेल उसकी तहों में प्रवेश करने लगता है और उसके परमाणुओं को बिखेर कर चूर चूर कर डालता है।

अभ्रक के गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत के अनुसार अभ्रक मधुर, कसैला, शीतल, धातुवर्द्धक, आयु को बढ़ाने वाला तथा त्रिदोष, घाव, प्रमेह, कोढ़, उदररोग, प्लीहा, विषविकार और कृमिरोग को नष्ट करनेवाला है।

यथाविधि पूर्णरूप से मरा हुआ अभ्रक सकल रोग नाशक, देह को दृढ़ करने वाला, वीर्यवर्द्धक, तरुण अवस्था युक्त सौ स्त्रियों से नित्य प्रति रमण करने की सामर्थ्य पैदा करने वाला तथा सिंह के समान पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करने वाला और मृत्यु के भय को दूर करने वाला है।

इसके विपरीत अशुद्ध अभ्रक अनेक प्रकार के रोग कुष्ठ, क्षय, पांडुरोग, सूजन, हृदय की पीड़ा, भारीपन और ज्वर को उत्पन्न करने वाला है।

अभ्रक आयु को स्तम्भन करने वाला, मृत्यु तथा बुढ़ापे को भगाने वाला, बल तथा आरोग्य को प्रदान करने वाला और महाकुष्ठ को नष्ट करने वाला है। यह रुचिकर्ता, कफनाशक, दीपन और शीतवीर्य है। भिन्न २ अनुपानों के साथ यह संसार के तमाम रोगों को दूर करता है। बुढ़ापा और मृत्यु को हरने वाली इसके समान दूसरी दवा नहीं है। मृत अभ्रक को सब रोगों में बरतना चाहिये, क्योंकि इसमें पारे के समान प्रभावशाली गुण विद्यमान है। देह की दृढ़ता के लिये इसको तीन रत्ती की मात्रा में उचित अनुपान के साथ खाने से चिरस्थायी यौवन प्राप्त हो सकता है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार अभ्रक दूसरे दर्जे में ठण्डा और तीसरे दर्जे में रूक्ष है। इसकी भस्म शीतजन्य मस्तिष्क रोग, बादी की कमजोरी, कामेंद्रिय की निर्बलता, श्वास, कुष्ठ, खांसी, प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय और उरःक्षत के रोगों में लाभदायक है। यह पदार्थ तिल्ली और गुर्दे को हानिकारक है। इसके दर्प को नष्ट करने वाले पदार्थ कतीरा, शहद और घृत हैं।

अभ्रक शुद्ध करने की विधि—बढ़िया वज्राभ्रक को तेज आग में तपा २ कर सात बार त्रिफले के काढ़े में बुझाओ। इसके बाद तपा २ कर सात बार गोमूत्र में बुझाओ। उसके बाद फिर तपा २ कर सात बार कांजी में बुझाओ। अभ्रक शुद्ध हो जायगी।

धान्याभ्रक की विधि—ऊपर की तरकीब द्वारा शुद्ध किये हुये अभ्रक को धूप में फैला कर सुखा लो। सूखने पर उसे खरल में डालकर खूब कूटो, ताकि महीन हो जाय। कुटी हुई अभ्रक को तोल लो। जितनी अभ्रक हो, उसका चौथाई भाग 'समूचे धान' ले लो। अभ्रक और धान दोनों को एक कम्बल के टुकड़े में बांधकर तीन दिन-रात अर्थात् ७२ घण्टों तक एक पानी का टब या बाल्टी या अन्य बर्तन में भी भींगने दो। चौथे दिन उस पोटली को पानी में* ही खूब मलो अथवा मोगरी से कूटो, जिससे सारी अभ्रक महीन होकर कम्बल के छेदों में से छन-छन कर पानी में गिर जाय। इस तरह मसलने से अभ्रक के कंकर, पत्थर वगैरह खराब पदार्थ धानों के साथ कम्बल में रह जायँगे और अभ्रक पानी में चली जायगी। उस पानी को होशियारी से नितार कर बहा दो, पर अभ्रक न जाने पावे। जो अभ्रक मिले, उसे धूप में सुखा लो। यही 'धान्याभ्रक है। अब यह अभ्रक मारने या फूंकने के काम की हुई।

अभ्रक का सत्त्व बनाने की विधि—काले अभ्रक को शास्त्रीय रीति से शुद्ध करके उसका धान्याभ्रक बनाना चाहिये। धान्याभ्रक ४० तोला, टंकण क्षार (सुहागा) १० तोला, सादा गूगल १० तोला, घी १० तोला, शहद १० तोला, चिरमी (गुञ्जा) १० तोला; इन सब वस्तुओं को कूट कर उसमें १० तोला इमली का पानी डालकर उनके छोटे २ गोले बना लेना चाहिये। इन गोलों को सुखाकर कोष्ठी-यन्त्र में रखकर कोयले की अग्नि पर चढ़ाकर धमना चाहिये, जिससे अभ्रक का सत्त्व गलने लगेगा। सत्त्व गलते समय पीले रंग की ज्वाला निकलेगी और जब सत्त्व गल चुकेगा तब विद्युत् के समान सफेद रंग की ज्वाला निकलने लगेगी। ४० तोले अभ्रक का सत्त्व निकलने में करीब ढाई-तीन घण्टे का समय लगेगा। यह सत्त्व रवे के आकार में देख पड़ता है, इसलिये उसे लोहे के चुम्बक से पकड़ कर इकट्ठा करना पड़ता है। इन इकट्ठे किये रवों को फिर से कोष्ठी-यन्त्र में रखकर आधे घण्टे की सख्त आंच देने से रवे गलकर एक ढाली पड़ जाती है। यह सत्त्व ४० तोले अभ्रक में से कम से कम ३ और अधिक से अधिक ५ तोले तक निकलता है। इस सत्त्व को निकालने के लिये काला अभ्रक ही सबसे उत्तम माना जाता है, क्योंकि उसमें लोहे का अंश विशेष भाग में रहता है। इसलिये सत्त्व निकालने के पहिले कृष्णाभ्रक को प्रारम्भ में वर्णन किये हुए ढङ्ग से अग्नि में तपाकर अच्छी तरह जांच कर लेनी चाहिये।

अभ्रक सत्त्व की भस्म—ऊपर बताये अनुसार अभ्रक का सत्त्व निकालकर, उसको कूटकर, बारीक चूर्ण

* अभ्रक पानी के बजाय 'कांजी' में भी भिगोई जाती है।

कर लेना चाहिये। उसके पश्चात् इस चूर्ण में १० वां भाग सिंगरफ डालकर उसे गवार पाठा और त्रिफला के रस या क्वाथ में एक-एक प्रकार घोटना चाहिये। उसके पश्चात् उसकी टिकड़ियां बनाकर उसे सराव सम्पुट में (मिट्टी के कुल्लड़ में) रखकर, उसका मुंह बन्द कर गजपुट (एक गज लम्बा एक गज चौड़ा और एक गज गहरा गड्ढा खोद कर उसमें जंगली कंडे भरकर आंच लगाने को गजपुट कहते हैं) में रखकर फूंक देना चाहिये। इस प्रकार बीस-साठ या एक सौ गजपुट देना चाहिये। इस प्रकार गजपुट देने से इस सत्त्व में पारे का कुछ अंश मिलता जाता है, जिससे २० गजपुट में करीब एक तोले भर वजन पारे का बढ़ जाता है। इस सत्त्व की भस्म का गुण साधारण अभ्रक भस्म से अधिक प्रभावशाली होता है। जिन २ रोगों में अभ्रक भस्म काम करती है उन सब में यह सत्त्व भस्म साधारण भस्म से कम मात्रा में अधिक प्रभावशाली कार्य करती है।

अभ्रक सत्त्व का रसायन—अभ्रक के सत्त्व को कूटकर उसको कपड़े से छानकर थोड़ा घी का हाथ देकर लोहे के तवे पर गरम करना चाहिए। जब वह लाल सुर्ख हो जाय तब उसे लोहे की खरल में डालकर घोटना, चाहिये, इस प्रकार तीन बार करने पर उसमें आठवां भाग शुद्ध गन्धक का डालकर बड़ की जटा के काढ़े में घोटकर उसकी टिकड़ियाँ बनाकर सुखा लेनी चाहिए। उसके पश्चात् उन टिकड़ियों को सराव-सम्पुट में रखकर कपड़-मिट्टी कर गजपुट में फूँक देना चाहिए। इस प्रकार ५० गजपुट बड़ की जटा के क्वाथ में और ५० गजपुट त्रिफला के क्वाथ में घोटकर देने से अभ्रक सत्त्व का रसायन तैयार होता है। इसको एक चावल की मात्रा में ५॥ माशा सोंठ, मिर्च, पीपर और वायबिडङ्ग के सम्मिलित चूर्ण के साथ देने से जठराग्नि प्रदीप्त होकर संग्रहणी के समान भयङ्कर रोग नष्ट होते हैं तथा क्षय, प्रमेह इत्यादि रोगों में बहुत लाभ पहुँचता है।

अभ्रक भस्म की विधि—दसपुटी अभ्रक भस्म—धान्याभ्रक की हुई अभ्रक को साफ खरल में डालकर आँकड़े के दूध में डालकर ४ पहर तक घोटो, फिर उसकी गोल टिकिया बनाकर सुखा लो। उस टिकिया को आक के पत्तों से लपेटकर ऊपर से डोरा बाँध दो, फिर उस टिकिया को मिट्टी की एक मजबूत सराई में रखकर ऊपर से दूसरी सराई ढँककर दोनों की सन्धियां कपड़-मिट्टी से मिला दो। उसके बाद सारी सराइयों पर कपड़-मिट्टी कर सुखा लो और गजपुट में फूंक दो। इस प्रकार सात बार उसको फूंको।

जब ऊपर की तरकीब से अभ्रक सात बार फूँक चुके, तब उसे निकालकर खरल में डालकर, उसमें बड़ की जटाओं का काढ़ा डाल-डालकर चार प्रहर घोटो और टिकिया बनाकर सुखा लो। उस टिकिया को सराई में रख, ऊपर से दूसरी सराई रख, कपड़-मिट्टी कर सुखा लो। और उसी गड्ढे में फूंक दो। यह आठ आंच हो गई। शीतल होने पर, फिर बड़ की जटा के काढ़े में घोट, टिकिया बना सुखा लो और सराई में रख, कपड़-मिट्टी कर, उसी तरह फूंक दो। यह नौ आँच हुई। शीतल होने पर, मसाले को निकाल, फिर बड़ की जटाओं के काढ़े में घोट, टिकिया बना, सुखा सराई में रख कपड़-मिट्टी कर, उसी तरह उसी गड्ढे में फूँक दो। तीन पुट बड़ की जटा के साथ देकर फूंकने से अभ्रक की 'निश्चन्द्र भस्म' हो जायेगी।

शतपुटी अभ्रक भस्म—अगर १०० आँच को या शतपुटी अभ्रक भस्म बनानी हो तो अभ्रक को पहिले आक के दूध में ७ बार खरल करके, ७ बार गजपुट में फूँक दो। फिर तीन बार बड़ की जटा के काढ़े में खरल करके तीन बार गजपुट में फूंक दो। इस तरह जब दस आंच लग जाय ग्यारहवीं बार घीग्वार के रस में खरल करके, टिकिया बनाकर सुखालो। फिर सराई में रखकर ऊपर से दूसरी सराई धरकर कपड़-मिट्टी करके, उसी गड्ढे या गजपुट में फूँक दो, फिर निकालकर घीग्वार के रस में खरल करके टिकिया बनाकर सुखा लो और सराव-सम्पुट यानी सराई में रख, ऊपर से दूसरी सराई रख, कपड़मिट्टी कर गजपुट या उसी गड्ढे में फूँक दो। इस तरह सात बार आक के दूध में, तीन बार बड़ की जटा के काढ़े में और नब्बे बार घीग्वार के रस में खरल कर करके, यानी कुल सौ बार खरलकर करके प्रत्येक बार गजपुट में फूँको, तब सौ आंच की अभ्रक भस्म तय्यार हो जायगी।

सहस्रपुटी अभ्रक भस्म—शुद्ध धान्याभ्रक लेकर उसे नीचे लिखी हुई ६३ मारक दवाइयों के रसों या काढ़ों में अलग २ बारह २ घण्टों तक खरल करके टिकिया बनाकर धूप में सुखाओ और सराइयों में बन्द करके गजपुट की आँच दो। इस प्रकार प्रत्येक औषधि में सोलह बार घोटकर आंच देने से कुल ६३ गु० १६ बराबर १००८ हो

जायगी, इसी को सहस्रपुटी अभ्रक भस्म कहते हैं। यह भिन्न २ अनुपानों के साथ तमाम रोगों का नाश करती और अतुलनीय बल, वीर्य पैदा करती है।

६३ औषधियों के नाम—१ आक का दूध २ बड़ का दूध ३ थूहर का दूध ४ घीग्वार का रस ५ अरंडी के पत्तों का रस ६ नागरमोथे का काढ़ा ७ गिलोय का काढ़ा ८ भांग का काढ़ा ९ छोटी कटेरी का काढ़ा १० गोखरू का काढ़ा ११ बड़ी कटेरी का काढ़ा १२ शालपर्णी का काढ़ा १३ पृष्ठपर्णी का काढ़ा १४ सफेद सरसों का काढ़ा १५ चिरचिरे के पत्तों का रस १६ बड़ की जटा का काढ़ा १७ बेल के पत्तों का रस या काढ़ा १८ अरनी की छाल का काढ़ा १९ चीते की जड़ का काढ़ा २० तिंदू की छाल का काढ़ा २१ हरड़ का काढ़ा २२ पाटल का काढ़ा २३ गोमूत्र २४ आंमलों का रस या काढ़ा २५ बहेड़ों का काढ़ा २६ पीपरों का काढ़ा २७ तालीसपत्र का काढ़ा २८ मूसली का काढ़ा या रस २९ अडूसे का काढ़ा ३० असगन्ध का काढ़ा ३१ मौलसरी के पत्तों का काढ़ा ३२ भांगरे का रस ३३ केले के थम्भे का रस ३४ सतवन की छाल का काढ़ा ३५ धतूरे के पत्तों का रस ३६ लोध का काढ़ा ३७ देवदारु का काढ़ा ३८ हरी और सफेद दूब का रस ३९ कसोंदी के पत्तों का रस ४० काली मिर्चों का काढ़ा ४१ अनार का रस ४२ मकोय का रस ४३ शंखपुष्पी का रस या काढ़ा ४४ अनार का काढ़ा ४५ पानों का रस ४६ पुनर्नवा का रस ४७ गोरखमुण्डी का काढ़ा ४८ इन्द्रायण की जड़ का काढ़ा ४९ भारंगी का काढ़ा ५० बड़ी तरोई का रस ५१ शिवलिङ्गी का काढ़ा ५२ कुटकी का काढ़ा ५३ टाक के बीजों का काढ़ा ५४ बन्दाल के पत्तों का रस या काढ़ा ५५ मूसाकानी के पत्तों का रस ५६ जवासे का काढ़ा ५७ ब्राह्मी का रस या काढ़ा ५८ काले जीरे का काढ़ा ५९ अगस्त का रस ६० शतावरी का काढ़ा या रस ६१ मछेछी का काढ़ा ६२ घी और ६३ दूध।

उत्तम अभ्रक भस्म की पहचान—जो अभ्रक भस्म काजल जैसी चिकनी और महीन तथा निश्चन्द्र हो, यानी जिसमें चमक न हो, वह अमृत के समान है। अगर सचन्द्र हो, यानी उसमें चमक हो तो वह विष की तरह प्राणनाशक और रोग पैदा करनेवाली है।

उपयोग—वाजीकरण—(१) सेमल की मूसली के चूर्ण के साथ, भांग के चूर्ण के साथ या चीनी और शहद के साथ अभ्रक भस्म एक से दो रत्ती तक सेवन करना चाहिये।

(२) असगंध, शतावर, सेमल की मूसली, चीते की जड़, सफेद मूसली, तालमखाने के बीज, बिदारीकंद, कोंच के बीज और कमलकंद इन सबको समान भाग लेकर पीस-छान लेना चाहिये। जितना चूर्ण हो उतनी ही निश्चन्द्र अभ्रक भस्म मिला देनी चाहिये। इस मिली हुई दवा को उचित मात्र में मिश्री और दूध के साथ सेवन करने से बेहद बलवीर्य और रतिशक्ति बढ़ती है।

क्षय—(१) सुवर्ण भस्म के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से क्षय रोग में लाभ होता है।

(२) त्रिकुटा, त्रिफला, दालचीनी, तेजपात, बड़ी इलायची, नागकेशर, मिश्री और मधु के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से क्षय के रोग में बहुत लाभ पहुँचता है।

(३) वंशलोचन, इलायची, सत्त गिलोय के साथ अभ्रक भस्म सेवन करना चाहिये। बवासीर, पित्त और खूनविकार के रोगों में भी यह अनुपान ठीक है।

प्रमेह—(१) हल्दी के चूर्ण और शहद के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से प्रमेह का रोग आराम होता है।

(२) गिलोय सत्त और मिश्री के साथ अभ्रक भस्म का सेवन करना चाहिये।

(३) शुद्ध शिलाजीत पीपलके चूर्ण और सोनामाखी की भस्म के साथ अभ्रक भस्म सेवन करना चाहिये।

(४) हल्दी और त्रिफले के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म का सेवन करने से प्रमेह आराम होता है।

(५) इलायची, गोखरू, भुई आंवले, मिश्री और शहद के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र दोनों आराम होते हैं।

बवासीर—(१) शुद्ध भिलावों के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से बवासीर के रोग में बहुत लाभ होता है।

(२) त्रिफला, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, नागकेशर, चीनी और शहद के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से बवासीर रोग का नाश होता है।

मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और पथरी—इन रोगों में जवाखार आदि क्षारों के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से बहुत लाभ होता है।

विविध रोग—संग्रहणी, आमाशय, पेट के रोग, पांडुरोग, खांसी, पेट के कीड़े, अरुचि और मंदाग्नि, इन तमाम रोगों में अभ्रक भस्म को त्रिकुटा, वायविडंग, गाय का घी और शहद के साथ देने से बेहद फायदा पहुँचता है।

हृदय रोग—अर्जुन वृक्ष की छाल के चूर्ण के साथ, हजारपुटी अभ्रक भस्म को अर्जुन की छाल के काढ़े में सात बार भावना देकर फिर हृदय रोगियों को देने से यह बीमारी दूर होती है।

जीर्ण ज्वर—अभ्रक भस्म को शहद और पीपर के साथ लेने से जीर्ण ज्वर नष्ट होता है।

नेत्र रोग—अभ्रक भस्म को त्रिफला के डेढ़ माशा चूर्ण में मिलाकर शहद के साथ चटाने से नेत्र रोग में लाभ होता है।

बुद्धिवर्द्धक—अभ्रक भस्म को बायबिडंग और त्रिकुटा के चूर्ण के साथ देने से मस्तिष्क शक्ति बढ़ती है।

कुष्ठ रोग—शहद और पीपर के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म देने से श्वास, विष, कोढ़, वायु रोग, पित्त, कफ, क्षय, भ्रम इत्यादि रोगों ने लाभ होता है।

सन्निपात—अदरक के रस और पीपर के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म देने से सब प्रकार के सन्निपात में लाभ होता है।

ज्वर—तुलसी के पत्तों के रस और पीपर के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म देने से सब प्रकार के ज्वर उतरते हैं।

उन्माद—बच के चूर्ण में अभ्रक भस्म मिलाकर ऊपर से गाय का दूध पीने से उन्माद, मृगी और अतिसार में लाभ होता है।

फिरंग रोग—कंटकारी की जड़ तथा गोल मिर्च के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म लेने से फिरङ्ग रोग (उपदंश) में लाभ होता है। इस औषधि को लेते समय नमक नहीं खाना चाहिये।

रक्तार्तव—चौलाई की जड़ और पीपर वृक्ष की छाल को चावल के धोवन में पीसकर छान लेनी चाहिये। इसके पश्चात् शहद के साथ अभ्रक चाट कर ऊपर से यह पानी पीने से मासिक धर्म में नदी को तरह बहता हुआ खून भी रुक जाता है।

बनावटें—अभ्रक का कल्प—अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म, आमला, त्रिकुटा, बायबिडंग इन सब औषधियों को समान भाग लेकर भांगरे के रस में दो प्रहर तक खूब घोटें। उसके बाद एक-एक माशे की गोलियां बनाकर छाया में सुखा लें। इन गोलियों में से पहिले वर्ष में एक-एक गोली प्रतिदिन, दूसरे वर्ष में दो-दो गोली प्रतिदिन और तीसरे वर्ष में तीन-तीन गोलियाँ प्रतिदिन सेवन करें। इस योग से तीन वर्ष में जो मनुष्य ४०० तोला अभ्रक का सेवन कर लेता है वह वज्र के समान शरीर वाला हो जाता है। इसके तीन ही महीने के सेवन से रक्तविकार, क्षय, असाध्य दमा, सब प्रकार की खाँसी, हृदयशूल, संग्रहणी, बवासीर, आमवात, शोथ, भयानक पांडु और अठारह प्रकार के कोढ़ दूर होते हैं। (रसयोग सागर)

अभ्रक हरीतकी—अभ्रक भस्म ८ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म २४ तोला, हरड़ ४० तोला, आमला ८ तोला इन सबों का चूर्ण कर एक दिन जंबीरी नींबू के रस की भावना देवें। उसके पश्चात् भांगरा, सोंठ, छिरहटा, भिलामा, चित्रक, कुरंटक, हाथीशुन्डी, कलिहारी, दूधी और जलकुम्भी इन प्रत्येक के रस में एक २ दिन खरल करें, उसके पश्चात् चीनी के पात्र में भर कर रख लेवें।

इस औषधि को बलानुसार डेढ़ माशे तक की खुराक में लेने से सब प्रकार की बवासीर दूर होती है। बवासीर रोग की यह एक महौषधि है। (आयुर्वेदीय कोष)

अभ्रक गुटिका—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपर, भुना सुहागा, कांतिसार, अजमोद, अफीम सब एक २ तोला और अभ्रक भस्म १० तोला, इन सब को लेकर चित्रक के काढ़े में एक दिन तक खरल करके काली मिर्च के बराबर २ गोलियां बना लें। इन गोलियों को एक मास तक सेवन करने से संग्रहणी दूर होती है।

विशेष—इनके अतिरिक्त अभ्रक भस्म से अग्निकुमार रस, कन्दर्पकुमार अभ्र, हरिशंकर रस, अर्जुनाभ्रक, शृङ्गाराभ्रक, बृहत् चन्द्रामृत रस इत्यादि मूल्यवान औषधियां बनती हैं।

अमरबेल

नाम—संस्कृत—आकाशवल्ली, दुस्पर्शा, व्योमवल्लिका, अमरवल्लरी। हिन्दी—अमरवेल। गुजराती—अमरबेल। मराठी—अमरबेल। बंगाली—आलोक लता। अरबी—अफतीमून। फारसी—कसूसे हिन्द। लेटिन—Cuscutareflexa (कुसकुटारिफ्लेक्सा)

वर्णन—यह पीले रंग की, पराश्रयी लता है, जो बबूल, बेर, पीपल, गूलर इत्यादि वृक्षों के ऊपर जाले की तरह छा जाती है। इस बेल में से चूसने वाले सूत्र (Suckers) निकल कर जिस वृक्ष पर यह बेल फैली हुई रहती है, उस झाड़ की डालियों का रस चूसते रहते हैं। यह बेल बड़ी और छोटी के हिसाब से दो प्रकार की होती है। यूनानी चिकित्सा के अन्दर जो गुण अफतीमून के माने गये हैं। वही गुण वैद्यकग्रन्थों में भी प्रायः आकाशबेल के माने जाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मतानुसार अमरबेल तीखी, मधुर, पित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, रसायन और दिव्यौषधि है।

यूनानी मत से इसके बीज कड़वे, उपशामक, ऋतुस्राव को नियमन करने वाले, पेशाब को साफ लाने वाले, धातुपरिवर्तक, यकृत् और तिल्ली की बीमारी में फायदा पहुँचाने वाले हैं। यह बेल चौथिया, पाली, (जूड़ी), एकतरा और बुखार को दूर करती है तथा जीर्ण ज्वर, आँतों में दर्द और कुक्कुर खाँसी में लाभ पहुँचाती है, यह बेल खून और आँतों को साफ करती है। इसका सत आँखों की बीमारियों में दिया जाता है।

सिंध और पञ्जाब के स्थानीय डाक्टर इसको शरीर के रसों को शुद्ध करने वाली समझते हैं। रक्तशुद्धि के लिये सार्सापारिला के साथ यह इस्तेमाल की जाती है। इसके बीजों को उबाल कर पेट पर बाँधने से पेट का आफरा दूर होता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डा० नाडकर्नी के मतानुसार अमरबेल का काढ़ा कब्जियत, लिबर की बीमारियां तथा पित्तविकार में उपयोगी होता है और खून शुद्ध करने के लिये इसका सार्सापरिला के साथ प्रयोग करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से मालूम होता है कि इस औषधि का यकृत् और तिल्ली के ऊपर सीधा प्रभाव होता है और इन दोनों के दोष से जितनी बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, उन सब में यह फायदा पहुँचाती है।

प्रयोग—यकृत् की वृद्धि—यकृत् की वृद्धि और उसकी कठोरता को मिटाने के लिये अमरबेल का काढ़ा पिलाना चाहिये तथा पेट पर इसका लेप करना चाहिये।

रक्तविकार—उसबे के साथ इसका क्वाथ, शहद मिलाकर पीने से रुधिर शुद्ध होता है।

आफरा—इसके बीजों को उबालकर पेट पर बांधने से डकारें, अपशब्द आदि दूर होकर पेट की पीड़ा मिट जाती है।

पुराना घाव—इसके चूर्ण में सोंठ और घी मिलाकर लेप करने से पुराना घाव भरता है।

खुजली—इसको पीसकर लेप करने से खुजली में फायदा होता है।

बनावटें—शर्बत दीनार—अमरबेल के बीज १॥ तोला, कासनी के बीज २ तोला, गुलाबके फूल दो तोला, कासनी की जड़ की छाल ४ तोला, नीलोफर के फूल १ तोला, गावजबान के पत्ते १ तोला, इन सब वस्तुओं में से अमरबेल को छोड़कर बाकी सब वस्तुओं को कूट लेना चाहिए और अमरबेल को कपड़े की एक थैली में डालकर तीन सेर पानी में चूर्ण के साथ आग पर चढ़ा देना चाहिए। जलते २ जब जल १ सेर रह जाय तब उसमें १॥ सेर शक्कर डाल कर एक तार की चासनी बना कर शर्बत बना लेना चाहिए। इस शर्बत को सबसे पहले हकीम नहसू ने बनाया था और उस समय यह दीनार के बराबर (मुगल काल का सिक्का) तोल कर बिकता था, इसी से इसका नाम शर्बते दीनार पड़ा।

यह शर्बत धातु-परिवर्तक है। इसको १ से २ रुपये भर के प्रमाण में पानी के साथ पीने से यह बुखार और शरीर के दूसरे दोषों को सुधारता है। जलोदर, हाथ-पैरों की सूजन, पसली का दर्द तथा लीवर, पेट, गुर्दा तथा योनि के तमाम विकारों में यह लाभ पहुंचाता है।

अफतीमून

नाम—फारसी—अफतीमून। हिन्दी—अमरबेल बिलायती। लेटिन—Cuscuta Epythymum (कसक्यूटा एपीथीमम)

वर्णन—इसका रूपरंग सब देशी अमरबेल से मिलता-जुलता है, जिसका वर्णन ऊपर कर दिया है।

गुण-दोष और उपयोग—यूनानीमत—यूनानी के प्रसिद्ध ग्रन्थ मखजनूल अदविया और तर्जुमा नफीसी में इसका जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार यह औषधि तीसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में रूक्ष है। यह गरम प्रकृति वालों को तथा नौजवान मनुष्यों को हानि पहुँचाने वाली है, यह मूर्च्छा को पैदा करने वाली और तृषाजनक है। इसके प्रतिनिधि निसोथ, पित्तपापड़ा, उस्तखद्दूस इत्यादि चीजें हैं, तथा इसके दर्प को नष्ट करने के लिए शर्बत अनार, शर्बत संदल और केसर इत्यादि चीजें हैं।

यह औषधि अपने गरम और रूक्ष स्वभाव की वजह से वातव्याधियों को दूर करती है और अधेड़ और वृद्ध मनुष्यों की प्रकृति को साम्य अवस्था पर लाती है। नवयुवकों के अन्दर यह प्यास और मुखशोष पैदा करती है। यह सूजन के अन्दर तथा मस्तिष्क के अन्दर लाभ पहुँचाती है। खून और चर्मरोगों में भी यह हितकारी है।

इसके बीज जिन्हें कशूज कहते हैं, वे भी गरम और रूखे होते हैं। ये पेशाब और पसीना लाने वाले, रजः-प्रवर्तक, दुग्धवर्धक तथा प्रकृति को मुलायम करने वाले हैं।

अमरूद

नाम—संस्कृत—पेरूकम्, दृढबीजम्। हिन्दी—जामफल, अमरूद। गुजराती—जामफड़े। मराठी—पेरू। बंगाली—पियारा। तेलंगी—गोइया। द्राविड़ी—कोइया। कर्नाटकी—शिवे। अरबी—कमसुरा। लेटिन—Psidium Guyavia.

विवरण—अमरूद या जामफल सारे भारतवर्ष में सब और बगीचों में होता है। इसे सब लोग जानते हैं, इससे विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—अमरूद, मधुर ग्राही, किंचित् खट्टा तथा पकने पर स्वादिष्ट, शीतल, तीक्ष्ण, भारी, कफकारक, वातवर्द्धक, त्रिदोषनाशक तथा श्रम, दाह और मूर्च्छा को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में ठण्डा और तर तथा दूसरे दर्जे में उष्ण प्रकृति युक्त है। शीत प्रकृति वाले को तथा जिसका आमाशय निर्बल है, उसके लिए यह हानिकारक है।

यह बलकारी, मृदु, मन को प्रसन्न करने वाला, क्षुधा को बढ़ाने वाला तथा हृदय और पाचनशक्ति व मस्तिष्क को बल देने वाला है। इसके पत्ते अतिसार और व्रण को नाश करने वाले हैं। इसके फूल हृदय को बल देने वाले, खून को बन्द करने वाले तथा अतिसार को नष्ट करने वाले होते हैं। इसका लेप आँखों की सूजन को मिटाता है। मीठा अमरूद पेचिश में लाभदायक है। भोजन के बाद लेने से यह मृदुविरेचन का काम करता है। इसके काढ़े का बच्चों के अतिसार में सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

बच्चों के गुदभ्रंश रोग में भी इसका काढ़ा फायदेमंद साबित हुआ है। इसके छोटे पत्ते पाचन-क्रिया सम्बंधी विकारों को नष्ट करते हैं। हैजे के रोग में भी इसका काढ़ा उपयोग में लिया गया है और उसमें कुछ दर्जे तक सफलता भी प्राप्त हुई है। दांतों के दर्द में इसके पत्तों को चबाने से लाभ मालूम हुआ।

वेस्ट इण्डीज में इसके काढ़े का स्नान ज्वरनाशक और आक्षेपनिवारक माना गया है। गठिया की बीमारी में इसका लेप किया जाता है। इसके पत्तों का अर्क मूर्च्छा व कम्पवात में दिया जाता है। इसका मुरब्बा अतिसार व रक्तातिसार वालों के लिए लाभदायक है।

रासायनिक विश्लेषण—डा० चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ व छाल में टेनिन एसिड काफी मात्रा में रहता है इसके अतिरिक्त केल्सियम और आक्जेलेट के रवे भी इसमें पाये जाते हैं। इसके पत्तों का काढ़ा मसूड़ों की सूजन और मुँह के फोड़ों में कुल्ले करने के काम में लिया जाता है। इसकी जड़ का छिलका उत्तम संकोचक, ज्वरनिवारक और आत्तेपनिवारक औषधि है। इसके फल दस्तावर और इसके पत्ते रोचक हैं।

उपयोग—भंग का नशा—जामफल के पत्तों का रस पिलाने से या जामफल खाने से भंग का नशा उतरता है।

बच्चों का पुराना अतिसार—इसकी सवा तोले जड़ को पन्द्रह तोले पानी में औटा कर, जब साढ़े सात तोला पानी रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये। इस काढ़े में से छः माशे पानी दिन में तीन बार पिलाने से बच्चों का पुराना अतिसार बन्द होता है।

हैजा—इसके पत्तों का काढ़ा बना कर पिलाने से हैजे की दस्त, उल्टी बन्द हो जाती है।

पुराना अतिसार—इसके कोमल पत्तों की व जड़ की छाल का काढ़ा बनाकर पीने से पुराने अतिसार में लाभ पहुँचता है।

दंतपीड़ा—इसके पत्तों को चबाने से दाँतों की पीड़ा दूर होती है।

अमरूल

नाम—संस्कृत—अम्लिका। बम्बई—अम्बुटी। तामील—पलियाकिरी। हिन्दी—अमरूल। लेटिन—Rumex Adentatus (रूमेक्स एडेन्टेटस)।

वर्णन—यह औषधि भी अमलवेत का ही एक दूसरा प्रकार है। यह विशेषतः खानदेश, दक्षिणी भारत और कुमायूँ में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते बुखार, अतिसार और बच्चों के स्कर्वी (Scurvy) रोग में काम में लिये जाते हैं। अतिसार के अन्दर इसके पत्तों का ताजा रस शक्कर या शहद मिलाकार लेने से फायदा पहुँचता है। पंजाब और सीमाप्रान्त में इस सारे झाड़ का रस फोड़ों को दूर करने के काम में लिया जाता है।

अमलतास

नाम—संस्कृत—नृपद्रुमः, आरग्वधः, हेमपुष्पः, दीर्घफलः, व्याधिघातः। हिन्दी—अमलतास, घनबहेड़ा। मारवाड़ी—करमाड़ो। गुजराती—गरमाड़ो। मराठी—वाहवोह। बंगाली—सोनालू। तेलंगी—रेलचट्टू। कर्नाटकी—कक्केमर। लेटिन—Cassia Fistula (केसिया फिस्चूला)

परिचय—अमलतास के पौधे हिन्दुस्तान में सब ओर होते हैं। इसके वृक्ष बहुत ऊँचे नहीं होते। इसके पेड़ की गोलाई ३ से ५ फीट तक होती है। इसके झाड़ में दो-डेढ़ फुट लम्बी काले रंग की फलियाँ लगती हैं, जो शीतकाल में पकती हैं। फली के भीतर छोटे २ खाने बने हुए होते हैं और उसमें काले रंग का गोंद के समान एक लसदार पदार्थ भरा रहता है जो कि उसका गिर कहलाता है। इस झाड़ की शाखाओं में से एक प्रकार का लाल रस निकलता है, जो जमकर गोंद सरीखा हो जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मतानुसार-अमलतास भारी, स्वादिष्ट, शीतल, मृदुरेचक (हल्का जुलाब) तथा ज्वर, हृदय रोग, रक्तपित्त, वात, उदावर्त और शूल को नष्ट करने वाला है। इसकी फली रुचिकारक, कुष्ठनाशक, पित्तनिवारक, कफ नष्ट करने वाली, कोठे को शुद्ध करने वाली, तथा ज्वर में पथ्य है। इसके पत्ते कफ और मेदा को शोषण करने वाले और मल को ढीला करने वाले हैं। इसके फूल स्वादिष्ट, शीतल, कड़वे, कसैले, वातवर्द्धक तथा कफ और पित्त को दूर करने वाले हैं। इसकी मज्जा जठराग्नि को बढ़ाने वाली, स्निग्ध, पाक में मधुर, रेचक तथा वातपित्त को नष्ट करने वाली है। इसकी जड़ दूध में औटाकर देने से वात-रक्तनाशक, दाह और दाद को नष्ट करने वाली है। इसकी जड़ चर्मरोग, कोढ़, क्षयरोग व उपदंश में उपयोगी है। इसके पत्ते मृदुरेचक, सामयिक ज्वर को दूर करने वाले, घाव को जल्दी पूरने वाले तथा गठियावात में अधिक लाभ पहुँचाने वाले होते हैं। अग्निविसर्प रोग में इनका रस दिया जाता है। इसकी फलियां मृदुरेचक, ज्वरविनाशक और स्वाद को दुरुस्त

करने वाली होती हैं। ये कफ, पित्त, चर्म रोग और कुष्ठ को आराम करती हैं। इसके फूलों में सुगन्ध आती है। फूलों का स्वाद कटु और तिक्त रहता है। ये ठंडे और संकोचक होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम, तर और किसी २ के मत से मउतदिल अर्थात् समशीतोष्ण है। इसके पत्ते प्रदाह को नाश करने वाले और फूल विरेचक हैं। इसके फल स्वाद में खराब और एक प्रकार की हीक लिये हुए रहते हैं। यह ज्वर को नाश करने वाला, गर्भस्रावक और शांतिदायक होता है। छाती की तकलीफ, गले की तकलीफ, नेत्ररोग, गठियारोग और आँतों के दर्द को दूर करता है। इसकी जड़ प्रायः पौष्टिक और ज्वरनाशक औषधि के रूप में दी जाती है। यह एक तेज विरेचक का भी काम करती है। कोंकण में इसके पत्तों का रस दाद की दवा के रूप में लगाया जाता है।

डा० चोपड़ा के मतानुसार इसके बीज विरेचक हैं तथा गठिया और सर्पदंश में इनका उपयोग किया जाता है। चरक, सुश्रुत और योगरत्नाकर के कर्ता भी इसको दूसरी औषधियों के साथ सर्पदंश और वृश्चिकदंश में उपयोगी मानते हैं। मगर केस और मस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश और वृश्चिकदंश में बिल्कुल निरुपयोगी सिद्ध हुआ है।

रासायनिक विश्लेषण—फल के बारीक चूर्ण में भपके द्वारा अर्क खींचने से एक मधुर गंधयुक्त श्याम तथा पीले रंग का एक उड़नशील तेल प्राप्त होता है। तैलीय अर्क में साधारण ब्यूटिरिक एसिड होता है। फल व गूदा में शक्कर ६० परसेंट, लुआब, संग्राही पदार्थ, ग्लूटिन, रेजिन, पेक्टीन, केलशियम ऑक्जेलेट, भस्म, निर्यास और जल ये द्रव्य पाये जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से मालूम होता है कि यह औषधि आमाशय के ऊपर अपना मृदुप्रभाव डालकर कोमल विरेचन करती है। इसलिए कमजोर आदमियों को तथा गर्भवती स्त्रियों को भी विरेचक औषधि के रूप में यह औषधि दी जा सकती है।

अमलतास का कल्प—कल्प किया हुआ अमलतास साधारण अमलतास से ज्यादा गुणकारी होता है और चार वर्ष के बच्चे को भी आसानी से हजम हो सकता है तथा कोई हानि नहीं पहुँचाता। इसलिए अमलतास को काम में लेने के पहिले अगर उसका कल्प कर लिया जाय तो विशेष अच्छा रहता है। इसकी विधि इस प्रकार है—अमलतास का पका हुआ फल लाकर एक सप्ताह तक बालू के ढेर में गाड़ दिया जाय। फिर उसे धूप में सुखा लिया जाय। इस फल के गूदे को दाख के रस के साथ देने से उत्तम विरेचन होता है और कोई हानि नहीं होती।

प्रयोग—चर्मरोग—अमलतास के पञ्चांग (जड़, छाल, फल, फूल और पत्ते) को जल के अन्दर पीसकर दाद, खुजली और दूसरे चर्मविकारों पर लगाने से जादू के समान असर होता है। मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, पेशाब के साथ खून गिरना आदि विकारों पर इसका गूदा नाभि पर लेप करने से बहुत फायदा होता है। लेप सूख जाने पर उखाड़ देना चाहिये और रात में लेप नहीं करना चाहिए।

श्वास की रुकावट—इसकी गिरी का क्वाथ पिलाने से लघु विरेचन होकर श्वास की रुकावट मिटती है।

सुन्नवात व गठिया—इसके पत्तों को गरम करके इनकी पुल्टिस बाँधने से सुन्नवात, गठिया और अर्दित में फायदा होता है।

अण्ड-वृद्धि—इसकी डेढ़ तोले गिरी को दस तोले पानी में औटाकर ढाई तोला रहने पर उसमें तीन तोले गाय का घी मिलाकर खड़े-खड़े पीने से अण्ड-वृद्धि में लाभ होता है।

कण्ठमाला—इसकी जड़ को चावलों के पानी के साथ पीसकर सुंघाने और लेप करने से कण्ठमाला में फायदा होता है।

कब्जियत—अमलतास का गूदा और इमली का गूदा दोनों को समान भाग लेकर, भिगोकर, उसको पानी के साथ मल-छानकर रात को सोते समय पीने से सबेरे साफ दस्त हो जाता है।

कर्णरोग—इसके क्वाथ को कान में डालने से पीब बहना बन्द हो जाता है।

कुष्ठ—कुष्ठ, दाद इत्यादि त्वचा रोगों पर इसके पत्तों को सिरके के साथ पीसकर लेप करने से लाभ होता है।

बालक का आफरा—बालकों के आफरा और पेट के शूल में इसकी गिरी को नाभि के चारों ओर लेप करने से लाभ होता है।

सुख प्रसव—अमलतास के छिलके को औटाकर उसमें शक्कर मिलाकर पिलाने से गर्भवती स्त्री को आराम से प्रसव हो जाता है।

हरिद्रा-प्रमेह—अमलतास के पत्तों और जड़ का क्वाथ बनाकर हरिद्रा-प्रमेह में देने से लाभ होता है।

बनावटें—**अमलतासादि तैल**—अमलतास के पत्ते, चकौर के पत्ते, मैंसल, हल्दी, कूठ, दारुहल्दी, पीपर, गन्धक इन सब औषधियों को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर लुग्दी बनाकर कड़वे तेल में पका लें, इस तेल को फोड़ा, फुंसी, दाद, खुजली आदि चर्मरोगों पर लगाने से बहुत लाभ होता है।

अमलतासादि अवलेह—नीबू के एक सेर रस में आधे सेर अमलतास की फलियों को कूटकर डाल दें। दो दिन भीगने के बाद स्वच्छ वस्त्र में डालकर हाथ से हिला २ कर छान लें। उसके पश्चात् दालचीनी, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपर, भुनी हुई हींग, छोटी इलायची के दाने और बड़ी इलायची के दाने इन सब को दो-दो तोला लेकर लोहे की खरल में पीसकर कपड़छन कर उसमें मिला दें। इसके पश्चात् सेंधानमक, कालानमक, अग्नि पर भुना हुआ कालादाना और भुना हुआ सफेद जीरा ये चारों चीजें भी पीसकर उसमें मिला दें।

इस अवलेह को ३ माशे से लेकर एक तोले की खुराक तक चाटने से मन्दाग्नि और आलस्य दूर होते हैं। रात्रि को चाटकर सोने से प्रातःकाल साफ दस्त हो जाता है। चित्त खूब प्रसन्न रहता है। भोजन में अरुचि होने पर दो घण्टे पहिले चाट लेने से भोजन में रुचि पैदा हो जाती है। ज्वर के अन्दर मुख का जायका बिगड़ा रहता है, वह इससे शुद्ध हो जाती है। इस अवलेह में पाँच तोले मुनक्का को नींबू के रस में पीसकर मिला देने से तथा थोड़े पके हुए अनार के दानों का रस मिला देने से इसकी गरम प्रकृति भी शीतल हो जाती है। इस औषधि को हमेशा मिट्टी या चीनी के पात्र में बनाना चाहिए। धातु के पात्र में कभी भी नहीं बनाना चाहिए।

अमलतासादि अरिष्ट—अमलतास का गूदा एक सेर, जमालगोटे की जड़ एक सेर, गुड़ एक सेर, धाय के फूल ५ तोला, सोंठ ५ तोला, कालीमिर्च ५ तोला, पीपर ५ तोला, पानी ३२ सेर। सबसे पहिले पानी में जमालगोटे की जड़ का क्वाथ बनाकर जब चौथाई जल शेष रहे, तब उसमें अमलतास का गूदा और गुड़ तथा दूसरी सब दवाओं का चूर्ण मिलाकर घी के घड़े में (हांडी में) भरकर मुँह बन्द करके जमीन में गाड़ दें। एक महीने के बाद उसको निकालकर, छानकर बोतलों में भर दें। इस अरिष्ट को सुबह-शाम ढाई तोले की मात्रा में देने से यह पेट की सब बीमारियों को नष्ट करता है। धन्वन्तरि के बूटी-चित्राङ्क में एक वैद्य महोदय ने लिखा है कि इस अरिष्ट के साथ 'नारायण' चूर्ण का सेवन करने से असाध्य पेट के रोगी भी आराम हुए हैं।

माजून अमलतास—गुलाब के फूल ७ तोला, सनाय मक्की ७ तोला, सूखी धनियां १ तोला, सत मुलहठी (रब्बेसूस) १ तोला, सेंधानमक १ तोला, इन सब औषधियों को कूट-पीसकर बरसात के झेले हुए (Rain water) २ सेर पानी में भिगो दें। फिर १२ तोला अंजीर, ६ तोला इमली, ५ तोला आलूबुखारा और २० तोला अमलतास का गूदा, इनमें से पहली तीन चीजों का काढ़ा बनाकर अच्छी तरह मिलाकर चलनी से चाल लें। फिर अमलतास को भी उस जल में भिगोकर हलकी आँच से कुछ देर पकावें और फिर अच्छी तरह से मिलाकर चलनी से चाल लें, उसके पश्चात् एक सेर शक्कर मिलाकर उसे गाढा होने तक अग्नि पर पकाना चाहिए, फिर उतारकर बारीक की हुई दवाइओं को उसमें मिला कर उनमें चार तोला रोगन बादाम मिला लें। रोगन बादाम ठंडा होने पर मिलावें नहीं तो जलने का अंदेशा रहता है।

यह माजून प्रत्येक प्रकृति वालों के लिए आँतों की रूक्षता को मिटाकर उनको मृदु करने में लाभकारी है। विशेषकर अर्श रोगी के लिए यह बहुत फायदेमन्द है।

इसकी खुराक ४ माशे से ८ माशे तक है, जो पानी के साथ रात को सोते समय दी जाती है।

अमलवेत

नाम—संस्कृत—अम्लवेतस, चुक्र, शतवेधी, सहस्रजित्, अम्ल, रसाम्ल, भीम, अम्लनामक। हिन्दी—अमलवेत, चूका, अम्बेरी। बङ्गाली—थेकड़ अम्लवेतस। मराठी—चूका। गुजराती-अमलवेत। तामील—शेकंकिराई। तैलगू—चुकाकुरा। अरबी-हमाफ़, ह्यूमर बोस्तानी, हंबीजित, अमलवेत। फारसी—तुरस्क, तुरशाह, तुरशुमुक। पञ्जाबी—खट्टामीठा, खटबीरी, खट्टातान, साळुनि। लेटिन—Rumex Vesicarius (रूमेक्स व्हेसीकेरिअस)। इङ्गलिश—Bladder Dock, sorrel.

वर्णन—यह एक हल्के हरे रङ्ग की वर्षजीवी वनस्पति है। इसके पत्ते तीखी नोक वाले होते हैं। इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है। यह दो जाति का होता है। एक को अमलवेत व दूसरे को वेंती कहते हैं। यह पेड़ मालियों के बगीचों में बहुत होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और फल गोल खरबूजे के समान, कच्ची हालत में हरे और पकने पर पीले पड़ जाते हैं। यह चिकना होता है। इसके बीज 'तुख्म हमाज' के नाम से बाजार में बिकते हैं।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत–आयुर्वेद के मतानुसार अमलवेत अत्यन्त खट्टा, भेदक, हलका, अग्निदीपक, पित्त बढ़ानेवाला, रूखा तथा हृदय रोग, पेट दर्द, वायुगोला, कब्जियत, प्लीहा, हिचकी, शराब से पैदा हुई विकृति, श्वास, खांसी, अजीर्ण और वात रोग को हरनेवाला है। इसके रस में लोहे की सूई डालने से वह गल जाती है। चरक के मतानुसार इसके पत्ते सर्पविष को दूर करनेवाले और बीज बिच्छू के जहर को नाश करनेवाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि ठंडी, पौष्टिक और खुजली की बीमारी में उपयोगी है। मंदाग्नि को दूर कर यह भूख को बढ़ाती है। अपने सङ्कोचक गुण की वजह से यह जी का मिचलाना बन्द करती है। इसके पत्ते ठंडे और मृदुविरेचक होते हैं जो मूत्रनिस्सारक औषधि की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। इसका रस दाँतों की तकलीफ को कम करता है। अपने ठंडे स्वभाव की वजह से यह पेट की गर्मी का शमन कर भूख को बढ़ाती है। इसके रस को लगाने से जहरीले जानवरों के डंक की पीड़ा दूर होती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि अग्निदीपक, मूत्रनिस्सारक और संकोचक है। साँप और बिच्छू के जहर पर इसका उपयोग किया जाता है।

केस और मस्कर के मतानुसार सर्पदंश और बिच्छू के डंक पर इसके पत्ते और बीज दोनों ही निरुपयोगी सिद्ध हुए हैं। लाक्षणिक और विषनिवारक दोनों ही उपचारों में इसका कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

उपयोग—आमाशय की दाह—इसके पञ्चांग का रस पिलाने से आमाशय की जलन शान्त होती है।

बिच्छू का जहर—इसके पत्तों को पीसकर लेप करने से बिच्छू और दूसरे जानवरों के डंक में फायदा होता है।

आमातिसार—इसके बीजों को सेक कर उनका चूर्ण बनाकर फंकी देने से आमातिसार में लाभ पहुँचता है।

अमसानिया (एफीड्रा व्हलगेरिस)

नाम—पंजाब—अमसानिया, बुतसुर, चेवा, केवा। अफगानिस्तान—हुमहुमा। सतलज—फोक। लेटिन्—Ephedra Valgaris (एफीड्रा व्हलगेरिस), Ephedra Gerardiana.

वर्णन—यह एक प्रकार का कठोर और गठा हुआ पौधा होता है। इसकी जड़ें परस्पर में लिपटी हुई होती हैं। इसकी शाखायें खड़ी और चिकनी होती हैं। इसके फूल गोलाकार और फैले हुए रहते हैं। इसके फल गोल, लाल, मीठे और स्वादयुक्त रहते हैं।

यह औषधि पश्चिमी हिमालय, अफगानिस्तान, चीन, पश्चिमी मध्य एशिया, पूर्वीय फारस, यूरोप तथा हिमालय पहाड़ पर ८००० फीट से लेकर १४००० फीट की ऊँचाई तक मिलती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद और यूनानी के अन्दर इस औषधि का वर्णन दिखलाई नहीं देता।

इण्डियन मेडिसिनिल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसकी जड़ और लकड़ी का काढ़ा रूस में आमवात और फिरङ्ग रोग में दिया जाता है। इसके फल का रस श्वास-क्रिया प्रणाली के रोगों में देने के काम में आता है। चीन में इसकी पतली शाखायें ज्वरनिवारक मानी गई हैं।

आधुनिक अन्वेषणों के अन्दर इस औषधि ने बहुत महत्त्व प्राप्त किया है, जिसका वर्णन कर्नल चोपड़ा के ग्रन्थ के आधार पर नीचे किया जाता है।

आधुनिक काल में कुछ औषधियों ने संसार के चिकित्सकों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया है। इन औषधियों में अम्सानिया के अन्दर पाया जानेवाला उपक्षार जो एफीड्राइन (Ephedrine) के नाम से प्रसिद्ध है वह

भी एक प्रधान है। इस विषय पर कई अनुभव किये जा चुके हैं। प्रोफेसर बी० ई० रीड ने भी इस विषय के ऊपर अपना पूरा ध्यान दिया है। उनकी पुस्तकों का अवलोकन करने से इस विषय का विस्तृत वर्णन प्राप्त हो सकता है। यह पदार्थ चीन में गत पाँच हजार वर्षों से उपयोग में लिया जा रहा है। इस वनस्पति का सम्बन्ध सिर्फ चीन से नहीं है, प्रत्युत इसका भौगोलिक विस्तार बहुत बड़ा है। इसकी पैदाइश पृथ्वी के सभी भागों पर फैली हुई है। भारतवर्ष के अन्दर हिमालय से शुष्क प्रान्तों में भी इस जाति की वनस्पतियां पैदा होती हैं।

भारतवर्ष के अन्दर इस औषधि का उपयोग नहीं देखा जाता। आयुर्वेद और तिब्बी ग्रन्थों में भी इसका कहीं वर्णन नहीं मिलता। यह कहा जाता है कि एफीड्रा (Ephedra) की एक जाति—जिसे एफीड्रा इण्टरमीडिया कहते हैं--यह वही प्रसिद्ध सोमवृक्ष है, जिससे कि वैदिक काल में ऋषि लोगों का परमप्रिय पेय तैयार किया जाता था, किन्तु इस कथन को पुष्ट करने के लिये उचित प्रमाणों का अभाव है।

चिकित्सा शास्त्र के अन्दर एफीड्राइन का बहुत अधिक उपयोग और उसकी बहुमूल्य कीमत को देखकर कर्नल चोपड़ा ने सन् १६२६ में इस औषधि का रासायनिक संगठन और अनुसन्धान किया। एफीड्राइन की फुटकर कीमत ६००) प्रति पौण्ड है। इसके इतने मँहगे होने के कारण एक इसी से मिलते-जुलते उपक्षार स्यूडो एफीड्राइन (Pseudo Ephedrine) का भी परीक्षण किया गया।

सन् १८६० में मि० वाट ने हिन्दुस्तान में पैदा होने वाली तीन जातियों का वर्णन किया है।

(१) एफीड्रा व्हलगेरियस जिसको कि एफीड्रा गिरारडियाना (Gerardiana) और एफीड्रा डिस्टच्या (E. Distachya.) और एफीड्रा मोनोस्टच्या (E. Monostachya) भी कहते हैं, और जिसे देशी भाषाओं में असमानिया, चेवा, बुतशुर, खंडा, खामा, कुनावर तथा फोक इत्यादि नामों से भिन्न-भिन्न प्रांतों में पहचानते हैं।

(२) एफीड्रा पचीक्लेडा (E. Pachyclada) जो कि एफीड्रा इन्टरमीडिया (E. Intermedia) के नाम से प्रसिद्ध है। इसे फारस में हुमा, बम्बई में गेमा और पश्तो में ओमान कहते हैं।

(३) एफीड्रा पेडनक्यूलोरिस (E. Penduncloris), जिसे भारतीय भाषाओं में कुचन, नीकी कुरकर, ब्राटा, टंडला, लस्तुक, मंगलख और बन्दूकी कहते हैं।

उपर्युक्त तीन जातियों के अतिरिक्त दो जातियाँ और पाई जाती हैं, जिनके नाम एफीड्रा फोलियेटा (E. Foliata) और एफीड्रा फ्रेगलिस (E. Fragilis) कहते हैं। ये दोनों जातियाँ उपर्युक्त तीनों जातियों से तुलना में कम महत्त्व की हैं।

ये सभी जातियाँ उत्तरी भारत के भिन्न २ स्थानों में पैदा होती हैं। भिन्न २ स्थानों की वनस्पतियों का विश्लेषण करने से मालूम हुआ है कि उत्तर, पश्चिम भारत के शुष्क स्थानों से प्राप्त हुये एफीड्रा में चीन के एफीड्रा की अपेक्षा क्षार की मात्रा ज्यादा रहती है।

सन् १६२६ में कर्नल चोपड़ा और उनके सहयोगी लोगों ने झेलम प्रान्त की पहाड़ियों पर पैदा होनेवाली दो जातियों का वर्णन किया है जो अपनी उपक्षार की बहुलता के कारण विशेषरूप से ध्यान आकर्षित करती हैं।

(१) इनमें से पहली एफीड्रा व्हलगेरियस अथवा एफीड्रा गिरारडियाना है, इसके क्षारीय तत्त्वों का अनुपात '८ से १'४ प्रतिशत तक है। इसमें से करीब आधे तो एफीड्राइन हैं और बाकी के स्यूडो एफीड्राइन हैं। इसके तनों के अन्दर जितना क्षार मिलता है, उससे इसकी हरी डालियों में चौगुना उपक्षार अर्थात् एफीड्राइन होता है।

(२) दूसरी जाति एफीड्राइन इन्टरमेडिया है। इसके अन्दर '२ से १ प्रतिशत तक उपक्षार की मात्रा पाई जाती है और बाकी का स्यूडो एफीड्राइन होता है।

सन् १८८७ में इस बात का पता लग जाने पर कि एफीड्राइन एक काम की वस्तु है, इस विषय में कई अनुसंधान किये गये तथा इसके रासायनिक तत्त्वों पर भी विशेष लक्ष्य दिया गया। सन् १६२४ में चेन (Chen) और स्कमिट (Schmidt) ने अपने अनुसंधानों में इसकी क्रिया, गुण और धर्म का वर्णन किया और एफीड्राइन की एड्रोलाइन नामक वस्तु से क्या २ समानता और सम्बन्ध है, उस पर भी प्रकाश डाला। एफीड्राइन और स्यूडो एफीड्राइन, जो कि भारत की एफीड्रा की जाति से प्राप्त किया जाता है, उस पर भी विशेष अनुसंधान किये गये।

स्यूडो एफीड्राइन और एफीड्राइन दोनों के गुणों में विशेष घनिष्ठता है दोनों ही उपक्षार यकृत् और अँतडियों की क्रियाओं पर अपना असर समानरूप से बतलाते हैं और दोनों ही रक्तवाहिनी नालियों का संकोचन भी समान रूप से करते हैं। मूत्राशय और मांसपेशियों के ऊपर भी दोनों ही उपक्षार समान रूप से असर दिखलाते हैं। फेफड़े और श्वास क्रिया पर स्यूडो एफीड्राइन के बजाय एफीड्राइन का असर बहुत जोरदार होता है।

चूंकि भारतवर्ष में पैदा होनेवाली इस वनस्पति में एफीड्राइन के बनिस्बत स्यूडो एफीड्राइन की मात्रा अधिक होती है, इसलिए इस बात की विशेष रूप से जांच की गई कि एफीड्राइन के स्थान पर स्यूडो एफीड्राइन कहां तक काम कर सकता है।

कलकत्ता स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन्स् में एफीड्राइन श्वास की बीमारी पर अजमाई गई। किन्तु इसका असर पूर्णरूप से संतोषजनक नहीं रहा। निःसन्देह वह पन्द्रह मिनट से तीस मिनट के अन्दर श्वास के सामयिक आक्रमण को रोक कर उपद्रवों को दूर कर देता है। किन्तु इसके दूसरे असर ठीक नहीं होते। इससे हृदय में पीड़ा उत्पन्न होती है और कुछ समय तक अर्थात् दस-बीस मिनट तक वह पीड़ा, चालू रहती है। हृदयरोगियों के लिये इसका उपयोग विशेष तौर से हानिकारक होता है। इसका विशेष उपयोग कब्जियत की शिकायत पैदा करता है। इसके फलस्वरूप कभी २ श्वास का प्रकोप भी बढ़ जाता है। इस औषधि के अधिक उपयोग से पाचनशक्ति निर्बल होकर भूख नष्ट हो जाती है। यद्यपि इसके विषैले असर के प्रति कुछ निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता, फिर भी इसका विशेष उपयोग हानिकारक है। इसलिए बिना बीमारी का कारण खोजे सामयिक आक्रमण को मिटाने के लिए इसका उगयोग करने की आदत डालना हानिकारक है।

स्यूडो एफीड्राइन भी श्वास-क्रिया प्रणाली पर एफीड्राइन के समान ही असर दिखलाता है। स्यूडी एफीड्राइन का असर वायुप्रणाली के प्रसरण पर एफीड्राइन के समान ही श्रेष्ठ है। इस विषय में स्यूडो एफीड्राइन की परीक्षा भी की जा चुकी है। इसके परिणाम भी संतोषजनक हैं। १५ मिनट से लगाकर आधे घण्टे के भीतर ही इसकी आधे ग्रेन की मात्रा ने सीने की पीड़ा को दूर करके श्वास क्रिया को व्यवस्थित कर दिया है। श्वास के प्रकोप के पूर्व भी इसका इस्तेमाल करके देखा गया तो भी परिणाम अत्यन्त सन्तोषजनक रहा। अभी तक अनुभव से यही पता चलता है कि इसका गुण सन्तोषजनक है और इसके विकार भी अधिक नहीं हैं। अगर एफोड्राइन का ही इस्तेमाल किया जाय तो कम मूल्य में ही काम न होगा बल्कि एफीड्राइन के जो अन्य दुर्गुण हैं, वे भी बखूबी दूर हो जायँगे।

एफीड्रा गिरारडियाना और एफीड्रा इन्टरमीडिया दोनो वनस्पतियों से तैयार किया हुआ सत्त्व भी उपर्युक्त स्कूल में तीन साल से काम में लिया जा रहा है। यह स्वतंत्र रूप से भी काम में लिया जाता है और श्वास को दूर करने वाली अन्य औषधियों के साथ भी उपयोग में लिया जाता है। यह श्वास के प्रकोप को रोकने के लिए उत्तम वस्तु है। शुद्ध उपक्षारों की तुलना में यह सस्ता भी है।

इन उपक्षारों का उत्तेजक असर खून के दबाव (Blood Pressure) पर भी अधिक होता है। यह हृदय को उत्तेजना देने वाली अन्य औषधियों के रूप में काम में ली जाती है। एफीड्राइन का हृदय पर अवसन्नताजनक असर होता है। स्यूडो एफीड्राइन का असर ठीक इसके विपरीत है। स्यूडो एफीड्राइन हृदय की पेशियों को उत्तेजना देता है। कर्नल चोपड़ा ने एफीड्रा जाति की बनस्पति का सत्त्व, जिनमें एफीड्राइन और स्यूडो एफीड्राइन दोनों ही सम्मिलित रहते हैं, काम में लेकर देखा है, जिसका परिणाम बहुत ही सन्तोषजनक पाया गया है। जिन लोगों का हृदय कमजोर था उन पर भी इसका इस्तेमाल करके देखा गया तो परिणाम उत्तम पाया गया। इससे रक्तभार (Blood Pressure) ठीक हो गया। जिनका रक्त-प्रवाह अनियमित होने से और रक्त अभिसरण (Blood Circulation) प्रणाली दोषयुक्त होने से मूत्राशय पर असर हो गया था, उनको भी इससे फायदा पहुँचा।

जलोदर की बीमारी में भी यह उत्तम वस्तु है। हृदय रोग के द्वारा होनेवाली पेटकी सूजन में भी यह लाभदायक है। ऐसे रोगों में हृदय की धड़कन और अन्य उपद्रव, बीमारी के प्रारम्भ से ही बढ़ जाते हैं। ऐसे रोगियों के उपचार में डीजीटेलिस के उपयोग से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। दिन-प्रतिदिन बीमारी भयङ्कर होती गई और कई

हृदय की उत्तेजना देने वाली औषधियां काम में लायी गईं, मगर कोई लाभ न हुआ। ऐसे स्थानों पर एफीड्रा के अर्क काम में लिए गए, जिससे बीमार को फायदा पहुँचा और लक्षण सब एक दम दूर हो गये, बायें हृदय की गति रुकने पर भी एफीड्रा के अर्क ने बहुत लाभ पहुँचाया।

निमोनिया रोग के कारण उत्पन्न हुए विषों से जो भी दूषित असर हृदय की गति पर पहुँचते हैं, उनका निवारण करने के लिये भी एफीड्रा का अर्क बहुत ही उत्तम वस्तु है। इसी प्रकार रोहिणी-रोग (Diphtheria) से उत्पन्न हुए दूषणों को भी यह दूर करता है।

इसके अर्क की मात्रा ड्राम अर्थात् १॥। माशे की है। यह दिन में तीन-चार बार दिया जाना चाहिए।

उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि यह वनस्पति भारतवर्ष की एक बहुमूल्य वस्तु है और इसका सत्व तथा इसका अर्क श्वास रोग, हृदयरोग, जलोदर, डिफ्थीरिया, निमोनिया इत्यादि रोगों पर चमत्कारिक असर बतलाता है।

अम्बर

नाम—संस्कृत—अग्निजारः, वह्निजारः, अम्बरसुगन्धः, अम्बरम्। हिन्दी—अम्बर। पारसी—अम्बर शाहेबू। अरबी—अम्बर। लेटिन—Amber Gris। तामील—मिनम्बर।

वर्णन—अम्बर एक प्रसिद्ध मूल्यवान और सुगन्धपूर्ण वस्तु है। इसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में यूनानी के भिन्न २ लेखकों में बड़ा मतभेद है। कोई-कोई इसको समुद्रतल के स्रोत का जोश, कोई इसे किसी समुद्री जानवर का हज्जार, कोई मधुमक्खियों के द्वारा निर्मित मोम का सुगन्धित भाग इत्यादि बतलाते हैं। मगर आधुनिक गवेषणाओं से यह मालूम होता है कि यह औषधि समुद्र में रहनेवाले स्पर्महवेल (Sperm-Whale) नामक विशालकाय मछली के पेट में से निकलता है। स्पर्महवेल का शिकार अधिकतर उसके सिर का तेल और अम्बर प्राप्त करने के लिये ही किया जाता है।

आयुर्वेद के अन्दर भी इस औषधि के सम्बन्ध में बड़ा सन्देह है। कोई-कोई इसको एक प्रकार का समुद्री पौधा या अब्धिद्धार बतलाते हैं। कई कोषों में इसको एक वानस्पतिक द्रव्य मानकर ही इसका विवेचन किया गया है। मगर रसरत्न-समुच्चयकार के मतानुसार यह एक प्राणिज द्रव्य सिद्ध होता है। उनका कथन है कि अग्निनक्र नामक जीव का जरायु समुद्र से बहता हुआ किनारे पर आकर सूर्य की गर्मी से सूख जाता है। इसी को अग्निजार कहते हैं। चूंकि अम्बर भी एक समुद्री प्राणिज द्रव्य है, और अग्निजार भी प्राणिज द्रव्य माना गया है, इसलिए सम्भव है कि लोगों ने अग्निजार को ही अम्बर का पर्याय मान लिया हो।

जो कुछ हो; अब यह बात एक प्रकार से निश्चित हो चुकी है कि अम्बर स्पर्महवेल मछली के द्वारा प्राप्त होनेवाला एक प्राणिज द्रव्य है। यह लालसागर, ब्राझील और अफ्रीका के समुद्र तटों पर तैरता हुआ पाया जाता है। एक-एक मछली के उदर से ७५० पौण्ड तक अम्बर पाये जाने के दृष्टान्त मौजूद हैं।

पहिचान और परीक्षा—अम्बर मोम की शकल का एक पदार्थ है, जो पीला, गुलाबी, धूसर और कुछ काले वर्ण का होता है। इनमें शुद्ध पीली झाईं वाला अम्बर उत्कृष्ट होता है। श्याम वर्ण का अम्बर उससे हलका होता है। उत्तम पीले अम्बर पर छोटे-छोटे छींटे लगे हुए होते हैं। इसमें एक प्रकार की मधुर सुगन्ध आती है और यह स्निग्ध, कुछ चरपरा और लगभग स्वादरहित होता है।

आजकल बाजारों में अम्बर के नाम से कई नकली वस्तुयें भी बिकती हैं, इसलिए इस वस्तु को लेते समय पूरी सावधानी रखने की जरूरत है। इसकी परीक्षायें निम्नांकित हैं।

(१) इसको एक शीशी में डालकर कोयले की आँच पर रखने से यदि यह सब पिघल जाय और शीशी में तेल की भांति बहने लगे तो उसको शुद्ध समझना चाहिए।

(२) अम्बर को लेकर आग पर डालने से अगर सुगन्धित धुआँ निकलने लगे तो उसको उत्तम समझना चाहिये।

(३) अम्बर को चबाने से यदि मुँह खुशबूदार हो जाय और चबाते समय दांतों पर वह मोम सरीखा लगे तो उसको ठीक समझना चाहिये।

यह औषधि बहुत शीघ्र जलनेवाली तथा आँच दिखाते रहने से बिलकुल भाप बनकर उड़ जानेवाली होती है। यह ईथर, वसा, उड़नशील तेल और गरम अलकोहल में घुलनशील होती है, मगर ठण्डे जल में अघुलनशील

रहती है। इस पर अम्लों का कुछ भी प्रभाव नहीं होता, सूखने पर अम्बर का विशिष्ट गुरुत्व ·७८० से ·९२६ तक होता है। १४५ फॉरेनहीट की गर्मी पर यह पिघल जाता है और २१२° फॉरेनहीट की गर्मी पर भाप बनकर उड़ जाता है। (आयुर्वेदीय कोष)

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अम्बर कटुरस, उष्णवीर्य, लघुपाकी, पित्तकारी तथा कफ, वात, सन्निपात और शूल को नाश करनेवाला है। यह पक्षाघात, कम्पवात, हृदयरोग, नपुंसकता, क्षय, मस्तकरोग, यकृतरोग, उदररोग, प्लीहारोग, इत्यादि अनेक रोगों को नाश करनेवाला है। कामाग्नि को प्रदीप्त करने में यह औषधि अत्यन्त प्रभावशाली और बेजोड़ है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में गर्म, पहले दर्जे में रूक्ष, जिस्मानी (शारीरिक), रूहानी (आध्यात्मिक) और नफ्सानी (मानसिक) तीनों शक्तियों को दृढ़ करनेवाला, प्राणरक्षक, प्रकृति को प्रसन्न करनेवाला, शीतल प्रकृति वालों के लिये अत्यन्त लाभकारी, बाह्य और आभ्यंतरिक इन्द्रियों को पुष्ट करनेवाला ओजदायक, कामोद्दीपक, वृद्ध पुरुषों के लिये अत्यन्त लाभकारी, हृदय रोग और यकृत् रोग को नाश करनेवाला और हृदय की व्याकुलता को मिटानेवाला है।

यह लकवा, धनुर्वात, अवसन्नता, सिरदर्द, आधाशीशी, खांसी, उरःक्षत, हृदय की निर्बलता, मूर्च्छा, कामला, जलोदर, आमाशय शूल, सन्धिशूल और आमाशय तथा यकृत् की कमजोरी में लाभ पहुँचानेवाला है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार अम्बर सर्वाङ्गिक निर्बलता, अपस्मार, आक्षेप और स्नायुदौर्बल्य में उपयोगी है। यह बेहोशी, उन्मादयुक्त तीव्रज्वर, हैजे की निस्तेज अवस्था तथा प्लेग इत्यादिक संक्रामक बीमारियों में भी उपयोग में आता है।

उपयोग—रतिशक्ति की वृद्धि—सोने के वरक, घुटे हुए मोती और अम्बर को शहद में मिलाकर चटाने से पुरुषार्थ शक्ति की वृद्धि होती है।

कफ के रोग—इसको पान में रख कर खाने से कफ के रोग मिटते हैं।

वातरोग—लौंग, जायफल और अम्बर को मिला कर देने से सब प्रकार की वात-पीड़ा मिटती है। वातनाशक तेलों के साथ इसको मिलाने से उनकी शक्ति बढ़ जाती है।

उन्माद—ब्राह्मी और शंखाहूली के साथ इसको शहद में मिला कर चटाने से उन्माद मिटता है और स्मरण शक्ति बढ़ती है।

प्रतिनिधि—अम्बर के प्रतिनिधि कस्तूरी और केशर हैं। इसके दर्प को नाश करने वाले बबूल का गोंद, धनियाँ और तवाखीर हैं। कपूर सूँघने से भी इसका दर्प नष्ट होता है।

यह आँतों को हानि पहुँचाने वाला है, इसलिये आँतों के रोगी को इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

बनावटें—अर्क अम्बर—मुश्क खालिश ४॥ माशा, अम्बर बढ़िया ६ माशा, रूमी मस्तगी ६ माशा, बर्गरिहाँ, नागरमोथा, तज, सूखी धनियाँ, गुले गावजवान, गिलानी, अनीसूद, दरूज अकबरी, पिस्ता प्रत्येक १ तोला १०॥ माशा। जर्नबाद, अगर, कबाबह, खदां, छड़ीला, बालछड़, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, शकाकुल मिश्री, तेजपात, दालचीनी, केशर, लौंग, बवजीदान, गुलाब, बंशलोचन, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, दूब, पोस्तइत्रज, आबरेशम कतरा हुआ, श्वेत चन्दन, ये सब चीजें दो २ तोला, ताजे बिलायती सेव का रस आधा सेर, खट्टे अनार का रस १ सेर, अर्क वेदमुश्क, अर्क गाजवान और अर्क बिल्लीलोटन, सब ढाई २ सेर। इनमें से कूटने योग्य औषधियों को कूटकर तथा सब अर्कों में मिला कर उन औषधियों को रात भर भिगो रखें। सबेरे सेव और अनार का पानी मिला कर देग में डाल दें और अम्बर व मुश्क को नीचे के मुँह में रख कर भपके से अर्क खींच लें।

यह अर्क हृदय, मस्तिष्क और कामेंद्रियों को बल प्रदान करने के लिये अनुपम है। मूर्च्छा को नष्ट करने और शक्ति को पुनर्जीवित करने के लिये अत्यन्त प्रभावशाली है। आयुर्वेदीय कोष के रचयिताओं का कथन है कि कई ऐसी स्त्रियाँ जो अत्यधिक रक्तस्राव के कारण और कई ऐसे पुरुष जो बवासीर से अत्यधिक रक्तस्राव के कारण मौत के मुँह में पहुँच चुके थे, इस अर्क के पीने से अपनी असली हालत पर लौट आये। इस अर्क के अत्यन्त विस्मयकारक प्रभाव अनुभव में आ रहे हैं।

इसकी खुराक ३ तोले की है। भिन्न २ रोगों में, भिन्न २ अनुपानों के साथ यह दिया जाता है।

अमरकन्द

नाम—संस्कृत—बालकन्द, कन्दलता, मलकन्द, पंक्तिकन्द। हिन्दी—अमरकन्द, गोरमा, सकाकुल भेद। लेटिन—Eulophia Nuda (एलोफिया नूडा)।

वर्णन—यह औषधि हिमालय पहाड़ के समशीतोष्ण प्रान्तों में नेपाल से सिक्किम तक तथा छोटा नागपुर, आसाम, खासिया पहाड़ियां और कोकन से दक्षिण की ओर पाई जाती है। यह सालम मिश्री की जाति का एक कंद है। इसकी गांठ छोटे आलू की तरह होती है। पत्ते १० से १४ इंच तक लम्बे और अणीदार होते हैं। फूल बड़े, हरे रंग के या कालापन लिये हुये लाल रंग के होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इण्डियन मेडिसिनल प्लांट्स के लेखकों के मतानुसार यह कंद क्षुधावर्द्धक, गरम, गले की क्षय रोग जनित ग्रंथियों को आराम करने वाला हैं, यह बात-जन्यदोष, अर्बुद और बच्चों की खांसी पर बहुत लाभदाबक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह वस्तु कृमिनाशक है और कंठमाला सम्बन्धी रोगों में विशेष तौर से ली जाती है।

अम्बरबेद

नाम—फारसी—अम्बरबेद। अरबी—गुलेअर्ब ज्यादह। लेटिन—Poley Germander (पोली जरमेंडर) Treucrium Polium (ट्यूक्रियम पोलियम)।

वर्णन—इसका पौधा लगभग एक फुट ऊंचा होता है। इसके फूल पीलापन लिये हुये सफेद और पत्ते सफेद पतले तथा रोएँदार होते हैं। इसके मस्तक पर बालों का एक गुच्छा लगता है, जिसमें बीज भरे हुये रहते हैं। यह छोटा और बड़ा दो प्रकार का होता है। इसकी उत्पत्ति भारतवर्ष में नहीं होती, यह अरब में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव-यूनानी मत-यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और रूक्ष है। यह मूत्रनिस्सारक, आर्तव प्रवर्तक, जलोदर के लिये गुणकारक लेकिन आमाशय और मस्तक के लिये हानिकारक होता है। इसका क्वाथ बुद्धि को तीव्र करने वाला और विस्मृति को दूर करने वाला, पेट के कृमियों को नष्ट करने वाला तथा मूत्रावरोध और संधिशूल में लाभ पहुँचाने वाला है। इसके नवीन पत्तों का लेप व्रण को भरने वाला और इसकी धूनी विषैले जानवरों को भगाने वाली है। शहद के साथ इसका अंजन करने से दृष्टि तेज होती है। गर्भाशय को शुद्ध करने और प्लीहा की सूजन को नष्ट करने की शक्ति भी इसमें है।

अरब के निवासी इसको ज्वरविकार के नष्ट करने के लिये उपयोग में लेते हैं। इसके लिये वे ढाई तोला इस औषधि को रात भर जल में भिगो कर प्रातःकाल उसी पानी को छान कर पिलाते हैं।

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि पहाड़ी पोदीना, तज और अनार की जड़ की छाल हैं, यह औषधि सिर की पीड़ा को पैदा करने वाली तथा आमाशय को हानिकारक है, इसके दर्प को नाश करने वाली धनियाँ है। इसकी मात्रा दो से चार रत्ती तक की है।

अम्बाड़ा

नाम—संस्कृत—आम्रातक। हिन्दी—अम्बाड़ा। बंगभाषा—आमड़ा। मराठी—अम्बाड़ा। कर्नाटकी—अंबोडेयकायि। तैलंगी—आमाटस। गुजराती—अभेड़ा। अंग्रेजी—स्पोन्डिआस मिनट Spondias Minute। लैटिन—स्पोंडिआस मेंगिफेरा (Spondias Mangifera)।

वर्णन—यह एक प्रकार का जंगली आम है। हिमालय की तलहटियों में, चिनाव के पूर्व में तीन हजार फीट की ऊँचाई तक तथा ब्रह्मा, अंडमान व हांग-कांग में यह पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मतानुसार कच्चा आमड़ा खट्टा, वातनाशक, खारी, गरम, रुचिकारी और दस्तावर है। पक्का आमड़ा कसैला, सुस्वादु, शीतल, तृप्तिकारी, कफवर्द्धक, पुष्टिकर, भारी, बलकारी तथा वात, पित्त, क्षत, दाह, क्षय और रुधिर विकार को दूर करने वाला है।

इसके पत्ते स्वादयुक्त, भूख बढ़ाने वाले और संकोचक हैं। इसका कच्चा फल खट्टा, अपच और वातनाशक होता है, यह रक्तवर्द्धक और गले के रोगों में लाभ पहुँचाने वाला है। इसका पक्का फल तिक्त, मृदु, रसयुक्त व स्वादिष्ट होता है। यह शान्तिदायक, पौष्टिक, कामोद्दीपक और अँतड़ियों का संकोचन करने वाला होता है। वात, पित्त, फोड़े, जलन, क्षय और रक्त सम्बन्धी शिकायतों को यह नष्ट करता है। इसकी छाल सर्प विष निवारक कई औषधियों का एक अंग है तथा यह ज्वर, तृषा व पेचिश में उपयोगी पाई गई है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में शीतल व रूक्ष है। पित्तप्रधान रोगों में यह लाभ पहुँचाता है। नाक के रोग में इसकी छाल पीसकर बकरी के तुरन्त दुहे हुये दूध के साथ पिलाने से लाभ पहुँचाती है।

इनसाइक्लोपीडिया गुंडेरिका के मतानुसार मुंडा जाति के लोग इनकी छाल को पानी के साथ पीसकर गठिया रोग पर इस्तेमाल करते हैं। यह पैत्तिक संधिवात में उपयोगी है। इसकी करीब १ छटांक छाल आधा सेर पानी में डालकर उबाली जाती है और उसमें से सत्व निकालकर अतिसार व रक्तातिसार को बीमारी में दिया जाता है। इसके पत्तों का रस कान के रोगों को भी लाभदायक बताया जाता है।

डाक्टर चोपड़ा के मतानुसार यह संकोचक, सुगन्धित व शान्तिदायक पदार्थ है। इसका उपयोग पेचिस की बीमारी में किया जाता है।

उपयोग—**अम्लपित्त**—अम्बाड़े के कोमल फलों के १ तोले रस को पांच तोले खड़ी शक्कर में मिलाकर सात दिन तक दोनों टाइम देने से अम्लपित्त में फायदा होता है।

कर्णशूल—इसके पत्तों का रस कान में टपकाने से व बाहर भी लगाने से कर्णशूल में लाभ होता है।

विषाक्त घाव—विष में बुझे हुये अस्त्र के घाव पर इसके फल को पीसकर लगाने से तथा सूखे व गीले फल को खिलाने से लाभ होता है।

आमातिसार—इसके पत्तों के चूर्ण तथा इसकी छाल के काढ़े को देने से आमातिसार में लाभ होता है।

अम्बोली

नाम—हिन्दी—अम्बोली, प्रियदर्श। कनारीज—अबॉलिगे। मद्रास—कनग अंबरं। मलायलम्—मनकरुषि। तामील—पौलकुरिंज, सगसारि; टिडियम्। तैलगू—कनकंब्रम्। तुलू—अबाँलिगे। लेटिन--Crossandra Undutaefelia.

उत्पत्तिस्थान—पश्चिमीय, प्रायद्वीप, सीलोन, उत्तरीय भारत, बंगाल और मलाया।

वानस्पतिक विवरण—इसकी ऊँचाई दो हाथ तक रहती है। इसके पत्ते ४ के झँवरों में होते हैं। कुछ जोड़े, बर्छी के आकार वाले, तीखी नोक वाले और चमकीले रहते हैं। इसमें नसों की आठ जोड़ होती हैं। इसमें बहुत से फूल लगते हैं। ये सब बर्छी के आकार के और फलियां बहुत तीखी रहती हैं। इसका पुष्प आभ्यन्तर आवरण, नारंगी व पीले रंग का होता है। इसके फूल दक्षिण में चोटी बांधने के काम में आते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—डाक्टर चोपड़ा के मत के अनुसार यह वनस्पति कामोद्दीपक है।

अम्बोली का प्रधान उपयोग कफ के नष्ट करने में होता है। औषधि के रूप में इसके पत्तों का रस २० से ३० बूँद तक और इसकी जड़ एक से दो तोला तक दी जाती है। छोटे बच्चों को होने वाली खांसी, ब्रोङ्काइटिस (Bronchitis) में इसके पान का रस शहद और पीपर के सस्थ देने से बड़ा लाभ होता है। इसी प्रकार इसकी जड़ को दूध के साथ आधे तोले से एक तोले तक उबालकर शक्कर मिलाकर देने से स्त्रियों के श्वेत-प्रदर और रक्त-प्रदर में लाभ होता है।

अरण्डककड़ी

नाम—संस्कृत—वातकुम्भ। हिन्दी—अरंडखरबूजा, पपैया, अरण्डककड़ी। मराठी—पपैया। गुजराती—पपैयो, राइड काँकड़ी, झाड़चीमड़ी। तैलंगी—पोपड़ चेट्टु। अंग्रेजी—पेपो (Papao)। लेटिन—Carica Papaya (केरिका पपाया)।

परिचय—अरण्डककड़ी या पपैये का वृक्ष नरम व पोली लकड़ी वाला, बहुत जल्दी बढ़ने वाला तथा थोड़े वर्षों तक जीने वाला है। यह वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में होता है। इसके फल से सभी लोग परिचित हैं। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका पका हुआ फल सुस्वादु, मधुर, कफकारी, हृदय को हितकारी, उन्माद को हरने वाला, कामोद्दीपक, अंतड़ियों का संकोचन करने वाला, स्निग्ध व पित्तनाशक है।

यूनानी मत—इसका पका हुआ फल अग्निदीपक, भूख बढ़ाने वाला, पाचक, पेट के आफरे को दूर करने वाला और मूत्रनिस्सारक है। यह पेट की जलन व तिल्ली को दूर करता है। मूत्राशय की बीमारियों को मिटाता है। खास कर पथरी रोग में बहुत लाभ पहुंचाता है। शरीर के मोटेपन को मिटाता है। कफ के साथ खून जाने की बीमारी दूर करता है। खूनी बवासीर में और पेशाब की नलियों के घावों को दूर करने में यह फायदेमन्द है। दाद इत्यादि चर्मरोगों में यह लाभ पहुँचाता है। इसके कच्चे फल का दूध कृमिरोग को नष्ट करने वाला माना गया है। इसके बीज भी कृमिनाशक हैं और इनका उपयोग ऋतुस्राव के नियमित करने के लिये भी किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इन बीजों में गर्भपात करने की शक्ति भी है। इसलिये गर्भवती स्त्रियों को औषधिरूप में इन्हें नहीं देना चाहिये।

आजकल की आधुनिक शोधों से मालूम हुआ है कि अरंडककड़ी का रस बदहजमी, अम्लपित्त, खट्टी डकार तथा भोजन के पश्चात् पेट दर्द में बहुत उपयोगी वस्तु है।

डा० जार्ज हरसल ने सन् १८८६ के ब्रिटिश मेडिकल जर्नल के अन्दर इस फल का वर्णन करते हुये लिखा था कि 'बदहजमी के बढ़ते हुए लक्षणों पर जैसे कि भोजन के ऊपर अरुचि, निद्रानाश, सिरदर्द इत्यादि विकारों को अरण्डककड़ी का रस दूर करता है। पेट की बाजू में एक प्रकार का चिकना पदार्थ बहुत बड़ी मात्रा में इकट्ठा हो जाता है और वह भोजन को पचाने के अन्दर बहुत बाधा पहुँचाता है, उसको निकाल देने की इस रस के अन्दर अद्भुत शक्ति है। वयस्क मनुष्यों के अजीर्ण में जिसमें खट्टी डकार, हृदय की जलन, पेट का चढ़ना इत्यादि लक्षण रहते हैं, उनको दूर करने में यह एक बहुत कीमती दवा है।

इसके पत्तों की क्रिया हृदय पर डिजिटेटलिस के समान होती है। इसके पत्तों के अन्दर पाया जानेवाला द्रव्य डिजिटेटलिस के समान ही विषैला होता है। इससे नाड़ी की गति कम होती है, हृदय की धड़कन व्यवस्थित होती है, हृदय को विश्राम मिलता है, पसीना होता है और मूत्र का परिमाण बढ़ता है। मतलब यह कि पपैये के पत्ते हृदय को बल देनेवाले और ज्वरनाशक होते हैं।

इसके फलों में से पेपीन नामक एक मशहूर सत्त्व निकलता है जो विलायती दवा बेचनेवाले केमिस्टों के यहाँ ऊँची कीमत पर मिलता है। शरीर के अन्दर बिगड़े हुए पाचनरस को सुधारने में इसका पेपीन नामक सत्त्व बहुत उपयोगी इलाज माना जाता है। इस सत्त्व को निकालने का देशी तरीका इस प्रकार है।

जिस झाड़ के ऊपर अरंडककड़ी के कच्चे फल लगे हुए हों, उन फलों पर एक ऐसे कलईदार अस्त्र से जिसमें चार नोकें हों, हल्के-हल्के चीरें दिलवा देना चाहिए और उन फलों के नीचे एक लकड़ी या संगमरमर का बर्तन रख देना चाहिये। उन फलों में से दूध के समान रस टपक-टपक कर इकट्ठा हो जावेगा, तत्पश्चात् बालू के रेत से भरे हुये एक मिट्टी के बर्तन को चूल्हे के ऊपर चढ़ाकर उस रेती के ऊपर इस दूध के बर्तन को रखकर चूल्हे में धीमी-धीमी आग जला देना चाहिये, जब धीरे-धीरे वह रस औटकर खोवे की तरह हो जाय तब उसकी बट्टी बाँधकर निकाल लेना चाहिए, थोड़ी देर पश्चात् वह बट्टी सूख जायगी और अरंडककड़ी का सूखा सत तैयार हो जायगा। इस सत की एक रत्ती की मात्रा शक्कर अथवा दूध के साथ लेने से मन्दाग्नि तथा पेट के समस्त रोगों पर बहुत लाभ पहुँचता है। इसके सेवन से भोजन में रुचि उत्पन्न होती है। खाया हुआ अन्न पचता है। पेट के कृमि नष्ट होकर पेट साफ होता है। बालक व वृद्ध जिनकी पाचन शक्ति बिलकुल नष्ट हो गई हो, उनके लिए इस फल का सत्त्व आशीर्वाद रूप है। इसी प्रकार अच्छी तन्दुरुस्तीवाले आदमियों की जठराग्नि भी इसके सेवन से प्रबलहोती है।

इसके अतिरिक्त कारपेन (Carpain) नामक कटु उपक्षार भी इसी के फल, बीज व पत्तोंमें से प्राप्त किया जाता है। इसका विशेष अंश पत्तों में पाया जाता है। औषधि-विज्ञान शास्त्र में इस कारपेन नामक उपक्षार के गुणों का अनुसन्धान चल रहा है। जितना अनुसन्धान अभी तक हुआ है, उससे पता चलता है कि अगर स्नायु में इसका

इन्जेक्शन दिया जाय तो यह शरीर के ब्लड प्रेशर (Blood pressure) याने रक्तभार को दूर करता है। इससे हृदय की गति कम होती है। व्हेन्ट्रीकल्स व आर्टिकल्स उसकी कम गति का प्रदर्शन करती हैं। श्वास-क्रिया की गति में इस इन्जेक्शन से कोई भी धीमापन नहीं आता।

मन्दाग्नि और पेट की बीमारियों को दूर करने के अतिरिक्त चर्मरोगों को नष्ट करने की भी इसके दूध में काफी ताकत है। विदेशी लेखकों का मत है कि कच्ची अरंडककड़ी को काटने से उसमें से जो दूध निकलता है उसको दाद या खुजली पर चुपड़ने से ये बीमारियां नष्ट हो जाती हैं। इतना ही नहीं परन्तु यदि बवासीर के ऊपर भी यह रस लगाया जाय तो उनकी जड़ जल जाती है और वे गिर जाते हैं। परन्तु यह रस गरम होने की वजह से इसके लेप से बहुत जलन होती है और कई दफे तो इससे फफोले भी पड़ जाते हैं। इसलिये इसका उपयोग सोच-समझ कर करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त इसके कच्चे फलों का रस बिच्छू के डंक के ऊपर भी रामबाण माना गया है। एक रसायनशास्त्री के मतानुसार बिच्छू के जहर को दूर करने का यह एक विश्वसनीय उपाय है। डंक की जगह इसके दूध का लेप करने से जहर दूर हो जाता है। इसके बीज भी इसके लिये उपयोगी माने गये हैं।

उपयोग—तिल्ली—इसके कच्चे फल का दूध ३॥। माशे, शक्कर ३॥। माशे, दोनों को मिलाकर उसके तीन हिस्से कर लें, ये तीनों खुराकें सबेरे, दोपहर और शाम को देने से कुछ दिनो में बड़ी हुई तिल्ली आराम होती है। इसी प्रकार इसके सूखे फल के चूर्ण में नमक मिलाकर देने से भी लाभ होता है।

कृमिरोग—पेट के कीड़े मारने के लिये इसका सवा माशे से पौने चार माशे तक दूध देना चाहिए। इसका असर आंतों के लम्बगोल व चपटे कीड़ों पर अधिक होता है।

अतिसार—इसके कच्चे फल के चूर्ण की फंकी देने से पुराना अतिसार मिटता है।

गाँठ—इसके दूध का लेप करने से गाँठ बिखर जाती है।

उपदंश के व्रण—इसका दूध लगाने से उपदंश के घाव, सफेद चट्टे और चमड़े के दूसरे रोग मिटते हैं।

दूध वृद्धि—इसके कच्चे फल का शाक खिलाने से स्तनों के अन्दर दूध की वृद्धि होती है।

मंदाग्नि—अजवायन १५ तोला, सेंधा, संचर, साँभर नामक १-१ तोला, इन सब औषधियों को खट्टे नीबू व अदरक के रस में एक माह तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके पश्चात् इस औषधि की तीन माशे मात्रा में एक रत्ती अरण्डककड़ी का सत अथवा पेपीन डालकर खिलाने से भयंकर मन्दाग्नि भी दूर होती है।

अरण्ड

नाम—संस्कृत—एरंड, व्याघ्रपुच्छ, त्रिपुटीफल, आमण्ड, चित्र। हिन्दी-अरंड, अरंडी, अंडी। मारवाड़ी-इरंड। गुजराती—एरंडी। मराठी—एरंड। बंगाली-भरेंडा। फारसी—वेद अन्जीर, अरबी—खिरवा। कर्नाटकी-इरलूगिड़। द्राविड़ी—आमणक्क। तैलंगी—आमदिट्ट। अंग्रेजी—Castor Oil Plant, Palma Christi. लैटिन—Ricinus Communis. R. Enermis।

वर्णन—अरंड का वृक्ष दो प्रकार का होता है। बड़ी जाति के अरंड को पारस-अरंड कहते हैं। इसके बीज बड़े होते हैं और इसका तेल जलाने के काम में आता है। औषधि प्रयोग के काम में यह अधिक नहीं आता। केवल इसके पत्ते औषधि प्रयोग के काम में आते हैं। दूसरी प्रकार का एरंड छोटी जाति का होता है। इस एरंड की जड़ और इसके बीजों का तेल औषधि-प्रयोग के काम में आता है। इन बीजों का तेल पानी के साथ उबालकर या दबाकर या घानी में पीसकर निकाला जाता है। उबाल करके निकाला हुआ तेल दाह पैदा करता है, इसलिए दबा करके निकाला हुआ तेल औषधि के प्रयोग में अच्छा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से दोनों प्रकार के एरंड मधुर, गरम, भारी तथा शूल, सूजन, कमर व पेडू के दर्द, मस्तक पीड़ा, पेट के दर्द, अण्डवृद्धि, श्वास, कफ, आफरा, खाँसी, कुष्ठ और आमवात को नष्ट करने वाले हैं।

इसके पत्ते वात, कफ, आँतों के कीड़े, रतौंधी, कर्णरोग, मूत्रकृच्छ्र और पथरीको नष्ट करने वाले हैं। ये पित्तको बढ़ाते हैं। इसके फूल बदगाँठ, गुदाद्वार और योनिद्वार-सम्बन्धी तकलीफ और गुल्म, शूल और ऊर्ध्ववात को दूर

करने वाले हैं। इसके फल गरम, भूख बढ़ाने वाले, वातनाशक व बवासीर, यकृत् और तिल्ली में लाभदायक हैं। इसकी मींगी विरेचक, धातुपरिवर्तक, कृमिनाशक, कामोद्दीपक और हृदय-रोगों में लाभजनक है। यह जलोदर, सूजन, विषमज्वर, कुष्ठ, कटिवात, श्लीपद, आक्षेप इत्यादि रोगों में लाभदायक है। इसकी जड़ का छिलका विरेचक, धातुपरिवर्तक, चर्मरोगों में लाभ पहुँचाने वाला व स्तनों के दूध को बढ़ाने वाला है।

कभी २ किसी २ स्त्री के स्तनों में दूध का आना बन्द हो जाता है और स्तनों की नसें बंधकर उनमें गाँठे पड़ जाती हैं, ऐसे समय में लोग भूत-प्रेत की शंका करके झाड़-फूँक करने लगते हैं। ऐसे प्रसंग पर आधा सेर अरंड के पत्ते लेकर १० सेर पानी में घण्टे भर उबाल कर उस पानी का स्त्री की छाती पर १०-१५ मिनट तक धार देने से तथा उसके पश्चात् स्तनों पर अरंडी के तेल का मालिश कर उबाले हुए पत्तों को बारीक पीसकर उनका पुल्टिस स्तनों पर बांध देने से गांठें बिखर जाती हैं और दूध का प्रवाह पुनः शुरू हो जाता है।

अरण्डी का तैल सौम्य, स्रंसन, दुग्धवर्द्धक, दाहशामक और वातनाशक होता है। स्रंसन अथवा स्निग्ध विरेचक वर्ग की यह एक उत्तम औषधि है। यह आंतों की श्लेष्मत्वचा को मुलायम करके उसमें जमी हुई मल की गठानों को ढीला करके बहुत आसानी से निकाल देता है। इस तैल की प्रधान क्रिया ग्रहणी पर होती है। यकृत् पर इसकी क्रिया बिलकुल नहीं होती। अत्यन्त सौम्य होने की वजह से यह कभी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँ-चाता। अधिक मात्रा में दिये जाने पर सिर्फ एक, दो दस्त अधिक हो जाते हैं। यह गर्भवती स्त्रियों को भी निश्शंक रूप से दिया जा सकता है। इससे आँतों में किसी प्रकार की दाह नहीं होती।

आँखों में शुद्ध और साफ अरण्डी का तेल डालने से उनके भीतर का कचरा निकल जाता है और आँखों की करकरी बन्द हो जाती है। इससे आँखों से पानी बहकर आँखें साफ हो जाती हैं। इसलिये इसे आँखों का जुलाब भी कहते हैं।

छोटे २ बच्चों के पेट में दूध के चिथड़े जम जाते हैं और वे सड़ने लगते हैं जिससे दस्त और उल्टी होने लगती है और बुखार आता है, ऐसे अवसर पर इन त्रासदायक दूध की गांठों को बाहर निकालने के लिये अरण्डी के तेल के समान दूसरी कोई औषधि नहीं है। यह अंतड़ियों की श्लेष्म त्वचा को मुलायम करके मल की गाँठों को ढीली करके आसानी से निकाल देता है और दूसरे उग्र जुलाबों की तरह किसी प्रकार का नुकसान भी नहीं करता है, यह अत्यन्त सौम्य विरेचन है।

एपेंडिसाइटस—मोटी अँतड़ी की टोंच पर एक अवशिष्ट भाग रहता है, जो कभी २ सूज जाता है और जिसकी वजह से कमर की दाहिनी ओर दुखने लगता है, दस्त साफ नहीं होता, वमन होते हैं, बुखार आता है, नाड़ी शीघ्रगामी हो जाती है। इस रोग को अँग्रेजी में 'एपेंडिसाइटस' कहते हैं और यह बिना ऑपरेशन के आराम नहीं होता। इस रोग के प्रारम्भ में ही अगर एरंडी का तेल दिया जाय और एरंडी के तेल के साथ ही हींग मिलाकर उसका एनिमा दिया जाय तो बिना शस्त्र क्रिया के ही इस रोग में आराम हो सकता है। इस रोग में पेट का दर्द मिटाने के लिये अफीम नहीं देना चाहिये, बल्कि उसकी जगह खुरासानी अजवायन का प्रयोग करना चाहिये।

इसी प्रकार कटिशूल, गृध्रसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, कफशूल, उदरशूल, आमवात और संधियों की सूजन में भी अरंडी की जड़ और सोंठ का काढ़ा देने से लाभ होता है। रक्तातिसार के प्रारम्भ में ही अगर अरंडी का तेल दिया जाय तो आंव पड़ने का डर कम हो जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—कर्नल चोपरा के मतानुसार अरंडी के तेल का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें Tri-ricinolein (ट्रीरिकिनोलिन) थोड़ी मात्रा में Palmitin (पामिटिन) और Stearin (स्टेरिन) ये तीन द्रव्य पाये जाते हैं। इस तेल में अलकोहल और एसिटिक एसिड़ (सिरके का तेजाब) में मिल जाने की अद्भुत शक्ति पाई जाती है। इसके अन्दर Hydroxy Acid (हाइड्रोक्सि एसिड) रहता है, जो इसका खास विरेचक तत्त्व है। इसका तेल पीने से उसमें जो एसिड रहता है वह पेट में जाकर अपना विरेचक असर दिखलाता है।

इसके बीजों के भीतर तेल के अतिरिक्त एक प्रकार का विष भी रहता है, जिसको (Ricin) रिसीन कहते हैं। यह खून को जमाने का काम करता है व कभी २ अँतड़ियों को सुजा भी देता है। यह पदार्थ रेचक नहीं होता है और अरंडी के तेल में इसका अंश नहीं रहता है, केवल बीजों में रहता है।

उपयोग—विरेचन—इसका तेल खासतौर से जुलाब के काम में आता है। इससे निरुपद्रव और तीव्र जुलाब लगता है। ऐसे रोगों में जिनमें कमजोरी की वजह से रोगियों को दूसरे जुलाब नहीं दिये जा सकते, इसका जुलाब दिया जा सकता है।

सूजन—इसके बीज को पीसकर गरम करके लेप करने से छोटी संधियों की और गठिया की सूजन मिटती है। स्त्रियों के स्तनों पर भी इसका लेप फायदेमन्द होता है।

आँखों की सूजन—इसके पत्तों को जौ के आटे के साथ पुल्टिस बनाकर बांधने से आँखों पर आई हुई पित्त की सूजन मिटती है।

अण्ड वृद्धि—इसकी जड़ को सिरके में पीसकर गुन-गुना लेप करने से अण्डकोषों की सूजन उतरती है।

गृध्रसी और वात रोग—इसके तेल को गोमूत्र में मिलाकर नित्य थोड़ी २ मात्रा में एक महीने तक पिलाने से गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ आदि रोग मिटते हैं।

चर्मरोग—इसकी जड़ का काढ़ा बनाकर पिलाने से चर्मरोगों में लाभ होता है। इसी प्रकार बिगड़े हुए घाव और फोड़ों पर इसके पत्तों को पीसकर लगाने से ये अच्छे हो जाते हैं।

प्लीहोदर—इसके पंचांग को हांड़ी में भरकर उस हाँड़ी का मुँह कपड़मिट्टी से बन्दकर अग्नि में जलाकर उसमें तैयार की हुई भस्म को एक तोला की मात्रा में चार तोले गोमूत्र में मिलाकर पिलाने से प्लीहोदर मिटता है।

संततिनिग्रह—ऐसा कहा जाता है कि ऋतुस्नान के पीछे स्त्री को इसकी एक मींगी खिला देने से एक वर्ष तक गर्भ नहीं रहता।

कामला रोग—इसकी जड़ के चूर्ण को शहद में मिलाकर चटाने से कामला रोग में फायदा होता है।

गुर्दे की पीड़ा—इसकी मींगी को पीस और गुन-गुना लेप करने से गुर्दे की वात-पीडा में लाभ होता है।

नक्सीर—इसकी मींगी के छिलके की भस्म को नाक में फूँकने से नाक से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है।

बवासीर—इसके हरे पत्तों को पीसकर गुदा पर बाँधने से और इसका बीज खाने से बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रेन्द्रिय की निर्बलता—इसके बीज और मीठा तेल दोनों को बराबर लेकर औटाकर नित्य मूत्रेन्द्रिय पर मालिश करने से मूत्रेन्द्रिय की कमजोरी मिटती है।

स्तनों की शिथिलता—इसके पत्तों को सिरके में पीसकर लेप करने से स्तनों का ढीलापन मिटकर वे कठोर हो जाते हैं।

अरण्यकासनी

नाम—संस्कृत—दुग्धफेनी। हिन्दी—अरण्यकासनी। पंजाबी—कानफूल, बरन, दूधल। दक्षिणी—पथरी। सिंधी—बुथुर। लैटिन—Taraxacum Officinale (टेरेक्सेकम ऑफिसिनेल) अंग्रेजी—Dendelion।

वर्णन—यह एक भांगरे के वर्ग की वनस्पति है। इसका रस दूधिया होता है। इसके फूल पीले रहते हैं और विशेष रूप से काम आते हैं। इसकी ताजी जड़ ६ से १६ इञ्च तक लम्बी होती है। भीतर से यह सफेद रंग की और कुछ पीलापन लिये हुए होती है। वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में इसकी जड़ मीठे स्वाद को लिये रहती है, मगर गर्मियों में इसका दूध गाढ़ा हो जाने की वजह से यह कड़वी हो जाती है। यह औषधि हिमालय में एक हजार फीट से लेकर अट्ठारह हजार फीट की ऊँचाई तक तथा नीलगिरि पर्वत, तिब्बत, यूरोप और उत्तरी अमेरिका में पैदा होती है। सहारनपुर के सरकारी उद्यान में भी इसकी खेती की जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ मूत्रनिस्सारक, पौष्टिक और मृदु-विरेचक होती है। यह खास करके गुर्दे और यकृत् की बीमारियों में काम में ली जाती है। इसके गुण धर्म भांगरे के गुण धर्म से मिलते हुए होते हैं।

इसका सत्त्व एलोपेथिक में एक्स्ट्रेक्टम टेरेक्साइ लिक्विडम (Extractum Taraxaei Liquidum) के नाम से प्रसिद्ध है।

अरण्यतम्बाकू

नाम—संस्कृत—अरण्यतम्बाकू। हिन्दी—बन तम्बाकू, भीदड़ तम्बाकू, बन तमाल। पंजाबी—बन तम्बाकू, एकबीर, फुंटर, रेवद चीनी, कीश्री। अरबी—माहीजहरज, अदानद दुब। फारसी—बुसीर, माही जहरह। लेटिन—Verbascum Thapsus. (व्हरवेसकम थेपसस्)। इङ्गलिश—Mulein. (मुलियन)

वर्णन—इसका पौधा तम्बाकू के पौधे के समान होता है यह भूरे और पीले रंग के कोमल रुएँ से आच्छादित रहता है। इसके फूल पीले रंग के और पत्ते बर्छी के आकार के होते हैं। औषधि प्रयोग के लिये इसके पुष्पदल ही एकत्रित किये जाते हैं। इसके पत्ते पांच खंड युक्त होते हैं। इनके ऊपर का भाग चिकना और नीचे रुएँदार होता है। इसका स्वाद लुआबी और कुछ कुछ कड़वा रहता है। इसके फूल के अन्दर पुष्करमूल के समान बास आती है। इसकी फलियाँ कुछ लम्बी और गोल होती हैं। इसके बीज छोटे और अत्यन्त सख्त होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि तीसरे दर्जे में गर्म और रूक्ष है। इसके पत्ते वेदना को दूर करने वाले, आक्षेप को मिटाने वाले, पेशाब लाने वाले, स्निग्धता पैदा करने वाले, लुआबदार और नींद लाने वाले हैं। छाती के दर्द, आमवात, संधिवात, आमातिसार और कफ के रोगों में यह औषधि उपयोगी मानी जाती है।

हकीम डिसकोरिडस ने इस औषधि के कई भेदों का वर्णन किया है। वे इसे खाँसी, फेफड़े के रोग और अतिसार के अन्दर लाभदायक बतलाते हैं।

इङ्गलैण्ड के अन्दर इसके ताजा पत्तों से व दूसरे अंगों से शराब के साथ एक प्रकार का टिंचर तैयार किया जाता है जो कि मस्तक के शूल में बड़ा ही उपयोगी होता है। इसका तेल (Mulein oil) जीवाणुनाशक और कान के दर्दों में आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाने वाला है। कान के भीतर की जलन और कान की सूजन के पुराने रोगों को मिटाने के लिये एक सुदीर्घकाल से बड़ी सफलतापूर्वक इसका उपयोग किया जा रहा है। यह तेल बच्चों के मूत्रस्राव रोग में भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जर्मनी के अन्दर भी यह वस्तु बड़ी उपयोगी मानी जाती है। वहाँ पर इसकी जड़ का काढ़ा आक्षेप, सिर दर्द तथा मस्तकपीड़ा को दूर करने के काम में लिया जाता है। इसके सूखे पत्ते यदि चिलम और हुक्के में पिये जायँ तो वे खांसी, श्वास और क्षयरोग में लाभ पहुँचाते हैं।

ब्रिटिश मेडिकल जरनल के सन् १८८३ के २७ वीं जनवरी के अंक में डाक्टर क्वीनलैण्ड ने इस औषधि के सम्बन्ध में जो तथ्य निकाले हैं, वे इस प्रकार हैं।

'यह औषधि यक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था और फेफड़े के रोगों में बहुत लाभदायक है। आयरलैण्ड के अन्दर उपर्युक्त रोगों के अन्दर प्रचुर परिमाण में यह उपयोग में ली जाती है। यह आँतों के ढीलेपन को दूर करती है, यक्ष्मा के रात्रिस्वेद पर इसका कोई प्रबल असर नहीं होता, पर इसमें रोग निवारक और वजन बढ़ाने की शक्ति है। इससे यह यक्ष्मा और अतिसार को रोक देती है।'

डाक्टर स्टुअर्ट के मतानुसार इसकी जड़ उत्तर भारत में ज्वरनाशक औषधि के रूप में काम में ली जाती है।

डा० वेट के मतानुसार यह यक्ष्मा की मूल्यवान औषधि है। यह खांसी को कम करने वाली, आँतों की शक्ति को बढ़ाने वाली और रात्रिस्वेद को रोकने वाली है। इसके ढाई तोले पत्तों को ढाई पाव दूध में उबालकर दिन में दो बार देने से श्वास रुकने की तकलीफ दूर होती है।

इंडियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसके दो तोला पत्तों को ढाई पाव दूध में उबाल कर, आधा दूध रहने पर शक्कर मिलाकर रात को सोते समय पीने से खांसी की वेदना बन्द होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि शान्तिदायक, मूत्रनिस्सारक, वेदनाहर, शूलनिवारक, धातुपरिवर्तक और आक्षेपनिवारक है।

यह मछलियों के लिए एक प्रकार का जहर है, इसमें एक प्रकार का कड़वा सत्त्व और उड़नशील तेल पाया जाता है।

अरण्यतुलसी

नाम—संस्कृत—अर्जक, बर्बरी, बनबर्बरी। हिन्दी—बर्बरी, बनतुलसी। बंगाली—बाबुइ तुलसी, वनबाबु तुलसी। मराठी-रानतुलस। गुजराती—रानतुलसीभेद। कर्नाटकी—कगोरले, करीयक गोरले। तैलंगी-कारुतुलसी। फारसी—पलङ्ग मुस्क। अरबी—फरंजमुस्क। लैटिन—Ocimum Gratissimum (ओसिमम ग्रेटिसिमम्)।

परिचय—इसका वृक्ष सीधा, डालियों वाला और साल भर तक कायम रहनेवाला होता है। इसकी छाल राख के रंग की होती है। जब पौधा छोटा होता है, तब चारों तरफ चार शाखायें फूटती हैं। इस पौधे को ऊँचाई ४ से ८ फीट तक होती है। इसके पत्ते दोनों बाजुओं पर चितने होते हैं। इसके पत्तों की लम्बाई २ इञ्च व ज्यादे से ज्यादा ४ इञ्च होती है। यह वनस्पति खास करके एशिया व सिन्ध की है। बंगाल, नैपाल, चटगाँव और पूर्वी नैपाल में भी यह पैदा होती है। तुलसी की जितनी जातियाँ हैं, उनमें सबसे अधिक सुगंध इसके पत्तों को हाथ पर लेने से आती है। यह काली व सफेद के भेद से दो प्रकार की होती है।

आयुर्वेदिक मत—राज-निघण्टुकार के मतानुसार यह चरपरी, रुचिकारक, गरम तथा वातरोग, कफ व नेत्ररोग को नाश करनेवाली है और सुखपूर्वक प्रसव करानेवाली है।

यह वनस्पति स्वाद में तिक्त, रूखी, शीतल, चरपरी, दाहजनक, तीक्ष्ण, रुचिकारक, हृदय को हितकारी, दीपन, पचने में हल्की, विषनाशक तथा वमन, मूर्च्छा, वात, कफ, चर्मरोग, अग्निविसर्प, प्रदाह और पथरीरोग में लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पेट के आफरे को दूर करनेवाली, कामोद्दीपक, मस्तिष्क की बीमारी, हृदयरोग तथा यकृत् और तिल्ली में लाभ पहुँचाने वाली है। यह मुँह की दुर्गन्ध को दूर करनेवाली, दांत के मसूड़ों को मजबूत बनानेवाली तथा आंतों के दर्द व बवासीर में लाभ पहुंचानेवाली है।

इसको पानी में उबालकर उसका बफारा देने से गठिया व पक्षाघात के रोगियों को लाभ पहुँचता है। इसके पत्तों का काढ़ा वीर्य-सम्बन्धी रोगों में फायदेमन्द है। यह सुजाक की भी एक उत्तम औषधि है। सिरदर्द व स्नायुशूल में इसके बीजों का उपयोग किया जाता है।

मुखपाक या मुँह में छाले होने के रोग में इसके पत्तों के समान गुणकारी दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है। मुँह में छाले होना, मसूड़ों में पीब भरना और दुर्गन्धि होना इत्यादि रोगों में इसके पत्तों को दिन में चार-पांच दफे चबाने से अथवा उनका रस लगाने से बड़ा लाभ होता है।

मेडागास्कर में यह औषधि बहुत प्रचलित इलाज के रूप में काम में ली जाती है। वहाँ पर यह पौष्टिक, छाती के रोग को दूर करनेवाली, उल्टी को रोकनेवाली और आक्षेप-निवारक समझी जाती है। स्नायुशूल-सम्बन्धी पीड़ा को भी यह दूर करती है। बॅडसिलियो लोग इसके पत्तों को दांतों की पीड़ा में चूसने के काम में लेते हैं। वे लोग इसके पत्तों के रस को या बीजों के चूर्ण को सिरदर्द की बीमारी में सूँघने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह पेट के आफरे को दूर करनेवाली, मूत्रवर्द्धक और शान्तिदायक होती है। यह रक्तस्राव को रोकनेवाली है। इसका रासायनिक विश्लेषण करने से मालूम हुआ है कि इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल रहता है। इसके अतिरिक्त थायमल और यूगेनल नामक दो पदार्थ इसमें और रहते हैं।

सन्याल व घोष के मतानुसार यह पौधा पेट के आफरे को दूर करनेवाला व उत्तेजक माना जाता है। इसके बीज शान्तिदायक व मूत्रनिस्सारक हैं। इसके बीजों को कुछ समय तक भिगोया जाय तो वे फूल जाते हैं। उनके फूलने से एक प्रकार का चिकना व लसदार पदार्थ बन जाता है। इसमें शक्कर डालकर पीने से यह पेचिश व सुजाक की बीमारी में ठण्डक पहुँचाता है। यह नाक के रोगों में भी उपयोगी है। बङ्गाल के अन्दर इसका प्रयोग पीनस के रोग पर दीर्घकाल से किया जा रहा है।

इसके पत्तों का काढ़ा वीर्यसम्बन्धी निर्बलता को दूर करता है। इसके बीज सिरदर्द व स्नायुशूल के काम में लिये जाते हैं। इसका ताजा रस कान में टपकाने से कान का दर्द आराम होता है। मूत्राशय से सम्बन्ध रखनेवाली बीमारी में यह लाभदायक है।

उपयोग—सुजाक—इसके पत्तों का रस पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

लकवा व गठिया—इसके पञ्चांग को गरम पानी में उबालकर उसका बफारा देने से लकवा व गठिया की बीमारी में लाभ पहुँचता है।

सिर दर्द—इसके पत्तों के रस को ललाट व कनपटियों पर लेप करने से मस्तिष्क की पीड़ा मिटती है।

स्नायु शूल—इसके बीजों की फंकी देने से स्नायु शूल मिटता है।

घाव के कीड़े—इसके सूखे पत्तों का चूर्ण घाव पर डालने से उसके कीड़े निकल जाते हैं।

अतिसार—इसके बीजों के चूर्ण की ३॥ से ७॥ माशे तक फंकी देने से जवान आदमी का अतिसार बन्द होता है।

अरनी

नाम—संस्कृत-अग्निमन्थः, जया, तर्कारी, नादेयी। हिन्दी-अरनी। मराठी—टाकली नरवेल। बंगाली-गनिरी। पंजाबी—अगेथू। तेलंगी—तक्किली, चेटट्टू। द्राविड़ी—बन्निमरम। लैटिन—Premna Integrifolia.

वर्णन—अरनी के वृक्ष दक्षिण हिन्दुस्तान, सिलोन, बङ्गाल, बम्बई, अवध, गढ़वाल और राजपूताना आदि बहुत से प्रान्तों में पैदा होते हैं।

अरनी दो प्रकार की होती है, एक तो छोटी और दूसरी बड़ी। सफेद व काले रङ्ग के फूलों के भेद से भी यह दो प्रकार की होती है। बड़ी अरनी का वृक्ष ३० फीट ऊँचा होता है। इसके पत्ते कटे हुए व कंगूरेदार होते हैं। इसकी पुरानी शाखाओं में आमने-सामने मजबूत कांटे लगे हुए होते हैं। इसमें कुछ नीली झांई लिए हुए, सफेद रंग के फूल लगते हैं। फूलों की पंखड़ियाँ कुछ मोटी होती हैं। इसकी लकड़ी मजबूत व सफेद रंग की होती है। उस पर बैगनी रंग की धारियां पड़ी हुई होती हैं। चैत्र, वैशाख में इसके फूल लगते हैं और फूलों के गिरने के बाद काले रंग के छोटे फूल आते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इसकी लकड़ी को परस्पर में रगड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है, इससे इसका नाम अग्निमन्थ पड़ा है।

छोटी अरनी का झाड़ प्रायः दो-तीन गज ऊँचा होता है, इसकी जड़ मोटी, कड़वी व भूरे रंग की होती है। उसमें कुछ २ सुगंध भी आती है। इसके पत्ते १ से २ इञ्च तक लम्बे होते हैं। इन पत्तों पर सुगंधयुक्त सफेद रंग के फूल लगते हैं। इसके फल काले रंग के होते हैं जिनमें चार २ बीज निकलते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—धन्वन्तरि-निघंटु के मतानुसार अरनी कड़वी, तीखी, उष्ण तथा वात, कफ, पाण्डुरोग, सूजन, मन्दाग्नि, बवासीर, कब्जियत इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करने वाली है।

इसकी जड़ विरेचक, अग्निवर्द्धक और यकृत् की पीड़ा को दूर करने वाली होती है। इसके पत्तों का काढ़ा मंदाग्नि को दूर करने तथा पेट का आफरा उतारने के लिये दिया जाता है। इसकी जड़ का काढ़ा हृदय को बल देने वाला और पौष्टिक है, इसके पत्तों को काली मिर्च के साथ पीसकर सर्दी व बुखार में देते हैं। गठियाकी बीमारी में इसके पञ्चांग का क्वाथ लाभदायक है। यह क्वाथ स्नायु-शूल और स्नायु-पीड़ा में भी उपयोगी है।

अरनी की प्रधान क्रिया गर्भाशय पर होती है। गर्भाशय के संकुचित होने की क्रिया इस औषधि से रुक जाती है और उससे होने वाली वेदना कम हो जाती है। अरनी गर्भवती स्त्रियों के गर्भपात को बन्द करने के लिए एक उत्तम औषधि है। इस कार्य के लिये इसको अफीम और कमलफूल के साथ देना चाहिये। अत्यार्तव, कष्टार्तव और प्रसूतिकाल में होने वाले मक्कल्लशूल के लिये इसको देना चाहिये।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड़ को चार औंस (आधा पाव) लेकर एक पिंट (आधा सेर) पानी में १५ मिनट तक उबाल कर दिन में दो बार एक छटांक से आधा पाव की मात्रा में देने से जठराग्नि प्रबल होती है। यह औषधि पौष्टिक भी है।

हमारे प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस औषधि का कई स्थानों पर वर्णन आया है, सुप्रसिद्ध दशमूल क्वाथ के अन्दर यह औषधि भी एक प्रधान अंग मानी गई है। इसके अतिरिक्त चरक में यह औषधि बवासीर के लिए, सुश्रुत में इक्षुप्रमेह के लिये, चक्रदत्त में वसाप्रमेह के लिये और हारीत में वात व्रण के लिए इत्यादि भिन्न २ ग्रन्थों में भिन्न २ रोगों के लिये उपयोगी बतलाई गई है।

उपयोग—बवासीर—अरनी के पत्तों का काढ़ा पिलाने से तथा इसके पत्तों की पुल्टिस बनाकर बांधने से बवासीर की पीड़ा नष्ट होती है।

वायुगोला—छोटी व बड़ी अरनी के जल का काढ़ा पिलाने से वायुगोले में लाभ होता है।

सूजन—इसको जड़ को सांठे की जड़ के साथ पीसकर लेप करने से शरीर की ढीली पड़ी हुई सूजन दूर हो जाती है।

गठिया और स्नायु पीड़ा—इसके पंचांग का क्वाथ पिलाने से गठिया में लाभ होता है।

शीतपित्त—इसकी जड़ का चूर्ण घी के साथ सात दिन पिलाने से शीतपित्त मिटती है।

आमाशय का शूल—इसके पत्तों को उबाल कर मल छानकर पिलाने से आमाशय का शूल मिटता है।

हृदय की निर्बलता—इसके पत्तोंका धनियें के साथ क्वाथ बनाकर पिलाने से हृदय की निर्बलता मिटती है।

उपदंश—छोटी अरनी के पत्तों का सवा तोला रस कुछ दिनों तक पिलाने से पुरानी गर्मी की पीड़ा मिटती है।

रुधिर विकार—इसके पत्तों के रस में शहद मिलाकर पिलाने से रक्तविकार में लाभ पहुँचता है।

बनावटें—दशमूल क्वाथ—अरनी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेरी, गोखरू, बेलगिरी अरलू, खम्भारी, पाढर, इन दसों औषधियों को समान भाग लेकर कूट पीसकर एक तोले की मात्रा में आधा सेर पानी के अन्दर जोश देना चाहिये। जब एक छटांक पानी शेष रह जाय तब छानकर एक तोला शहद मिलाकर पिलाना चाहिये। अगर उसमें थोड़ा पीपल का चूर्ण भी डाल दिया जाय तो विशेष लाभदायक होता है। यह काढ़ा सूतिका रोग के लिये अमृततुल्य है। अगर प्रसूता स्त्री को दस दिन तक लगातार यह काढ़ा पिलाया जाय तो उसके सब उपद्रव दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त सन्निपात, उदररोग, पसली का दर्द, त्रिदोष इत्यादि रोगों को भी यह क्वाथ दूर करता है।

अरलू

नाम—संस्कृत—अरलू, श्योनाक, टुंटुकम्। हिन्दी—अरलू, सोनापाठा, टेंटू। बंगाली—सोना, सोनालू। गुजराती—अरडूसो। मराठी—टेटू, अडूलसा। कर्नाटकी—शोणा, शोडिलमर। तैलंगी—पैद्दामानु। उड़िया—फणफणा। पंजाबी—मुलिन। नैपाली—करुमकन्द। लैटिन—Oroxylum Indicum (ओरोक्सीलम इण्डिकम)

पहिचान—अरलू के झाड़ नीम के बराबर ऊँचे होते हैं। इसके झाड़ व इसकी डालियाँ अक्सर सीधी होती हैं। इसकी छाल का रंग सफेद राख के समान होता है। इसके पत्ते ४ से ८ इञ्च तक लम्बे व दो से तीन इञ्च तक चौड़े, गहरी कटी हुई कोरों के व कंगूरेदार होते हैं। इसकी डालियाँ १ फुट से लेकर तीन फुट तक लम्बी होती हैं। इसके फूल कुछ पीलास लिये हुये हरे रंग के होते हैं। यह जाड़े के दिन में आते हैं और इनके ऊपर पित्तपापड़ा की तरह लम्बी फलियें लगती हैं, जो गर्मी की मौसिम तक पक जाती हैं। ये फलियां दो-दो फुट की लम्बी तलवार के समान होती हैं। फली के भीतर रूई व दाने निकलते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत के अनुसार अरलू, कसैला, कड़वा, चरपरा, जठराग्नि को दीपन करने वाला, मलरोधक, शीतल, वीर्यवर्धक, बलदायक तथा वात, पित्त, सन्निपात, ज्वर, कफ, त्रिदोष, अरुचि, आमवात, कृमि, उल्टी, खाँसी, अतिसार, तृषा और कोढ़ का नाश करने वाला है। इसका कच्चा फल कसैला, मधुर, हल्का, हृदय को बलकारी, रुचिकर, पाचक, कण्ठ को हितकारी, अग्नि-प्रदीपक, गरम, कड़वा, खारा तथा गुल्म-वात, कफ, बवासीर और कृमिरोग को नष्ट करने वाला है।

इसकी छाल कड़वी और ज्वर तथा तृषा में शान्ति पहुँचाने वाली, संकोचक, भूख बढ़ाने वाली, कृमिनाशक और ज्वर को नष्ट करने वाली है। यह बच्चों के अतिसार, पेचिश, कान के दर्द, चमड़े के रोग और गुदाद्वार की तकलीफों में लाभ पहुँचाती है। यह औषधि भी दशमूल का अङ्ग है।

बम्बई में इसकी छाल व पत्ते बहुत पौष्टिक माने जाते हैं तथा प्रसूति के पश्चात् की कमजोरी को दूर करने के लिये दिये जाते हैं।

इसकी छाल का रस नारियल के रस के साथ में या शहद के साथ देने से प्रसूति के बाद होने वाली तकलीफों को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अन्दर इस औषधि को अतिसार की एक महौषधि मानी है। लिखा है—

पुटपाकविधानेन, रसो निष्कास्य भक्षितः। चिरन्तनमतीसारं नाशयेदिति कीर्त्तितम् ॥

इसकी छाल व पत्तों को बारीक पीसकर, गोला बनाकर, उसके ऊपर बड़ के पत्ते लपेटकर, कपड़मिट्टी कर भाड़ में डाल देना चाहिये, जब मिट्टी पककर लाल हो जाय, तब उसको निकालकर ठण्डा होने पर दबाकर निचोड़ लेना चाहिये, इस रस में से दो तोला रस सबेरे-शाम पीने से बहुत दिनों का अतिसार, खूनी दस्त इत्यादि रोग आराम होते हैं। जिस प्रकार विलायती दवा 'सेज़ोल' के अन्दर अतिसार को नष्ट करने का गुण रहता है। उसी प्रकार इस औषधि में भी यह गुण रहता है।

उपयोग—प्रसूतिजन्य दुर्बलता—जिन स्त्रियों को प्रसूति हुए के पश्चात् चार-छः दिन तक भयंकर पीड़ा रहती है, उनको इसकी छाल का चार-छः रत्ती चूर्ण लेकर इतनी ही सोंठ और इतने ही गुड़ के साथ मिलाकर उसकी तीन गोलियाँ बनाकर सबेरे दोपहर और शाम को एक २ गोली दशमूलकाथ के साथ देने से चमत्कारिक ढंग से सब पीडायें दूर होती हैं और दस-पन्द्रह दिन तक लगातार देते रहने से प्रसव के पश्चात् आनेवाली कमजोरी दूर होकर सूतिका रोग होने का भय जाता रहता है।

सन्धि वात—इस औषधि में सोडा सेलिसाइलिक नामक विदेशी औषधि की तरह स्नायु-जाल को विकसित करने का गुण भी रहता है। इसलिये इसकी छाल के चूर्ण को एक रत्ती से डेढ़ रत्ती की मात्रा में नियमित रूप से लेते रहने से तथा इसके पत्तों को गरम करके सन्धियों पर बांधने से सन्धिवात में बहुत लाभ होता है।

ज्वर-नाशक प्याला—इसकी छाल तथा इसकी लकड़ी में एलोपेथिक दवा 'क्वाशिया' की तरह विषमज्वर को नाश करने वाला गुण भी रहता है। क्वाशिया की तरह ही इसकी लकड़ी का छोटा प्याला बनाकर उस प्याले में रात भर पानी भरा रखकर सबेरे उस पानी को पीने से इकाँतरा, तिजारी, चौथिया इत्यादि सब प्रकार के मलेरिया ज्वर नष्ट होते हैं। यह प्याला कड़वा चरपरा, जठराग्नि को बल पहुंचाने वाला, मल को रोकने वाला, शीतल तथा मलेरिया के असर को रोकने वाला है। इस प्याले के अन्दर भरा हुआ पानी पीने से और इसकी छाल का डेढ़ २ रत्ती चूर्ण सबेरे-शाम खाने से बुखार के अन्दर बहुत लाभ पहुँचता है (जंगलनी जड़ी-बूटी भाग ४)

श्वास रोग—इसके चूर्ण को अदरख के रस व शहद के साथ चटाने से श्वास में लाभ होता है।

मंदाग्नि—इसकी छाल को ठण्डे या गरम पानी में चार पहर भिगोकर मल, छानकर दिन में दो बार पिलाने से मन्दाग्नि मिटती है।

आक्षेप वायु—इसकी तीन माशे छाल व तीन माशे सोंठ को औटाकर पिलाने से बाँयटे और आक्षेप वायु मिटती है।

खाँसी—इसके गोंद के चूर्ण को थोड़ा २ दूध के साथ पिलाने से आमातिसार व खांसी मिटती है।

कर्ण-शूल—अरलू की जड़ की छाल लाकर बारीक पीसकर उसकी लुग्दी तिलों के तैल के अन्दर रखकर, तैल से दूने वजन का पानी डालकर आग पर जोश देना चाहिये। जब पानी जलकर शुद्ध तैल रह जाय तब उसको छानकर रख लेना चाहिये। इस तैल को कानों के अन्दर टपकाने से त्रिदोष से पैदा हुआ कर्णशूल मिटता है।

उपदंश—अरलू की जड़ की छाल लाकर बारीक करके सुखा देना चाहिये। इसमें से आधा तोला छाल लेकर चार-पाँच तोले पानी के अन्दर चार घण्टे तक भिगोना चाहिये। उसके पश्चात् उस छाल को बारीक पीसकर उसी पानी के अन्दर छानकर उसमें मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक सबेरे-शाम पीना चाहिये। पथ्य में गेहूँ की रोटी, घी, शक्कर इत्यादि वस्तु खाना चाहिये, भात नहीं खाना चाहिये। सात दिन तक स्नान नहीं करना चाहिये, आठवें दिन नीम के पत्तों के औटावे हुए पानी में स्नान करके पथ्य छोड़ना चाहिये।

बवासीर—अरलू की छाल, चित्रकमूल, इन्द्रजौ, करंज की छाल, सेंधा नमक, सोंठ, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर कूट-पीस छान चूर्ण बनाकर डेढ़ से तीन माशे की मात्रा में मट्ठे के साथ लेने से बवासीर नष्ट होता है।

मुँह के छाले—अरलू की छाल का काढ़ा बनाकर उसके कुल्ले करने से मुँह के छाले नष्ट होते हैं।

अरलवादि क्वाथ—अरलू, अतीस, मोथा, सोंठ, बेलगिरी और अनारदाना, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर जौकुट करके, इसमें से एक तोला औषधि आधा सेर पानी के अन्दर उबाल कर जब छटांक भर पानी रह जाय तब छानकर उसे पिलाने से सब प्रकार के ज्वर व अतिसार नष्ट होते हैं।

अरवी

नाम—संस्कृत—आलुकी, कच्वी, कचुः। हिन्दी—अरबी, अरुई। मराठी—अरबी, चमकुरा। बंगाली—कचु। पंजाबी—अरवी। द्राविड़ी—शोभकलेक। कर्नाटकी—श्यामेगंडे। अरबी—कलकास। लैटिन—(Colocasia Eoculonta.)

परिचय—अरबी के पेड़ भारतवर्ष में सब ओर होते हैं। इसके पत्ते कमल के पत्तों की तरह, मगर उनसे कुछ छोटे बहुत सुन्दर होते हैं। इसके पत्ते फूटते ही जमीन के ऊपर फैल जाते हैं। इसके फल जमीन के अन्दर लगते हैं, जो कुछ काले व रतालू की तरह होते हैं, इन फलों की तरकारी बनाकर भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के लोग खाते हैं। इसकी तरकारी चिकनी होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—निघण्टुरत्नाकर के मतानुसार अरबी मलस्तम्भक, स्निग्ध, जड, बलकारक, कफनाशक और तेल में पकाने से रुचिकारक होती है।

यूनानी मत—यह शरीर को मोटा करनेवाली, खांसी को लाभ पहुँचानेवाली, मलरोधक और वीर्य को गाढ़ा करनेवाली है। इसका स्वभाव वादी को बढ़ानेवाला है तथा हजम होने में, यह बहुत कठिन है। इसके प्रतिनिधि दालचीनी, लौंग व अजवायन हैं तथा इसके दर्प को नष्ट करने वाली भिण्डी है।

इसके पत्तों की डंडी का रस रक्तस्राव को बन्द करने के लिये लिया जाता है। कभी २ कान के दर्द में भी यह उपयोगी पाया गया है। यह रस एक प्रकार का उत्तेजक पदार्थ है। इसको चमड़े के ऊपर लगाने से चमड़ा लाल हो जाता है। इसका खास उपयोग जलन वाली गाठों व फोड़ों में किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि इसकी गठान का उपयोग करने से सिर की गंज में लाभ पहुँचता है। भंवरी इत्यादि जहरीले कीड़े के काटने पर भी इसका उपयोग किया जाता है। बवासीर की बीमारी में भी यह लाभदायक सिद्ध हुई है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह रक्तस्राव को रोकने वाली और एक प्रकार की चर्मदाहक औषधि है। बिच्छू के डंक पर भी यह लाभकारी मानी गई है। मगर केस व महस्कर के मतानुसार यह इन विषों पर निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

उपयोग—खून का बहना—इसके कोमल पत्तों में से रस निकाल कर लगाने व पिलाने से रक्तवाहिनीशिरा में से निकलता हुआ खून बन्द हो जाता है। इस रस को घाव के ऊपर लगाने से घाव भी शीघ्र भर जाता है।

सूजन—काली अरवी के पत्ते व उसकी डंडियों का रस निकाल कर उसमें नमक डालकर लेप करने से गाँठों व पेशियों की सूजन बिखर जाती है।

सिर की गंज—काली अरवी के कंद का रस निकाल कर शिर पर मालिश करने से बालों का गिरना बन्द हो जाता है व नवीन बाल उगने लगते हैं।

जहरीले जानवरों का डंक—भंवरी व अन्य दूसरे जहरीले जानवरों के डंक पर इसका रस लगाने से लाभ पहुँचता है।

खूनी बवासीर—काली अरवी का रस पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

अरहर

नाम—संस्कृत—आढकी, तुवरी, पीतपुष्पा, वृत्तबीजा। हिन्दी—अरहर, तुअर। मारवाड़ी—तूर, अरेड़। गुजराती—तूर। मराठी—तुरी। बंगाली—आपूरी, अडर। पंजाबी—हरहर। अरबी—साज। फारसी—शाकूल। लैटिन—Cojanus Indicus (कोजानस इण्डिकस) Cytisus Cajan

विवरण—अरहर की दाल प्रायः भारतवर्ष में सब ओर खाई जाती हैं। इसको प्रायः सब लोग जानते हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अरहर मधुर, कसैली, कुछ वातकारक, भारी, रुचिकर, मलरोधक, रूखी, कांतिवर्द्धक, शीतल, तथा कफ, पित्त, ज्वर, विष, रुधिरविकार, गोला, वात और बवासीर को दूर करती है। इसके लेप करने से कफ व पित्त का नाश होता है और इसका सेक करने से मेद व कफ दूर होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह कब्जियत करने वाली, पचने में भारी, आंतों में दर्द पैदा करने वाली, अतिसार व कमजोरी को बढ़ाने वाली, कृमिनाशक और यकृत् को दुरुस्त करने वाली है। यह कफ व प्रदाह कम करने वाली तथा बवासीर के लिये फायदेमन्द है।

इसकी दाल व पत्तों को मिलाकर एक प्रकार का लेप बनाया जाता है। इस लेप को स्तनों के ऊपर लगाने से यह ग्रन्थिरस को रोककर दूध बढ़ाता है। इसके बीजों की पुल्टिस जलने वाली सूजन को कम करती है।

चरक के मतानुसार इसकी दाल दूसरी वनस्पतियों के साथ सर्प के जहर में लाभ पहुँचाती है।

डा० चोपड़ा के मतानुसार यह सर्पदंश के काम में आती है। मगर केस और मस्कर के सिद्धान्तानुसार सर्पविष के अन्दर यह निरुपयोगी है।

गायना के अन्दर इसके बीजों का आटा सूजन को नष्ट करने वाला माना जाता है। इसके उबाले हुए पत्ते घाव पर लगाये जाते हैं। इसके पत्तों में से ठण्ड की मौसम में रस निकाला जाता है। यह रक्तस्राव के अन्दर उपयोगी माना जाता है। इसके फूलों का रस वक्ष रोग को नष्ट करता है।

यद्यपि ऊपर अरहर को औषधि की तरह मानकर गुणदोष लिखे गये हैं। फिर भी यह वस्तु औषधि की अपेक्षा नित्य व्यवहार में आनेवाली खाद्य सामग्री के अन्दर ही विशेष काम में आती है।

उपयोग—**मुँह के छाले**—इसके पत्तों के रस से या इसकी दाल को पानी में भिगोकर उस पानी से कुल्लें करने से मुँह के छाले मिटते हैं।

अफीम का जहर—इसके पत्तों का रस पिलाने से अफीम का जहर उतरता है।

आधा शीशी—दूध व अरहर के पत्तों का रस मिलाकर सूंघने से आधाशीशी बन्द होती है।

हिचकी—इसकी भूसी हुक्के में रखकर पीने से हिचकी बन्द हो जाती है।

अरारोट

नाम—हिन्दी—अरारोट, विलायती तिखुर। बम्बई—तवकिल। मराठी—कुएमउ। कनाड़ी—कुएहित्। तामील—अरुरुट्टू-किलंगू। तेलगू—पलगुंड। अंग्रेजी—West Indian Arrow-root। लैटिन—Maranta Arundinacea (मेरेण्टा एरण्डीनेसिया)।

वर्णन—यह एक प्रकार का सफेद सत्त्व है, जो मेरेण्टा एरण्डीनेसिया नामक वृक्ष से प्राप्त होता है। इस वृक्ष का मूल उत्पत्ति-स्थान अमेरिका है, जहां पर यह गरमी के दिनों में घास की हरी झोपड़ियों में और बराण्डों में बोया जाता है। इसकी जड़ में गाजर के समान एक प्रकार का कन्द होता है और उसी कन्द से यह औषधि तैयार होती है। यह वृक्ष अगस्त के अन्दर फूलने लगता है। इसके फूल सफेद होते हैं। जनवरी, फरवरी में जब यह तैयार हो जाता है तब इसके पत्ते झड़ने लगते हैं और इसके कंद निकाल लिये जाते हैं।

निकालने के पश्चात् इसकी जड़ों को पानी के अन्दर खूब धोकर जल के साथ पीसते हैं और उसे मल छानकर एक ओर रख देते हैं। उस पानी में से इसका सफेद सत्त्व नितर कर नीचे बैठ जाता है, उसको निकाल लिया जाता है।

भारतवर्ष के अन्दर भी पूर्वीय बंगाल, संयुक्तप्रान्त और मद्रास में इसकी खेती होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इस औषधि की गठानें चरपरी, कसैली और चर्मदाहक होती हैं। ये घाव पूरने के काम में ली जाती हैं। इनमें से उत्तम जाति का अरारोट प्राप्त होता है। इन गठानों का सत्त्व पौष्टिक और स्नेहजनक है। इसको प्रायः दूध में पकाकर कमजोर रोगियों, बालकों, आंतों के रोगियों और मूत्रसम्बन्धी रोगियों को दिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और शान्तिदायक है।

अरारोबा

नाम—लैटिन—Araroba (अरारोबा)। अंग्रेजी—Goa Powder (गोआ पाउडर)। Crude Chrysarobin. (क्रूड क्राइसारोबीन)।

वर्णन—यह औषधि ब्राझील देश के वहिया नामक स्थान में उत्पन्न होती है। इसके वृक्ष को वहां के लोग एञ्जेलीम अमरगोसो (Angelim Amargoso) कहते हैं। इस वृक्ष के छिद्रयुक्त तनों के खोखले भागों में से यह प्राप्त होता है। इसको प्राप्त करने के लिए इसके वृक्ष को काटकर, चीरकर खोखली जगहों में से खुरचकर इसे इकट्ठा किया जाता है। इसका चूर्ण 'गोआ पाउडर' के नाम से सारे भारत में दाद की औषधि की तरह प्रसिद्ध है।

अठारहवीं शताब्दी के पहले तक भारतवासी इस औषधि से परिचित नहीं थे। सबसे पहले गोआ के रहने-वाले ईसाई लोगों ने चर्मरोग और दाद के ऊपर इस औषधि का प्रयोग करना शुरू किया। वे लोग इस योग को अत्यन्त गुप्त रखते थे। उसके पश्चात् यह औषधि बम्बई में आकर गोआपाउडर, ब्राझील पाउडर, रिङ्गवर्म पाउडर इत्यादि नामों से ३०) पौण्ड तक बिकने लगी। सन् १९२४ के फरवरी में सुप्रसिद्ध डाक्टर केम्प ने इस औषधि की तरफ ध्यान दिया और इसकी उपयोगिता को जाहिर किया। उसके पश्चात् इस विषय पर विशेष खोज होने लगी और अंत में मालूम हुआ कि यह औषधि एक प्रकार के बबूल की जाति के वृक्ष से प्राप्त होती है और ब्राझील देश में बहुत समय से चर्मरोगों में उपयोग की जाती रही है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह औषधि चर्मरोगों के अन्दर अपना खास प्रभाव रखती है। चमड़े के ऊपर इसका अत्यन्त सशक्त और क्षोभक प्रभाव होता है। दाद, विचर्चिका (Psoriasis), एक्झेमा (Eczema), यौवनपिठिका (Acne) इत्यादि सब रोगों पर इसको वेसलीन के साथ मिलाकर प्रलेप करने से बहुत लाभ होता है। मगर यह ख्याल रखना चाहिये कि इस लेप को दर्द की सीमा तक ही लगाना चाहिए। उसके बाहर स्वस्थ चमड़ी पर स्पर्श भी न होने देना चाहिए।

डाईमाक का कथन है कि विस्फोटक, विचर्चिका (Psoriasis) और दाद इत्यादि चर्मरोगों में शीघ्र और निश्चित रूप से फायदा पहुँचानेवाली जो औषधि मुझे मालूम हुई है, वह गोआपाउडर और नीबू का सिरका है। इस पाउडर को नीबू के रस में गाढ़ा २ मिलाकर दर्द की जगह पर लेप करने से दो-तीन दिन में पूर्ण लाभ होता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस औषधि को आँख के आस-पास हरगिज न लगने देना चाहिए। क्योंकि इसका आंख के ऊपर बहुत खराब असर होता है।

इस औषधि के भीतरी प्रयोग से भी विचर्चिका, एक्झेमा तथा यौवन-पिडिकाओं में लाभ पहुँचता है। मगर इसकी छोटी से छोटी एक चावल से कम की मात्रा भी पेट के अन्दर ऐंठन पैदा करके घबराहट व्यग्रता और वमन पैदा करती है। इसलिए इसका भीतरी प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिए।

अरिमेद

नाम—संस्कृत—अरिमेद। हिन्दी—दुर्गन्धिखैर, बिलायती बबूल। बङ्गाली—दुर्गन्धखदिर, विट्खयेर। मराठी—शेण्याखैर, गंधीहिब्र, घाणेराखैर। गुजराती—इरिमेद, गन्धिलोखेर। लेटिन—एकेशिया फारनेशियाना (Acacia Farnesiana)

पहिचान—इसका वृक्ष प्रायः बबूल व कीकर के वृक्ष के समान होता है।

इसकी शाखायें पतली व टेढ़ी-मेढ़ी रहती हैं। उन पर भूरे या हलके बादामी रङ्ग के धब्बे रहते हैं। इसके पत्तों के बीच में एक प्रकार की ग्रन्थि रहती है। इन पत्तों के अन्दर मनुष्य की विष्ठा की तरह बू आती है। इसलिए इसको विड्गन्धी भी कहते हैं। यह झाड़ प्रायः गरम आबहवा के स्थानों पर पैदा हुआ करता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अरिमेद, कसैला, गरम, कड़वा, भूत-व्याधिनाशक तथा सूजन, मुखरोग, दन्तरोग, रुधिर विकार, अतिसार, खांसी, विष, विसर्प, कृमि, कोढ़ और जहरीले घाव को दूर करनेवाला है।

इसकी छाल तिक्त व गरम होती है। यह जहरनाशक, अतिसार-निवारक और कृमिरोग को दूर करनेवाली है। मुँह की सूजन, रक्तविकार, खुजली, वायुनलियों के प्रदाह, धवलरोग तथा व्रण में यह लाभ पहुँचाती है। दाँतों की सड़ान और अग्नि-विसर्प रोग में भी यह लाभदायक है। इसका गोंद मीठा, बलवर्द्धक और कामोद्दीपक है। इसकी कोमल पत्तियां सुजाक के रोग में लाभ पहुँचाती हैं।

फिलीपाइन द्वीप-समूह के अन्दर इस वृक्ष की छाल का काढ़ा प्रदररोग में लाभदायक समझा जाता है। इसके कोमल पत्ते उबालकर घाव व फोड़ों में लेप के रूप में लगाये जाते हैं, इस लेप को लगाने के पहले इसके पत्ते के काढ़े से घाव को धो डालना जरूरी है।

सुश्रुत के अन्दर सर्पदंश के उपचार में जो क्षार-गज नामक औषधि बतलाई गई है। उसका यह वनस्पति भी एक अंग है। मगर मस्कर व केस के मतानुसार सर्प व बिच्छू के जहर पर इस औषधि का कोई प्रभाव नहीं है।

रासायनिक विश्लेषण—कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके अन्दर इसेंसियल ऑइल अथवा उड़नशील तेल रहता है।

उपयोग—**अतिसार**—इसकी छाल का काढ़ा बनाकर पीने से अतिसार में फायदा पहुँचता है।

सुजाक—इसकी ७॥ माशे कोमल पत्तियों को पीसकर गोली बनाकर खिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

मुखरोग—इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करने से दन्तरोग और मसूड़ों में से खून आना बन्द होता है।

बनावटें—अरिमेदादि तेल—१२॥ छटांक अरिमेद की छाल को लेकर चार सेर पानी में पकावें, जब एक सेर जल रह जाय तब आधा सेर काली तिल्ली का तेल डालकर उसमें एक छटांक मजीठ की लुग्दी रखकर जोश दें, जब तेल मात्र शेष रह जाय तब छानकर बोतल में भर लें। चक्रदत्त के मतानुसार यह तेल सब प्रकार के मुख रोगों में लाभ पहुँचाता है।

अरीठा

नाम—संस्कृत—अरिष्टः, फेनिलः, रक्तबीजः, मंगल्यः। मारवाड़ी—अरीठों। गुजराती-अरीठा। मराठी-रीठा। पंजाबी—रेठा। द्राविडी—योनान कोट्टे। तैलंगी—कुंकुडु। चेट्टू। कर्नाटकी—कुकुटेकायि। अरबी—बन्दक। फारसी—रित्ता। लैटिन—Sapindus, Trikoliatus, Sapinadus Mukorossi। अंग्रेजी-Soapnut.

वर्णन—अरीठे का वृक्ष दो प्रकार का होता है। एक को लेटिन में Sapindus. Trifoliatus और दूसरे को Sapinadus Nukorossi कहते हैं। यह वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होता है। इसके पत्ते गूलर के पत्तों से बड़े होते हैं, इसकी छाल भूरी होती है। इसके फल गुच्छों के रूप में आते हैं। इसके बीजों की गिरी पहले कुछ मीठी और पीछे कड़वी लगती है।

पहली जाति का अरीठा फेन वाला होता है और यह कपड़े धोने, सिर धोने तथा साबुन के स्थान में काम में आता है। दूसरी जाति के अरीठे के बीजों से जो तेल निकलता है वह औषधि के काम में आता है। इस झाड़ में गोंद भी लगता है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदाचार्यों के मतानुसार अरीठा पचने में चरपरा, त्रिदोषनाशक, तीक्ष्ण, गरम भारी, गर्भपातक और वमनकारक है। यह गर्भाशय को निश्चेष्ट करनेवाला और विष के असर को नष्ट करनेवाला है।

डा० मुडीन शरीफ (Moodeensheriff) इस औषधि का वर्णन करते हुये लिखते हैं—

'मैं इस औषधि को कई दिनों से प्रयोग में ले रहा हूँ। वमनकारक औषधियों में यह औषधि सब से सस्ती है। यह औषधि अपना असर बहुत शीघ्र बतलाती है व अन्य वमनकारक औषधियों की तुलना में जोशीली और अपेय रहती है। आधाशीशी और श्वास के रोग में यह औषधि बहुत लाभ पहुँचाती है। लेकिन मृगी तथा अपस्मार के रोग में यह औषधि लाभदायक सिद्ध नहीं हुई, इस रोग में यह केवल क्षणिक असर दिखलाती है'।

इसके अन्दर का मगज एक उत्तम कृमिनाशक औषधि है, ऐसा कुछ भारतीय वैद्य मानते हैं, पर मैंने कभी इस औषधि से पेट के कीटाणुओं को बाहर आते नहीं देखा। इसकी मात्रा चार से पांच ग्रेन या दो से तीन रत्ती तक मानी जाती है, मगर अधिक मात्रा में इस्तेमाल करने पर भी हमने इसे नुकसान करते नहीं देखा। इतना ही

हुआ कि वमन के साथ एक-दो पतले दस्त भी आये। इसकी जड़ और जड़ का छिलका बहुत कठोर होता है, जो बड़ी कठिनाई से पीसा जाता है। हमने इस औषधि के हर एक हिस्से को काढ़े के रूप में कम-ज्यादा मात्रा में उपयोग करके देखा है और इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि 'यह एक प्रकार की नरम, कफनिस्सारक और शान्तिदायक औषधि है। उपचार की दृष्टि से यह कमजोर है।'

दमे के अन्दर छाती में जमे हुए कफ को निकालने के लिए अरीठे से वमन कराई जाती है। इपिकाक और खड़की रास्ना की अपेक्षा इसका असर जल्दी होता है। जीर्ण कफ रोगों में इसको देने से कफ पतला होता है और हृदय को शक्ति मिलती है। कफ रोगों में इसको बहुत छोटी मात्रा में देना चाहिये क्योंकि इससे पाचन क्रिया पर कुछ खराब असर होता है। दमे में और आधाशीशी में इसकी सुंघनी सुंघाने से तत्काल लाभ होता है। यद्यपि यह लाभ चिरस्थायी नहीं होता पर एक बार तो रोगी को तत्काल शान्ति मालूम होती है। अजीर्ण से पैदा हुये उदरशूल में इसकी गूदी की २ रत्ती की गोली बनाकर देना चाहिये। अफीम के विष को दूर करने के लिये अरीठा एक उत्तम औषधि है। इससे वमन होकर अफीम का विष नष्ट होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक, कफनिस्सारक, वमनकारक, क्षार युक्त और बिच्छु के डंक में उपयोगी है।

परांजपे और रामस्वामी ऐय्यर ने इसका रासायनिक विश्लेषण करके यह सिद्ध किया है कि इस औषधि में N-Eicosanic Acid (इकोसेनिक एसिड) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि बाह्य-उपचार की दृष्टि से सर्पदंश और बिच्छू के डङ्क में निरुपयोगी है।

उपर्युक्त अवतरणों से यह मालूम होता है कि आयुर्वेदिक औषधियों में अरीठा एक प्रधान वमनकारक औषधि है। वमनकारक होने के ही कारण यह विषनाशक भी मानी गई है। क्योंकि विष को नष्ट करने में वमन भी एक प्रधान उपाय है, इसके अतिरिक्त बेहोशी को दूर करने का भी इस औषधि में विशेष गुण है।

उपयोग और बनावटें—हिस्टीरिया और मृगी—अरीठे के फल की गिरी को पानी में घिसकर उसकी दो-बार बूँदें नाक में टपकाने से तथा सलाई के द्वारा थोड़ा सा आँख में आँजने से मृगी, हिस्टीरिया तथा और किसी भी कारण से पैदा हुई बेहोशी तुरन्त दूर हो जाती है, आँख में आँजने पर यदि जलन हो तो गाय का घी या मक्खन आँजने से शान्ति होती है।

आधाशीशी—अरीठे के फल को एक-दो काली मिर्च के साथ पानी में घिसकर नाक में टपकानेसे आधाशीशी का रोग तत्काल दूर होता है।

अनन्त वायु—प्रसव के पश्चात् वायु का कोप होने से स्त्रियों का मस्तिष्क शून्य हो जाता है, आँखों के आगे अन्धकार छा जाता है, दाँतों की बत्तीसी भिड़ जाती है और वायु की तांणें आने लगती हैं। ऐसे कठिन समय में अरीठे को पानी में घिसकर फेन पैदाकर आँख में आँजने से तत्काल वायु का कोप दूर होकर जादू के समान असर दिखलाई देता है।

अरीठे की सुंघनी—अरीठे का मगज, नकछिकनी, कायफल, नौसादर, सफेद मिर्च, अपामार्ग के बीज और बायबिडंग, ये बराबर लेकर कूट-पीस, छानकर चूर्ण करके रख लेना चाहिये, जब जरूरत पड़े तब उसमें से थोड़ा सा लेकर उसमें सीप का चूना, अच्छी तरह से मिलाकर सुंघाने से सर्दी, आधा शीशी, हिस्टीरिया तथा मस्तक में खून का चढ़ जाना आदि रोग दूर होते हैं।

अरीठे का अंजन—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सांप की कांचली की राख, साबुन, हींगलू, हींग, मैन्शल, रायन के बीज और नीलाथूथा ये सब समान भाग लेकर इनको लहसन के रस में खरल करके फिर तुलसी के रस में खरल करना चाहिये। उसके बाद गोलियाँ बनाकर रख लेना चाहिये। इस गोली को अरीठे के फेन में घिसकर आँख में आंजने से भूत, प्रेत, डाकन वगैरह के दोष, हिस्टीरिया, बेहोशी, अनन्तवायु इत्यादि रोग तत्काल दूर होते हैं।

सन्निपात—अरीठे का मगज, अंकोल के जड़ की छाल, समुद्रफल के बीज, विष्णुक्रांता के बीज और कड़वी तरोई के बीज ये सब समान भाग लेकर तुलसी के रस में खरल कर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिये। रोगी की शक्ति का विचार करके एक से चार गोलियों तक गरम पानी के साथ देने से उल्टी और टट्टी होकर

महा भयंकर सन्निपात दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसी औषधि से सर्पदंश, पागल कुत्ते का जहर तथा संखिया, अफीम, बच्छनाग वगैरह विषों के विकार भी वमन होकर नष्ट हो जाते हैं।

बिच्छू का जहर—अरीठे के एक फल की गिरी लेकर उसको पीसकर तीन हिस्से करके गुड़ में मिला कर उसकी तीन गोलियां बना लेनी चाहिये। पांच २ मिनट में एक २ गोली ठंडे पानी के साथ देने से तथा इसी के फल को घिसकर आँख में आँजने से और डंक पर लगाने से जहर उतरता है। इसी प्रकार अगर इसके फल के चूर्ण को तम्बाकू की तरह पिया जाय तो भी विष नष्ट होता है।

खूनी बवासीर—अरीठे के फल में से बीज निकाल कर शेष भाग को लोहे की कढ़ाही में डालकर अग्नि पर चढ़ाने से जब वह जल कर कोयला हो जाय तब उसे उतार कर उतना ही पपड़िया कत्था मिलाकर अच्छी तरह से पीस कर कपड़छन कर लेना चाहिये। इस औषधि में से एक रत्ती औषधि लेकर मक्खन या मलाई के साथ प्रति-दिन सबेरे-शाम लेना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक करना आवश्यक है। जब तक दवा चले तब तक नमक और खटाई नहीं खाना चाहिये। इसके सेवन से कब्जियत, बवासीर की खुजली, बवासीर में से खून का बहना वगैरह फौरन आराम होता है। जंगलनी जड़ीबूटी नामक ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि यह प्रयोग एक महात्मा की तरफ से प्रसादरूप में मिला हुआ है और इससे सौ में से नब्बे बीमारों को फायदा होता है। लेकिन छः महीने के बाद फिर पीछे रोग शुरू होने का भय रहता है। इसलिये अगर हर छठे महीने यह प्रयोग कर लिया जाय तो हमेशा के लिये आराम हो जाता है।

मासिक धर्म की रुकावट—अरीठे के फलों के मगज को पीस कर उनकी बत्ती बनाकर स्त्री की जननेन्द्रिय में रखने से मासिक धर्म की रुकावट मिटती है। प्रसव के समय भी यह बत्ती रखने से बिना बिलम्ब के प्रसव होता है।

केशमंजन पाउडर—कपूर काचरी, नागरमोथा, दस-दस तोला और कपूर तथा अरीठे के फल की गिरी चार-चार तोला, शीकाकाई २५ तोला, सूखे हुए आंवले २०० तोला, इन सब का चूर्ण करके इनमें से ५ तोला चूर्ण ले करके १॥ पाव उबलते हुए पानी के साथ १५ मिनट तक भिंगोकर रखना चाहिये। बाद में मल, छानकर बालों को उस पानी से मसलना चाहिये। उसके बाद गरम पानी से बालों को खूब धो डालना चाहिये। इससे बाल अत्यन्त मुलायम और रेशम के समान सुहावने हो जाते हैं तथा सिर के अन्दर यदि जूं-लीक होती है तो वह भी मर जाती है।

अर्जुन

नाम—संस्कृत—अर्जुन, ककुभ। बंगाली—अर्जुन। मराठी—अर्जुन, सादड़ा। लैटिन—Terminalia Arjuna (टरमिनेलिया अर्जुन) अंग्रेजी—Arjuna-Myro Balan.

वर्णन—अर्जुन वृक्ष के सम्बन्ध में वैद्यों के अन्दर काफी मतभेद है। शालिग्रामनिघण्टु के रचयिता ने Stereulia Urcus नामक वृक्ष को अर्जुन वृक्ष माना है। कई वैद्य सादड़ा के वृक्ष को ही अर्जुन वृक्ष मानते हैं। कुछ लोग Terminaia ToMentosa नामक वृक्ष को अर्जुन वृक्ष समझते हैं। लेकिन आजकल के अन्वेषणों से मालूम हुआ है कि जिस वृक्ष को लैटिन में Torminalia Arjuna (टरमिनेलिया अर्जुन) कहते हैं, वही वास्तविक अर्जुन है।

यह वृक्ष हिमालय की तलहटी, बर्मा, बंगाल, मध्यभारत, दक्षिण विहार, छोटा नागपुर, सीलोन, इत्यादि प्रान्तों में नदी-नालों के किनारे पैदा होता है। पंजाब तथा वायव्य प्रान्तों में यह कुदरती तौर पर पैदा नहीं होता प्रत्युत बो करके पैदा किया जाता है।

स्वरूप—अर्जुन के वृक्ष जंगलों में पैदा होते हैं, ये बहुत बड़े होते हैं। इनकी ऊँचाई ६० से ८० फीट तक और पेड़ की गोलाई १० से २० फीट तक होती है। इसके पत्ते का आकार मनुष्य की जीभ के समान होता है, पत्तों के पीछे डंठल पर दो गाठें होती हैं, जो बाहर से दिखाई नहीं देतीं। वैशाख और ज्येष्ठ में इसके फूल आते हैं। फूल बहुत छोटे, हरी झाईं लिये हुए, सफेद रंग के होते हैं। इसके फल जाड़े की ऋतु में पकते हैं। इसकी छाल हरापन लिये हुए सफेद, खाकी, भूरी या बैगनी रंग की और साफ होती है, इस छाल में से खाकी रंग निकलता

है। इसकी लकड़ी की राख रंगने के काम आती है। इस झाड़ में एक प्रकार का साफ, सुनहरा, भूरा और पारदर्शक गोंद लगता है। जो खाने के काम में आता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—राज-निघण्टु के कर्ता लिखते हैं कि अर्जुन कसैला, गरम, कफनाशक, व्रणशोधक तथा पित्त, श्रम और तृषानिवारक है, यह वात को कुपित करता है तथा क्षत, भग्न और मूत्रकृच्छ्र रोग में हितकारी है।

निघण्टु-रत्नाकर के रचयिता लिखते हैं कि अर्जुन, कसैला, उष्ण, मधुर, शीतल, कान्तिजनक, व्रणशोधक, बलकारक, हलका तथा अस्थिभंग, अस्थिसंहार, कफ, पित्त, श्रम, तृषा, दाह, प्रमेह, हृदय रोग, पांडुरोग, विषबाधा, क्षतक्षय, मेदवृद्धि, रुधिरविकार, पसीना, श्वास, क्षत और भस्मरोग को नाश करता है।

सुश्रुत के मतानुसार इस पौधे की राख सर्पदंश के काम में ली जाती है। वाग्भट के मतानुसार बिच्छू के डंक पर इसका छिलका उपयोग में लिया जाता है।

महर्षि चरक इसको संकोचक व मूत्र को साफ करने वाला बतलाते हैं।

प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रियों में वाग्भट ही पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने इस औषधि को हृदयरोग के अन्दर उपयोगी बतलाया है। उनके पश्चात् तो चक्रदत्त, भावमिश्र और आयुर्वेद के अन्य शास्त्रियों ने भी इसको हृदयरोग की महौषधि मानी है, इसके पश्चात् के और और लेखकों ने भी इसे प्रधानतया हृदयरोग की औषधि मानी है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसका छिलका कड़ुआ, कफनिस्सारक, कामोद्दीपक, पौष्टिक और मूत्र को साफ लाने वाला है। यह पित्त में भी उपयोगी है। अस्थिभंग और घावों पर इसको बाह्य उपचार की तरह काम में लेते हैं। पुराने प्रमेह में और अत्यधिक मूत्र आने की बीमारी में इसका क्वाथ पिलाने के काम में लिया जाता है।

हड्डी टूटने पर व शस्त्र के जखम में इसका बारीक चूर्ण पिलाने के काम में लिया जाता है। विशेष करके खून बहना जब अधिक हो जाता है तब इसको दूध के साथ पिलाते हैं। इसकी छाल का काढ़ा उपदंश के घाव धोने के काम में भी लिया जाता है।

डा० देसाई के मतानुसार अर्जुन की क्रिया शरीर में चना और कषायाम्ल की क्रिया के समान होती है। इससे रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है। सूक्ष्म रक्तवाहिनियों का संकोचन होने से रक्ताभिसरण क्रिया का दबाव बढ़ता है। इससे हृदय की पोषण क्रिया अच्छी होती है, हृदय को आराम मिलता है और उसमें उत्तेजना पैदा होती है। हृदय की धड़कन के ठोके व्यवस्थित पड़ने लगते हैं और उनकी संख्या कम होती है। रक्ताभिसरण चक्र का हृदय के लिए जितना महत्त्व है उतना ही महत्त्व हृदय के लिए रक्तवाहिनियों का भी है। रक्तवाहिनियों का संकोचन नहीं होने से उनमें शिथिलता आती है और उनमें शिथिलता आने से हृदय की क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है। अर्जुन की छाल रक्तशोधन क्रिया पर प्रत्यक्ष असर डालती है। रक्तपित्त और जीर्णज्वर के अन्दर होनेवाले रक्त रोग को दूर करने के लिए अर्जुन का काढ़ा दिया जाता है। रक्तस्राव को बन्द करने के लिए इसकी क्रिया बहुत जोरदार होती है। अर्जुन के अन्दर चूने का अंश बहुत अधिक होने से टूटी हुई और मुड़ी हुई हड्डियों को ठीक करने में यह सहायता पहुँचाता है। व्रणशोथ रोग में रक्तवाहिनियों का फैलाव होकर उनके द्वारा रक्त में पानी मिलता रहता है, ऐसी स्थिति में अर्जुन का लेप करने से लाभ होता है। मतलब यह कि अर्जुन हृदय को बल और उत्तेजना देनेवाला, रक्तसंग्राहक, रक्तशोधक, सूजन को नष्ट करनेवाला, हड्डी को जोड़नेवाला और व्रणलेखन होता है।

हृदय में शिथिलता आने पर अथवा उसमें शोथ हो जाने पर अर्जुन की छाल को गुड़ मिलाकर दूध में औटाकर पिलाते हैं। इससे हृदय में सूजन का बढ़ जाना रुक जाता है क्योंकि इससे रक्तवाहिनियों के द्वारा रक्त में पानी का छूटना रुक जाता है। पहले की पैदा हुई सूजन को मूत्रशोधक और मूत्र विरेचक औषधियों के द्वारा दूर करना चाहिए। अर्जुन में हृदय को बल देने का तथा उत्तेजक ये दोनों गुण साथ २ होने से हृदय रोगों के अन्दर यह बहुत मूल्यवान् औषधि है।

इन्फ्लूएंजा बुखार में तथा दूसरे थकावट पैदा करनेवाले जीर्ण रोगों में जब हृदय अशक्त हो जाता है और नाड़ी शीघ्रगामी रहती है, अर्जुन एक अमूल्य औषधि है, इससे रक्त में चूने का भाग बढ़ता है, रक्त लाल होता है और सारे शरीर को उत्तेजना मिलती है। हृदय के ऊपर अर्जुन की क्रिया डिजिटेलिस के समान नहीं होती है। यह शरीर में डिजीटेलिस के समान नहीं जमता। इससे पेशाब में कुछ क्षार का अंश बढ़ता है।

आधुनिक खोज—पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इस औषधि के विषय में काफी खोज की है। सन् १८२६ में एन्सेली (Ainslie) नामक विद्वान् ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि यह ज्वरनाशक औषधि है। इसको तेल के साथ पीसकर बच्चों और युवकों के मुख-चत की बीमारी पर भी काम में लेते हैं।

डायमाक नामक विद्वान् ने इसकी छाल का वैज्ञानिक विश्लेषण किया था। उनके कथनानुसार इसकी राख में ३४ सैकड़ा केलशियम कारबोनेट (Calcium Carbonate) रहता है। जलीय रस क्रिया के द्वारा मालूम हुआ कि इसमें १६ सैकड़ा टेनिन (Tannin) रहता है। २३ सैकड़ा इसमें द्रव पदार्थ है। टेनिन के अतिरिक्त इसमें रंगने का पदार्थ बहुत कम मात्रा में है जो अलकोहल की मदद से निकाला गया है।

सन् १६०९ में घोषाल ने इसकी छाल का विस्तृत रासायनिक विश्लेषण किया। उनके मतानुसार इसमें शक्कर, टेनिन और एक प्रकार का रंगने का पदार्थ पाया गया और एक विशेष पदार्थ जिसको ग्लुकोसाइड (Glucoside) कहते हैं, वह भी पाया गया। इसमें Calcium Carbonate (केलशियम कारबोनेट) सोडियम और कुछ क्लोराइड भी हैं। इस औषधि को मेंढक, खरगोश और मनुष्यों पर अजमाया गया। उससे वे इस नतीजे पर आये कि हृदय-रोगों पर जिसमें पौष्टिक और उत्तेजक पदार्थ देने की आवश्यकता हो, यह एक अमूल्य औषधि है।

सन् १६१९ और १६२० में कोमान (Koman) ने इस औषधि की परीक्षा की और कई रोगियों पर इस औषधि को अजमाया मगर उनके मत से यह वनस्पति बिलकुल निरुपयोगी सिद्ध हुई।

सन् १६२३ में कर्नल चोपड़ा ने लिखा कि डा० एस० घोष ने लगातार कई महीने तक घोर परिश्रम करके अर्जुन वृक्ष से एक प्रकार का ग्लुकोसाइड निकाला है जिसको कि व्हेन में इन्जेक्शन लगाकर खून में पहुँचाया जाय तो ब्लडप्रेशर को बढ़ाता है। सन् १६२४ में उन्होंने यह देखा कि इसके अन्दर का मद्यसार हृदयरोग में लाभ पहुँचाता है। सन् १६२५ में भी उन्होंने इस बात की पुष्टि की, किन्तु उसके एक साल पश्चात् ही इस विषय की आशा-वादिता कम हो गई। अन्त में सन् १६२६ में चोपड़ा और घोष ने उनके अन्वेषणों का परिणाम इस प्रकार प्रगट किया—

(१) इसमें करीब १२ सैकड़ा टेनिन रहता है, उसमें भी खासकर पायराकेटेकल (Pyrocatechol) टेनिन रहता है। (२) कुछ रंगदार पदार्थ भी इसमें होते हैं। (३) ऑरगेनिक एसिड प्राणी वर्ग से सम्बन्ध रखनेवाला एक अम्ल व फायटास्ट्राल (Phytosterol) (४) एक प्रकार का ऑरगेनिक ईथर भी रहता है, जो कि तेजाब की मदद से चार रूप में विच्छेदन किया जा सकता है। (५) केलशियम साल्ट्स इसमें अधिक परिमाण में रहते हैं व एल्यूमिनम और मेगनेशियम कम तादाद में पाये जाते हैं। (६) शक्कर का तत्व भी इसमें रहता है। उपरोक्त अन्वेषक अंततः इस परिणाम पर आये कि अर्जुन वृक्ष की छाल में अलकेलाइड (Alkaloid), ग्लुकोसाइड तथा इसेंशिअल ऑइल की मात्रा नहीं है। इसमें केलशियम साल्ट, टेनिन, आर्गेनिक एसिड, आर्गेनिक ईथर और शक्कर के अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं पाई जाती। (७) भिन्न-भिन्न पदार्थ, जो इसके छिलके में पाये गये हैं, जैसे पैट्रोलियम ईथर, अलकोहॉलिक व अन्य सत्व उपचार की दृष्टि से विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुए। (८) इसके छिलके के द्वारा निकाला हुआ एलकोहॉलिक कई हृदय रोग के बीमारों पर अजमाया गया, मगर विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। महेस्कर और केस के सिद्धान्त के अनुसार सर्पदंश और बिच्छू के डंक पर भी यह औषधि निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

केस (Caius) महेस्कर तथा आयजक नामक विद्वानों ने भी इस औषधि का परीक्षण और इसके भिन्न-भिन्न पन्द्रह प्रकार के भेदों का उल्लेख किया है। उक्त विद्वानों ने इनकी शुष्क निर्मल छालों को उष्ण फांट, क्वाथ एवम् एलकोहॉलिक एक्सट्रेक्ट के रूप में प्रयोग कर इनके प्रभाव का पृथक् २ अध्ययन किया और परिणाम यह रहा कि इन्हनें इनकी उत्तम, सबल हृदयोत्तेजक, मूत्रल इत्यादि गुणों से युक्त पाया, परन्तु अभी तक कोई प्रभावात्मक द्रव्य इसमें से पृथक् नहीं किया गया।

उपर्युक्त रासायनिक विश्लेषणों से जिस तथ्य पर वैज्ञानिक पहुँचते हैं, उससे मालूम होता है कि इसमें कोई ऐसा प्रभावशाली तत्व जो हृदय को बलकारक सिद्ध हो, नहीं पाया गया।

मगर प्राचीन वाग्भटादिक ऋषियों ने इसको हृदय को बल देनेवाला लिखा है और उसी का समर्थन करते हुए कलकत्ते के एक प्रसिद्ध डा० मि० प्यारीशङ्करदास गुप्ता अपना निजी अनुभव प्रगट करते हुए मेडिकल मेडिसन नामक पेपर में लिखते हैं—

मेरा एक मरीज जो कि भयंकर हृदयरोग से ग्रसित था और जिसे मेरी दवा से लाभ नहीं हुआ, वह कविराज ईश्वरचन्द्रसेन के पास गया। उन्होंने अर्जुन वृक्ष की छाल से निर्मित की हुई औषधि उसे दी, जिससे उसे आराम हुआ, उसके पश्चात् मैंने भी इसकी छाल में से टिंचर बनाया और हृदय रोग की (Cardiacand Vascular) बीमारियों में उसका उपयोग किया, जिससे अद्‌भुत गुण दृष्टिगोचर हुए। उसके पश्चात् अभी तक इस प्रकार की बीमारियों से कष्ट पाते हुए लोगों को मैं अर्जुन वृक्ष का टिंचर देता हूँ और उससे बहुत ही सन्तोषजनक परिणाम दृष्टिगोचर होता है। इसलिये मैं अपने डाक्टर मित्रों को हार्टडिसीज में इस औषधि का उपयोग करने की निःशंक रूप से सूचना देता हूँ।'

कविराज हरलाल गुप्ता का मत है कि अर्जुन वृक्ष की छाल हृदयरोग की महौषधि है, इसके अतिरिक्त खराब व्रणों को इसके क्वाथ से धोने से वे जल्दी भरकर सूख जाते हैं। हड्डी टूटने की दशा में भी इसकी छाल का क्वाथ या चूर्ण देने से लाभ होता है।

उपयोग—हृदयरोग को दूर करने के अतिरिक्त इस वृक्ष की छाल के अन्दर और भी कई बीमारियों को दूर करने की प्रबल-क्षमता है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

रक्तपित्त—अर्जुन की छाल को रात भर जल में भिगोकर रखे, सबेरे उसको मलकर, छानकर या उसको औटाकर उसका क्वाथ पीने से रक्तपित्त में लाभ पहुँचता है। (चरक)

शुक्रमेह—शुक्रमेह के रोगी को अर्जुन की छाल या श्वेत चन्दन का क्वाथ पिलाने से लाभ पहुँचता है। (सुश्रुत)

रक्तातिसार—अर्जुन की छाल को बकरी के दूध में पीसकर उसमें दूध और शहद मिलाकर पीने से रक्तातिसार दूर होता है। (चक्रदत्त)

क्षय कास—अर्जुन की छाल के चूर्ण में अडूसे के पत्तों के स्वरस की सात भावना देकर शहद, मिश्री या गो-घृत के साथ चटाने से क्षय की खांसी का—जिसमें कफ में खून जाता हो—नाश होता है। (भाव-प्रकाश)

मूत्राघात—मूत्राघात रोग में अर्जुन की अन्तरछाल का क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये।

हृदयरोग—गेहूँ और अर्जुन वृक्ष की अन्तरछाल को बकरी के दूध और गाय के घी में पकाकर उसमें मिश्री और मधु मिलाकर चटाने से अति उग्र हृदयरोग मिटता है। (अनुभूत चिकित्सा-सागर)

बनावटें और प्रयोग—**अर्जुनारिष्ट**—अर्जुन वृक्ष की अन्तरछाल ४०० तोला, मुनक्का २०० तोला, महुए के फूल १०० तोला लेकर सवा मन पानी के अन्दर औटाना चाहिये। जब साढ़े बारह सेर पानी रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये, उसके पश्चात् इस पानी में पांच सेर गुड़ और एक सेर धावड़ी के फूलों का चूर्ण डालकर, मिट्टी के बर्तन में भरकर मुँह बन्दकर एक महीने तक पड़ा रहने देना चाहिये, पश्चात् उसको छानकर उपयोग में लेना चाहिये। इस औषधि में से प्रतिदिन दोनों टाइम एक से लेकर चार तोले तक औषधि उतने ही पानी के साथ पीने से हार्टडिसीज और फेफड़े की व्याधियाँ दूर होती हैं।

अरुणि

नाम—हिन्दी—सुरसरनि, अरुणि। कनाडी—गन्दुपचचेरि। तेलगू—बेलारि। लैटिन—Breynia Rhamnoibes (ब्रेनिया रहेमुनाइडिस)

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष के तमाम उष्ण कटिबन्ध में और सीलोन, मलाया, चीन और फिलिपाइन में होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी छाल संकोचक है। इसके सूखे पत्ते तम्बाखू की तरह पीने से टांसिल की (गले का कौवा) सूजन में तथा तालुपार्श्वग्रन्थि की सूजन में लाभ होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि कृमिनाशक और संकोचक है।

अलर्क

नाम—संस्कृत—अचूड़ा, अलर्क। कनाड़ी—अम्बुसो देवलि, काकमुंज। तामील—कुदुलम्। तैलगू—मुन्दलमुस्त, उचितं। लैटिन—Solanum Trilobatum (सोलेनम ट्रिलोबेटम)

यह औषधि विशेष कर गुजरात, दक्षिण कर्नाटक, सीलोन और मलाया प्रायद्वीप में उत्पन्न होती है। इसका पौधा बहुत छोटी जाति का होता है! इसका फूल बड़ा और देखने में सुन्दर होता है। इसका फल गोल होता है और पकने पर लाल रंग का हो जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इस औषधि की जड़ छोटी कटेरी की प्रतनिधिरूप में काम आती है, इसकी जड़ और पत्ते स्वाद में कड़वे होते हैं। इसका अवलेह, चूर्ण और काढ़ा क्षय रोगी के लिये लाभदायक माने जाते हैं। इसके पंचांग का क्राथ तीक्ष्ण एवं पुरातन वायु-नलियों के प्रदाह में तथा सब प्रकार की खांसी में लाभदायक सिद्ध हुआ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि हृदय को बल देने वाली, पेट के आफरे को दूर करने वाली तथा श्वास, जीर्णज्वर और प्रसव कष्ट में उपयोगी है।

अल्ल

नाम—हिन्दी—अल्ल, बिछुआ, आवा, चीचड़। मराठी—मोतीखजानी। आसाम—होरूसूरत। पंजाब—अंजन, थावर। नैपाल—उलो। लैटिन—Girardinia Zeylanica.

वर्णन—यह एक प्रकार का ऊँचा और फैला हुआ झाड़ होता है। इसकी डालियों पर एक प्रकार चुभने वाला रुआं रहता है। इसके पत्ते काफी चौड़े और आगे से कटे हुए रहते हैं। इसके फूल नर और नारी दो प्रकार के होते हैं। इसके फल के दोनों तरफ रुआं रहता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते सिर दर्द के उपचार में लिये जाते हैं। इसके पत्तों को पीसकर जोड़ों के सूजन में भी काम में लेते हैं। ज्वर की बीमारी में भी इसका काढ़ा काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह सिरदर्द में और जोड़ों की सूजन में मुफीद है। इसका काढ़ा ज्वर में फायदेमन्द है।

अलसी

नाम—संस्कृत—अतसी, पिच्छिला, उमा, क्षुमा। हिन्दी—अलसी, तीसी, मसीना। बंगाली—मसीना, तीसी। मराठी—जवस, अलशी। गुजराती—अलशी। कर्नाटकी—अगसे। तैलंगी—नल्लपगसिचेट्टू। फारसी—तुख्मेकतान। अरबी—वजरुलकतान। अंग्रेजी—Lin Seed। लैटिन—Lini Semina linam, Qusitaissimum.

पहिचान—अलसी की फसल सारे भारतवर्ष में बहुतायत से होती है। इसका तेल सर्वत्र उपयोग में आता है। प्रायः सभी लोग इससे परिचित हैं, इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है। कलकत्ता आदि स्थानों में लाल, सफेद और धूसर रंग के भेद से अलसी तीन प्रकार की होती है, इसके अतिरिक्त Linam Cath-articum नामक एक प्रकार की अलसी यूरोप में होती है जो विरेचन के काम में आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से अलसी मन्दगन्धयुक्त, मधुर, बलकारक, किंचित् कफ-वातकारक, पित्तनाशक, स्निग्ध, पचने में भारी, गरम, पौष्टिक, कामोद्दीपक, पीठ के दर्द और सूजन को मिटाने वाली है। इसके अतिरिक्त यह मूत्र की बीमारी और कुष्ठ को नष्ट करती है। नेत्र की ज्योति को हानि पहुँचाती है। किसी-किसी के मत से यह वीर्य को नष्ट करने वाली, दृष्टिनाशक और वातरक्त-विनाशक है।

चरक के मतानुसार अलसी फोड़ा पकाने की एक प्रसिद्ध औषधि है। इसको जल में पीसकर उसमें थोड़ा सा जौ का सत्तू मिलाकर, खट्टी दही के साथ फोड़े पर लेप करने से फोड़ा पक जाता है। वात-प्रधान फोड़े में अगर जलन और वेदना हो तो तिल और अलसी को भूनकर गाय के दूध में उबालें, ठण्डा होने पर उसी दूध में उन्हें पीसकर फोड़े पर लेप करने से लाभ होता है।

सुश्रुत के अन्दर वात-प्रधान वात-रक्त में वेदना को दूर करने के लिये अलसी को दूध में पीसकर लेप करने का आदेश किया गया है। सुजाक के अन्दर भी सुश्रुत इसे लाभकारी बतलाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में गर्म और तीसरे दर्जे में रूक्ष है। किसी-किसी के मत से दूसरे दर्जे में शीतल और रूक्ष है। इसके बीज चिकने होते हैं। ये मूत्रनिस्सारक, कामोद्दीपक, दूध बढ़ाने

वाले और ऋतुस्राव-नियामक होते हैं। खांसी और गुर्दे की तकलीफ में ये लाभदायक हैं, इसकी छाल और पत्ते सुजाक के लिये उत्तम हैं। इसकी छाल को जलाकर यदि घाव पर लगाया जाय तो यह रक्तस्राव को रोककर घाव को पूर देती है। इसके फूल मस्तिष्क और हृदय को पुष्ट करने वाले हैं। इसके बीज पित्तनाशक, रक्तशोधक, घावों को भरने वाले तथा दाद के लिये लाभकारी हैं। इसके भूंजे हुए बीज संकोचक माने जाते हैं। इनका सेक वायु-गोले पर लाभकारी है। इमरसन के मतानुसार इसके बीजों का उपयोग सुजाक की बीमारी में पिलाने के काम में लिया जाता है। मूत्राशय की अन्य तकलीफों में भी ये लाभदायक हैं, इसके तेल की पुल्टिस गठिया की सूजन पर लगाई जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार अलसी की पुल्टिस नासूर, फोड़े, वायु-नलियों के प्रदाह इत्यादि व्याधियों पर लाभ पहुँचाती है। भीतरी उपचार में (पिलाने के काम में) यद्यपि इसका उपयोग कम लिया जाता है, फिर भी लीनीमेंट वगैरह बनाने में इसका उपयोग होता है। अलसी की चाय भी बनाई जाती है। करीब आधा सेर पानी में आधी छटांक अलसी का बीज डालकर दस मिनट तक उबालकर इसे छान लेते हैं। यह रक्तातिसार और मूत्र-सम्बन्धी शिकायतों को दूर करने के काम में ली जाती है।

सन्याल और घोष के मतानुसार सब प्रकार के प्रदाहकारी फोड़ों पर इसकी पुल्टिस बनाकर लगाना मुफीद है। अलसी का पुल्टिस गठिया रोग की सूजन पर भी लगायी जाती है। इसके बीजों को पानी में गलाकर मसलने से एक प्रकार का लसदार स्निग्ध पदार्थ तैयार होता है। उसे आंखों की बीमारी (नेत्र शुक्ल रोग) में आंखों में डाला जाता है। अलसी के तेल में समान भाग चूने का पानी मिलाने से केरान (Carron) नामक मिश्रण तैयार होता है। यह आग से जले हुये या दाहकारक स्थान पर लगाने के लिये बहुत बढ़िया उपचार है।

अलसी की चाय सूखी खांसी पर—जो कि गल-नाली की सूजन व फेफड़े के कुछ हिस्से की सूजन से पैदा होती है—लाभदायक है। आमाशय की जलन व सूजन पर तथा मूत्राशय और मूत्रनाली के प्रदाह या सुजाक इत्यादि रोगों पर भी यह लाभदायक है।

डायमॉक का कथन है कि सन् १७४७ में 'गॅलस्की' ने अलसी के तेल को मस्तकशूल पर बहुत मुफीद बतलाया था। उन्होंने इसे अँतड़ियों की पीड़ा पर भी बहुत लाभदायक बतलाया है। इसके तैल की खुराक आधे औंस से एक औंस तक है। यह प्रातःकाल और सायंकाल मृदु विरेचक के तौर पर बवासीर में दी जाती है।

रासायनिक विश्लेषण—इसके बीजों में ३० से लेकर ३५ सैकड़ा तक तैल रहता है। इसका रंग ललाई लिये हुए गहरा पीला रहता है। हवा में रखने से यह तैल सूखता है और स्वच्छ वारनिश के रंग का हो जाता है। इसका उपयोग वारनिश बनाने के काम में लिया जाता है। अलसी में दस से लेकर पन्द्रह प्रतिशत तक खनिज तत्त्व रहते हैं। खास कर इसमें फासफैट ऑफ् पोटेशियम, मेगनेशियम, केलशियम और पचीस प्रति सैकड़ा प्रोटीन तत्व होते हैं। इसके छोटे झाड़ में एक प्रकार का साइनोजेनेटिन ग्लुकोसाइड व फेसिओल्डनेटिन नामक पदार्थ रहते हैं।

उपयोग—क्षयरोग—एक औंस अलसी के बीज को पीसकर रातभर ठण्डे जल में भिगो रक्खे, प्रातःकाल इस जल को मल, छानकर कुछ गर्म कर इसमें नीम्बू का रस मिलाकर पीना चाहिये। क्षयरोगी के लिये यह एक अत्युत्तम पेय है।

फोड़े—सोलह भाग अलसी एक भाग राई मिलाकर उसका पुल्टिस बांधने से फोड़े जल्दी पक जाते हैं।

सुजाक—अलसी के बीजों के चूर्ण में मिश्री मिलाकर फंकी देने से तथा इसके तेल की पांच बूंद मूत्रेन्द्रिय के छेद में डालने से सुजाक में लाभ होता है।

पीठ का दर्द—इसके तेल में सोंठ का चूर्ण डालकर गर्मकर मालिश करने से पीठ का शूल मिटता है।

खाँसी—इसके बीजों को सेककर, चूर्ण कर, शहद के साथ चाटने से खांसी मिटती है।

कान की सूजन—अलसी को प्याज के रस में पका कर उसे कान में टपकाने से कान की सूजन मिटती है।

गुदा का घाव—अलसी की राख को गुदा के घाव पर भुर-भुराने से घाव भर जाता है।

अलियार

नाम—हिन्दी—अलियार, सोनलता, विलायती नहंडी। मध्यप्रान्त—बन्देरु, खराटा। सिलोन—विराली। कनाड़ी—बन्देरा। तैलगू—बन्देरु। पंजाबी—वनमेंढ्ढ। लैटिन—Dodonaea viscosa.

वर्णन—यह एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा है। इसकी ऊँचाई बहुत कम और पत्ते छोटे होते हैं। झाड़ के नीचे से ही डालियाँ फूट जाती हैं। इसके पत्ते चमकीले और नीचे की तरफ झुके हुए रहते हैं। फूल कुछ हरा रंग लिये रहते हैं तथा बीज काले होते हैं। यह सारे भारतवर्ष में तथा दूसरे गरम प्रदेशों में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते तूरे और कुछ कड़वे होते हैं। लिनडे के मतानुसार ये पत्ते स्नान व बफारा देने के काम में लिये जाते हैं।

यह विश्वास किया जाता है कि अगर इसके पीसे हुए पत्ते घाव पर लगाये जायँ तो ये बगैर किसी प्रकार का सफेद निशान करते हुए घाव को पूर देंगे, इसका चूर्ण उत्तापन, जीर्णदाह व अन्य दहन में भी काम में लिया जाता है।

पंजाब में यह सर्पदंश के काम में लिया जाता है। इसके पत्त को पीसकर काटे हुए हिस्से पर लगाये जाते हैं। इसके पत्तों का रस सर्प-दंश में पिलाने के काम में भी लिया जाता है।

मेडागास्कर में इसके पत्तों का उपयोग ज्वरघ्न औषधि के रूप में लिया जाता है व इसकी लकड़ी का काढ़ा स्नान करने के काम में व सेक के काम में लिया जाता है। ऐसी परिस्थिति में यह अपना संकोचक गुण बतलाता है।

लारियूनियन में इसके पत्तों का उपयोग किया जाता है। यह एक उत्तम प्रकार की पसीना लाने वाली औषधि मानी गई है। यह एक महौषधि है जो सर्व-व्याधि नाशक समझी जाती है।

महेस्कर व केस के मतानुसार इसके पत्ते सर्प-विषनिवारक नहीं माने गये हैं और न ये सर्पदंश के लाक्षणिक उपचार में उपयोगी माने गये हैं। डा० चोपड़ा के मतानुसार यह ज्वरघ्न व पसीना लाने वाली औषधि है, यह गठिया रोग में उपयोगी है।

अलिश

नाम—पंजाबी—अखि, अलिश, चञ्च, कञ्च, शालिदग अञ्च। दक्षिण—गौरीफल। लैटिन—Rubus Fruticasus (रूबस फ्रूटिकेसस)।

वर्णन—यह एक झाड़ीनुमा वृक्ष है, जिसका प्रकाण्ड कुछ सीधा रहता है। इसके कांटे सभी ओर रहते हैं। इसके पत्ते तीन २ और पांच २ के गुच्छों में रहते हैं। इसके फूल हलके गुलाबी रंग के होते हैं। इन फूलों का बाहरी आवरण मखमली होता है। इसका फल काला और मुलायम होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इण्डियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिताओं का मत है कि यूरोप के अन्दर इस औषधि के फल का शराब (Black Berry Wine) और इसके फल का मुरब्बा गले के रोगों में काम में लिया जाता है। इसके पत्तों का सत्व अतिसार के खून को व दूसरे रक्तस्राव को बन्द करता है। इसकी जड़ का काढ़ा कुक्कुर-खांसी में बहुत लाभदायक है। ब्लेक बेरी का शराब आंतों के ढीलेपन के लिये एक विश्वस्त संकोचक औषधि है। यह हृदय को भी सिकोड़ता है।

अल्लीपल्ली

नाम—हिन्दी—अल्लीपल्ली। पंजाब—अल्लीपल्ली। लैटिन—Asparagus Filicinus.

वर्णन—यह शतावरी के वर्ग की एक वनस्पति होती है। यह वस्तु हिमालय के समशीतोष्ण भागों में काश्मीर से भूटान तक तथा आसाम, बर्मा और चीन में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ बलवर्द्धक और संकोचक समझी जाती है। कनावार के लोगों का ऐसा विश्वास है कि इसकी डाली को शीतला के रोगी के हाथ में देने से वह जल्दी रोग मुक्त हो जाता है। इसकी जड़ कृमिनाशक, मूत्रनिस्सारक और हैजे की बीमारी में लाभदायक है। गठिया की बीमारी में भी यह औषधि फायदा पहुँचाती है। (इण्डियन मेडिकल प्लांट्स)

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और संकोचक है।

अलेथो

नाम—पंजाब—अलेठी। सिंध—अलेठी, पुतलानी, चिपल। लैटिन—Zygophyllum Simplex (झिगोफिलम सिंप्लेक्स)।

वर्णन—यह एक प्रकार का बहुशाखी वृक्ष है। इसकी शाखाएँ बहुत नाजुक होती हैं। इसके पत्ते छोटे और दलदार होते हैं। इसके फूल छोटे और बीज बारीक, मुलायम, फिसलने और नुकीदार होते हैं। यह औषधि राजपूताने के रेगिस्तान, कच्छ, सिंध, अरब इत्यादि स्थानों पर मिलती है।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते आंखों की बीमारियों पर काम में लिये जाते हैं।

अवचिरेता

नाम—हिन्दी—अवचिरेता, तीताखाना। बंगाली—कुचुरी, समाल, गोरखफूल। तैलगू—कैंटोंकेंटी। लैटिन—Exacum Tetragonum.

पहिचान—यह चिरायते के वर्ग की एक वनस्पति होती है। यह औषधि विशेष कर हिमालय प्रांत में, शिमला और भूटान में पांच हजार फीट की ऊँचाई तक होती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि स्वाद में कड़वी, पौष्टिक और अग्निवर्द्धक होती है।

अशोक

नाम—संस्कृत—अशोकः, मधुपुष्पः, अपशोक मंजरी। मारवाड़ी—असापालो। गुजराती—आसोपालव। मराठी—अशोक। लैटिन—Jonecia Asoca (जोनेसिया अशोका), Saraca Indica (सराका इण्डिका)

वर्णन—अशोक का वृक्ष आम के वृक्ष के बराबर होता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। एक जाति के पत्ते रामफल के समान और फूल नारंगी-रंग के होते हैं जो वसन्त ऋतु में खिलते हैं। इसी को लैटिन में 'जोनेसिया अशोका' कहते हैं और यही असली अशोक है। दूसरी जाति के अशोक के पत्ते आम के पत्तों की तरह होते हैं और कुछ पीली झाँई लिये हुए सफेद रंग के होते हैं। इन पर चौमासे के प्रारम्भ में फल आते हैं। कच्चे फलों का रंग हरा और पकने पर ललाई लिये हुए काला हो जाता है। यह अशोक असली नहीं होता, फिर भी लोग औषधिकार्य में इसका उपयोग करते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—निघंटुरत्नाकर के मतानुसार अशोक मधुर, शीतल, हड्डी को जोड़ने वाला, प्रिय, सुगन्धित, कृमिनाशक, कसैला, गरम, कड़ुवा, देह की कान्ति को बढ़ाने वाला, स्त्रियों के शोक को दूर करने वाला, मलरोधक तथा पित्त, दाह, श्रम, गुल्म, उदररोग, शूल, विष, बवासीर, व्रण, तृषा, सूजन, अपच और रुधिररोग को दूर करने वाला है।

शोढ़ल के मतानुसार अशोक की छाल रक्त-प्रदर रोग को नष्ट करनेवाली है। चक्रदत्त भी इसको रक्त-प्रदरनाशक मानते हैं। लेकिन चरक, सुश्रुत, राज-निघंटु आदि ग्रन्थों के प्राचीन आचार्यों ने रक्तप्रदर की चिकित्सा में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। पर आजकल के वैद्यों ने रक्त-प्रदर के अन्दर इस औषधि का उपयोग करके लाभ उठाया हैं।

मेजर बसु और डाक्टर कीर्तिकर Indian Medicinal Plants नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि अशोक की छाल कटु-तिक्त, ज्वर व तृषानाशक, घाव को भरने वाली, अँतड़ियों को सिकोड़ने वाली, कृमिनाशक, अपच की बीमारी दूर करने वाली, प्यास, जलन, रक्तविकार, थकावट, शूल, बवासीर इत्यादि रोगों में लाभदायक है। इसके अतिरिक्त पेट बढ़ने की बीमारी, अत्यधिक रजःस्राव, गर्भाशय से खून बहना, अस्थिभंग व मूत्रकृच्छ्र की बीमारी में भी यह उपयोगी है।

इसकी छाल का स्वरस बहुत तेज और संकोचक है। अत्यधिक रजःस्राव के ऊपर इसे काम में लिया गया और यह पूर्णरूप से उपयोगी सिद्ध हुआ है।

सुश्रुत के मतानुसार इसकी छाल, फूल व फल सांप, बिच्छू के जहर में उपयोगी है, किन्तु महस्कर और केस के मतानुसार इस औषधि में कोई भी विषनाशक गुण नहीं है।

रासायनिक विश्लेषण—कर्नल चोपड़ा ने इसकी सूखी जड़ के चूर्ण का रासायनिक विश्लेषण किया, जिसका परिणाम इस प्रकार निकला।

Petrolium Ether Extract (पेट्रोलियम ईथर एक्सट्रेक्ट) ·307 प्रतिशत।

Ether Extract (ईथर एक्सट्रेक्ट)—·235 प्रतिशत।

Absolute Alkoholic Extract (अब्सोल्यूट ऐलकोहॉलिक एक्सट्रेक्ट) 14·2 प्रतिशत।

इसके अन्दर का एलकोहॉलिक एक्सट्रेक्ट गरम पानी के अन्दर घुलने वाला है। उसमें टेनिन की मात्रा काफी पाई गई है और एक इस प्रकार का प्राणीवर्ग से सम्बन्ध रखने वाला पदार्थ पाया गया जिसमें लोहे की मात्रा काफी थी। इसमें एलकेलाइड (Alkaloid) और इसेनशिअल ऑइल Easential Oil की मात्रा बिलकुल नहीं पाई गई।

बहुत से लोग इसकी छाल को गर्भाशय की बीमारी में और खास करके अत्यधिक ऋतुस्राव में अक्सीर मानते हैं, पर कर्नल चोपड़ा के मतानुसार उपयुक्त बीमारियों में इसका कोई खास असर नहीं है।

डाक्टर वेट, डाक्टर डीमक, डाक्टर एन्सली वगैरह विदेशी विद्वानों ने इस पर अपना मत जाहिर करते हुए लिखा है कि अशोक की छाल बहुत सख्त ग्राही है। क्योंकि उसमें टेनिन एसिड रहता है। देशी वैद्यों की तरफ से यह औषधि गर्भाशय के रोग और खास कर के रक्त-प्रदर के लिये काफी मात्रा में व्यवहृत होती है।

उपयोग—उपर्युक्त अवतरणों से मालूम होता है कि देशी वैद्य अशोक की छाल को रक्त प्रदर के लिये रामबाण औषधि मानते हैं, इसके क्वाथ को देने का साधारण तरीका इस प्रकार है।

रक्त-प्रदर—अशोक की छाल ८ तोला लेकर उसे ६४ तोला पानी में उबालना चाहिये, जब तीन चौथाई पानी जल जाय तब उसमें ८ तोला गाय का दूध डालकर फिर उबालना चाहिये। जब सब पानी जल कर दूध मात्र शेष रह जाय तब उतारकर मल छानकर रोगी को पिलाना चाहिये। इससे रक्त-प्रदर में बहुत लाभ होता है।

बनावटें—अशोकादि घृत—अशोक की अन्तर्छाल दो सेर लेकर, उसे जौकुट कर, उसे सोलह सेर पानी में उबालकर, जब चार सेर पानी बाकी रहे, तब उतार कर छान लेना चाहिए। उसके पश्चात् चावलों का धोवन चार सेर, बकरी का दूध चार सेर, गाय का घी चार सेर और जलभागरे का रस चार सेर, लेकर एक लोहे की कढ़ाई में इन सब चीज को डाल देना चाहिये। पश्चात् विदारीकन्द आठ तोला, शतावरी आठ तोला, असगन्ध आठ तोला, मुलेठी आठ तोला, फालसा आठ तोला, अंजीर आठ तोला, रसौत चार तोला, अशोक की अन्तर्छाल चार तोला, मुनक्का चार तोला, चौलाई की जड़ चार तोला, इन सब औषधियों को पानी के साथ पीसकर लुग्दी का गोला बनाकर उपर्युक्त औषधियों को बीच में लोहे की कढ़ाई में रखना चाहिये। उसके पश्चात् कढ़ाई को चूल्हे पर चढ़ाकर धीमी आँच से पकाना चाहिये। जब काढ़ा, दूध तथा और सब अंश जल कर केवल घी की मात्रा शेष रहे तब उतारकर छान लेना चाहिये। यह घृत तीन माशे से एक तोला तक की मात्रा में रोगी की प्रकृति के अनुसार गरम दूध के साथ देने से रक्त-प्रदर में तो आश्चर्यजनक लाभ होता ही है, पर इसके अलावा श्वेतप्रदर, हरा, पीला, काला, योनि-स्राव वगैरह सब रोग भी इससे आराम होते हैं। अनेक प्रकार की औषधियों से निराश व्यक्ति भी इससे लाभ उठाते देखे गये हैं।

अशोकारिष्ट—असली अशोक की छाल दो-सौ चालिस तोला लेकर छत्तीस सेर पानी में औटाना चाहिये। जब १२ सेर पानी बाकी रहे तब उसे उतार कर, छान कर उसमें आठ सेर गुड़ मिला देना चाहिये। इसके बाद हरड़, बहेड़ा, आंवला, लोध, डाभ के फूल, बिदारीकन्द, नागकेशर, गुलबनफ्शा, असगन्ध, गुलाब के फूल, अडूसा, कमल के फूल, जीरा, मजीठ, शतावरी, पीपर ये सब चीजें एक २ तोला और धावड़ी के फूल दस तोला, इन सबका चूर्ण कर उसमें मिला देना चाहिये। फिर इस औषधि को बरनियों में भरकर, इनमें १ सेर शराब मिलाकर एक सप्ताह तक पड़ी रहने देना चाहिये। फिर छानकर छः माशे से एक तोले तक की मात्रा में इसका उपयोग करना चाहिए। यह औषधि सब प्रकार के प्रदर रोग, सोम रोग, दुष्टार्त्तव, गर्भपात इत्यादि रोगों में अत्यन्त चमत्कारिक असर दिखलाती है।

असगंध

नाम—हिन्दी—असगंध। गुजराती—घोड़ा कुन। दक्षिण—ढोरगुंज। गोवा—पत्थरफोड़ी। लैटिन—Withania Somnnifera (विटेथेनिया सोमनिफेरा)

वर्णन—असगंध के झाड़ वर्षा ऋतु के अन्दर पैदा होते हैं। कई स्थान पर यह बारहों मास पाये जाते हैं। इसके पौधे दो से तीन फीट तक ऊँचे होते हैं और इसकी रींगणी की तरह कई शाखायें निकलती हैं। इसके चनोटी के समान लाल रङ्ग के फल लगते हैं जो बरसात के अन्त में या जाड़े के प्रारम्भ में दिखाई देते हैं। इसकी जड़ एक फुट लम्बी, मजबूत, चेपदार और कड़वी होती है।

बाजार के अन्दर गन्धियों के यहाँ जो असगंध बेचा जाता है, वह इस वनस्पति की जड़ नहीं है। उसका परिचय आगे दिया जा रहा है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह एक नशीली और विष तत्त्व से युक्त वनस्पति होती है। इसके फल के विष का प्रभाव बेलाडोना के विष के समान होता है। इसके बीजों को दूध में डालने से दूध जम जाता है। इस पौधे की जड़ को बहुत से लोग असगन्ध कहते हैं। मगर बाजार में असगंध के नाम से जो जड़ें बिकती हैं, वे बिलकुल दूसरी चीज हैं, उनमें नशीला और जहरीला प्रभाव बिलकुल नहीं होता।

इस असगंध की अर्थात् घोड़ाकुन की जड़ें अवसादक, नशीली और मूत्रल होती हैं। मज्जातन्तुओं पर इसकी अवसादक क्रिया होती है मगर हृदय पर इसकी अवसादक क्रिया नहीं होती। इसको छोटी मात्रा में देने से वह कामेन्द्रिय में कुछ उत्तेजना पैदा करता है। इसकी मात्रा एक रत्ती से दो रत्ती तक होती है।

इसकी जड़ पौष्टिक, धातु-परिवर्तक और कामोद्दीपक है। क्षयरोग, बुढ़ापे की दुर्बलता तथा गठिया में भी लाभजनक है। इसमें निद्रा लाने वाले और मूत्र बढ़ानेवाले पदार्थ भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

सन् १६०३ में इस औषधि के सम्बन्ध में एक नवीन खोज हुई, जो पोरबन्दर स्टेट के फारेस्ट डिपार्टमेन्ट क्यूरेटर जयकृष्ण इन्द्रजी के द्वारा उसी स्टेट के सन् १९०२ की फरवरी मास के १६ वीं तारीख के गजट में प्रकाशित हुई थी। उसका आशय इस प्रकार है—

'करीब सात वर्ष के पहले एक जैन साधु ने एक जड़ी का करीब दो इञ्च लम्बा और डेढ़ इञ्च मोटा एक टुकड़ा पोरबन्दर की पींजरापोल के तत्कालीन मैनेजर सेठ जयचन्द सावडिया को दिया था और उन साधु ने यह कहा था कि चाहे जैसी गठान के ऊपर उसको चुपड़ने से वह गाँठ फूटकर आराम हो जाती है। इन साधु के जाने के कुछ ही महीनों के पश्चात् संवत् १९५४ में पोरबन्दर के अन्दर प्लेग की भयङ्कर बीमारी चली, उस समय प्लेग की गाँठ के ऊपर इस जड़ी का उपयोग किया, जिससे चार-पाँच आदमियों की गाठें फूटकर उन्हें आराम हो गया। उसके पश्चात् उस जड़ी का केवल आधा इञ्च टुकड़ा बाकी रह गया तब उन्होंने उस टुकड़े को वहां के चीफ मेडिकल आफिसर डाक्टर हरि श्रीकृष्णदेव को दिखलाया और उसके गुण के सम्बन्ध में बात की, तब उक्त डाक्टर साहब ने सेठ जयचन्द को मेरे पास इस जड़ी की परीक्षा करने के लिए भेजा। इस जड़ी को सूंघते ही मुझे असगंध सन्देह हुआ और मैंने तत्काल संस्थान के बाग में से असगन्ध की जड़ निकलवा मँगाई। इस जड़ के टुकड़े के साथ उसका मिलान करने से उसकी गन्ध, स्वाद, सूरत वगैरह सब बातें मिल गईं, तब उस जड़ का एक बड़ा टुकड़ा इसी प्रकार उपयोग करने के लिए जयचन्द सेठ को दिया गया तथा डाक्टर श्रीकृष्णदेव और काम्पौन्डर मि० नरोत्तम तथा डा० मणिशंकर ने भी इसको प्लेग की गाँठ के ऊपर अजमाया, जिससे उनको प्लेग के ऊपर यह औषधि बहुत असरकारक मालूम हुई। उन्होंने पन्द्रह खारवा, चार भुई, दो सिन्धी, चार ब्राह्मण तथा १० लोहाणा वैश्यों को प्लेग की बीमारी से आराम किया। इसी प्रकार संवत् १६५६ में तथा १६५८ में दूसरी और तीसरी बार जब प्लेग चला तब भी इस असगन्ध की जड़ से कई लोगों की जानें बचीं।'

सन् १६०२ के दिसम्बर महीने में अहमदाबाद में वैद्यक प्रदर्शनी हुई और उस प्रदर्शनी में भी इन जड़ों को रखा गया। वहाँ से बड़ोदा के कला-भवन के रसायन शास्त्री मि० मोतीलाल छोटेलाल त्रिवेदी भी इस जड़ को ले गये और उन्होंने प्लेग के रोगियों पर इस जड़ का अनुभव किया। उसके परिणाम में उन्होंने लिखा कि इस जड़ को पानी में घिस कर लेप करने से प्लेग के दश रोगी मैंने आराम किये हैं।

उसके बाद बम्बई समाचार वगैरह कितने ही पत्रों में इस औषधि का विज्ञापन छपाया गया तथा उसके परिणामस्वरूप काठियावाड़, कच्छ, सिन्ध, गुजरात, मारवाड़ और दक्षिण तथा उत्तर हिन्दुस्तान में कई स्थानों पर इस संस्थान की तरफ से यह धर्मार्थ औषधि भेजी गई और सब स्थानों पर इसका परिणाम बहुत ही सन्तोषजनक हुआ।

उपयोग करने की रीति—इसकी ताजी जड़ को पानी में घिसकर चन्दन की तरह गाँठ के ऊपर लेप करना चाहिए, आस-पास जहाँ तक सूजन या जगह लाल हो वहाँ तक उसको लगा देना चाहिये, सूखने के पश्चात् यह लेप खींचता है इसकी वजह से आस-पास की तमाम सूजन एक मध्य बिन्दु में इकट्ठी हो जाती है। ज्यों-ज्यों गाँठ ऊपर आती है त्यों-त्यों रोगी बेहोशी से निकलकर होश में आता चला जाता है। अन्त में गाँठ पककर फूट जाती है। गांठ के फूट जाने के पश्चात् उसके आस पास इसकी जड़ का लेप करने से और गाँठ के मुँह पर गेहूं के आटे की पुल्टिस बाँधने से सारा पीब खिंचकर निकल जाता है और अन्त में सादे मलहम की पट्टी चढ़ाने से गाँठ भर जाती है। जिस समय इस दवा का लेप चालू हो, उस समय पीने के लिए नीचे लिखा मिक्श्चर दिया जाय तो विशेष लाभ होता है।

एमोनिमा एरोमेटिक ९० बूँद, एड्रीन-लिन-क्लोराइड लिक्वीड २० बूँद, स्प्रिट ईथर ३० बूँद, ऐका पिपरमेंट १६० बूँद, टि-डिजिटेलिस ३० बूँद, फास्फोरिक एसिड २ बूँद, स्प्रिट केम्फर १२० बूँद, इन सारी औषधियों को मिलाकर एक शीशी में भर करके मजबूत कार्क लगाकर रख देना चाहिये, इसमें से ३० बूँद की खुराक दिन में तीन बार एक औंस पानी में मिलाकर लेना चाहिए। एड्रिन-लिनक्लोराइड का लिक्विड १००० बूँद पानी में १ बूँद एड्रिन-लिन-क्लोराइड डालने से तैयार होता है।

असगंध बाजारी

नाम—संस्कृत—अश्वगंधा, तुरगी, पीवरी, पुष्टिदा। हिन्दी—असगंध। गुजराती—आसंध। लैटिन—Convolvulus Asgandha (कनव्होलवुलस असगन्धा)

वर्णन—बाजार में असगंध के नाम से जो सफेद रंग की जड़ें बिकती हैं वे इसी वनस्पति की जड़ें हैं। मराठी में जिसे ढोरगुञ्ज और गुजराती में घोड़ाकुन कहते हैं, वह वनस्पति यह नहीं है। इसमें नशीला स्वभाव बिलकुल नहीं होता। यह वनस्पति बाजारों में सब ओर मिलती है। मगर घोड़ाकुन या ढोरगुञ्ज सर्वत्र नहीं मिलती शार्ङ्गधर, भावप्रकाश इत्यादि में जिस पौष्टिक और वीर्यवर्द्धक असगन्ध का वर्णन किया गया है, वह यही है। इस वनस्पति की कई स्थानों पर बड़े पैमाने पर खेती की जाती है।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति वात, कफ, सूजन, श्वेतकुष्ठ और कफ रोगों को नष्ट करनेवाली तथा बलकारक रसायन, कड़वी, कसैली और अत्यन्त वीर्यवर्द्धक है।

यूनानी मत से यह कुछ कड़वी, पौष्टिक, श्वास को दूर करनेवाली, ऋतुस्राव को नियमित करनेवाली तथा कटिवात और संधि-प्रदाह में लाभदायक है।

प्रयोग—**बलवर्द्धन**—सफेद मूसली, विधारा इत्यादि धातुवर्द्धक औषधियों के साथ इसकी फंकी लेकर ऊपर से दूध पीने से बल बढ़ता है।

गठिया—इसके पञ्चांग का २॥ से ५ तोले रस पीने से गठिया में लाभ पहुँचता है।

क्षयरोग—अड्डूसे के क्वाथ के साथ इसके चूर्ण की फंकी लेने से क्षयरोग में लाभ पहुँचता है।

वन्ध्यत्व—इसके चूर्ण की तीन माशे से छः माशे तक की फंकी रजोधर्म के प्रारम्भ में देने से स्त्री को गर्भ रहता है।

इस टाइम में दूध और चावल का भोजन कराना चाहिये। इसके क्वाथ से सिद्ध किया हुआ घी पिलाने से मासिकधर्म से शुद्ध हुई स्त्री गर्भ धारण करती है।

क्वाथेन हयगन्धायाः, साधितं सघृतं पयः। ऋतुस्नाताऽबला पीत्वा, धत्ते गर्भं न संशयः॥

कटिशूल—(कमर का दर्द)—असगन्ध के चूर्ण को शक्कर और घी में मिलाकर चटाने से कटिशूल मिटता है।

नारू—असगंध को छाछ या तेल में पीसकर लेप करने से नारू में लाभ पहुँचता है।

वातरक्त—असगन्ध और चोप चीनी के रस का काढ़ा पिलाने से वातरक्त में लाभ पहुँचता है।

बनावटें—**अश्वगन्धादि चूर्ण**—असगन्ध और विधारा समान भाग लेकर दोनों को बराबर मिलाकर बोतल में भरकर रख देना चाहिए। इसमें से १ तोला चूर्ण सबेरे १ तोला शाम को दूध के साथ धैर्यपूर्वक लेने से बहुत पुरुषार्थ बढ़ता है। वात-व्याधि नष्ट होकर बुढ़ापा मिटता है, सफेद बाल काले हो जाते है। इत्यादि अनेक गुण इस चूर्ण में हैं।

अश्वगन्धादि घृत—असगन्ध की जड़ ४०० तोला लेकर १०२४ तोला जल में इसका काढ़ा बनाना चाहिये। जब चौथाई जल शेष रह जावे, तब वस्त्र से छानकर उसमें गाय का घी ६४ तोला, गाय का दूध २५६ तोला तथा काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, कौंचबीज, अडूसा, मुलेठी, मुनक्का, धमासा, पीपल, जायपत्री, खिरेटी, विदारीकंद, शतावरी इन औषधियों को दो-दो तोला लेकर पानी के साथ पीसकर लुग्दी बना दूध और घी के बीच में रखकर हलकी आँच से पकावे जब दूध और काढ़ा जलकर केवल घी मात्र शेष रह जावे, तब उतारकर छान लें।

इस घी के सेवनसे क्षय, दुर्बलता, बालों का सफेद होना, हृदयरोग, उरःक्षत, नपुंसकता, खाँसी, श्वास, वातव्याधि, स्त्रियों का वन्ध्यापन आदि अनेक व्याधियाँ दूर होती हैं।

असगन्ध पाक—नागोरी असगन्ध १ सेर, सतुआसोंठ १ सेर, छोटी पीपल पाव भर, कालीमिर्च आधा पाव, इन सबको पीसकर कपड़छन कर लेना चाहिये, फिर सोलह सेर दूध को औटाकर, जब वह आधा रह जाय तब उसमें ऊपर का चूर्ण डालकर उसका खोवा कर लेना चाहिये। जब खोवा हो जावे तब कढ़ाई में दो सेर घी डालकर खोवे को भून लेना चाहिए, जब खोवा लाल हो जावे, तब उसे उतारकर उसमें तज, तेजपात, नागकेशर, इलायची, लौंग, पीपलामूल, जायफल, नेत्रवाला, सफेद चन्दन का बुरादा, नागरमोथा. सूखे आंवले, वंशलोचन, खैरसार, चित्रक की छाल और शतावर सबको एक-एक तोले लेकर पीस, कूटकर छान लेना चाहिए। उसके पश्चात् चार सेर मिश्री की चासनी बनाकर उसमें ऊपर का भुना हुआ खोवा और चूर्ण अच्छी तरह मिलाकर आधी-आधी छटांक के लड्डू बांध लेना चाहिए।

जिन लोगों की प्रकृति सर्द और वादी की है, उन लोगों को जाड़े के दिनों में १ लड्डू खाकर ऊपर से दूध पी लेना चाहिए। यह पाक वातव्याधि, बुढ़ापा, कमर और जोड़ों का दर्द तथा श्वास और खाँसी को दूर करता है। ख्याल रखना चाहिए कि यह पाक पहुत गर्म है। इसलिए यह पाक गर्म मिजाजवाले आदमियों को नहीं खाना चाहिए। वृद्ध आदमियों के लिए यह पाक वास्तव में अमृत है।

धातु-वर्द्धक सुधा—असगंध आधापाव, शतावर पावभर, सफेद मुसली डेढ़पाव, तालमखाना आधा सेर, मखाने अढाई पाव, सेमर का मूसला तीन पाव, चीनी एक सेर, सब दवाइयों को कूट, पीस, छानकर चीनी मिला देना चाहिए और हांडी में रखकर उसका मुँह बांधकर रख देना चाहिए। सबेरे शाम आधा सेर गेहूँ के आटे की रोटी बनाकर उसे चूरकर, उसमें आधा पाव चीनी और हांडी की तीन तोले दवा मिलाकर जौ की भूसी के साथ गाय को खिला देना चाहिए। यह खुराक चालीस दिन तक गाय को खिलाने के १० दिन बाद गाय का धारोष्ण दूध मिश्री मिलाकर सबेरे-शाम पीना चाहिए। अगर ऐसा दूध चालीस दिन पी लिया जाय तो अत्यन्त बलवृद्धि होगी।

चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदास जी का कथन है कि हमने कलकत्ते के एक धनी मारवाड़ी को यह दूध सेवन कराया; परिणाम यह हुआ कि उसकी हड्डियाँ हृष्ट-पुष्ट हो गईं। महाकुरूप चेहरा गुलाब का फूल बन गया। मतलब यह है कि इसके सेवन से क्षय, क्षीणता, प्रमेह, दिल दिमाग की कमजोरी और सिर के रोग में बहुत लाभ होता है, जिनको वीर्य की कमी से नामर्दी और क्षय हो, उनके लिए तो यह अमृत ही है।

असन (विजयसार का गोंद)

नाम—संस्कृत—असन, बीजक, पीतशाल, महाकुटज, बन्धूकपुष्प, प्रियक। हिन्दी—असन, विजयसार का गोंद। बंगाली—पियाशाल। मराठी—असाणा, बिबला। गुजराती—बीयां, हीरादखन। कर्नाटकी—केपिन्नहोने। तेलंगी—पेदगी, मद्दी। तामील—कुरिंजी। बम्बई—असन। पञ्जाबी—विजयसार। फारसी—कमरकस। उर्दू—एमुलक्वेन। अंग्रेजी—Idnian Kinotree। लेटिन—Pterocarpus Marsupium.(टेराकारपस मारसुपीएम)।

वर्णन—यह एक बड़े किस्म का सालवृक्ष की तरह वृक्ष होता है। इसकी छाल मोटी और भूरे रंग की,

कुछ पीलापन लिये हुए होती है। इसके पत्ते पीपल के पत्तों से कुछ छोटे होते हैं जो कि पाँच-पाँच सात-सात के गुच्छों में लगते हैं। इन पत्तों के दोनों ओर बारीक रुयें होते हैं। इसमें डेढ़-दो इंच लम्बी नोकदार फलियाँ लगती हैं। इसके फल पीले आँवले के समान होते हैं। इसकी लकड़ी कालापन लिये हुए होती है। इसमें एक प्रकार का लाल गोंद लगता है। यही गोंद विशेष करके औषधि के काम में आता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वृक्ष और इसका गोंद गरम, कड़ुआ और तीखे स्वाद वाला होता है। यह विरेचक; कृमिनाशक, गलरोग-निवारक, रक्त मंडल नाशक तथा कोढ़, विसर्प, चित्रकुष्ठ, प्रमेह, गुदा के रोग और रक्त-पित्त को नष्ट करने वाला है। यह त्वचा और केशों को लाभ पहुँचाने वाला और रसायन है। इसके फूल पचने में मधुर, कड़वे, पाचक और वातवर्द्धक हैं।

रक्त-विकार शरीर के फोड़े, मूत्ररोग और श्लीपद रोग में भी यह औषधि मुफीद है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका गोंद कड़ुआ और बदजायके होता है। यह रक्तस्राव को रोकने वाला, जखम को पूरने वाला, यकृत के लिये पौष्टिक, कृमिनाशक और ज्वर में लाभ पहुँचाने वाला है। चक्षुरोग, फोड़े, मूत्रविकार, पुरातन प्रमेह और आंतों के दर्द में भी यह औषधि मुफीद है।

गोआ में इस वृक्ष का छिलका संकोचक औषधि के रूप में काम में लिया जाता है। कारोमण्डल के किनारे के ऊपर, दांत के रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। रक्तातिसार, अतिसार, दिल की घबराहट और मुँह से पानी छूटने के रोगों में यह एक उत्तम संकोचक औषधि है। मटेरिया मेडिका ऑफ् इण्डिया के लेखक आर० एन० खोरी के मतानुसार असन की छाल, अतिसार, ग्रहणी और श्वेत-प्रदर में उपयोगी है। डा० ई० रास के मतानुसार मुखपाक के अन्दर इसके चूर्ण को तेल में मिला कर उपयोग करना चाहिये। बंगसेन के मतानुसार खैर की लकड़ी और असनसार का काढ़ा, शुद्ध गूगल और त्रिफला के चूर्ण के साथ सेवन कराने से उपदंश में लाभ होता है। रमफीयस के मतानुसार इसके पिसे हुये पत्ते फोड़ों पर, अर्बुद पर व अन्य चर्म रोगों पर काम में लिये जाते हैं। कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह एक उत्तम संकोचक औषधि है।

उपयोग—रक्त-प्रदर—इसका गोंद रुधिर सम्बन्धी रोगों को-जैसे रक्त-प्रदर, रक्तातिसार इत्यादि को मिटाने के लिये बहुत उपयोगी है।

दंतपीड़ा—इसके पत्तों के काढ़े से कुल्ले करने से मुखपाक और दंतपीड़ा मिटती है।

चोट—इसकी लकड़ी को पानी में घिस कर लेप करने से चोट की पीड़ा मिटती है।

कुष्ठ—इसकी लकड़ी को जौकुट कर पानी में भिगो कर, मल-छान कर पिलाने से कुष्ठ और रक्तविकार में लाभ होता है।

अस्पर्क

नाम—हिन्दी—अस्पर्क। उर्दू—अस्पर्क। बंगाली—बऊपीरिंग। परशियन—अक्लिउलमलक। लेटिन—Melilotus Officinalis (मेलीलोटस आफिसिनेलीस)

वर्णन—यह वनस्पति नुब्रा से लदक तक १० हजार से १३ हजार फीट की ऊँचाई तक पूर्वीय प्रदेश में और योरप में पैदा होती है।

गुण-दोष और प्रभाव—इसका छोटा फल शान्तिदायक, पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाला व कामोद्दीपक होता है। यह धवल रोग में उपयोगी है। इस वनस्पति में रक्तस्रावरोधक गुण है। यह रगड़न के काम में ली जाती है। यह वनस्पति सुगन्धित, स्निग्धकारक और पेट के आफरे को दूर करने वाली है। यह मनुष्य को बद्धकोष्ठता से मुक्त करती है। अंगों के दर्द पर सेक करने में और पुल्टिस बांधनेमें इसका बाह्य उपयोग किया जाता है। इसका काढ़ा स्निग्धताकारक है। इसे लोशन और एनिमा के रूप में काम में लेते हैं।

डाक्टर चोपड़ा के मतानुसार यह संकोचक है। यह सूजन की व आंतों की शिकायतों की उत्तम औषधि है। यह पेट के आफरे को दूर करने वाली है। इसमें ग्लुकोसाइड नाम का एक पदार्थ रहता है।

असाबइलफतियात

नाम—अरेबिक—असाबइलफतियात। लैटिन—Calamintha Clinopodium. (केलेमिंथा क्लिनोपोडियम)।

वर्णन—यह औषधि हिमालय पर्वत में काश्मीर से कुमाऊँ तक ४००० फीट की ऊँचाई से १२००० फीट की ऊँचाई तक और यूरोप, उत्तरी अफ्रीका और कनाडा में पैदा होती है। इसका प्रकाण्ड सीधा, पत्ते गोलाकार और बड़े गुच्छेदार होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि संकोचक, पेट के आफरे को दूर करने वाली और हृदय को बल देने वाली है।

असालू

नाम—संस्कृत—चन्द्रसूरम् वासपुष्पा, रक्तराजी, कालमेषा। हिन्दी—हालों। मारवाड़ी—असालू। गुजराती—असालियों। बंगाली—हालिम। पंजाबी—हालूं। मराठी—अहालील। तैलगू—आदित्यालू। उर्दू—हालिम। अरबी—हरफुलबज, हर्फजरजीर। फारसी—तराहतेजक। लैटिन Lepidum Sativum.

विवरण—असालू प्रायः सारे भारतवर्ष में बोई जाती है। इसका पौधा सरसों के पौधे की तरह होता है। इसके पत्ते कटे हुए रहते हैं। इसके फूल नीले रंग के होते हैं। इसमें फलियां आती हैं, उन फलियों पर कुछ रूआसा रहता है। इसके बीजों में बहुत चेप होता है।।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मतानुसार यह औषधि गरम, कड़वी, पौष्टिक, दूध बढ़ानेवाली, बाजीकरण और कामोद्दीपक है। यह वात, कफ, अतिसार और त्वचा के रोगों को नष्ट करने वाली है। दुग्धयुक्त असालू अभिघातरोग, चर्मरोग, नेत्ररोग और रुधिरविकार को दूर करनेवाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसके बीज और पत्ते गरम, शुष्क, मूत्रनिस्सारक, विरेचक और कामोद्दीपक हैं। यकृत् के रोग, वायु-नलियों के प्रदाह, छाती के दर्द, गठिया और आमाशय की तकलीफों में ये लाभज.क हैं। ये मस्तिष्क शक्ति को बढ़ानेवाले और बुद्धिवर्द्धक हैं।

होनिक वर्ग के मतानुसार यह पौधा पंजाब के अन्दर श्वास की बीमारियों में काम में लिया जाता है। इसकी जड़ उपदंश की बीमारी में भी लाभदायक मानी जाती है। खूनी बवासीर और अँतड़ियों में होनेवाले आक्षेपयुक्त मरोड़ों में भी यह उपयोगी है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और धातुपरिवर्तक है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल रहता है।

बेलू के मतानुसार इसके बीज पंजाब में स्तनों में दूध बढ़ानेवाले माने जाते हैं। इनको दूध के साथ मिलाकर पिलाया जाता है। इस विधि से पिलाने से ये गर्भस्रावक औषधि का काम भी करते हैं। इसलिये गर्भवती स्त्रियों को इन्हें नहीं पिलाना चाहिये।

उपयोग—रुधिर विकार—हिचकी, अतिसार और रुधिर विकार के रोग में यह औषधि बहुत उपकारी है। इसके सेवन से तिल्ली आदि बढ़े हुए यन्त्र अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाते हैं।

आमाशय की पीड़ा—इसका काढ़ा पिलाने से आमाशय की पीड़ा मिटती है और वह कुछ उत्तेजित हो जाता है।

सूजन—इसके बीजों को कूटकर नीबू के रस में मिलाकर लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

श्वास और खांसी—इसकी डालियों को औटाकर पिलाने से श्वास और सूखी खाँसी मिटती है।

खूनी बवासीर—इसका शर्बत बनाकर पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

उपदंश—इसका काढ़ा बनाकर पिलाने से सारे शरीर में फैला हुआ उपदंश का विष शान्त होता है।

अतिसार—इसकी जड़ के चूर्ण की फंकी देने से बार २ दस्त की शंका होती तथा अतिसार मिटता है।

खुजली और दाह—दाह और खुजली पैदा करनेवाले पदार्थों के विष को उतारने के लिये इसके बीजों का चेप निकालकर पिलाना चाहिये।

काढ़ा बनाने की रीति—इसका काढ़ा बनाने के लिए इसके दो तोले अधकचरे बीज और पौने चार माशे कुटी हुई मुलेठी लेकर तीन पाव पानी में डालकर बन्द बर्तन में दस मिनट तक औटाना चाहिये, फिर उसे मसल-छानकर उपयोग में लेना चाहिये।

अस्थिसंहार

नाम—संस्कृत—अस्थिसंहार, क्रोष्टुघंटिका, वज्रकन्द, वज्रवल्ली। हिन्दी—हाड़जोड़, हरजोरा। गुजराती—वेदारी। मराठी—कन्दवेल। बङ्गाली—हारभङ्ग। बम्बई—हाड़जोड़। तैलगू—वज्रवल्ली। उर्दू—हारजोर। लैटिन—Vitis Quadrangularis (व्हाइटिस क्वाड्रानग्यूलेरिस)।

वर्णन—इसकी बेल थूहर जाति की होती है। इसकी शाखाएँ और डालियाँ चौकोर होती हैं। फूल गुलाबी, पियाजी और सफेद होते हैं। इस बेल में चार-छः अंगुल पर गांठें होती हैं। इसके छोटे मटर के बराबर लाल रंग के फल लगते हैं। उसमें एक बीज होता है। इसकी डालियाँ पुरानी होने से खट्टी पड़ जाती हैं। यह औषधि प्रायः सारे भारतवर्ष, मलाया द्वीप समूह, सीलोन और पूर्वी अफ्रीका में पाई जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह औषधि वात-कफनाशक, टूटी हुई हड्डी को जोड़नेवाली, गरम, कृमिनाशक, पाचक, अग्निवर्द्धक, पौष्टिक, नेत्ररोग-नाशक, स्वादिष्ट, कामोद्दीपक और पित्तकारक है। यह बवासीर, मृगी, अर्बुद, क्षुधा नष्ट होने की बीमारी, तिल्ली, हड्डी का टूटना और जलोदर में लाभ पहुँचाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका डंठल कड़वा होता है। इसको टूटी हुई हड्डी पर लगाने से लाभ होता है। पीठ के दर्द की शिकायत और मेरुदण्ड की पीड़ा में यह मुफीद है।

इसके पत्ते व छोटे वृक्ष धातुपरिवर्तक हैं। इसको सुखाकर एवं चूर्ण कर, अपच के द्वारा हुई आँतों की शिकायत में देने से लाभ होता है।

इसकी डाल का रस अनियमित मासिक स्राव और बालकों के उक्कुश रोग (Scurvy) में दिया जाता है। नाक से खून बहने और कर्णस्राव की बीमारियों में भी यह रस लाभ पहुँचाता है।

इस बेल के तने (प्रकाण्ड) को पीसकर दमे की बीमारी में भी देते हैं।

डा० मुहिउद्दीन शरीफ का कथन है कि इस औषधि के काण्ड की लकड़ी के मुरब्बे को दो से चार ड्राम तक की मात्रा में चौबीस घण्टे में दो या तीन बार देने से, ट्रिपलिकेन में एक आदमी जो कि चिरकाल से हठीले अजीर्ण से पीड़ित था, चालीस दिन तक सेवन करने से बिल्कुल रोग मुक्त हो गया। इस मुरब्बे को बनाने की तरकीब इस प्रकार है। इसकी बेल के नवीन और कोमल प्रकाण्ड के छोटे-छोटे टुकड़े करके उनको आंवले की तरह कोचनी से छेद डालें। फिर उनको पानी में डालकर मुलायम होने तक उबालें। उसके पश्चात् उनको कारबोनेट आफ् सोडा मिश्रित पानी में फिर उबालें। जब वे बिलकुल मुलायम और चरपराहट से शून्य हो जायँ, तब उनको स्वच्छ, गरम जल से धोकर शक्कर की चासनी में डाल दें। एक सप्ताह के पश्चात् इसको उपयोग में लें। (मटेरिया मेडिका आफ् मदरास—डाक्टर मोहिउद्दीन शरीफ)

मटेरिया मेडिका आफ् इण्डिया के लेखक डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार यह औषधि रसायन और उत्तेजक है। अजीर्ण, मन्दाग्नि और स्कर्वी रोग में यह लाभदायक है। हड्डी टूटने पर इसकी गीली डालों को पीसकर उसका लेप करते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह धातु-परिवर्तक और अग्नि-प्रवर्द्धक है। यह अनियमित रजस्राव में दिया जाता है। इसकी जड़ अस्थिभङ्ग के काम में ली जाती है। मद्रास के अन्दर इस वनस्पति की छोटी डालियां और छोटे पौधे एक बर्तन में बन्द करके जला लिये जाते हैं। इनकी राख को अपच और अग्निमांद्य की बीमारी में देते हैं। इसकी लकड़ी का रस कर्णस्राव और नक्सीर में मुफीद माना गया है।

उपयोग—वात व्याधि—भावप्रकाशकार का कथन है कि हडसंहारी की लकड़ी का एक टुकड़ा लेकर उसकी छाल को छीलकर उसका चूर्ण कर ले और उस चूर्ण में भीगी हुई उड़द की छिलके रहित दाल चूर्ण से आधी मिलावे फिर दोनों को सिल पर महीन पीसकर तिल के तेल में पकौड़ी बना लें। वह पकौड़ी भयंकर वात का नाश करती है।

अतिसार—इसके पत्ते और कोयलों के चूर्ण की फंकी देने से अतिसार में लाभ होता है।

कर्णपीड़ा—कर्णपीड़ा में इसकी शाखा का रस कान में डालने से आराम होता है।

मसूड़ों की सूजन—मसूड़ों की सूजन और बिना समय मासिकधर्म होने के रोग में भी यह वनस्पति बहुत फायदेमन्द साबित हुई है। इसके पंचांग को गर्म कर उसके दो तोले रस में, दो तोला घी, एक तोला गोपीचन्दन और एक तोला शक्कर मिलाकर रोगी को चटा देना चाहिये।

पेट की पीड़ा—पेट की पीड़ा में इस वनस्पति की शाखा को चूने के पानी में उबालकर पिलाने से पेट की पीड़ा मिटती है।

बलवर्द्धन—इसकी फंकी लेने से बल बढ़ता है।

मन्दाग्नि—मन्दाग्नि में इसके चूर्ण को सोंठ के साथ देने से फायदा होता है।

उदर-रोग—इसकी नरम कोपलों को थोड़ो-सी सेक कर चटनी बनाना चाहिये। फिर उस चटनी को खिलाने से पेट के रोग मिटते हैं तथा भूख लगती है।

अजीर्ण—इसकी कोपलों के टुकड़ों को एक मिट्टी के बर्तन में बन्द कर जलाकर उस भस्म की फंकी देने से अजीर्ण और मन्दाग्नि मिटती है।

रीढ़ की हड्डी की पीड़ा—इसकी कोमल शाखाओं का बिछौना कर, उस पर सोने से रीढ़ की हड्डी की पीड़ा मिटती है।

उपदंश—इस औषधि की नरम लकड़ी को कूट-पीसकर उसका रस निकालना चाहिये। इस रस को दो तोले की मात्रा में उतना ही गाय का घी मिलाकर दिन में दो बार लेना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक करने से गर्मी के चट्टे घाव आदि उपद्रव दूर होते हैं। दवा लेते समय नमक को बिलकुल उपयोग में नहीं लेना चाहिये।

आक

नाम—संस्कृत—अर्क, राजार्क, क्षीरदल, शुकफल, विभावसु। हिन्दी—आक, मंदार। बंगाली—आकंद। मराठी—रुई, पाठरी रुई। तैलंगी—नलिजिल्ले डेघोली, तेलाजिल्लीडे। फारसी—खरक, दूध। अरबी—ऊशर। अंग्रेजी—Gigantic Swallow wort (जायजेन्टिक स्वेलो वर्ट)। लैटिन—Calotropis Gigantica (केलोट्रोपिस जायजेन्टिका) Calotropis proceera (के० प्रोसीरा)।

वर्णन—आक के झाड़ सब स्थानों पर मिलते हैं और सब लोग उनको जानते हैं। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं। इसकी लाल और सफेद, इस प्रकार दो जातियाँ होती हैं। लाल जाति को लैटिन में Calotropis Cigantica (के० जायजेंटिका) और सफेद जाति को Calo. Procera (के० प्रोसेरा) कहते हैं। लाल सफेद जाति का आक सब स्थानों पर सुलभता से मिलता है। मगर सफेद जाति का बहुत दुष्प्राप्य रहता है। सफेद जाति के आक की तलाश में कीमियागर लोग बहुत रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से दोनों प्रकार के आक रेचक तथा वात, कोढ़, कण्डू, विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, बवासीर, श्लेष्मा, उदर, यकृत और कृमि रोग को नष्ट करनेवाले हैं।

आक का दूध तिक्त, उष्ण, स्निग्ध, लवण-रसयुक्त, हलका तथा कोढ़, गुल्म और उदररोग को नष्ट करने वाला है। यह एक श्रेष्ठ विरेचन है।

इसकी जड़ की छाल पसीना लाने वाली, श्वास को दूर करने वाली, गरम, वमनकारक और उपदंश को नष्ट करने वाली है।

इसका फूल मधुर, तिक्त, ग्राही तथा कुष्ठ, कृमि, चूहे का जहर, रक्त-पित्त, गुल्म और सूजन को दूर करने वाला है।

इसकी जड़ की छाल कड़वी, तीखी, गरम, दीपन, पाचन, पित्त का स्राव करने वाली, रसग्रन्थि और त्वचा को उत्तेजना देने वाली, धातुपरिवर्तक, उत्तेजक, बलदायक और रसायन है। छोटी मात्रा में यह आमाशय में दाह उत्पन्न करके वमन पैदा करती है। इसके उपयोग से बहुत पसीना होता है। इससे इसका स्वेद-जनन धर्म भी बहुत उत्तम माना गया है। इसका रसायनधर्म भी पारे के समान उत्तम है। क्योंकि इसके सेवन से यकृत की क्रिया सुधरती है और पित्त का स्राव भलीभाँति होता है। शरीर की जुदी २ ग्रंथियों को यह उत्तेजन देती है, जिससे सारे शरीर की रस क्रिया और जीव विनिमय क्रिया भलीभांति होने लगती है। फलस्वरूप शरीर पुष्ट होता है और बल बढ़ता है।

यकृत-वृद्धि, प्लीहा-वृद्धि, आंतों की व्याधि इत्यादि रोगों पर यह अपना प्रभावशाली असर बतलाती है।

औषधि के रूप में इसकी जड़ की छाल, पत्ते, फूल और दूध काम में आते हैं। इस वनस्पति में अनेक उत्तम गुण होने से आयुर्वेद के अन्दर यह एक दिव्य औषधि मानी गई है। जितना लाभ इस पौधे से वैद्यों और भारतीय रसायनशास्त्रियों ने उठाया, उतना किसी दूसरी औषधि से नहीं उठाया। आज तक भी इस पौधे का यहाँ पर प्रचुर रूप से उपयोग होता है। किसी २ ने तो इसीलिये इसको 'वानस्पतिक पारद' भी कह डाला है।

यूनानी मत—यूनानी हकीमों के अन्दर इस औषधि का उल्लेख करीब एक हजार वर्षों से पाया जाता है। सबसे पहले अबूहनीफा ने अपनी पुस्तक नवातात में इस औषधि का उल्लेख किया है। कानूनशेख रईस, तजकिरा, दाउद अन्ताकि इत्यादि ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। उसके पश्चात् पीछे के ग्रन्थों में तो इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

मख्जनूल अदविया के लेखक मीरमहम्मद हुसेन और मुहीत आजम के लेखक महम्मद आजम खां ने आक की नीचे लिखी जातियों का उल्लेख किया है।

(१) पहली जाति के झाड़ बहुत बड़े, पत्ते भी बहुत बड़े और फूल सफेद होते हैं। इसमें बहुत ज्यादा दूध होता है। यह जाति सर्वोत्तम है।

(२) दूसरी जाति के पौधे और पत्ते, अपेक्षाकृत छोटे और फल बाहर से सफेद, भीतर से बैगनी या गहरे नीले रंग के होते हैं।

(३) तीसरी जाति सबसे छोटी है, जिसके फूल सफेदी लिये हुए पिश्ताई रंग के होते हैं। इसके पौधे मरुभूमि में उगते हैं। किसी २ के मत से यह तीसरी जाति बहुत विषैली होती है।

यूनानी मत से आक गर्म और रूक्ष है। इसका दूध चौथे दर्जे में गरम और रुक्ष तथा इसके शेष हिस्से तीसरे दर्जे में गरम और रूक्ष हैं। किसी २ के मत से आक का दूध तीसरे दर्जे में गरम और चौथे दर्जे में रूक्ष है तथा इसके फूल दूसरे दर्जे में गरम और रूक्ष हैं। यह यकृत और फेफड़े को नुकसान पहुंचाता है। इसके प्रतिनिधि इपीकोना तथा अनन्तमूल हैं और इसके दर्प को नाश करनेवाले दूध और घी हैं। इसके दूध की मात्रा दो रत्ती से ४ रत्ती तक और इसकी छाल, फूल और पत्ती की मात्रा छः रत्ती तक दी जा सकती है। काढ़ा बनाने के अन्दर इसकी छाल और पत्ती की मात्रा ६ माशे तक ली जा सकती है।

मख्जनूल अदविया के लेखक मीरमुहम्मद हुसेन के मतानुसार आक का दूध दाहक, कफ को रेचन करनेवाला और चमड़ी पर फफोला पैदा करनेवाला है। इस प्रकार के दूधों में यह सबसे अधिक तीक्ष्ण माना जाता है।

शरह गाजरुनी के मतानुसार इसका पत्ता सूजन को कम करनेवाला और सर्दी को दूर करनेवाला है। इसलिए गठिया के दर्द और दूसरे प्रकार के दर्दों में इनको गरम कर बांधने से वेदना शान्त होती है और सूजन उतर जाती है। पीले पड़े हुए आक के पत्तों का रस नाक में सुंघाने से आधा शीशी में लाभ होता है। कफ-निस्सारक होने से यह खांसी और दमे को दूर करता है। इसके पत्तों को सुखाकर उनको कूट छानकर खराब जख्मों पर भुरभुराने से दूषित मांस दूर होकर स्वस्थ मांस पैदा होता है।

आक की शक्कर—फारस और अरब में पैदा होनेवाले आक में एक प्रकार का गोंद पैदा होता है, जिसको शकरमदार, शक्कर ऊशर इत्यादि नामों से सम्बोधित करते हैं। यह शक्कर प्रकृति को मृदु करनेवाली, खाँसी और श्वास कष्ट, फेफड़े के व्रण तथा छाती, जिगर और मेदे की तकलीफों में लाभदायक होती है। आंख में आंजने से आंख की फूली को दूर करके दृष्टि-शक्ति को बढ़ाती है। ऊँटनी के दूध के साथ देने से यह जलोदर रोग में लाभ पहुँचाती है।

रासायनिक विश्लेषण—कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड की छाल में दो विशेष प्रकार के तत्त्व पाये जाते हैं, जिनके नाम वार्डन (Warden) और वाडेल (Waddel) ने मदार एलबन (Mudar Alban) और मदार फ्लुह्विल (Mndar Fluevil) दिया है। ये दोनों पदार्थ गटापारचा में मिलनेवाले अलबन और फ्लुह्विल से मिलते जुलते हैं। इसमें से मदार एलवन एक प्रकार का रसदार सत्त्व है, जो अत्यन्त प्रभावशाली है। यह ईथर तथा अलकोहल में घुलनशील तथा शीतल जल और जैतून के तेल में अघुलनशील रहता है। गर्मी से जम जाने और सर्दी में खुले रखने पर पिघल जाने का इसमें अद्भुत गुण है। इसके अतिरिक्त इसमें एक प्रकार की कड़वी, चरपरी और पीले रङ्ग की राल भी पाई जाती है, जो इसका प्रभावशाली अंश है।

कर्नल चोपड़ा का कथन है कि इस औषधि की उपयोगिता के विषय में बहुत मत-भिन्नता है। आधुनिक खोजों ने यह बतला दिया है कि जितने गुण इसमें बतलाये जाते हैं, उतने इसमें नहीं हैं।

इसका दूध तेज जुलाब माना जाता है। यह प्रायः थूहर के दूध के साथ में उपयोग में लिया जाता है। गर्भपात के कार्यों में भी इसका उपयोग करते हैं। इसके फूल पाचक, अग्निवर्द्धक व पौष्टिक हैं। कफ और जुकाम में भी ये उपयोगी हैं, इसकी जड़ के छिलके का लेप बनाकर चावल के सिरके के साथ मिलाकर टांगों के श्लीपद पर लगाया जाता है। इसकी जड़ का चूर्ण ३ ग्रेन से १० ग्रेन तक की मात्रा में धातु-परिवर्त्तक होता है। ३० से ६० ग्रेन तक की मात्रा में यह वमनकारी होता है।

आक की जड़ को छाल प्राप्त करने की रीति—डाक्टर मोहिउद्दीनशरीफ का कथन है कि औषधि के लिए आक का वृक्ष जितना ही पुराना होगा, उतना ही उसकी जड़ गुणकारी होगी। क्योंकि उसमें कड़वी राल की मात्रा अधिक होती है इसलिए इस वृक्ष की जड़ ग्रहण करने के लिये अप्रैल या मई महीने के दिनों में तपती हुई मरुभूमि में उगे हुये आक के झाड़ की जड़ें खोदकर लाना चाहिये और उन जड़ों के ऊपर की रेती को पोंछकर हलके हाथ पानी में धोकर छाया में सुखा देना चाहिये। चौबीस घण्टे के पश्चात् उसके ऊपर की मिट्टी और निर्जीव छाल को निकालकर अन्तर्छाल को छाया में सुखा देना चाहिये। जब वह बराबर सूख जाय तब उसको पीसकर कपड़े में छान कर मजबूत कागवाली बोतल में भरकर रख देना चाहिये। बढ़िया छाल में से बने हुए चूर्ण का रंग चावल के आटे के रंग के समान होता है।

इसकी जड़ के ऊपर बतलायी हुई रीति से तैयार किये हुए चूर्ण में खूनी अतिसार को मिटाने की अद्भुत शक्ति है। इसी प्रकार श्वास नलियों की बीमारियों पर भी बहुत उत्तम असर होता है। श्वास नलिका की सूजन की प्रथम अवस्था में प्रति घण्टा एक रत्ती की मात्रा में यह औषधि देने से गले के अन्दर गीलापन आता है, पसीना होता है, दस्त साफ होता है, कफ छटने लगता है, और सूजन कम हो जाती है। सूजन की दूसरी अवस्था में देने से कफ पतला होकर जल्दी गिरने लगता है।

अन्तर-त्वचा, बाह्य-त्वचा और त्वचा के नीचे के प्रस्तरों की व्याधियों में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। सभी जाति के व्रण और फोड़े, फिर चाहे वे सादी रीति से हुए हों, चाहे रक्त-दोष से हुए हों, चाहे उपदंश से हुए हों, चाहे और किसी कारण से हुए हों, उन सब में इस चूर्ण को खाने से और बाहर लगाने से बड़ा लाभ होता है।

उपदंश की दूसरी अवस्था में जब चमड़ी पर चट्टे पैदा हो जाते हैं, इसके उपयोग से बड़ा लाभ होता है।

आक के फूल दीपक, पाचक और कफघ्न हैं। इसकी जड़ की छाल की अपेक्षा फूलों में यह गुण विशेष होने से ये अतिरिक्त कफ का शमन करते हैं और सूखी खांसी, रक्तपित्त, उरक्षत तथा क्षय की खांसी में अच्छा फायदा दिखलाते हैं।

इण्डियन मेडिशिन प्लांटस के रचयिताओं के अनुसार सफेद आक मूत्रकृच्छ्र और पथरी में लाभ पहुँचानेवाला और व्रण को ठीक करनेवाला है। इसकी राख कफनाशक है। इसके पत्ते गरम करके पेट पर बाँधने से पेट में लाभ पहुँचते हैं। इसके फूल पुष्टिकारक, क्षुधावर्द्धक, अग्निप्रवर्द्धक, तथा बवासीर व श्वास में लाभ पहुँचाने वाले हैं। पठान लोग इसकी जड़ के ताजा दतून को दन्तपीड़ानाशक समझते हैं। इसके फूलों में विरेचक गुण भी हैं। ये हैजे की बीमारी में भी दिये जाते हैं।

इसका ताजा दूध अधिक मात्रा में बहुत जहरीला है। इसका एक ड्राम ताजा रस १५ मिनट में अच्छे बड़े कुत्ते को मार सकता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार आक का दूध प्रबल विरेचक और गरम है। कीड़े से खाये हुए दाँतों में और कान के दर्द में थूहर के दूध के साथ इसका प्रयोग करने से बड़ा लाभ होता है। इसका योनि के अन्दर प्रयोग करने से गर्भस्राव होता है। गर्मी की बीमारी में यह बहुत लाभदायक है। इसलिए इसको व्हिजीटेबल मरक्यूरी (वानस्पतिक पारा) कहते हैं। दारुहल्दी के चूर्ण और सेहुँड़ के दूध के साथ आक के दूध की बत्ती बनाकर गुदा स्थान में रखने से बारम्बार मलत्याग करने की चेष्टा निवृत्त होती है। बिच्छू, भिड़, ततैया इत्यादि जहरीले जानवरों के डंक पर इसका लेप करने से जलन मिट जाती है। भगन्दर व नासूर का मुँह बन्द हो जाने पर उसे खोलने के लिये दूसरी औषधियों के साथ आक के दूध का उपयोग किया जाता है। आक का दूध अधिक मात्रा में सेवन करने से अत्यन्त वामक और विरेचक होकर जहर के तुल्य हो जाता है।

उपयोग—बवासीर—(१) तीन बूंद आक के दूध को रूई पर डालकर और उस पर थोड़ा कुटा हुआ जवाखार बुरक कर उसे बताशे में रखकर निगल जांय। इस प्रयोग से बवासीर बहुत जल्दी नष्ट हो जाती है।

(२) आधा पाव आक का दूध लेकर उसको इतना खरल करें कि खरल में चिपक जाय। दूसरे दिन फिर उसी खरल में आधा पाव आक का दूध डालकर खरल करनी चाहिये। इस प्रकार आठ दिन में एक सेर आक का दूध उस खरल में सुखा लेना चाहिये। फिर उसको खुरुचकर उसके दो भाग कर लें। मिट्टी के एक बड़े प्याले में नीचे एक भाग बिछाकर उस पर एक तोला सुहागा रखें और उस पर दूसरा भाग बिछा दें। इस औषधि के ऊपर एक छोटा प्याला जिसके बीच में छेद हो, रख दें तथा उसके बाद बड़े प्याले के ऊपर एक और बड़ा प्याला रखकर कपड़-मिट्टी कर दें। फिर उसके बाद इन प्यालों को चूल्हे पर रखकर चिराग की तरह हल्की आंच दें। जब ऊपर वाला प्याला गरम होने लगे तब उस पर चार तह कपड़ा पानी में तर करके रख दें। चार प्रहर की आंच होने के बाद उसको उतार कर खोलने पर तीनों प्यालों में तीन प्रकार की चीजें प्राप्त होती हैं। सबसे ऊपर वाले प्याले में इसका जौहर रहेगा। बीच के प्याले में पीले रंग की सलाखें रहेंगी तथा तीसरे प्याले में औषधि का बचा हुआ भाग रहेगा।

मिफ्ताउल खजाइन हकीमी ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि इसमें से नीचे के प्याले वाली चीज वजउल् मुफसिल अर्थात् गठिया रोग के लिये एक रत्ती मात्रा में रोजाना बताशे में रखकर खिलाना चाहिये। इसके तीन रोज सेवन करने से गठिया की बीमारी में बहुत लाभ पहुँचता है। शेष दो प्यालों की औषधियां बवासीर वालों के लिये बहुत लाभदायक हैं। इनका उपयोग इस प्रकार किया जाता है—पहले बीच के प्याले वाली दवा को एक रत्ती की मात्रा में मक्खन में मिलाकर दो दिन तक खिलावें और खाने के लिये रोगी को केवल मिश्री मिला हुआ दूध देवें। दो दिन के बाद रोगी के पेट में दर्द मालूम होगा, परन्तु इससे डरने की जरूरत नहीं है। तीसरे दिन बड़े सबेरे ऊपर के प्याले वाला जौहर एक रत्ती की मात्रा में मक्खन मिलाकर खिलाना चाहिये और रोगी को लिटा देना चाहिये। एक प्रहर के बाद कांच निकल कर मस्से गिर जायँगे। उन्हें स्वच्छ वस्त्र से धीरे से अलग कर देना चाहिये। फिर एक तोला फिटकरी का बारीक चूर्ण कपड़े पर रखकर काँच पर रख देना चाहिये और लगोट बाँध देना चाहिये। उसी वक्त अगर रोगी मांसाहारी हो तो उसे मुर्गी का शोरवा पिलाना चाहिये और दो घण्टे तक रोगी को दोनों पाँवों पर बिठाये रखना चाहिये। इसके पश्चात् रोगी को नरम खाना देना चाहिये। मिफ्ताउल खजाइन के ग्रन्थकार इस योग को अपना परीक्षित योग बतलाकर इसकी सिफारिश करते हैं।

खाँसी और दमा—(१) आक के फूल की मगज १॥ माशा, सेंधा नमक १॥ माशा, अफीम ३ रत्ती और अजवायन ६ माशा, इन सब चीजों को कूट-पीस मिलाकर चने की दाल के बराबर गोलियां बना लेना चाहिये। तीन घण्टे के अन्तर पर इसमें से एक २ गोली देने से खाँसी और दमे में, बहुत लाभ होता है।

(२) अजवायन ८ तोला, हरड़ का चूर्ण, विड नमक, खैरसार, सेंधानमक, हल्दी, उपलेट, भारंगी की जड़, इलायची, सुहागा, कायफल, अडूसा, अपामार्ग की जड़, जवाखार और सज्जीखार, ये सब चार चार तोला, आक के फूलों की सूखी मगज १६ तोला, इन सब का चूर्ण करके घीग्वार के रस में घोटना चाहिये। फिर उसकी टिकड़िएँ बनाकर सुखाकर एक हांडी में रखकर सराव से हांडी का मुँह बन्द कर कपड़-मिट्टी कर लेना चाहिये। इस हांडी को आग पर चढ़ाकर सब दवाइयों को जला लेना चाहिये। जब सब दवाइयाँ जल जायँ तब उस हाँडी

को उतारकर उस राख को निकाल लेना चाहिये। इस राख को डेढ़ माशे तक की खुराक में शहद के साथ चटाने से खाँसी और श्वास में बहुत लाभ होता है।

(३) आक की बन्द मुँह की कली दो तोला, अजवायन १ तोला, और कन्द स्याह ५ तोला, इन तीनों औषधियों को कूट-पीसकर एकदिल कर लें, फिर मदार के सात पत्तों को ऊपर-नीचे रखकर उनमें इन दवाइयों को रख, सी-कर कपड़-मिट्टी कर लें। फिर इसको गरम भूभल में दो प्रहर तक गाड़ दें। उसके बाद निकाल कर दवाओं को बारीक पीसकर भर लें। इसमें से एके माशे की खुराक मक्खन के साथ देने से श्वास, दमा और पुरानी खाँसी में बहुत लाभ होता है।

(४) आक के फूल की मगज और कालीमिर्च समान भाग लेकर खरल करके एक एक रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिये। इनमें से एक-एक गोली दिन में चार बार देने से दमा, खाँसी, हिस्टीरिया, वायु और कनव्हलशन की बीमारियों में बड़ा लाभ होता है।

(५) आक के कोमल पत्तों का काढ़ा करके उस काढ़े को जौ की धानी की सात भावना देकर सुखा लेना चाहिये। फिर उसका चूर्ण करके छः माशे की मात्रा में शहद के साथ चटाने से श्वास रोगों में लाभ होता है।

उदर रोग—(१) मदार की कली ६ तोला, काली मिर्च ३ तोला, सेंधा नमक ३ तोला, लौंग कुलाहादार ९ माशा, कली का चूना ३ माशा, शुद्ध अफीम १॥ माशा, इन सब औषधियों में एक भावना अदरख के रस की, एक भावना नीबू के रस की देकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। ये गोलियां सब प्रकार के पेट दर्द, आमाशय की खराबी और अजीर्ण में लाभकारी हैं। हैजे के अन्दर भी ये गुलाबजल के साथ देने से शर्तिया लाभ पहुंचाती हैं।

(२) आक के पीले पत्ते १००, करञ्ज के पत्ते १००, वायवर्ण की छाल ४० तोला, थूहर के डोड़े १०० तोला, भोरींगणी के डोड़े १००, घीग्वार ८ तोला, गूगल २ तोला, लहसन २० तोला, काञ्चन की छाल २० तोला, सञ्चर-नमक १२ तोला, सोंठ ७ तोला, कालमिर्च ७ तोला, पीपर ७ तोला, समुद्र नमक ४० तोला, विड नमक ४ तोला, अजवायन २ तोला, अजमोद २ तोला, हींग ४ तोला, स्याहजीरा ४ तोला, राई १६ तोला, चित्रक की जड़ ३२ तोला इन सब औषधियों को कूटकर इनमें ३२ तोला आक का दूध और १६ तोला सरसों का तेल डालकर एक हाँडी में भरना चाहिये। उसके बाद उस हाँडी का मुँह सराव ले उससे बन्द करके कपड़-मिट्टी कर आग पर चढ़ा देना चाहिये। जब सब चीजें जलकर राख हो जायँ, तब हाँडी को उतारकर उस राख को निकालकर बोतल में भर देना चाहिये। इस औषधि को आधे तोले की मात्रा में मट्ठे के साथ लेना चाहिये। यह औषधि प्राचीन अजीर्ण और मन्दाग्नि के लिये बहुत उपयोगी है। आमाशय के अन्दर रहे हुए अपच्य पदार्थों को पचाने में तथा विदग्ध पदार्थों को दस्त के द्वारा बाहर निकाल देने में यह बहुत उत्तम कार्य करती है। इसलिये वायुगोला, उदरशूल, अजीर्ण इत्यादि बीमारियों में यह औषधि लाभ पहुँचाती है।

(३) सज्जीखार ५ तोला, नौसादर ५ तोला, सेंधा नमक २॥ तोला, सञ्चर नमक २॥ तोला, इन सब चीजों को ४० तोला आक के दूध में तथा ४० तोला, थूहर के दूध में घोटकर एक हाँडी में भरकर कपड़-मिट्टी कर गजपुट में फूँक देना चाहिये। शीतल होने पर इसकी राख निकाल कर जितना उसका वजन हो, उसका पाँचवाँ हिस्सा चित्रक की जड़, पाँचवाँ हिस्सा हरड़, पाँचवां हिस्सा बहेड़ा, पाँचवां हिस्सा आँवला और पाँचवाँ हिस्सा निसोत की जड़ की छाल लेकर उन सब का चूर्ण कर इसमें मिला देना चाहिये। इस औषधि को तीन माशे से छः माशे की मात्रा में थोड़ी सी शंखभस्म मिलाकर सेवन करने से यह लीवर और कलेजे की वृद्धि को दूर करने में बहुत असर बतलाती है। पत्थर के समान सख्त पेट को यह धीरे २ मुलायम कर ठीक स्थिति में ला देती है। इसी प्रकार आफरा और कब्जियत के लिये भी यह रामबाण औषधि है। कुमारी-आसव के साथ देने से यह बड़ी लाभप्रद सिद्ध हुई है।

(४) आक के फूल की मगज १ तोला, लाहोरी नमक १ तोला, पीपर १ तोला, इन तीन चीजों को कूट-पीसकर कालीमिर्च के बराबर गोलियाँ बनालें। रात में सोते वक्त बालकों को एक गोली और वयस्क पुरुषों को दो गोली देने से सब तरह की खांसी और दमे में लाभ होता है। ये गोलियाँ उदरशूल, हैजा, अजीर्ण तथा सोते समय मुँह से लार बहने के रोग में भी अक्सीर हैं।

(५) सूखे हुए आक के फूल लेकर उनको महीन पीसकर उसको तीन दिन तक आक के पत्तों के रस में खरल

करके चने बराबर गोलियाँ बना लें। इनमें से दो गोली गरम पानी के साथ निगलने से कठिन से कठिन पेट का दर्द तुरन्त आराम होता है।

(६) आक के हरे फूलों को कूटकर दो सेर रस तैयार कर लें। इस रस में पाव भर आक का दूध और १। सवा सेर गाय का घी मिलाकर कलईदार कढ़ाई पर चढ़ा दें, जब सब चीजें जलकर घी मात्र शेष रह जाय, तब आग पर से उतार कर घी को छानकर सुरक्षित रख लें। यह घृत आंतों के अन्दर पड़े हुए कीड़ों को नष्ट करने में मूल्यवान औषधि है। आतों के कृमियों की वजह से जिनकी पाचन शक्ति खराब हो गई हो या जिनको बवासीर हो उसे उस घी में से ३ माशे से ६ माशे तक घी, गाय के आधपाव दूध के साथ देने से बड़ा लाभ होता है।

विसूचिका या हैजा—(१) आक के फूलों के भीतर से उनकी लौंग निकालकर १ तोला वजन में लें। इसमें एक तोला कालीमिर्च और १॥ तोला अदरख मिलाकर घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। इनमें से हैजे के रोगी को एक गोली देने से तत्काल असर होता है।

(२) मखजनूल अक्सीर के लेखक का कथन है कि आक की जड़ की छाल और कालीमिर्च समान भाग लेकर खरल में खूब बारीक पीसकर चने के बराबर गोलियाँ बनाना चाहिये। इसमें से एक या २ गोली अर्क सौंफ या अर्क सिकंजबीन के साथ देने से कठिन हैजे के आसन्नमृत्यु रोगी को भी तत्काल लाभ होता है।

(३) आक की जड़ की छाल १ तोला, कालीमिर्च ३ माशे, संचर नमक ३ माशे, इन तीनों को बारीक पीसकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। ६ माशे घी के साथ एक २ गोली सुबह-शाम देने से हैजे की मायूसी अवस्था में भी लाभ होता है।

कोढ़-नासूर और रक्त-विकार—(१) सरसों का तेल १६ तोला, गाय का घी ८ तोला और आक के पत्तों का रस ९६ तोला, इन तीनों चीजों को मिलाकर, कलईदार कढ़ाई में धीमी आँच से पकाना चाहिये। जब केवल घी और तेल शेष रह जाय, तब उसको उतार कर छान लेना चाहिये। इस तेल में आक के सूखे पत्तों का कपड़छन चूर्ण ४ तोला, गन्धक और पारे की खूब घुटी हुई कज्जली १ तोला, सिंदूर आधा तोला, हरताल आधा तोला, मेन्सिल आधा तोला, हल्दी आधा तोला, सोनागेरू आधा तोला ये सब चीजें बारीक पीसकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिये। इस मलहम को लगाने से पुराने घाव और नासूर जो कि कभी नहीं भरते हैं और शस्त्र-क्रिया के बिना आराम होने की सम्भावना नहीं होती वे भी इस मलहम के भरने से आराम होते हुए देखे गये हैं।

(२) पीपर, हल्दी, शंख की भस्म, सज्जीखार, कांकच के बीज, सेंधा नमक, निर्गुण्डी के पत्ते, चनगोटी के बीज, केशर, शराब का कचरा, मूली, नीला थूथा नागकेशर, मुर्गे की विष्ठा, धतूरे के बीज और अजवायन, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर कपड़छन चूर्ण करके, एक भावना थूहर के दूध की, एक भावना आक के दूध की और एक भावना गाय के दूध की देकर खरल में घोंटकर, बरनी में भर लेना चाहिये। यह सुप्रसिद्ध आचार्य बंगसेन का 'सिद्ध लेप' नाम का सुप्रसिद्ध लेप है। इसका लेप करने से हर तरह का नासूर, कंठमाला, बवासीर और नहीं फूटने वाली गाँठ भी आराम होती है।

(३) आक की जड़ की छाल ४ सेर लेकर एक मिट्टी के बर्तन में डाल दें, और फिर पावभर गेहूँ, एक सफेद कपड़े में बांधकर उसी बर्तन में डाल दें, फिर उस बर्तन को तिहाई पानी से भर दें। फिर इस बर्तन का मुँह बन्द करके २१ दिन तक घोड़े की लीद में गाड़ दें। उसके पश्चात् उस बर्तन को निकाल कर, अगर उसमें कुछ पानी शेष हो तो आग पर रखकर उस पानी को सुखा लें। फिर उस हांडी में से गेहूँ की पोटली को निकाल लें। इन गेहुँओं को पीसकर इनकी ६१ गोलियाँ बना लें। इसमें से १ गोली प्रतिदिन खाने से तथा पथ्य में नमक छोड़कर केवल गेहूँ की रोटी और घी खाने से कुष्ठरोग में लाभ होता है।

दाद की अमोघ औषधि—(१) हल्दी ५ रुपये भर लेकर पानी के साथ पीसकर चटनी के समान बना लेना चाहिये। फिर आक के पत्तों का रस ४ सेर, पीली सरसों का तेल आधा सेर लेकर उसमें यह हल्दी की लुग्दी डालकर मन्दाग्नि से पकाना चाहिये। जब रस का भाग जलकर तेल मात्र शेष रह जाय, तो उसे उतार कर छान लेना चाहिये। इस तेल में १० रुपये भर मोम डालकर फिर मन्दाग्नि पर चढ़ाकर जब मोम तेल में मिल जाय,

तब उतार लेना चाहिये। फिर इसमें गंधक, फुलाया हुआ सुहागा, सफेद कत्था, रेवन्द की चीनी, कपीला, कालीमिर्च, राल, मुर्दासिंगी फुलाया हुचा नीला-थूथा और फुलाई हुई फिटकिड़ी, ये सब चीजें ढाई २ रुपये भर लेकर उनको बारीक चूर्ण करके उसमें मिला दें। साथ ही ४ रुपये भर गंधक और पारे की घुटी हुई कज्जली मिला दें। इन सब चीजों को अच्छी तरह से मिलाकर बरनी में भर लें।

दाद के लिये यह एक अव्यर्थ महौषधि है। भयंकर से भयंकर दाद भी इसके व्यवहार से नष्ट हो जाते हैं। जो लोग सैकड़ों प्रकार की पेटेंट ओषधियों से निराश हो चुके हों, उन्हें भी इस औषधि से लाभ उठाना चाहिये। दाद के सिवाय खाज, खुजली में भी यह लाभ पहुंचाती है।

लकवा, फालिज, गठिया और अन्य वात व्याधियाँ—(१) आक के हरे पत्ते, धतूरे के हरे पत्ते, अरण्ड के हरे पत्ते, सहुँड़ के पत्ते, बकायन के पत्ते, सहेजना के पत्ते, भांगरे के पत्ते, और भांग के पत्ते इन सब को समान भाग लेकर इनका स्वरस निकाल लें। जितना स्वरस हो, उतने ही वजन का काली तिल्ली का तेल डालकर अग्नि पर चढ़ा कर पकावें। जब केवल तेल मात्र शेष रह जाय, तब उतार कर छान लें। इस तेल में मालिश करते समय पीपर और काली मिर्च का थोड़ा महान चूर्ण मिला लेना चाहिये। इस तेल की मालिश से लकवा, फालिज और सन्धिवात मे बहुत लाभ होता है।

(२) मिफ्ताउल-खजाइन के लेखक ने शरीर के नीचे के हिस्से के फालिज के लिए एक परीक्षित प्रयोग दिया है जिसका यहां पर उद्धृत किया जाता है—

एक गड्ढा इतना गहरा खोदा जाय जिसमें आदमी अच्छी तरह से बैठ सके। उस गड्ढे में जंगली कंडे भरकर जला दे, जिससे उसकी दीवारें लाल हो जायँ। फिर उसको साफ करके उसमें ताजे आक के पत्ते भर दे, जब वे पत्ते गरम होंगे, तब उनमें से भाप निकलेगी। ऐसे समय में रोगी को पशमीने की चादर में लपेटकर उस गड्ढे पर बिठायें। उसका मुँह खुला रखें, जिससे यह भाप इत्यादि सुरक्षित रहे। यह क्रिया मकान के भीतर एकान्त-स्थान में होनी चाहिये। इस क्रिया से रोगी पसीने से सराबोर हो जायगा। दूसरे दिन रोगी को ६ माशे अरंडी का मगज, बादाम के तेल में भूनकर शहद के साथ चटावे, इससे उसको कै और दस्त होंगे। इसके उपरान्त उसे फिर उसी प्रकार गड्ढे पर बिठाकर बफारा दे। इसी भांति तीन दिन तक करने से गया गुजरा रोगी भी आराम हो जाता है। इस प्रयोग से शरीर पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकल आती हैं पर वे दूसरे-तीसरे दिन स्वयं लुप्त हो जाती हैं। एक रोज बुखार भी आता है, मगर उससे डरने की कोई जरूरत नहीं।

(३) आक के पत्ते ७, भिलावे ७ नग, इन दोनों चीजों को तिल के तेल डालकर आग पर चढ़ा दें। जब ये दोनों अच्छी तरह से जल जायँ, तब तेल को छानकर शीशी में भर लें। इस तेल को धूप में बैठकर मालिश करने से हर प्रकार की वात-व्याधि में लाभ पहुँचता है।

(४) गूगल ५ माशे, मेंहदी सुर्ख २ माशे, सनाय मक्की २ माशे, कतीरा १ माशा, इन सबको आक के दूध में खूब घोटकर चने के बराबर गोलियां बना लें। इनमें से प्रतिदिन एक गोली गर्म पानी के साथ खाने से गठिया, संधिवात, गृध्रसी तथा दूसरी वात-व्याधियों में लाभ होता है।

(५) मदार का बिना खिला फूल, सोंठ, कालीमिर्च और बांस की पत्ती समान भाग लेकर चने के बराबर गोलियां बना लें। सबेरे शाम दो गोली पानी के साथ खाने से गठिया में बड़ा लाभ होता है।

(६) आक की जड़ की कांजी के साथ पीसकर लेप करने से हाथी-पांव और अण्डवृद्धिरोग में बड़ा लाभ होता है।

साँप, बिच्छू और पागल कुत्ते का जहर—(१) आक की जड़ की छाल का चूर्ण १। रुपये भर धतूरे के पत्तों का चूर्ण २ माशे और मिश्री १। रुपये भर सबको पानी के साथ घोटकर एक २ रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिए। रोगी को पहिले अरंडी के तेल का जुलाब देकर इन गोलियों का सेवन कराना चाहिये। पांच वर्ष की उमरवालों को एक २ गोली, १० वर्ष की उमरवालों को दो २ गोली तथा १५ वर्ष से ऊपर उमरवालों को तीन २ गोली, सबेरे-शाम देना चाहिये। दवा खाने के बाद २–३ घंटे तक पानी नहीं पीना चाहिये और एक-दो मुट्ठी भुने हुए चने खाना चाहिए, जिससे उल्टी न होकर दवा पच जायगी। दवा लेने के तीन घण्टे बाद भोजन और पानी लेना चाहिए।

इस इस औषधि को ४० दिन तक सेवन करने से या बीच २ में आठवें दिन अरंडी के तेल का जुलाब लेते रहने से, जिन लोगों को पागल कुत्ते ने या स्यार ने काटा होगा, उनको हड़काव (पागलपन) पैदा होने का भय जाता रहेगा। 'जंगलनी बड़ी-बूटी' के लेखक का कथन है कि यह अनुभव सिद्ध योग है। हड़काव के सिवाय धनुर्वात, ताण, खाँसी, कफ, दमा, हिचकी, उपदंशरोग, त्वचारोग, कोढ़, नारू इत्यादि रोगों में भी यह औषधि अच्छा असर दिखाती है। इन गोलियों का सेवन करने पर भी अगर किसी को हड़काव पैदा हो जाय तो उसे आक के पत्ते का रस एक तोला धतूरे का रस १॥ माशा और तिल का तेल २॥ रुपये भर मिलाकर पिलाना चाहिए। दूसरे और तीसरे दिन इससे आधी खुराक पिलानी चाहिए, इससे पैदा हुई व्याधि दूर हो जायगी।

सर्प विष का योग—(१) हलजून कला (मोटा शंख), अफीम, नीलाथूथा, कालपी, सफेद फिटकरी, शुद्ध कतरा हुआ कुचला, नौसादर और हुक्के का मल, इन आठ औषधियों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। फिर इस चूर्ण को तीन भावनायें आक के दूध की देकर छांह में सुखा लें और फिर पीसकर शीशी में भर लें।

मखजनूल अक्सीर नामक ग्रन्थ के ग्रन्थकार का कथन है कि कैसे ही जहरीले सांप ने काटा हो, उस पर इस औषधि के प्रयोग से लाभ होता है। काटे हुए स्थान पर थोड़ा-सा चीरा लगाकर एक रत्ती दवा उस पर मसल देना चाहिये। यदि जहर चढ़ चुका हो तो, एक रत्ती दवा पानी में घोलकर पिलाना चाहिए जिससे वमन होकर जहर निकल जायगा। अगर बेहोश हो तो थोड़ी-सी दवा पोली नली के जरिये नाक में फूँकने से वह होश में आ जायगा।

(२) आक की जड़ को कपास की जड़ के साथ पीसकर थोड़ा जल मिलाकर पीने से सांप के जहर में लाभ होता है।

(३) बिच्छू के डंक पर पहले गूगल की धूनी देकर फिर आक के पत्तों को पीसकर लेप करने से वेदना शान्त होती है।

(४) बिच्छू के डंक पर आक का दूध मसलने पर भी लाभ होता।

(५) आक के सम्पूर्ण पञ्चांग (फल, फूल, पत्ते, डाली और जड़) को जलाकर राख कर लें। उस राख को पानी में घोलकर तीन दिन तक पड़ी रहने दें। उसके बाद उस पर के साफ पानी को नितार कर आग पर चढ़ा दें। जब रबड़ी के समान हो जाय, तब उतार कर सुखा लें। यह आक का क्षार है। जिस आदमी को बिच्छू ने काटा हो, उसको दो रत्ती यह क्षार लेकर हथेली में थोड़े नमक और पारे के साथ थूक में मिलाकर डंक पर लगाने से तत्काल वेदना का शमन होता है।

मस्तकरोग, नजला और आधाशीशी—(१) जंगली कण्डों की राख को आक के दूध में तर करके छाया में सुखाकर शीशी में भर लेना चाहिये। इसमें से एक रत्ती भस्म सुँघाने से छींकें आकर सिर का दर्द, आधा-शीशी, जुकाम, बेहोशी इत्यादि रोग आराम होते हैं। यह औषधि बहुत तीव्र है। इसलिए इसे गर्भवती स्त्री और बालकों को नहीं सुँघाना चाहिए। अगर इसकी छींकें बन्द न हों तो थोड़ा गाय का घी गरम करके सुँघाने से शांति हो जाती है।

(२) सफेद चावल, नीलाथूथा, कपूर दो-दो तोला, सोंठ १ तोला, इन सब चीजों को बारीक पीसकर आंकड़े के दूध में तर करके सुखा लेना चाहिए। फिर इस चूर्ण को थोड़ा आग पर भूनकर पीस लें। इस चूर्ण को थोड़ी मात्रा में बादाम के तेल में या बकरी के दूध में मिलाकर नाक में टपकाने से सिरदर्द, आधाशीशी, समलवायु, पुराना नजला इत्यादि रोग दूर होते हैं।

(३) अनार की छाल चार तोला खूब महीन पीसकर आक के दूध में आटे की तरह गूंथकर उसकी रोटी बना, मंदी आँच से पका ले, फिर इसे सुखाकर बारीक पीस ले और ३ माशे जटामांसी, ३ माशे छड़ीला, १॥ माशे धायफल, इन सबका चूर्ण बनाकर रख लें। इदकारुल इतिब्बा के लेखक लिखते हैं कि इस दवा को सुँघाने से सख्त छींकें आकर नजला, जुकाम, बेहोशी इत्यादि रोग दूर होते हैं।

मृगी और अपस्मार—(१) इसके ताजे फूल और कालीमिर्च दोनों को बराबर लेकर ढाई २ रत्ती की गोलियाँ बना कर दिन में तीन-चार बार देने से मृगी, श्वास, बाइन्टे, रुधिर-विकार और स्नायुरोग मिटते हैं।

(२) इसकी जड़ की छाल को बकरी के दूध में पीसकर नाक में टपकाने से मृगी का वेग रुकता है।

(३) एक यूनानी लेखक का कथन है कि जब चार घड़ी दिन शेष रहे, तब मृगी के रोगी के पैर तलवों

पर आक का दूध लगाकर उस पर कालीमिर्च का बारीक चूर्ण भुर-भुरा दें। फिर पांव के तलवे पर मदार का पत्ता बांधकर मोजा पहन लें। चालीस दिन तक बिना पैर धोए, यह योग करते रहने से मृगी का नाश हो जाता है।

नेत्र रोग—(१) बङ्गसेन का कथन है कि १ तोला आक की जड़ की छाल को कूटकर, पावभर पानी में घण्टे भर तक भिगोकर उस पानी को छान लें, इस पानी को बूंद २ आंख में डालने से आंख की लाली, भारीपन और आंख की खुजली दूर होती है।

(२) सफेद आक की जड़ को मक्खन के साथ पीसकर सुरमे की तरह आंख में आँजने से आंख की रोशनी तेज होती है।

(३) पुरानी रूई को तीन बार आंकड़े के दूध में भिगोकर सुखा देना चाहिये, फिर उसको तेल में तर करके सीपी में जला लेना चाहिये। इस राख को आँख में आँजने से आँख की फूली कट जाती है, ऐसा एक यूनानी हकीम का कहना है।

(४) पुरानी ईंट का महीन चूर्ण एक तोला लेकर आक के दूध में तर करके सुखा लें और ६ दाने लौंग के मिलाकर उसे बारीक कर लें, इसमें से थोड़ा-सा चूर्ण नाक के जरिये सूंघने से मोतियाबिन्द में लाभ होता है।

कर्ण रोग—(१) आक के पीले पत्तों को पोछकर उन पर कुछ घी लगाकर अग्नि पर तपाना चाहिये; जब वे सिमटने लगें तब हाथ में उनको मसल कर कान में निचोड़ने से कान का दर्द मिटता है।

(२) आक का बिना छेद का पीला पत्ता लेकर अग्नि पर उसे तपा कर उसका रस कान में निचोड़ने से बहरेपन में लाभ होता है।

(३) आक के फूल और कोमल पत्तों को कांजी में पीसकर थोड़ा तिल का तेल और सेंधा नमक मिलाकर थूहर के डण्डे को पोलाकर उसमें भर देना चाहिये, फिर उस डण्डे के चारों ओर आक का पत्ता लपेटकर धागे से बाँधकर कपड़मिट्टी कर आग में पकाना चाहिसे, जब ऊपर की मिट्टी लाल हो जाय, तब उसे निकालकर, उसका गरम २ रस कान में टपकाना चाहिये। सुश्रुताचार्य का कथन है कि इससे सब प्रकार के कान के दर्द दूर होते हैं।

(४) बृहद्‌निघण्टु-रत्नाकर का मत है कि पोहकरमूल, दालचीनी, चीता, गुड़, दन्तीबीज, कूट और कसीस को आक के दूध में पीसकर लेप करने से कर्णशूल नष्ट होता है।

दन्त रोग—(१) आक के दूध में रूई भिगोकर उसे घी में तलकर डाढ़ में रखने से डाढ़ का दर्द मिटता है।

(२) आक की जड़ की छाल को पानी में घिसकर दाँत में रखने से दांत का कीड़ा मर जाता है।

(३) वाग्भट का कथन है कि कीड़े से खाये हुत दांत की कोटर में आक का दूध और सतिवन का चूर्ण करके भर दें और रोगी को थूक निगलने से रोक दें। इससे दन्त-शूल दूर हो जाता है।

पथरी—(१) बृहन्निघंटु-रत्नाकर का कथन है कि आक (मदार) के फूल को गाय के दूध में पीसकर तीस दिन रोज प्रातःकाल लेने से जलनयुक्त पथरीरोग नाश होता है।

(२) छाया में सुखाये हुये आक के फूल, जवाखार, कलमीशोरा, और कुसुमबीज, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर हरी दूब के रस में खरल कर देना चाहिये। इसमें से तीन माशा चूर्ण बकरी के दूध के साथ लेने से बस्ति और गुर्दे की पथरी तथा मूत्रावरोध का नाश होता है।

बाजीकरण—(१) एक सेर गाय का घी कढ़ाई में डालकर उसमें साफ किया हुआ एक २ आक का नवीन पत्ता डालकर जलाते जांय, जब सौ पत्ते जल जांय, तब उस घी को छानकर बोतल में भर लें। इस घी में से २ तोला घी, दूध या रोटी के साथ सेवन करने से कफ प्रकृति के लोगों में अत्यन्त मैथुनशक्ति जाग्रत होती है। इसके अतिरिक्त यह घी कफज व्याधि और पेट में पड़े हुए केचुओं को भी नष्ट करता है।

(२) गन्धक, मस्तगी, हीराकसीस प्रत्येक ६ तोला, फिटकिरी और सिंगरफ हर एक तीन २ तोला लेकर चूर्ण करलें। इस चूर्ण को रोहू मछली के पित्ते की सौ भावना दें फिर आक के बीज जो उसकी रूई के बीच में काले रंग के होते हैं, उनको इकट्ठे कर कोल्हू में पेर कर उनका तेल निकलवा लें। इस तेल को एक पाव लेकर ऊपर लिखी दवाइयों का चूर्ण इसमें खरल करके एकदिल कर लें। उसके बाद आक की रूई की कुछ मोटी बत्तियां बनाकर इस खरल की हुई औषधि में तर कर लें, फिर इन बत्तियों को लोहे की छड़ पर लपेट कर उनमें आग

लगा दें और उन छड़ों के नीचे एक चीनी का साफ बर्तन रखें जिससे उन बत्तियों में से जो तेल टपके वह उसके अन्दर इकट्ठा हो जाय। इस तेल को छानकर शीशी में भरकर रख लेवें।

मखजनूल अक्सीर के लेखक का कथन है कि यह एक अक्सीर तेल है, जो जवानी को हमेशा कायम रखता है और बालों को काला करता है। इसकी सेवन विधि इस प्रकार है—लगभग एक खस के बराबर यह तेल रोटी के ग्रास में रखकर निगल जाना चाहिये और एक खस रोटी के कवल में रख, रात के समय एक तरफ के दाँतों के बीच में रक्खे। दूसरे दिन दूसरी तरफ के दाँतों में रक्खे। इस प्रकार दस रात्रि तक प्रयोग करे। इस प्रयोग से बुड्ढा फिर नौजवान हो जाता है। बाल सफेद नहीं होते। गिरे हुये दाँत फिर पैदा होते हैं। कामशक्ति को पूरी ताकत मिलती है और मुखमण्डल खिल जाता है।

(३) आक के दूध को १२ पहर तक गाय के घी में खरल करना चाहिये। इसमें से एक रत्ती घृत प्रतिदिन मूत्रेन्द्रिय पर मालिश करने से हस्तमैथुन द्वारा पैदा हुई नपुंकता मिटती है।

आक का दूध निकलाने की विधि—कई औषधियों को तैयार करने और धातुओं को फूँकने के लिये वैद्यों को आक के दूध की दिन रात आवश्यकता हुआ करती है; मगर इस दूध का निकालना बड़ा कठिन काम है। इसलिए इसकी एक सरल विधि मिफ्ताउल खजाइन के ग्रन्थकार ने लिखी है जो, इस प्रकार है—

'आक का एक पुराना झाड़ जड़ सहित उखाड़कर जड़ की मिट्टी को भली प्रकार से साफ कर लें, फिर उसकी जड़ से ऊपर का छिलका इस तरह छील डालें, जैसे मूली, गाजर इत्यादि को छीला जाता है। जड़ की छाल छुड़ाकर सम्पूर्ण झाड़ को किसी बड़े वर्तन में रख दें। उस बर्तन में सारे झाड़ का दूध अपने आप जड़ को राह से इकट्ठा हो जायगा। इस विधि से बिना कष्ट के सेरों दूध इकट्ठा हो जाता है।

आक के द्वारा धातुओं का फूकना—अभ्रक भस्म—शुद्ध धान्याभ्रक ❀ को लेकर आक के दूध में एक दिन तक अच्छी तरह से घोटकर उसको दो २ रुपये भर की टिकिया बना लेनी चाहिये। इन टिकियों को धूप में सुखाकर सरावसंपुट में रखकर, जंगली कंडों की आंच में गजपुट में रखकर फूँकना चाहिए। इस प्रकार ५० बार इन टिकियों को आक के दूध में घोट २ कर गजपुट में फूँकना चाहिए। उसके पश्चात् भस्म को हथेली में घिसकर धूप में रखकर देखना चाहिये। अगर उसमें जरा भी चमक नजर आवे तो दस पाँच पुट और देना चाहिये। जब भस्म बिलकुल निश्चन्द्र अर्थात् चमक रहित हो जाय तब उसे बड़ की अन्तरछाल के काढ़े में घोट २ कर तीन पुट और देना चाहिए। इस प्रकार उत्तम भस्म तैयार हो जायगी।

इस भस्म को १॥ रत्ती तक की मात्रा में शहद के साथ लेने से सब प्रकार की कमजोरी, क्षीणता, धातुक्षय, खांसी, क्षय, कफ, श्वास इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। पान के रस के साथ लेने से सर्दी के विकार, निमोनिया, खाँसी और श्वास में लाभ होता है।

साँभर के सींग की भस्म—साँभर के सींग को लेकर उसके चार २ इञ्च के लम्बे और उँगली के बराबर मोटे टुकड़े कर, उन्हें २४ घण्टे तक आक के दूध में भिगोकर रखना चाहिये। फिर जंगली कंडों की भरी हुई सिगड़ी में उन्हें रखकर जलाना चाहिये। यह जलाने की क्रिया खुले स्थान पर करना चाहिए, क्योंकि इसमें से बड़ी दुर्गन्ध निकलती है। जब धुआँ बन्द हो जाय और वे टुकड़े जल जांय, तब उन्हें निकाल कर ठण्डे करके पीस लेना चाहिए। इस चूर्ण को आक के दूध में खरल करके दो-दो तोले की टिकिया बनाकर सुखा लेना चाहिये। सूखने पर इन टिकियों को मिट्टी की हांडी में रखकर उस पर ऐसी ढकनी लगानी चाहिये, जिसके बीच में उँगली के बराबर छेद हो। फिर इस हांडी को गजपुट में रखकर फूँक देना चाहिए। ठण्डा होने पर निकालने से इसमें सफेद रंग की उत्तम भस्म प्राप्त होगी। अगर इसका रंग बराबर सफेद नहीं हुआ हो तो इसी प्रकार एक पुट और देना चाहिये।

इस भस्म को तीन रत्ती की मात्रा में शहद के साथ देने से पसली का दर्द, खाँसी, निमोनिया, डिब्बा, इनफ्ल्यूएञ्जा, सर्दी और सांस लेने के कष्ट में बड़ा लाभ होता है।

❀ नोट—धान्याभ्रक बनाने की विधि पहले इसी ग्रन्थ में अभ्रक के प्रकरण में दी जा चुकी है।

शंख भस्म—अच्छे बड़े शंख को लाकर उसको आग में गरम करके दो-तीन दफे नीबू के रस में बुझा लेना चाहिये। इससे वह शुद्ध होकर उसका चूर्ण हो जायगा। शंख के इस चूर्ण को आँकड़े के दूध में घोट कर टिकड़ी बना लेना चाहिये। इस टिकड़ी को आक के फूलों की लुग्दी में रखकर, सरावसंपुट में रख, कपड़-मिट्टी कर, गजपुट में फूँक देना चाहिये। इस प्रकार २२ बार उसे आक के दूध में घोट २ कर गजपुट में फूँकना चाहिये, जिससे अति उत्तम प्रभावशाली शंखभस्म तैयार होगी, इस भस्म को ३ से ६ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ देने से पेट के तमाम दर्द, वायुगोला, अतिसार, अजीर्ण, आफरा और खाँसी, कफ, श्वास, मन्दाग्नि और यकृत की दुर्बलताओं का नाश होता है।

नागभस्म—शुद्ध किये हुए सीसे को लोहे की कढ़ाई में डालकर उसको आग पर चढ़ाकर, जब वह पिघल जाय तब उसमें आकड़े के हरे फूल थोड़े २ डालते हुए लोहे की चमची से हिलाते जाना चाहिये। ८ घण्टे तक इस प्रकार करने से जब उसकी भस्म हो जाय, तब उसे उतार कर ठण्डा करके कपड़े से छान लेना चाहिये। इसमें जो सीसे का कच्चा भाग निकले, उसे फिर आग पर चढ़ाकर आक के फूलों के साथ जलाना चाहिये। फिर इस सब भस्म को इकट्ठी कर उसका जितना वजन हो उससे बारहवाँ भाग शुद्ध मैंशल डालकर उसे अडूसे के पत्तों के रस में या गवार पाठे के रस में घोटकर टिकड़ी बनाकर हलके गजपुट में फूँकना चाहिये। इस प्रकार दस-बारह बार उसे घोट २ कर गजपुट में फूँकना चाहिये जिससे उत्तम पीले रंग की भस्म तैयार हो जायगी।

इस भस्म को एक से दो रत्ती की मात्रा में शहद के साथ लेने से प्रमेह, प्रदर, वीर्य की कमजोरी, श्वास, गुल्म वगैरह रोग दूर होते हैं।

इसके सिवाय और भी अनेकों भस्में आक के दूध के संयोग से तैयार होती हैं, जिनका वर्णन यथास्थान किया जायगा। शायद ही कोई भस्म की विधि ऐसी होगी, जिसमें आक के दूध को योजित न किया गया हो। इसी बात को लक्ष्य में रखकर शायद शार्ङ्गधर-संहिता में यह श्लोक कहा गया है—

श्लोक—'शिलागन्धार्कदुग्धाक्ताः, स्वर्णाद्याः सर्वधातवः। म्रियन्ते द्वादश पुटैः सत्यं गुरुवचो यथा॥'

शिलागन्ध (गन्धक) और आक (मदार) के दूध में भिगोकर सुवर्ण से लेकर सब प्रकार की धातुएँ मारी (भस्म की) जाती हैं, बशर्ते कि उनको इसी प्रकार बारह बार भावनाएँ दी जाँय। यह बात गुरु के कहे हुए वचन के प्रमाण के अनुसार सत्य है।

उपर्युक्त सारे अवतरणों से यह मालूम होता है कि प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों ने और यूनानी हकीमों ने इस औषधि के अनेकों प्रभावशाली और दिव्य गुणों का अनुभव किया था। आज भी यह औषधि उसी प्रभाव के साथ आयुर्वेद में अपना काम कर रही है।

आकाहूली

वर्णन तथा गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी ग्रन्थों के अन्दर यह एक प्रसिद्ध बूटी मानी गई है, जो खासतौर के बवासीर में लाभदायक है। यह पहले दर्जे में गरम और खुश्क मानी गई है। पुट्ठों और जोड़ों को यह हानि पहुँचाती है। इसका प्रतिनिधि खुरपे का शाक है तथा इसके दर्प को नष्ट करने वाले शहद और अदरख हैं।

मुहीतआजम के मतानुसार यह औषधि पेट के कीड़े, कफ तथा पित्तविकार और प्रमेह को दूर करती है। इसको ७ माशे की मात्रा में, ७ कालीमिर्च के साथ ठंढाई की तरह पीसकर आधपाव पानी के साथ छानकर रोजाना पीने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

बुस्तानुल मुफरीदात के मतानुसार यह सूजन को उतारने वाली और मिचलाहट (मतली) तथा पित्त की दस्तों में लाभ पहुँचाने वाली है।

आकनाद

नाम—संस्कृत—अम्बष्ठपाठा वनतिक्तिका। हिन्दी—आकनाद। बंगाली—अकनदी। नेपाली—तम्बार्कि। उड़िया—ओकनुभिंडी। लेटिन—Stephania Hernandifolia (स्तेफनिया हरनंडीफोलिया)

वर्णन—यह एक प्रकार का पराश्रयी झाड़ीनुमा वृक्ष है। इनकी शाखायें बड़ीनाज़ुक होती हैं। इसके पत्ते

ऊपर कुछ चिकने और नीचे की तरफ कुछ हलके रंग के रहते हैं। इसके फूल नर और नारी दो तरह के होते हैं। यह पौधा पूर्वीय बंगाल, आसाम तथा पश्चिमीय और पूर्वीय सामुद्रिक किनारों पर होता है।

गुण-दोष और प्रभाव—यह औषधि प्रायः पाठा (Cissampelos Poreira) के स्थान पर काम में ली जाती है। यह कड़वी, संकोचक, सरलता से पचने लायक तथा ज्वर, अतिसार, मूत्र संबंधी बीमारियों और मंदाग्नि में बड़ी लाभदायक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार वन-तिक्तिका, मन्दाग्नि, रक्तातिसार और मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में बड़ी उपयोगी है। इसमें से सेपानिन नामक एक पदार्थ निकलता है।

आड़ू

नाम—संस्कृत—आरुक। हिन्दी—आड़ू। बंगाली—पीच। अरबी—खुज, परसिक। पंजाब—आरु। फारसी—शफ्तालू। उर्दू—अदूद। अंग्रेजी—Peach (पीच)। लेटिन—Prunus Persica (प्रूनस परसिका)

वर्णन—वास्तव में यह वृक्ष चीन का है। योरप और पश्चिमी एशिया में भी यह बोया जाता है। भारतवर्ष में हिमालय पहाड़, मनीपुर और उत्तरी वर्मा में यह वृक्ष होता है। यह एक छोटे कद का झाड़ होता है। इसके फूल हलके गुलाबी रंग के और फल खटमीठे और गुठलीदार होते हैं। इसकी गुठली पर रेखायें होती हैं। इसमें एक प्रकार का गोंद लगता है। इसकी जड़ की छाल रँगने के काम में आती है। इसकी गिरी में से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है जो कड़वे बादाम के तेल की तरह होता है।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से आड़ू हृदय को बल देनेवाला तथा प्रमेह, बवासीर, गुल्म और रक्तदोष को नष्ट करनेवाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और तर है। यह वात एवं कफ प्रकृति के लोगों को हानि पहुँचाने वाला और ज्वर पैदा करनेवाला है। इसका प्रतिनिधि अमरूद और इसके दर्प को नाश करनेवाले शहद और सोंठ हैं।

इसके पत्ते कृमिनाशक और घाव को भरनेवाले होते हैं। ये धवल रोग और बवासीर में भी उपयोग में लिए जाते हैं। इसके फूल बढ़ानेवाले होते हैं। इसके फल कामोद्दीपक, मस्तिष्क को बल देने वाले और खून को बढ़ानेवाले होते हैं। ये मुँह और कफ की दुर्गन्धि को दूर करते हैं। इसके बीजों का तेल गर्भस्रावक है। यह बवासीर, बहरापन, पेट की तकलीफ और कान के दर्द को मिटाता है। पंजाब के निवासी इस फल को कृमिनाशक वस्तु की तरह उपयोग में लेते हैं।

इण्डो-चायना में इसकी छाल जलोदर रोग में लाभदायक समझी जाती है। इसके बीज कृमिनाशक और दुग्धवर्द्धक माने जाते हैं।

यूरोप में इसकी छाल और पत्ते शान्तिदायक, मूत्रल और कफनिस्सारक माने जाते है। अँतड़ियों की जलन और पाकस्थली के दर्द पर भी यह बहुत मुफीद माना गया है। खाँसी, कुक्कुरखाँसी और वायुनलियों के प्रदाह में भी यह दिया जाता है।

ट्रांसवास में इसके पत्तों का शीतल क्वाथ उन लड़कियों को देते हैं, जिनको बहुत समय तक मासिक स्राव नहीं होता।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके फूल विरेचक हैं और इसका फल अग्निवर्द्धक और शान्तिदायक है। इसमें प्रूसिड नामक एक तत्व पाया जाता है।

बेलफोर के मतानुसार इसका फल स्कह्वी रोग में लाभ पहुँचानेवाला, आमाशय को बल देनेवाला और पाचक है।

इण्डियन-मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसका पका हुआ फल कोठे को मुलायम करनेवाला और लघुपाकी है। इसकी पत्तियों का काढ़ा पेट के कृमियों को नष्ट करनेवाला और अवसादक है।

एक अन्य यूनानी ग्रन्थकार के मतानुसार इसके पत्तों का स्वरस १ छटांक की मात्रा में पीने से तथा पेड़ू पर पत्तों का लेप करने से पेट के कीड़े और केंचुए निकल जाते हैं। इसके फूल और गुठली बवासीर में लाभदायक हैं।

उपयोग—विरेचन—इसके फूलों का क्वाथ पिलाने से हलका विरेचन होता है।

आमाशय का शूल—इसके फल के रस में अजवायन का चूर्ण मिलाकर पिलाने से आमाशय का शूल मिटता है।

आँतों के कीड़े—इसके फल के रस में थोड़ी सी सेंकी हुई हींग मिलाकर पिलाने से आँतों के कीड़े मरते हैं।

बच्चों के पेट के कृमि—इसके पत्तों का रस पिलाने से बच्चों के पेट में पड़नेवाले कृमि (चुरने) नष्ट होते हैं।

कर्णशूल—इसके बीजों का तेल कान में डालने से कान के दर्द और बहरेपन में लाभ होता है।

चर्मरोग—इसके बीजों के तेल की मालिश करने से चमड़े पर होनेवाली पीली फुन्सियां मिटती हैं।

इसका उपयोग करने के लिए प्रायः इसका ठंडा काढ़ा (हिम) और शर्बत ही उपयोग में लिया जाता है।

आतजौ

नाम—हिन्दी—यूनानी आतयव। फारसी—जौगन्दुम, जौविहरन। अरबी—सुल्त, सिल्त। यूनानी—तरागीश।

वर्णन—यह एक प्रकार की छोटी जाति का जौ है, जो कि अरब और फ़ारस में विशेष पैदा होता है। कोई २ इसे खन्दरूस भी कहते हैं। किसी २ ने इसको कालनेघ और यवतिक्ता भी लिखा है। मगर वास्तव में यह एक दूसरी वस्तु है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पहिले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में तर है। इसका स्वाद कुछ मिठास लिये हुये फीका होता है। यह आमाशय को हानि पहुँचाता है। इसके दर्प को नष्ट करने वाली चीजें सौंफ, शक्कर और गाय का दूध हैं।

मुहीतआजम के मतानुसार यह मूत्रवर्द्धक और गुर्दे तथा वस्ति के मल को शुद्ध करने वाला है। इसका लेप सूजन और बढ़ी हुई तिल्ली को नाश करता है। इसके काढ़े में बैठने से बवासीर का दर्द अच्छा होता है। इसके काढ़े से मुँह धोने से मुँह की कान्ति निखर जाती है। इसकी अधपकी रोटी को गरम गरम सिर पर रखने से प्रलाप में लाभ होता है। यह औषधि खाँसी और सीने की बीमारी में भी लाभदायक है।

आतरीलाल

नाम—हिन्दी और यूनानी—आतरीलाल, इतरीलाल। फारसी—तुख्म खिलाले खलील। लैटिन—Anthriscus Cerefolium (एंथ्रिसकस सेरीफोलियम)

वर्णन—यह एक प्रकार की बूटी है, जो योरप तथा मिश्र में होती है। इसके बीज जंगली अजमोद की तरह होते हैं। यह वस्तु भारतीय बाजारों में करीब २ दुष्प्राप्य है। कोई २ औषधिविक्रेता इसके स्थान पर काकजंघा और बकुची के बीज देते हैं, मगर वह असली आतरीलाल नहीं है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यह औषधि तीसरे और चौथे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे के अन्त में रूक्ष है। विशेष तौर से इस औषधि का उपयोग श्वित्र (सफेद दाग) और व्यंगरोग में किया जाता है। इसका उपयोग करने की कई रीतियां हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(१) पहिले वमन-विरेचन से शरीर को शुद्ध करके उसके बाद ३॥ माशे आतरीलाल, ७ रत्ती अकरकरे के साथ पीसकर शहद में मिला कर चाटना चाहिये और थोड़ी सिरके में पीसकर सफेद दाग के स्थान पर लेप करना चाहिये। उसके पश्चात् घण्टा दो घण्टा धूप में बैठना चाहिये। इसके परिणामस्वरूप उस स्थान पर एक फफोला पैदा होगा और उसके जरिए सफेद रंग का पानी विना किसी तकलीफ के बाहर निकल जायगा। फिर उस स्थान पर दवा लगाना बन्द कर दें, जिससे खुरंट जमकर रोगी आराम हो जायगा।

(२) आतरीलाल ३॥ माशे, सुदाब की पत्ती १॥ माशे और सांप की कांचली १॥ माशे, इन सब को कूट-छानकर एक सप्ताह तक १० तोला अंगूरी शराब के साथ पिलावे, इससे बहुत शीघ्र रोगी श्वित्र के रोग से मुक्त होता है।

इसके अतिरिक्त यह औषधि मूत्रनिस्सारक, रजःस्रावप्रवर्तक, कृमिघ्न और गर्भघातक है। आमाशय और यकृत् के रोगों में यह लाभकारी है। इसका लेप घाव को सुखानेवाला है तथा इसका शर्बत श्वासोच्छ्वास की नलियों को साफ करता है। इसके बीजों को पीसकर गर्भिणी की नाक में फूंकने से गर्भपात हो जाता है, इसीलिए गर्भिणी स्त्री को इसका कोई प्रयोग नहीं करना चाहिये।

प्लायिनी के मतानुसार यह औषधि अत्यन्त सम्भोग से आई हुई शरीरक्षीणता को दूर करती है, और वृद्धावस्था की शक्तिहीनता में उत्तेजक प्रभाव पैदा करती है।

हकीम डिसकोरीडस के मतानुसार यह मूत्रनिस्सारक, आमाशय-बलप्रद और रोधोद्घाटक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह वस्तु मूत्रल व अग्निप्रवर्द्धक है। यह कुछ आक्षेपनाशक भी मानी जाती है, इसमें इ सेंशियल आइल व ग्लुकोसाइड पाया जाता है।

आबनूस

नाम—फारसी—आबनूस। लैटिन—Diospyros Ebinaster,

वर्णन—यह एक तिंदु की जाति का हमेशा हरा रहनेवाला पेड़ है। इसकी पत्ती सनोवर की पत्ती से कुछ बड़ी व फूल और बीज मेंहदी के बीज व फूलों की तरह होते हैं। इसका पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है, तब इसके सार की लकड़ी बहुत काली और वजनी हो जाती है। यह काली लकड़ी आबनूस के नाम से मशहूर है। यह पानी में डालने से डूब जाती है और इसे आग पर डालने से सुगन्ध आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—मखजनूल अदविया के मतानुसार आबनूस की लकड़ी का सार मूत्रनिस्सारक, पथरी को नष्ट करनेवाला और नकसीर में लाभ पहुँचाने वाला है। इसके सार को बहुत महीन पीसकर आँख में आंजने से आँख की हल्की फूली, आँख की खुजली और रतोंधी में लाभ पहुँचता है। इसको शराब में मिलाकर लगाने से कंठमाला में लाभ होता है। इसके सूखे फलों का चूर्ण श्वेतप्रदर और अतिसार में लाभ पहुँचाता है।

आम्बीहलदी

नाम—संस्कृत—आम्रहरिद्रा, कर्पूरहरिद्रा, आम्रगन्धहरिद्रा, वनहरिद्रा। हिन्दी—आँवा हलदी, आमीहलदी। मराठी—आंबेहलद, रानहलुद। गुजराती—आंबहलद, बनहल्दर। तामील—कस्तुरीमंजल। तेलगू—कस्तूरीपसुपु। बंगाली—बनहलद। अरबी—जद्वार। लैटिन—Curcuma Aromatica, (करक्यूमा एरोमेटिका)।

वर्णन—यह औषधि खास करके बंगाल और पश्चिमी प्रायद्वीप में होती है। इसकी जड़ें लम्बी और बहुत दूर तक फैली हुई होती हैं। उसमें कुछ गन्ध भी होती है। इसके पत्ते बड़े और हरे रंग के होते हैं। ऊपर से उनका अनेक प्रकार का रंग नजर आता है। पत्ते निकलने के बाद ही इसके फूल निकलने लगते हैं, जो सुगन्धित होते हैं। इसका कन्द, हलदी या शलगम की तरह होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से आंबी हलदी शीतल, वातरक्त और विष को नष्ट करनेवाली, वीर्यवर्द्धक, सन्निपातनाशक, रुचिदायक, हलकी, अग्नि को दीपन करनेवाली, सारक तथा कफ, उग्रव्रण, खांसी, श्वास, हिचकी, ज्वर और चोट से उत्पन्न हुई सूजन को नष्ट करनेवाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में उष्ण और रूक्ष, स्वाद में कड़वी और बदजायका होती है। यह हृदय को नुकसान पहुँचाती है। इसके प्रतिनिधि बाकुची और हलदी हैं।

यह वातरोग को नष्ट करनेवाली, पथरी को निकालने वाली और मूत्रावरोध, खुजली और चोट पर लाभ पहुँचानेवाली है।

डायमाक के मतानुसार जंगली हलदी के गुण-धर्म विशेषकर सादी हल्दी के समान हैं। चोट तथा मोच इत्यादि में हिन्दुस्तानी लोग दूसरी औषधि के साथ लेपद्रव्यों में इसका उपयोग करते हैं। मोती ज्वर वगैरह के दबे हुए दानों को उभाड़ने के लिए कड़वी और सुगन्धित औषधियों के साथ इसका उपयोग होता है।

एन्सली के मतानुसार दक्षिणी भारत के मुसलमान इसे सर्पदंश में एक मूल्यवान् औषधि समझते हैं। वे इसे थोड़ी २ मात्रा में हरताल और अजवायन के साथ काम में लेते हैं। मगर महेस्कर और केस के मतानुसार सर्पदंश में यह औषधि बिलकुल निरुपयोगी है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पेट के आफरे को दूर करनेवाली होती है। यह सर्पदंश में भी उपयोगी मानी जाती है। इसमें इसेन्शियल आइल पाया जाता है।

उपयोग—सर्पविष—तबकिया हड़ताल, कूट और अजवायन के साथ इसकी गोली बनाकर देने से सर्प के विष में लाभ होता है।

मस्तक पीड़ा—लोबान के साथ इसको पीसकर गरम कर ललाट पर लेप करने से स्नायुसम्बन्धी मस्तकपीड़ा मिटती है।

उदर पीड़ा—इसका धुँआ पीने से पेट का दर्द शान्त होता है।

आम

नाम—संस्कृत—आम्र, फलश्रेष्ठ, कामसर, कामवल्लभ, वसन्तद्रु इत्यादि। हिन्दी—आम। बंगाल—आम। मराठी—आँबा। गुजराती—आंबो। कर्नाटकी—माविनफल। तेलंगी—माविडी। इंग्लिश—Mango। फारसी—आँबा। अरबी—अंबज। लेटिन—Mangifera Indica (मेंगिफिरा इण्डिका)

वर्णन—आम के वृक्ष भारतवर्ष की एक बहुमूल्य सम्पत्ति हैं और ये सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इस देश में शायद ही ऐसा कोई भाग्यहीन मनुष्य होगा, जिसने इस अमृतफल का रसास्वादन नहीं किया हो। इसलिये इस फल के विशेष परिचय की यहाँ पर आवश्यकता नहीं। आम की कई जातियाँ होती हैं। जो आम जंगलों में अपने आप पैदा होते हैं, उन्हें रानी आम कहते हैं। जो आम खेतों और बाग-बगीचों में गुठली बोकर पैदा किये जाते हैं, उन्हें देशी आम कहते हैं और जो आम ऊँची जाति के आमों पर से कलम बाँधकर तैयार किये जाते हैं, वे कलमी आम कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त आकार, रूप, रंग, स्वाद, गुण इत्यादि के फरक से इनकी सैकड़ों तरह की जातियाँ जैसे—हाफुस, पायरी, सफेदा, लंगड़ा, नीलम, तोतापरी, राजभोग, कृष्णभोग, मोहनभोग, गुलाबखास इत्यादि होती हैं। फिर भी कलमी और देशी आमों में एक महत्त्व का भेद होता है और वह यह है कि देशी आम में रेशा होने से उसका रस पतला होता है, जो चूस कर खाने में आ सकता है, मगर कलमी आम में रेशा नहीं होने से वे केवल काटकर खाए जाते हैं। औषधि-कार्य में कलमी आम की अपेक्षा चूसने के लायक देशी आम ज्यादा गुणकारी होते हैं क्योंकि ये आसानी से पच जाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आम के वृक्ष का छिलके से लेकर फल तक प्रत्येक अंग-प्रत्यंग औषधि के कार्य में आता है। इसलिए उन सबका एक साथ उल्लेख करने की अपेक्षा अलग-अलग उल्लेख करना ज्यादा उपयुक्त होगा।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से आम का कच्चा फल कसैला, खट्टा, रुचिकारक तथा वातपित्त को पैदा करनेवाला है। यह आँतों को सिकोड़ने वाला, गले की तकलीफों को दूर करनेवाला तथा अतिसार, मूत्रव्याधि और योनिरोग में लाभ पहुँचाने वाला है। कच्चे आम की अमचुर, खट्टी स्वादिष्ट, कसैली, भेदक और कफ वात को हरनेवाली है।

पका हुआ आम—मधुर, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, सुखदायक, भारी, वातविनाशक, कान्तिवर्द्धक, शीतल, प्रमेहनाशक तथा व्रण, श्लेष्म और रुधिर के रोगों को दूर करनेवाला है।

आम का मौर—शीतल, वातकारक, मलरोधक, अग्निदीपक, रुचिवर्द्धक तथा कफ, पित्त, प्रमेह और कफ का नाश करनेवाला है।

आम की जड़—आम की जड़ कसैली, मलरोधक, शीतल, रुचिदायक, सुगन्धित तथा कफ और वात को नष्ट करनेवाली है।

आम के पत्ते—आम के कोमल पत्ते कसैले, मलरोधक, रुचिकारक तथा वात, पित्त और कफ को हरनेवाले हैं।

आम की गुठली—आम की गुठली मीठी, तुरी और कुछ कसैली होती है। यह वमन, अतिसार और हृदय के आस-पास की पीड़ा को दूर करती है। इसके बीज का तेल कसैला, स्वादिष्ट, रूखा कड़वा तथा मुखरोग, कफ व वात को दुरुस्त करता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से आम की छाल संकोचक, रक्तस्राव को बन्द करनेवाली तथा वमन और अतिसार को नष्ट करनेवाली है। इसके पत्ते बवासीर में लाभ पहुँचाते हैं। इसके पत्तों का धूम्रपान कुक्कुरखाँसी को नष्ट करता है।

इसके फूल कफनाशक और रक्तवर्द्धक हैं। इसका फल सुगंधित, मृदु, सुस्वादु और पौष्टिक है। यह यकृत् और तिल्ली के लिये लाभदायक है। मुँह की बदबू को दूर करता है, मस्तिष्क को साफ करता है। आलस्य और

शरीर की जलन को हटाता है और सौंदर्यवर्द्धक है तथा कफ, बवासीर और यकृत की पीड़ा में उपयोगी है। इसका बीज आँतों के लिये संकोचक है। यह जीर्ण अतिसार में उपयोगी, ठंडा और कामोद्दीपक है।

इण्डियन मेडिसिनल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसकी छाल और इसका गूदा संकोचक माना जाता है तथा रक्तस्राव, रक्तातिसार तथा अन्य पीड़ाओं में काम में लिया जाता है। इसके गूदे का काढ़ा, अदरख और बेल की जड़ के साथ रक्तातिसार में दिया जाता है। इसकी गिरी का रस नकसीर को बन्द करता है। इसके जलते हुये पत्तों का धूम्रपान गले की तकलीफ में मुफीद माना जाता है। इसकी छाल का रस गरमी की बीमारी में काम में आता है। पश्चिमी अफ्रीका के कुछ हिस्सों में आम की अन्तर्छाल बवासीर को ठीक करने में दी जाती है। मेडागास्कर में इसकी छाल संकोचक मानी जाती है और इसके फल ज्वरनिवारक समझे जाते हैं। इसके बीज संकोचक और कृमिनाशक माने जाते हैं। अमेरिका के अन्दर श्लैष्मिक झिल्लियों को बल देने के लिये इसका अर्क मुफीद माना जाता है। डिफ्थीरिया तथा गले के दूसरे रोगों में भी यह अपना अच्छा असर दिखलाता है।

सुश्रुत और शार्ङ्गधर ने इसकी जड़ की छाल और पत्तों को सर्प के विष को नष्ट करने वाला माना है, मगर केस और महेस्कर के मतानुसार सांप के जहर में इसके अवयव निरुपयोगी सिद्ध हुए हैं।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर नॉडकरनी के मतानुसार आम का फल किंचित् कोठे को मृदु करने वाला, मूत्रल, पौष्टिक और रसायन है। इसका कच्चा फल आमाशय को बल देने वाला और स्कर्व्वी रोग को नष्ट करने वाला है। भुने हुए कच्चे आम के गूदे में शक्कर मिला कर तैयार किया हुआ अवलेह हैजे व प्लेग के दिनों में सेवन करने से बड़ा लाभप्रद होता है। इसके फल और फल के छिलके से पैदा किया हुआ अर्क डिफ्थीरिया और कंठमाला के रोगों में लाभदायक होता है।

शरीर पर लू लगने की बीमारी में कच्चे आम को भून कर, उसका रस निकाल कर शक्कर मिला कर पिलाने से बड़ा लाभ होता है।

डाक्टर मोहिउद्दीन शरीफ के मतानुसार कलमी आम का गूदा बहुत पोषक है। इसका प्रभाव आंतों पर बहुत अच्छा होता है।

डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार कच्चा आम स्कर्व्वी रोग में बड़ा लाभदायक है और पक्का आम रसायन, तृप्तिदायक, पौष्टिक और किंचित् मृदुरेचक है।

डा० चोपरा के मतानुसार इसका फल विरेचक, मूत्रल और संकोचक है। इसका छिलका गर्भाशय के रक्त बहाव में, मुँह से बलगम के साथ खून जाने में एवम् रक्तमय काले दस्त पर काम में लिया जाता है। इसके पत्ते बिच्छू के काटने पर भी लाभदायक हैं।

आम का रस और मानव शरीर की भीषण व्याधियां—गुजरात के अन्दर कई प्रसिद्ध वैद्यों ने मनुष्य शरीर में होने वाले महान रोगों पर जैसे—क्षय, संग्रहणी, श्वास, रक्त-विकार, वीर्य की कमजोरी इत्यादि रोगों पर केवल आम के रस और दूध पर मनुष्यों को रख कर बड़ी सफलता प्राप्त की है। उनका कथन है कि उत्तम जाति के पके हुए आमों में मनुष्य शरीर का पोषण करने वाले प्रायः सभी तत्त्व विद्यमान रहते हैं। इसके मीठे रस में विटामिन (A) 'ए' और विटामिन (C) 'सी' दोनों प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इनमें से विटामिन 'ए' रोगी को बाहर के विषों और कीटाणुओं के प्रभाव से बचाता है, और विटामिन 'सी' चर्मरोगों को नष्ट करता है। पके हुए फलों का रस अत्यन्त पौष्टिक और बलवर्द्धक माना जाता है और यदि उसे दूध के साथ खाया जाय तो उसके गुणों में और भी वृद्धि हो जाती है। कई एक बीमारियों में जिनमें रोगी को केवल दूध के पथ्य पर रखने की आवश्यकता होती है, उनमें कई रोगियों को दूध अनुकूल नहीं पड़ने से विवश होकर छोड़ देना पड़ता है, ऐसे समय में अगर आम के रस के साथ में दूध का उपयोग किया जाय तो दोनों का सम्मिलित प्रयोग बड़ा लाभदायक सिद्ध होता है। इस रस में मृदुरेचक गुण होने से यह दस्त को साफ लाता है। इस कारण जिन लोगों को कब्जियत रहती है, उन लोगों के लिये यह पथ्यरूप सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त आमाशय और शोषसम्बन्धी रोगों में भी यह बहुत फायदा दिखलाता है। इसलिये इसका प्रयोग करने से संग्रहणी, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, आंतों की

व्याधियां, यकृत् वृद्धि इत्यादि रोगों में बड़ा लाभ होता है। क्षय के रोग में भी यह रक्त, मांस, वीर्य, ओज व शक्ति को बढ़ाने के लिये बड़ा उत्तम माना जाता है। इसकी प्रयोगविधि इस प्रकार है—

प्रयोग विधि—आम के रस का जिस समय प्रयोग जारी किया जाय, उस समय आम के रस और दूध को छोड़कर बाकी सब भोजन बन्द कर देना चाहिये। आम के रस के साथ गाय का दूध ही विशेष उत्ताम होता है। पर यदि क्षयरोग को मिटाने के लिये इसका उपयोग करना हो तो बकरी का दूध भी श्रेष्ठ है। दूध तुरन्त का निकाला हुआ धारोष्ण मिल जाय तो बहुत ही अच्छा। अगर न मिल सके तो साधारण तौर से गरम करके मीठा ठंडा करके उपयोग में लेना चाहिये। आम उत्ताम जाति का देशी लेना चाहिये। खट्टे अथवा अधिक पके हुए आम का कभी उपयोग नहीं करना चाहिये। आम का उपयोग करने के पहले उसे पानी में ठण्डा कर देना चाहिये, जिससे उसकी गर्मी शान्त हो जाय। उसके बाद उसको अच्छी तरह से धोकर साफ करके उसका बीट अलग कर देना चाहिये और बीट के पास का थोड़ासा रस निकाल कर फेंक देना चाहिये, फिर उस आम को धीरे २ चूसना चाहिये। कई लोग उसको चूसने के बदले उसका रस निकाल कर उपयोग करते हैं, मगर बाहर का निकाला हुआ रस वातजनक और पचने में भारी हो जाता है। इसलिये उसको चूसकर खाना ही उत्तम है। जिस समय रस का उपयोग किया जा रहा हो, उस समय अगर वायु और कफ का कुछ जोर दिखलाई दे तो अदरक को कतर के उसमें थोड़ा सा सेंधा नमक मिलाकर खाना चाहिये। साधारण तौर से साधारण प्रकृति के व्यक्ति को दिन भर में एकबार आम का रस और एक बार दूध का सेवन करना चाहिये। पर यदि पाचन-क्रिया आज्ञा दे, तो दो बार आम का रस और दो बार दूध का सेवन भी किया जा सकता है। पहले दूध का उपयोग करके उसके बाद आम के रस का उपयोग करना चाहिये।

इस प्रकार एक महीने से दो महीने तक केवल आम के रस के ऊपर रहने से पाचन क्रिया शुद्ध होकर लम्बे समय की कब्जियत, मंदाग्नि, क्षय, दमा और हृदयरोग के रोगियों को बहुत लाभ होता है, शरीर में नवजीवन मालूम होता है, खून बढ़ता है, शक्ति आती है और चेहरा सुर्ख हो जाता है।

शोष क्षय के लिये आम का रस—एक पत्थर या चीनी मिट्टी के बर्तन में उत्तम पके हुए आमों का रस पन्द्रह से बीस तोला डालकर उसमें शुद्ध मक्खियों की शहद ५ तोला मिलाकर सबेरे सेवन करना चाहिये। इसी प्रकार इतनी ही मात्रा में शाम को भी सेवन करना चाहिये। इसके सिवाय इसके बीच के समय में दो-तीन दफे गाय अथवा बकरी का धारोष्ण दूध पीना चाहिये। पानी जहाँतक बने बिल्कुल नहीं पीना चाहिये न दूसरी कोई वस्तु ही खानी चाहिये। अगर पानी के बिना बिल्कुल ही न चले तो बहुत ही थोड़ी मात्रा में थोड़ा-सा अदरख का रस मिलाकर पीना चाहिये।

इस प्रकार एक महीने से दो महीने तक यह प्रयोग जारी रखने से जीर्णज्वर, शरीर का सूखना, खांसी इत्यादि उपद्रव दूर होकर बल, वीर्य, रक्त, मांस और ओज की वृद्धि होती है।

संग्रहणी और उदर रोगों के लिये आम—प्रातः काल दो उत्तम जाति के पके हुए आमों को लेकर उनको छीलकर चाकू से कतर लेना चाहिए। फिर एक चीनी मिट्टी के या कलई के बर्तन में उन्हें डालकर, उनके ऊपर औटाकर ठंडा हुआ दूध इतना डालना चाहिये कि वे टुकड़े उसमें डूब जायँ। कुछ समय के बाद उन टुकड़ों को चमची से निकालकर अच्छी तरह चबाकर खा जाना चाहिये और उसके उपर वही दूध पी लेना चाहिए। उसके पश्चात् दिन भर में तीन २ घन्टे के अन्तर से पाव २ भर दूध पीते रहना चाहिये। इस प्रकार दूध और आम के सिवाय और कोई भी वस्तु खाने-पीने के उपयोग में नहीं लेनी चाहिए। ऐसा करते-करते जब दस्तों की संख्या घटने लगे तब दोपहर में भी दो पके हुए आम की चीरें दूध के साथ देनी चाहिए।

इस प्रकार रोग के अनुसार तीन-चार सप्ताह तक यह प्रयोग चालू रखने से भयङ्कर संग्रहणी रोग को काबू में लिया जा सकता है। ऐसे भयंकर रोगों के लिए दो-तीन महीने तक यह प्रयोग करना अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है। पर यदि इतना समय न मिल सके तो कम से कम एक महीने तक तो अवश्य इस प्रयोग का उपयोग करना चाहिए।

उपयोग और बनावटें—श्वेत प्रदर—डाक्टर नॉडकर्नी का मत है कि श्वेत प्रदर, खूनी बवासीर और फेफड़े के द्वारा रक्तस्राव होने की दशा में तथा कृमिरोग में भी आम की छाल का रस या इसका ठंडा काढ़ा ४ तोला

और चूने का नितरा हुआ पानी १ तोला मिलाकर सात दिन तक लेने से बहुत लाभ होता है। आम के पेड़ की छाल और फल के छिलके का रस एक चाय के चम्मच की मात्रा में एक छटांक जल में मिलाकर दो २ घण्टे के अन्दर देने से फेंफडा, जरायु और आंतों के द्वारा होनेवाला रक्तस्राव बन्द होता है।

सुजाक—आम के वृक्ष की छाल २ तोला ४ माशा लेकर जौकुट करके पाव भर जल में भिगो दें। सबेरे उसे मल-छानकर पीयें। इस प्रकार सात दिन तक पीने से सुजाक में लाभ होता है।

गले के रोग—आम के सूखे पत्तों को चिलम में रखकर पीने से गले के रोग मिटते हैं।

अतिसार—(१) आम की गुठली, बेलगिरी और मिश्री तीनों के समान भाग चूर्ण को तीन माशे से छः तक की मात्रा में देने से अतिसार मिटता है।

(२) इसकी गुठली की गिरी का लपटा करके देने से कष्टसाध्य अतिसार भी मिट जाता है।

रक्त-प्रदर—इसकी गुठली की गिरी का १०-१५ रत्ती चूर्ण खिलाने से रक्तप्रदर, खूनी बवासीर और आँतों के कीड़ों का नाश होता है।

हिचकी—आम के पत्तों को चिलम में रखकर पीने से हिचकी मिटती है।

लू लगना—कच्ची केरी को भूभल में भूनकर उसका रस निकालकर उसमें मिश्री मिलाकर पीने से लू का असर मिटता है।

आग का जलना—इसकी गुठली की गिरी को पानी में भिगोकर पीसकर आग के जले हुए स्थान पर लगाने से फौरन ठंढई हो जाती है।

आमातिसार—आम की गुठली की गिरी, गोंद और इन्द्रजौ समान भाग लेकर पीसकर चूर्ण कर एक माशे की मात्रा में दिन में दो तीन बार देने से जवान मनुष्य का अतिसार मिटता है।

खूनी बवासीर—इसकी कोमल कोंपलों को पानी के साथ पीसकर थोड़ी सी शक्कर मिलाकर पिलाने से खूनी बवासीर बन्द हो जाता है।

दाद—इसके फल को तोड़ते समय उसके बीठ में से जो चेप निकलता है, उसको लगाने से दाद नष्ट होता है।

मकड़ी का विष—आमचूर को पीसकर उसका लेप करने से मकड़ी का विष नष्ट होता है।

कर्णपीड़ा—इसके पत्तों के रस को गुनगुना करके कान में डालने से कर्णशूल मिटता है।

बवासीर—आम और जामुन के पत्तों के सवा २ तोले स्वरस को और यदि स्वरस न निकल सके तो पानी के साथ निकाले हुए रस में पाव भर दूध मिलाकर थोड़ी मिश्री डालकर ८ दिन तक पीने से खूनी और वादी बवासीर मिटते हैं।

नेत्र पीड़ा—केरी को पीसकर आँख पर बांधने से नेत्रपीड़ा मिटती है।

नक्सीर—इनकी गुठली की गिरी को पीसकर सूँघने से नक्सीर में फायदा होता है।

रक्तस्राव—बवासीर, प्रदर, अतिसार या और भी किसी कारण से होनेवाले रक्तस्राव में आम की अन्त-र्छाल का रस २ से ४ तोला तक दिन में दो बार पीने से लाभ होता है।

बनावटें—आम्रपाक—पके हुए आमों का रस ४ सेर, मिश्री १ सेर, घी १ पाव, सोंठ का चूर्ण आधा पाव, कालीमिर्च का चूर्ण १ छटाक, पीपर का चूर्ण आधी छटाक और पानी १ सेर, इन सब को मिलाकर कलईदार कढ़ाई या मिट्टी की कढ़ाई में मन्दाग्नि से पकाओ और आम की लकड़ी से चलाते रहो। जब रस गाढ़ा हो जावे, तब नीचे उतार लो। उतार कर धनिया, सफेद जीरा, चीते की छाल, तेजपात, नागरमोथा, दालचीनी, स्याहजीरा, पीपरामूल, नागकेसर, छोटी इलायची, लौंग और जावित्री का महीन पिसा-छना चूर्ण एक २ तोला मिला दे। जब एक दम शीतल हो जावे, तब आधापाव शहद मिला दे।

इसकी मात्रा एक तोले से चार तोले तक की होती है। इसे भोजन से पहले खाना चाहिए और ऊपर से मिश्री मिलाकर दूध पीना चाहिये। यह आम्रपाक बल-वीर्य पैदा करनेवाला और रतिशक्ति बढ़ाने वाला है। इसके सिवाय संग्रहणी, क्षय, दमा, अम्लपित्त, रक्तपित्त और पीलिया वगैरह अनेक रोगों में इससे आराम होता है। इसको

सदा खानेवाला रोगरहित, पुष्ट और महाबलवान हो जाता है। जो वीर्य की कमी से नपुंसक हो गये हैं, उनके लिये यह बड़ा लाभदायक है।

स्वरशोधक वटी—आम के सूखे मौर ३ तोला, मुलेठी का सत ३ तोला, आंवला ३ तोला, चनकबाब १ तोला, छोटी इलायची के बीज १ तोला, बरियारी १ तोला, मिश्री ४ तोला, इन सब चीजों का कपड़छन चूर्ण करके उस चूर्ण को बीज निकाली हुई काली दाखों में अच्छी तरह से घोटना चाहिए। फिर उसकी चने के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से एक-एक गोली दो-दो घण्टे के अन्तर से मुँह में रखने से खांसी मिटती है, कण्ठ साफ होता है और स्वर सुरीला हो जाता है (जंगलनी जड़-बूटी)।

आम्बगुल

नाम—बंगाल—गुअरा। बम्बई—नागरी, नरगी, आम्बगुल। बर्मा—मिंगु। कनाड़ी—हालिगेबलि, हैजला, हंसिबालि, केराहुलि। गढ़वाल—लोहारू। कुमायूँ—घिवेन, मिजहोला। हिन्दी—घिवेन, आम्बगुल। तामिल—कुलंगि, कुलारि। लेटिन—Elaeagnus Lotifolia (इलेगिनस लोटिफोलिया)।

वर्णन—यह एक प्रकार की बहुशाखी झाड़ी है। यह अक्सर ऊँचे वृक्षों पर चढ़ती है। इसकी छाल फिसलनी होती है। इसके पत्ते बर्छी के आकार के और फिसलने होते हैं। इनके ऊपर छोटा व सफेद रुआं रहता है। इसके फूल बड़े २ गुच्छों में लगते हैं। इसका फल हलके गुलाबी रंग का होता है और उसमें आठ मजबूत धारियां रहती हैं, यह वनस्पति विशेष कर भारतवर्ष और सीलोन के पहाड़ी भागों में तथा चीन और मलायाद्वीपसमूह में होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके फूल हृदय को बल देने वाले और संकोचक माने जाते हैं।

ग्रिफिथ के मतानुसार इसका फल काश्मीर में संकोचक औषधि के रूप में काम में लिया जाता है।

आम्रगन्धक

नाम—संस्कृत—अम्बुज, आम्रगन्धक। हिन्दी—कुत्र। बंगाली—कर्पूर। मलयालम—मंगानरी। मराठी—अम्बुली। तेलगू—इनाटा। लेटिन—Limnophila Gratioloides (लिम्नोफिला ग्रेटिऑलॉइड्स)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का पौधा होता है, जिसमें तारपीन के समान तेज गन्ध आती है। अक्सर करके यह पौधा प्रारम्भ से ही बहुशाखी होता है। इसकी जड़ें नीचे की ओर ज्यादा फैलती हैं। यह पौधा भारतवर्ष के शीत-प्रान्तों में तथा बिलोचिस्तान, सीलोन और चीन में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह औषधि सड़ान को रोकने वाली और कृमिनाशक मानी जाती है। सांघातिक ज्वरों में शरीर पर मालिश करने के लिये इसका रस काम में लिया जाता है। सोंठ और जीरे के साथ इस औषधि को लेने से अतिसार और प्रवाहिका में लाभ होता है। इसके पौधे का नारियल के तेल के साथ मलहल बनाकर लगाने से हाथीपांव (श्लीपद) में लाभ होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि सड़ान को रोकने वाली है। सांघातिक ज्वर में इसको मालिश और हाथीपांव (श्लीपद) में इसके मलहम का लेप लाभदायक होता है! इसमें एक प्रकार का इसेंशियल आइल पाया जाता है।

इसकी एक जाति और है जिसे लेटिन में Limnophila Gratissima (लिम्नोफिला ग्रेटिसिमा) कहते हैं। इसके गुण, दोष भी प्रायः उपर्युक्त औषधि की ही तरह हैं, इसके अतिरिक्त यह औषधि ज्वर में ठण्डी दवा के बतौर दी जाती है।

आयदुआरीद

नाम—फारसी—आयदुआरिद।

वर्णन—यह एक पौधा होता है, जिसकी पत्तियाँ आसबरी के समान होती हैं। यह दूसरे दर्जे में ठण्डा और रूक्ष है। इसके खाने से जीभ स्तम्भित हो जाती है। इसकी जड़ प्रत्येक अंग से होने वाले रक्तस्राव को फिर वह चाहे

जिस समय में हो, रोकती है। इसी से इसका प्रयोग खूनी अतिसार, खूनी बवासीर और खूनी प्रदर इत्यादि रोगों में किया जाता है। जरायु से होने वाले रक्तस्राव को भी यह बन्द करता है।

आयापान

नाम—संस्कृत—विशल्यकर्णी। बंगाली—विशल्यकर्णी, आयापान, आयापानी। लैटिन—Eupatorium Ayapan (यूपेटोरियम आयापान)।

वर्णन—यह वनस्पति बंगाल की एक प्रसिद्ध वनस्पति है। इसके वृक्ष मझोले कद के होते हैं। इसके पौधे बंगाल के बाग-बगीचों में चारों तरफ रोपे जाते हैं। इसके पत्ते बड़े होते हैं और पत्तों के डंठल और उनकी नसें लाल रंग की होती हैं। बगीचों के सिवाय बंगाल के जंगल में भी यह वनस्पति पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—ऐसा कहा जाता है कि जब लक्ष्मण को मेघनाद की ब्रह्मशक्ति लगी थी और वे मूर्छित हो गये थे, तब हनुमान गन्धमादन-पर्वत के ऊपर से इस औषधि को लाये थे और इसी के द्वारा सुषेण ने उन्हें जीवित किया था। इस कथानक में सत्य का कितना अंश है, यह तो नहीं कहा जा सकता, मगर इसके घावपूरक और रक्तस्राव-रोधक महान गुण के लिये कलकत्ते के प्रतिष्ठित कविराज हरलाल गुप्ता लिखते हैं कि 'रक्तस्राव बन्द करने के लिये यह एक अमोघ औषधि है। रक्तातिसार, रक्तप्रदर, खूनी बवासीर इत्यादि शरीर के किसी भी भाग से गिरने वाले खून के लिये पत्तों का रस पीने से अत्यन्त लाभ होता है।'

कविराज श्रीद्वारिकानाथ विद्यारत्न का कथन है कि जिस मनुष्य को शस्त्र का गहरा घाव लगा हो, उस मनुष्य को आयापान के पत्तों का रस पिलाने से और इस रस को घाव पर लगाने से खून का बहना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार इसका रस पीने से आमाशय में से गिरनेवाला खून भी बन्द हो जाता है।

इण्डियन मेडिशिनल प्लांट्स के रचयिता इस औषधि के सम्बन्ध में लिखते हैं कि यह एक उत्तेजक औषधि है। कम मात्रा में पौष्टिक और अधिक मात्रा में विरेचक है। इसका गरम काढ़ा वमनकारक और ज्वरनिवारक है। यह मलेरिया के अन्दर भी दिया जाता है।

इण्डोचायन और गायना में इसके पत्तों का सत्व ज्वरनिवारक और पसीना लाने वाली औषधि के रूप में दिया जाता है। गायना, ब्राझील, फिलिपाइन और हिन्दुस्तान में यह औषधि सर्पविष को दूर करने के काम में ली जाती है। इसके लिये इसके पचाङ्ग का काढ़ा और पत्तों का रस पिलाया जाता है और काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है।

केस और महस्कर का मत है कि सर्पविष के इलाज में यह पौधा बिल्कुल निरुपयोगी है। इसके पत्ते चाहे पिलाये जायँ, चाहे लगाये जायँ, दोनों ही रूप में कुछ असर नहीं दिखाते।

आरार (हाऊबेर)

नाम—संस्कृत—प्लीहहन्त्री, मत्स्यगन्धा, विषघ्नी, अश्वत्थ फल। हिन्दी—हाऊबेर, आरार, होबेर। मराठी—होश। पंजाबी—पेत्थरी। दक्षिणी—अभल। अरबी—अभल। उर्दू—अबहल। फारसी—ओरस। लैटिन—Juniperus Communis.

वर्णन—यह ६-७ फुट उँचा वृक्ष होता है। इसके पिंड की गोलाई डेढ़ दो फीट की होती है। इसकी छाल कुछ सफेद भूरे रंग की होती है। इसकी छोटी शाखा सुगन्धयुक्त होती है। इसका फल मीठा और सुगन्धयुक्त होता है। इसके पत्ते कुछ भूरे हरे रंग के होते हैं। इसमें छोटे २ फल लगते हैं। उनमें बहुधा तीन २ बीज निकलते हैं। जब इसके फल पूरे बड़े हो जाते हैं और नहीं पकते हैं, तब तक उनमें बहुत तेल रहता है। जब वे पक जाते हैं तो उस तेल का राल जैसा पदार्थ बन जाता है, जो बहुत हलके पीले रंग का होता है और उसमें फूल जैसी बहुत तीव्र गन्ध होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति चरपरी, कड़वी, भारी, गरम, दीपन, क्षुधावर्द्धक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, कृमिनाशक, विषनिवारक और विरेचक है। यह रक्तातिसार, उदरपीड़ा, पथरी, यकृत और पेट की पीड़ा, जलोदर, अर्बुद, बच्चों की खाँसी, वायुनलियों के प्रदाह, कब्जियत तथा योनिरोगों में लाभकारी है।

हाऊबेर उत्तम उत्तेजक और मूत्रल होता है। इसको लेने से मूत्र की तादाद काफी मात्रा में बढ़ती है। यकृतोदर, जलोदर, हृदयोदर इत्यादि में इस वनस्पति को दूसरी उपयोगी औषधियों के साथ मिलाकर देते हैं। पुराने सुजाक और श्वेतप्रदर में भी इसका उपयोग होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पौधा खराब गन्ध वाला, खट्टा, मीठा और तीखे स्वाद वाला होता है। यह आँतों के लिये हल्का और संकोचक है। यह ज्वरनिवारक और पौष्टिक है। इसकी लकड़ी कड़वी, विरेचक, कृमिनाशक, रक्तस्राव को रोकने वाली, घाव को भरने वाली, मूत्रल और ऋतुस्राव नियामक है। यह कामोद्दीपक, पौष्टिक और रक्तवर्द्धक है। सीने (छाती) की तकलीफों में, वायु-नलियों के प्रदाह में, आधाशीशी में, यकृत की बीमारियों में, बवासीर में तथा अधिक परिश्रम के कारण उत्पन्न हुई तकलीफों में यह लाभकारी है।

इसके फल का तेल ऋतुस्राव-नियामक, गर्भस्रावक और पौष्टिक है। यह कृमिनाशक तथा कर्णशूल, दन्तशूल और बवासीर में मुफीद है। यह तेल भिन्न २ प्रकार के जलोदर रोगों में उपयोग में लिया जाता है। इसे स्वतन्त्ररूप से या दूसरी औषधियों के साथ भी काम में लेते हैं। पुरातन प्रमेह, सुजाक और श्वेतप्रदर में भी इसकी उपयोगिता मानी जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह मूत्रनिस्सारक और पेट के आफरे को दूर करने वाली है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल रहता है तथा इसके फलों में ऑक्झेलिक एसिड पाया जाता है।

आरकज्वार

नाम—संथाल—आरक ज्वार। लैटिन—Utricularia Bifida यूट्रीक्यूलेरिया बिफीडा।

वर्णन—यह औषधि प्रायः एशिया के गरम प्रांतों में पैदा होती है। इसका वृक्ष बहुशाखी होता है। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं। इसकी फलियाँ बहुत छोटी होती हैं। इसके बीज गोल होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि मूत्र सम्बन्धी बीमारियों को दूर करने के लिये उपयोगी मानी जाती है।

आरी

नाम—संस्कृत—आरि, संदानिका, उद्दला, खदिरपत्रिका। हिन्दी—आरी, खैरबेल। मराठी—अराटी, वेल्याखेर। कर्नाटकी—सिग्री। गुजराती—खेरवेल्य। लैटिन—Acacia Penata (एकेशिया पिनेटा) बंगाली—कचुरी। तामील—इन्दु, कटिन्दु। तैलगू—मुलुकोरिंदा, गोदूकोरिन्दा।

वर्णन—आरी की बेल काँटेदार होती है। इसके पत्ते छोटे खैर के समान और फूल कुछ हलका पीलापन लिये हुए सफेद रंग के होते हैं। इसकी फलियाँ चपटे नीले रंग की और फूल तन्तुयुक्त कीकर के फूल के समान होते हैं। इसके बीज गहरे बादामी रंग के होते हैं। यह वनस्पति खास करके मध्य और पूर्वी हिमालय, बिहार, सीलोन तथा मलाया द्वीप में पाई जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत--आयुर्वेदिक मत से यह कसैली, चरपरी, कडवी, गरम और रुधिरविकार, पित्त, त्रिदोष, वात तथा खाँसी को दूर करती है।

मसूड़ों से खून निकलने की बीमारी में और बच्चों के दूध के अजीर्ण में भी इस औषधि का उपयोग होता है।

किसी २ के मत से इसके वृक्ष की छाल दूसरी औषधियों के साथ सर्प-विष के उपयोग में ली जाती है। मगर महस्कर और केस का कथन है कि इसकी छाल सर्पदंश में बिल्कुल निरुपयोगी है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते बदहजमी और मसूड़ों से खून बहने की बीमारी में काम आते हैं। सर्पविष में भी यह औषधि उपयोगी मानी जाती है।

आर्थोसिफन स्टेमिनियस (जावा टी)

नाम--इंग्लिश—Java tea जावा टी। लैटिन—Orthosiphon Stamineus (आर्थोसिफन स्टेमीनियस)।

वर्णन—इन वनस्पति का पौधा झाड़ीनुमा होता है। यह बहुत नाजुक रहता है। इसके पत्ते गोल, नुक्कीदार और कटे हुए किनारों के होते हैं। इसका फल कुछ गोल, दबा हुआ और चपटा रहता है। यह औषधि आसाम, बर्मा, निकोबार द्वीप, फिलिपाइन द्वीप, दक्षिण भारत और आस्ट्रेलिया में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह औषधि जावा के अन्दर गुर्दे और बस्ति की बीमारियों पर बहुत समय से उपयोग में ली जा रही है। पथरी की अत्यन्त वेदनापूर्ण अवस्था में भी यह औषधि बहुत उपयोगी सिद्ध हो चुकी है। जावा के अन्दर इसके पत्तों को चाय की तरह तैयार करके उपर्युक्त रोगों पर इसका इस्तेमाल करते हैं। पेशाब को स्वच्छ करने, गुर्दे के शूल को मिटाने और पथरी को तोड़ने के लिए यह औषधि काफी नाम पा चुकी है।

आल

नाम—संस्कृत—आच्छुकः, अच्छुकः, रंजनद्रुः। मराठी—आल, बारतोंडी, बारतुंडी, नागकुण्ड, सुरंगी। गुजराती—आल, सरोजी। हिन्दी—आल। बम्बई—आल, अत्र, बारतुंडी, नागकुद्र। बर्मा—मानबिन। लेटिन—Morinda Citrifolia (मोरिंडा साइट्रीफोलिया)

वर्णन—जिस समय आधुनिक ढंग के रंगों का प्रचार नहीं हुआ था उस समय भारतवर्ष में रंग के लिए बहुत बड़े पैमाने पर आल की खेती की जाती थी। मगर अब दूसरे रंगों का प्रचार हो जाने से इसकी खेती बहुत कम हो गई है। आल की दो जातियाँ होती हैं। एक बड़ी जिसको लैटिन में Morinda Tinctoria (मोरिन्डा टिन्क्टोरिया) कहते हैं और दूसरी छोटी, जिसको मोरिंडा साइट्रीफोलिया कहते हैं। बड़ी आल का झाड़ मझले कद का होता है। इसकी छाल भूरे और पीले रंग की होती है तथा इनमें दरारें रहती हैं। इस छाल पर छोटी २ गठानें होती हैं और इसके फूल खुशबूदार होते हैं। यह पौधा अपर बर्मा, लोअर बर्मा, बंगाल, बिहार, मध्यप्रान्त, कर्नाटक, ट्रावनकोर और दक्षिण में पैदा होता है। छोटी आल का छोटा पौधा होता है और इसकी छाल मुलायम, पीली और सफेद रहती है। इसके पत्ते गोल, तीखी नोंकवाले, चमकीले, नुकीले और गहरे हरे रंग के रहते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। इसके फल का आकार और रंग अंडे के समान होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—छोटी आल—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक, ज्वरनिवारक और मासिकधर्म को व्यवस्थित करनेवाली है। यह रक्तातिसार और पेचिश की बीमारी में लाभदायक है। रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें ग्लुकोसाइड और मोरिण्डिन (Morindin) नामस दो प्रकार के तत्व पाये जाते हैं।

इसकी जड़ विरेचक वस्तु के तौर पर काम में ली जाती है। इसके पत्तों का काढ़ा सरसों के साथ मिलाकर बच्चों के रक्तातिसार में दिया जाता है। गठिया रोग पर इसके पत्तों की मालिश करने से लाभ होता हुआ देखा गया है। बम्बई में इसके पत्ते घावपूरक औषधि के रूप में काम में लिए जाते हैं। ज्वर को दूर करने के लिए तथा पौष्टिक औषधि के बतौर इसके पत्तों का अन्तःप्रयोग किया जाता है। मसूड़ों की सूजन को दूर करने के लिए इसके कच्चे फल को नमक के साथ पीसकर लगाते हैं। इन्डोचायना में इसका भूँजा हुआ फल पेचिश और श्वास की बीमारी को दूर करने के लिए दिया जाता है।

बड़ी आल यूनानी मत—यूनानी मत से बड़ी आल की जड़ रक्तस्राव को रोकनेवाली और आंतों को सिकोड़ने वाली होती है। यह फोड़ों को सुखाने के काम आती है और विषनाशक भी मानी जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड़ संकोचक है।

उपयोग—घाव और चट्टे—इसके पत्तों को पीसकर घाव पर लेप करने से घाव सूख जाता है।

ज्वर—इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से ज्वर में लाभ होता है।

बच्चों का अतिसार—इसके पत्तों को जलाकर फिर उन्हें औटाकर तथा छानकर उस पर राई भुरकाकर पिलाने से बच्चों का अतिसार मिटता है।

दन्त-रोग—इसके कच्चे फलों को जलाकर उसके साथ नमक पीसकर मंजन करने से दांत के मसूड़े मजबूत होते हैं।

घाव—इसके फल का चूर्ण घाव में भर देने से खून आना बन्द हो जाता है।

संधिवात—इसके पत्तों के रस की मालिश करने से सन्धिवात में लाभ होता है।

आलू

नाम—संस्कृत—आलू, आलुक, वीरसेन। हिन्दी—आलू। गुजराती—बटाटा। बंगाली-आलू। पंजाबी-आलू। तैलंगी—उर्लगड्डू। द्राविड़ी—वल्लेरकिंडग। कर्नाटकी—बटाटआलू। फारसी—आलूएफिरंग, सेबेजमीं। अरबी—तुफाहुलअर्ज। तामील—उर्लकलंगे। अंग्रेजी—Potato। लैटिन—Solanum Tuberosum (सोलेनम टयूबरोसम)

वर्णन—आलू का मूल उत्पत्तिस्थान अमेरिका है, मगर अब यह भारतवर्ष के गांव-गांव में बोया जाने लगा है और इससे देश का प्रत्येक आदमी भली-भांति परिचित है। आलू की खेती के सम्बन्ध में कई अच्छे ग्रन्थ निकल चुके हैं। इसकी खेती की मिकदार दिन-दिन बढ़ती जा रही है। अतः इसके विशेष परिचय की यहाँ पर आवश्यकता नहीं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से आलू शीतल, मधुर, रूक्ष, पचने में भारी, मल को गाढ़ा करनेवाला और शरीर में आलस्य पैदा करनेवाला है। यह बलकारक, रक्त-पित्तनाशक, मलमूत्रनिस्सारक और दुग्धवर्द्धक है।

रक्तालू अर्थात् लाल आलू शीतल, मधुर, अम्ल, श्रमनाशक, पित्तनाशक, दाहनिवारक, वृष्य, बलकारक, पौष्टिक और भारी है। इसको अधिक खाने से आफरा चढ़ता है। इसलिये मंदाग्निवालों को इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहिले दर्जे में रूक्ष और शीतल है। यह शुक्रवर्द्धक और कामोद्दीपक है। यह मेदे का नुकसान पहुँचानेवाला और आफरा पैदा करनेवाला है। इसका प्रतिनिधि अरवी और दर्प को नष्ट करनेवाला गरममसाला और अदरख है। इसके द्वारा बनाया हुआ सुरमा आँखों को शक्ति देता है और जाले को काटता है। यह मृदुरेचक, मूत्रनिस्सारक और स्कर्व्ही रोग में लाभ पहुँचानेवाला है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर नॉडकरनी के मतानुसार इसके पत्ते आक्षेपयुक्त खांसी में लाभ पहुँचाते हैं। इस रोग में इन पत्तों का प्रभाव अफीम के समान होता है। आग से जले हुए स्थान पर इसका प्लास्टर रखने से बड़ा लाभ होता है।

एक यूनानी लेखक के मत से आलू खून बिगाड़नेवाला और खुजली पैदा करनेवाला है।

आलूचा

नाम—हिन्दी—भोटिया बादाम, गर्दालू, शनालू। फारसी—आलुएदमिश्क, आलुएफरांसिसी। लैटिन-Prumestica P. Aloocha। अँग्रेजी—Comman Plum।

वर्णन—यह आलू बुखारे की जाति का एक वृक्ष है, जो पश्चिम हिमालय पर, गढ़वाल से काश्मीर तक पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसका कच्चा फल पहले दर्जे में शीतल और पक्का फल दूसरे दर्जे में शीतल होता है। यह प्रकृति को मुलायम करनेवाला, प्यास को हरनेवाला, शांतिदायक तथा वमन को दूर करनेवाला है। पके हुए आलूचे का रस खांसी के लिए उपकारी और क्षतरोगी को बड़ा लाभदायक है। इसके पत्तों का रस पेट के कृमियों को निकालने वाला है। यह मेदे को नुकसान पहुँचानेवाला और आफरा पैदा करनेवाला है। इसके फल का गूदा मृदुरेचक और पौष्टिक है। इसका प्रतिनिधि आलू बुखारा और दर्प को नष्ट करनेवाला गुलाब का गुलकन्द है।

इण्डियन मेडिशनल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार यह फल विरेचक और ज्वरनाशक है। पेट का आफरा उतारने के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। धवलरोग में, अनियमित मासिकधर्म में और गर्भपात के बाद की अवस्था को दूर करने के लिए भी इसको काम में लेते हैं।

आलूबालू

नाम—उर्दू-आलूबालू। पंजाब—गिलास, ओलची। सीमांत—आलूबालू फारसी-आलूबालू, आलूबुआली। यूनानी—करूसियून, करासुस। अरबी—फरासिया, जेरासायान, करासया। लैटिन-Prunus Carasus.

वर्णन—यह एक प्रकार की झाड़ीदार वनस्पति होती है। इसकी शाखाएँ लाल रंग लिये हुए होती हैं। इसके पत्ते चौड़े, कटे हुए किनारों के होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। इसके फल का रंग कुछ कालापन लिए हुए लाल होता है। फल का बीज चने के समान छोटा, छिलका कड़ा और गूदा सफेद होता है। फल का स्वाद खटमीठा होता है। यह वनस्पति विशेष करके पश्चिमी एशिया में पैदा होती है। यह उत्तरी पश्चिमी हिमालय प्रान्तों में भी बोई जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसका मीठा फल दूसरे दर्जे में गरम और तरहै। इसका कच्चा फल पहिले दर्जे में शीतल और रूक्ष है। इसका प्रतिनिधि आलूबुखारा और इसका दर्पनाशक शिकंजवीन है।

इण्डियन मेडिशनल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसका फल खट्ठा व मीठा होता है। यह अग्निवर्द्धक, विरेचक और मस्तिष्क को बल देने वाला होता है। गले और फेफड़े के रोगों में तथा श्वास, वमन और पित्त में यह उपयोगी है। इसके बीज मूत्रनिस्सारक, मृदुविरेचक, मासिकधर्म को नियमित करने वाले, ज्वरनाशक और घाव को भरने वाले होते हैं। इनका उपयोग सुजाक, पथरी और वायु-नलियों के जीर्णप्रदाह में किया जाता है। गले की तकलीफ और यकृत सम्बन्धी रोगों को भी यह रोकने वाला है।

इसकी छाल कड़वी और ज्वर का नाश करने वाली है। इसके फल का गूदा स्नायु मण्डल को बल देनेवाला होता है। इसका उपयोग हाड्रोसायनिक ऐसिड के स्थान पर किया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल कड़वी, संकोचक और ज्वरनिवारक होती है और इसके फल का गूदा स्नायु-मण्डल को बल देने वाला होता है।

मखजनूल अदविया के मतानुसार इसका मीठा और ताजा फल फेफड़े और गले की कर्कशता को दूर करता है। इसका खटमीठा फल प्यास को दूर करने वाला, रक्त और पित्त की गर्मी को नष्ट करने वाला और पित्त की मूर्च्छा को दूर करनेवाला होता है। इसके बीजों को थोड़ी सौंफ के साथ पीसकर पिलाने से यह पथरी को तोड़कर बाहर निकाल देता है और मूत्रनली के घावों को दुरुस्त कर मूत्रप्रणाली को ठीक कर देता है। इसके गोंद को २ माशे की मात्रा में ठण्डे पानी के साथ देने से यह पुरानी खांसी को दूर करता है। इसके द्वारा तैयार किया हुआ सुरमा आँखों की खुजली को दूर कर दृष्टि को बढ़ाता है। भोजन के बाद लेने से यह बदहज्मी करके आमाशय को दुर्बल करता है।

इसका एक भेद और होता है, जिसको लेटिन में Prunus Verginiana और देशी भाषाओं में विलायती आलूबालू कहते हैं। इसकी छाल जिसको Pruni Virgineanae Cortax (प्रूनी व्हरजीनियेनि कॉरटेक्स) कहते हैं, औषधि प्रयोग के काम में आती है। इसकी मिलावट से एलोपेथी में टिंचर और शर्बत तैयार किये जाते हैं, जो सूखी खाँसी में लाभदायक होते हैं। इसका फल गुर्दे के रोगों में बड़ी मूल्यवान औषधि है।

आलूबुखारा

नाम—संस्कृत—आल्लुकम्, आलुकम्, भल्लुकम्, रक्तफलम्। हिन्दी—आलूबुखारा। गुजराती और मराठी—आलूबुखार। बंगाली—आलूबोखार। तैलंगी—आलूबोकारा। अरबी—इज्जास। फारसी—आलू। लैटिन—Prunus Insititia (प्रूनस इन्सिटिशिया)।

वर्णन—यह वृक्ष मझोले कद का होता है। इसके फल आंवले के बराबर कुछ ललाई और पीलाई लिये हुए चमकदार होते हैं। कच्चे फल खट्टे और पके हुए फल खट-मीठे और रसदार होते हैं। इसके पत्ते सेब के पत्तों की तरह होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—निघण्टु-रत्नाकर के मतानुसार आलूबुखारा मलरोधक, कसैला, हृदय को बल देने वाला, शीतल, भारी, मलस्तम्भक, ग्राही, दस्तावर, गरम, कफपित्तनाशक, पाचक, मधुर, मुख-

प्रिय, मुख को स्वच्छ करने वाला तथा प्रमेह, गुल्म, बवासीर और रक्तवात का नाश करने वाला है। पका हुआ आलूबुखारा मधुर, भारी, कफकारक, पित्तजनक, गरम, रुचिकारक, धातुवर्द्धक तथा बवासीर, ज्वर और वात को हरने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में शीतल और तर है। यह मस्तिष्क और आमाशय को नुकसान पहुंचाता है। इसका प्रतिनिधि इमली और इसके दर्प को नाश करने वाला गुलकन्द है। इसके पत्ते खून को साफ करते हैं, नकसीर को बन्द करते हैं तथा तालू के प्रदाह को दूर करते हैं। इसका फल खट्टा मीठा, मृदुविरेचक और ज्वर को नाश करने वाला होता है। यह फोड़ों को दुरुस्त कर खुजली को मिटाता है। मीठा आलूबुखारा आमाशय में शिथिलता पैदा करता है। सिरके के साथ मिलाकर इसके गोंद को लगाने से यह दाद को नष्ट करता है। इसके पत्तों का लेप पेड़ू पर करने से यह आँत के कीड़ों को निकाल देता है। सूखा आलूबुखारा रेचक होता है।

आलूबुखारे का गोंद दोषों को छेदन करने वाला, खाँसी को मिटाने वाला, फेफड़े और छाती के दर्द में लाभ पहुचाने वाला तथा गुर्दे और बस्ति की पथरी को तोड़कर निकाल देने वाला होता है। इसके गोंद का बारीक चूर्ण घाव पर भुरभुराने से या इसके पानी से घाव को धोने से घाव सूख जाता है। इसके गोंद को सिरके में मिलाकर दाद, खाज और सिर की गंज पर लगाने से बड़ा लाभ होता है।

उपयोग—पित्तज्वर—इसके फल को गरम पानी में भिगोकर, छानकर पिलाने से पित्तज्वर में शान्ति होती है।

पित्त का विकार—भोजन करने से पहिले आलूबुखारे को खाने से पित्त के विकार मिटते हैं।

प्यास—आलूबुखारे को मुंह में रखने से प्यास कम होती है।

आलूसन

नाम—अरबी—हरजूश्शयातीन, रजलुलतुराव। यूनानी—आलूसन।

वर्णन—यह वनस्पति श्याम इत्यादि प्रदेशों में विशेष पैदा होती है। इसका पौधा एक गज के करीब ऊँचा होता है। इसके पत्ते ऊँगली के बराबर लंबे, कुछ गोलाकार, रुएँदार और काँटेवाले होते हैं। इसके फूल लाल अथवा काले होते हैं। इसके बीज फलियों में लगते हैं। इनमें सोये की सी सुगंध और अजवायन का सा स्वाद होता है। इसकी जड़ शलगम के आकार की होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदीय विश्वकोष के रचयिताओं के मतानुसार यह औषधि सिर दर्द, जुकाम, दमा, गुर्दे की बीमारी इत्यादि रोगों के लिये गुणकारी है। इसके बीजों को पीसकर, शहद में मिलाकर लगाने से सिर में होने वाली पीली फुन्सियां आराम हो जाती हैं। साढ़े तीन माशे की मात्रा में इसके बीजों के चूर्ण को लेने से गुर्दे की पथरी का नाश होता है। इससे पेट के कीड़े भी निकल जाते हैं। इन बीजों का काढ़ा पीने से श्वास-कष्ट आराम होता है। ये अत्यन्त कामोद्दीपक हैं।

इस औषधि का दूसरा और महत्वपूर्ण गुण, पागल कुत्ते के विष को नष्ट करने का है। आयुर्वेदीय कोष के रचयिता लिखते हैं कि इस विष के लिये यह औषधि रामबाण सिद्ध हुई है। वे इसको देने की तीन विधियों का उल्लेख करते हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) रोगी के खाने में इसके बीज पीसकर मिलाते हैं। ये बीज अपने प्रभाव से रोगी के जलत्रास का निवारण करते हैं।

(२) गर्मी के दिनों में आलूसन के पत्तों को सुखाकर रख लेते हैं। जरूरत के समय इन पत्तों को कूट-छानकर ४॥ माशे से ९ माशे तक की मात्रा में ६। तोला मधु-वारि (शहद और पानी) के साथ दिन में कई बार खिला देते हैं। फिर एक दिन का अन्तर देकर उसी प्रकार खिलाते हैं। इससे पागल कुत्ते के जहर में बड़ा लाभ होता है।

(३) इसकी ताजी जड़ को कुचल कर उसका रस निकाल कर ताजे दूध के साथ कुत्ते के काटे हुये को पिलाते हैं। यदि ताजी जड़ न मिले तो सूखी जड़ को ही पीसकर रोगी के बल के अनुसार साढ़े तीन माशे तक की मात्रा में देते हैं।

विष का प्रभाव चाहे कितना ही जोरदार क्यों न हो, उपरोक्त प्रयोगों से उसमें बड़ा लाभ होता है।

आँवला

नाम—संस्कृत—आमल, पंचरसा, शिवा, धातकी, अमृता, वयस्था, अमृतफला, श्रीफल इत्यादि । हिन्दी—आंवला । गुजराती—आंवला । कर्नाटकी—नेल्लि । तेलगू—उसरकाय । फारसी—आम्लभ्रूम् । अरबी—अम्लज् । अंग्रेजी—Embelic Myrobalan । लैटिन Phyllanthus, Embelica (फिलेन्थस इम्बेलिका)

वर्णन—आंवले के वृक्ष भारतवर्ष के जंगलों में कुदरती तौर से बहुत पैदा होते हैं तथा बाग-बगीचों में भी बोकर लगाये जाते हैं । इस प्रसिद्ध फल को भारत में सब कोई जानते हैं । बनारस का आंवला भारतवर्ष में सबसे अच्छा होता है ।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के अन्दर जितनी प्रभावशाली और रसायन औषधियों का उल्लेख हुआ है, उनमें हरीतकी (हरड़) और आंवला, ये दो औषधियाँ सर्वोत्कृष्ट मानी गई हैं । इनमें हरीतकी उष्णवीर्य और आँवला शीतवीर्य है । इसलिये आंवले का महत्व और भी बढ़ जाता है । महर्षि चरक का कथन है कि संसार के अन्दर अवस्था-स्थापक जितने द्रव्य हैं, उनमें आँवला सब से प्रधान है और रोगनिवारक जितने द्रव्य हैं, उनमें हरीतकी सब से प्रधान है । इससे पता चल जाता है कि आयुर्वेद के अन्दर आँवला कितनी महत्वपूर्ण औषधि के रूप में माना गया है । इसके बढ़िया फल ग्राही, मूत्रल, रक्तशोधक और रुचिकारक होने से ये अतिसार, प्रमेह, दाह, कामला, अम्लपित्त, विस्फोटक, पाण्डु, रक्त-पित्त, वात-रक्त, अर्श, बद्धकोष्ठ, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, खाँसी इत्यादि रोगों को नष्ट करते हैं, दृष्टि को तेज करते हैं, वीर्य को दृढ़ करते हैं और आयु की वृद्धि करते हैं ।

हमारे आयुर्वेदाचार्यों के उपर्युक्त कथन के साथ जब हम आधुनिक रसायन-शास्त्रियों के कथन की तुलना करते हैं तो उसमें अद्भुत साम्य नजर आता है । आधुनिक यूरोप, अमेरिका वगैरह सुधरे हुए देशों के रसायन-शास्त्रियों का मत है कि रक्त ही प्राणिमात्र का जीवन है । जब तक रक्त पोषण करने लायक शुद्ध स्थिति में रहता है, तब तक मानवशरीर में किसी प्रकार की व्याधि खड़ी नहीं होती और न वृद्धावस्था का ही प्रवेश हो सकता है । पर विपरीत आहार-विहार से जब खून में क्षार, अम्ल, कृमि इत्यादि विजातीय तत्त्व कम ज्यादा मात्रा में सञ्चित हो जाते हैं, तब रक्त शरीर की पोषण क्रिया को बराबर सञ्चालित नहीं कर सकता, जिससे शरीर में अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं और शक्ति घटकर वृद्धावस्था का प्रारम्भ हो जाता है ।

अगर मनुष्य खून में एकत्रित हुए विजातीय तत्वों को किसी उपाय से दूर करने में समर्थ हो जाय तो सब व्याधियों और वृद्धावस्था पर विजय प्राप्त करके नव-यौवन को प्राप्त कर सकता है । इन विजातीय तत्वों को दूर करने के लिए रसायन-शास्त्रियों ने वर्षों की ढूँढ़ खोज के पश्चात् तीन चीजों का आविष्कार किया है । उन्होंने प्रगट किया है कि यह गुण केवल सफरजन, औलिव के फल, और आँवला इन तीन वस्तुओं में ही पाये जाते हैं । सफरजन और ओलिव ये दो वस्तुयें भारतवर्ष में पैदा नहीं होतीं । ऐसी स्थिति में हमारे महर्षियों के द्वारा आंवले के अन्दर इन गुणों की घोषणा करना बिल्कुल विज्ञान संगत है ।

इन्हीं कारणों से आंवले के प्रति हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी अत्यन्त पूज्यभाव प्रदर्शित किये गये हैं । इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों के अन्दर एक बड़ी सुन्दर आख्यायिका है । वह इस प्रकार है—

'किसी पुण्य दिन के अन्तर्गत भगवती पार्वती और लक्ष्मी प्रभासतीर्थ को गई थीं । पार्वती ने लक्ष्मी से कहा कि देवि ! आज हम स्वकल्पित किसी नूतन द्रव्य से हरि का पूजन करना चाहती हैं । लक्ष्मी ने कहा कि हम भी किसी नूतन द्रव्य से शिव का पूजन करना चाहती हैं । उस समय उन दोनों की आंखों से भूमि पर आनन्दाश्रु गिरे और उन्हीं आँसुओं से माघ शुक्ला एकदशी के दिन 'आमलकी वृक्ष' की उत्पत्ति हुई, जिसको देखकर देवता और ऋषि आनन्द से पुलकित हो उठे ।'

ये सब बातें इस औषधि के अमूल्य गुणों को सूचित करनेवाली हैं । इन्हीं अमूल्य गुणों की वजह से प्राचीन निघण्टुकारों ने इस औषधि को शिवा अर्थात् कल्याण करनेवाली वयस्था अर्थात् अवस्था को कायम रखनेवाली और धात्री अर्थात् माता के समान रक्षा करनेवाली आदि पवित्र नामों से संबोधित किया है और रसायन औषधियों में इसको सर्वोच्च स्थान दिया है । आयुर्वेद का शायद ही कोई ऐसा प्रकरण होगा जिसमें आँवले का उपयोग न आया हो ।

रसायन औषधियों का वर्णन करते हुये प्राचीन महर्षि कहते हैं कि दीर्घायु, स्मरणशक्ति, बुद्धि, तन्दुरुस्ती, नवयौवन, तेज, कांति, स्वर, उदारता, शरीर, इन्द्रियों का बल, वाणी की सिद्धि और वीर्य की पुष्टता ये सब गुण रसायन के सेवन से प्राप्त होते हैं। ऐसे रसायन द्रव्यों में आंवला शीतवीर्य होने से सर्वप्रधान है।

आँवले के फलों के सिवाय इसके दूसरे अङ्ग भी औषधि के लिए काफी उपयोग में आते हैं। इसके पत्तों को पानी के साथ उबालकर उस पानी से कुल्ले करने से मुँह के छाले और क्षत नष्ट होते हैं, क्योंकि इन पत्तों में टेनिन एसिड का काफी भाग रहता है। इसके बीज की मगज को कूटकर गरम पानी में उबालकर उस पानी से आँखें धोने से बहुत दिनों की दुखती हुई आंखें आराम होती हैं। इन कोमल पत्तों को छाछ (मट्ठा) के साथ देने से अजीर्ण और अतिसार में लाभ होता है। इसके सूखे फलों में गैलिक एसिड की काफी मात्रा रहती है। इस कारण यह खूनी अतिसार, मरोड़ी के दस्त, बवासीर और रक्त-पित्त की बीमारियों में खास तौर से उपयोगी है। लौह भस्म के साथ इसको लेने से पाण्डु, कामला और अजीर्ण में काफी लाभ होता है। इसके फूल ठण्डे और मृदु विरेचक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार आँवला दूसरे दर्जे में शीतल तथा रूक्ष है। यह आमाशय, मस्तिष्क, एवम् हृदय को बल देने वाला तथा पित्तशामक, शीतल, शोधक और सारक है। यह प्लीहा को हानि पहुँचाने वाला है। इसके प्रतिनिधि काबुली हड़ और दर्प को नाश करनेवाली शहद हैं। अपने शीत गुण के कारण यह रक्त की गरमी और पित्त की तेजी को कम करता है। अपने रूखे गुण की वजह से यह रक्त को शुद्ध करके उसको बदलता है। ग्राही होने की वजह से यह आमाशय, नेत्र और गर्भाशय को शक्ति प्रदान करता है। मस्तिष्क के लिए यह अत्यन्त बलदायक है क्योंकि यह मस्तिष्क के बाष्पारोहण को रोकता है। इसी से यह बुद्धि को तीव्र करनेवाला माना जाता है। यह मसूड़ों और जबान को शुद्ध करके उन्हें बल देता है। मतलब यह कि यह शरीर के तमाम अवयवों पर अनुकूल असर डालता है।

आँवले के रसायन और उनकी सेवन विधि—महर्षि चरक, वाग्भट इत्यादि आचार्यों ने मनुष्य के धातु-परिवर्तन और पुनर्यौवन की प्राप्ति के लिए कई दिव्य रसायनों का उल्लेख किया है। उन रसायनों में आंवलों के द्वारा तैयार किए हुए रसायन उत्कृष्ट माने गये हैं। रसायनों की सेवन विधि भी बड़ी कठिन और इनका फल भी बहुत दिव्य बतलाया गया है। महर्षि चरक अपने चिकित्सा स्थान में इन रसायनों के सेवन की दो प्रकार की विधियों का निर्देश करते हैं। इनमें से पहिली का नाम 'कुटिप्रावेशिक विधि' और दूसरी विधि का नाम 'वाततापिक विधि' है। इनमें से कुटिप्रावेशिक विधि उत्तम और वाततापिक विधि मध्यम फल रखती है।

कुटिप्रावेशिक विधि—कुटिप्रावेशिक विधि से जिसको रसायन का सेवन करना होता है, उसे एकान्त स्थान में सुन्दर भूमि पर उत्तर या पूर्व दिशा में ऐसी कुटिया बनानी चाहिए, जो पर्याप्त लम्बी-चौड़ी हो और जिसमें एक के अन्दर दूसरा और दूसरे के अन्दर तीसरा कमरा हो। जिसमें छोटी २ खिड़कियाँ और रोशनदान हों, जो प्रत्येक ऋतु में सुखकारक हो, प्रकाशयुक्त हो, स्त्री रहित हो, जिसमें सब प्रकार की सामग्री पहिले से ही सञ्चित करके रक्खी गई हो। कुटी में प्रवेश करने के पहिले जिसको लीप पोत कर साफ रखा हो, ऐसी कुटी में जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो, जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रक्खा हो, जो सहज उपद्रव से घबरानेवाला न हो, ऐसे धैर्यशाली मनुष्य को वमन, विरेचन, स्वेदन इत्यादि पंच कर्मों से शुद्ध होकर एक उत्तम वैद्य के साथ, उस कुटी में प्रवेश करना चाहिए और नीचे लिखे रसायनों में से वैद्य की सलाह और अपनी प्रकृति के अनुकूल किसी भी रसायन का सेवन करना चाहिए। भोजन में अन्न-जल को छोड़कर केवल दूध पर निर्वाह करना चाहिए। इस प्रकार ६ महीने तक इनमें से किसी रसायन का सेवन करने से तमाम रोग दूर होते हैं और बालों की सफेदी, चमड़े की झुर्रियाँ, इन्द्रियों की क्षीणता और दाँतों का हिलना सब बन्द होकर हृष्ट पुष्ट पुनर्यौवन प्राप्त होता है।

वाततापिक विधि—जो लोग कुटिप्रावेशिक विधि के समान कठिन विधियों से रसायन सेवन में असमर्थ हैं, उनके लिए यह दूसरी विधि आसान है। इस विधि से रसायन सेवन में विशेष कठिनता नहीं है। प्रतिदिन सबेरे शाम उचित मात्रा में औषधि लेकर उस पर गरम दूध पीना, हल्का और सात्विक भोजन करना, जीवन संग्राम से जहाँ तक बने वहाँ तक तटस्थ रहना और शान्तिमय जीवन व्यतीत करना यही इस विधि की खास-खास बातें हैं।

इस विधि से एक-दो वर्ष तक इस रसायन के सेवन करने से जीवनप्रद तत्त्वों का देह के अन्दर संचय होता है, जिसकी वजह से रस, रक्त, वीर्य इत्यादि में आई हुई तमाम विकृति दूर होकर जठराग्नि प्रबल होती है, मल-मूत्र की प्रवृत्ति उचित ढंग से होती है, स्मरणशक्ति बढ़ती है, देह की कांति और रंग निखर जाता है, शरीर और इन्द्रियों का बल बढ़ता है, वीर्य शुद्ध और काफी परिमाण में पैदा होता है और स्वर गम्भीर बनता है। इस प्रकार मनुष्य अपने खोए हुए यौवन को पुनः प्राप्त कर लेता है।

ब्राह्म रसायन—शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, छोटी कटेरी, गोखुरू, बेल, अरनी, अरलू, गम्भारी, पाढ़ल, पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, बला, एरंड, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावरी, सरकंडा, ईख, डाभ, काश और शाल की जड़ ये सब औषधियां एक-एक सेर, हरड़ १२॥ सेर और ताजे बढ़िया आंवले ३७॥ सेर, इन सब औषधियों को एकत्र करके सबके वजन से दसगुना जल डालकर आग पर उबालें। जब जल का १० वां भाग शेष रह जाय, तब उसे नीचे उतारकर निर्मल वस्त्र से छान लें। अब हरड़ और आंवलों को अलग कर उनकी गुठलियाँ निकाल दें और उन्हें कुचल कर औजार से उनके सब रेशों को निकाल दें। फिर उन्हें अच्छी तरह से एक जीव करके उस क्वाथ में डाल दें और उसमें मंडूकपर्णी, पीपर, शंखाहूली, मोथा, केवटी मोथा, वायविडंग, लालचन्दन, अगर, मुलेठी, हल्दी, वच, नागकेसर, छोटी इलायची, दालचीनी, प्रत्येक का चूर्ण ३२ तोले, कपड़-छन करके मिला दें। फिर मिश्री १ मन ३० सेर, तिल का तेल २५॥ सेर और घी ३८॥ सेर भी उसमें डाल दें। फिर इन सब औषधियों को कलई किये हुए तांबे के बड़े बर्तन में रख आग पर धीरे-धीरे पकावें। जब अवलेह सरीखा हो जाय तब उसे उतार लें और ठण्डा होने पर उसमें ३२ सेर शुद्ध शहद मिला दें और अच्छी तरह से एकरस करके घी के खाली घड़ों में भर कर रख दें।

अपने बलाबल के अनुसार उचित मात्रा में यह रसायन साधारणतया एक तोला सवेरे और एक तोला शाम को खाकर गरम दूध पीना चाहिये। भोजन में दूध के साथ सांठी चावल का भात खाना चाहिये।

महर्षि चरक लिखते हैं कि बैखानस, बालखिल्य तथा अन्य तपस्वी लोग इस रसायन को सेवन कर दीर्घायु को पा चुके हैं। उन्होंने अपने जीर्ण शरीर को छोड़कर श्रेष्ठ पुनर्यौवन को प्राप्त किया था। इसके सेवन से पुरुष नीरोग, दीर्घायु, महाबलशाली और अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है।

दूसरा ब्राह्म रसायन—उत्तम पके हुए १ हजार आँवले लेकर एक ऐसी हाँडी या घड़े में जिसके पेंदे में बारीक २ कई छेद हों उसमें भर दें। फिर एक दूसरी हांडी में दूध भर कर नीचे उसको और उसके ऊपर आँवले की हाँडी को रखकर दोनों की संधियाँ आटे से बन्द कर दें। दूध की हाँडी में दूध इतना ही डालना चाहिये, जो उबलने पर ऊपर की हाँडी में न जा सके। यदि उफान आता हुआ दिखलाई दे, तो नीचे की हाँड़ी पर जल से भिगोया हुआ कपड़ा रख दें। इन हांड़ियों को मंदी आँच पर चढ़ा दें। इससे दूध में से जो भाफ निकलेगी, उससे ऊपर के आंवले बफ जायँगे। जब सब आँवले बफ जायँ, तब उनको उतार कर, उनकी गुठली निकाल कर फेंक दें और शेष हिस्से को छाया में सुखा लें। अच्छी तरह सूख जाने पर उनका चूर्ण कर लें। आँवलों के इस चूर्ण को १ हजार ताजे आँवलों के स्वरस में तर कर लें। उस रस के सूख जाने पर उस चूर्ण में शालपर्णी, पुनर्नवा, जीवंती, गंगेरन, ब्राह्मी, मंडूकी, शतावरी, शंखपुष्पी, पीपर, बच, वायबिडंग, कोंचबीज, गिलोय, लालचन्दन, अगर मुलेठी, महुए के फूल, नीलकमल, श्वेतकमल, मालती के फूल, गुलाब और जूही के फूल, इन सब का समान भाग चूर्ण जिसका वजन आँवले के चूर्ण से अष्टमांश हो, आँवले के उस चूर्ण में मिला दें। उसके बाद इस सारे चूर्ण को २॥ मन नागबला के स्वरस की भावना दें। जब सूख जाय तब उसको पीस लें, फिर दो हिस्सा घी और एक हिस्सा शहद में इन दोनों चूर्णों को मिलाकर अवलेह के तुल्य कर लें। फिर इस अवलेह को घी के खाली घड़ों में भरकर उन घड़ों का मुँह बन्द कर दें। उन घड़ों को जमीन के अन्दर गड्ढा खोदकर, उस गड्ढे में १६ अंगुल उपलों की राख बिछाकर, उस राख पर घड़ा रख दें और उसके बाद सारे गड्ढे को उपलों की राख से भर दें। १५ दिन के बाद उन घड़ों को निकाल कर, उस औषधि में सोना, चाँदी, ताँबा, प्रवाल और फ़ौलाद की भस्मों को उचित मात्रा में मिलाकर रख लें।

महर्षि चरक लिखते हैं कि इस रसायन का बलाबल के अनुसार उचित मात्रा में सेवन करने से और सात्त्विक भोजन करने से मनुष्य नीरोग, दीर्घायु और अत्यन्त प्रतिभाशाली हो जाता है और अपने खोये हुए यौवन को पुनः प्राप्त कर लेता है।

च्यवनप्राश रसायन—बेल की जड़ की छाल, अरनी की जड़ की छाल, अरलू की जड़ की छाल, गम्भारी की जड़ की छाल, पाटला की जड़ की छाल, खिरेंटी की जड़, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी माषपर्णी, पीपर, गोखरू, छोटी कंटकारी, बड़ी कंटकारी, काकड़ासिंगी, भुई आंवला, मुनक्का, भोरिंगणी, उभी रीगणी, जीवन्ती, पुष्करमूल, अगर हरड़, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, लालचन्दन, नीलकमल, विदारीकन्द, अडूसे की जड़, काकोली, काननासा, ये सब औषधियां चार २ तोले और पके हुए उत्तम आंवले ५०० लेकर उन्हें इन सब दवाइयों के जौकुट चूर्ण के साथ १२॥ सेर पानी में पकावें। आँवलों को कपड़े की ढीली पोटली में बांधकर डालना चाहिये। जब औटाते-औटाते चौथाई जल शेष रह जाय, तब काढ़े को छानकर औषधियों के भूसे को फेक दें और आंवले को पोटली में से निकालकर उनकी गुठलियों को निकाल दें और फिर इन आँवलों को हाथ से अच्छी तरह मसल कर तार की बारीक चलनी में छान लें, जिससे रेशा ऊपर रह जायगा, उस रेशे को फेक दें और उस पीठी को ४८ तोला घी और ४८ तोला तिल्ली के तेल में लोहे की कढ़ाई में डालकर खूब भून लें, फिर २॥ सेर अच्छी शक्कर लेकर उसकी चाशनी कर लें और उसमें आँवले की भुनी हुई पीठी डालकर धीमी आंच से पकावें जब पीठी घी और तेल छोड़ने लगे, तब उसे जमीन पर उतारकर, उसमें २४ तोला पुरानी शहद, १६ तोला वंशलोचन, ८ तोला पीपर, तज, तेजपत्र, छोटी इलायची और नागकेशर एक २ तोला, लेकर सब का कपड़छन चूर्ण करके अच्छी तरह से मिलाकर एक रस करके बरनियों में भर लें।

नोट—शालपर्णी और पृष्ठपर्णी के बदले भोरिंगणी की जड़, ऋद्धि के बदले वाराहीकन्द, जीवक और ऋषभक के बदले बिदारीकन्द, मेदा के बदले शतावरी और काकोली के बदले असगन्ध ली जा सकती है।

यह च्यवनप्राश परम रसायन है। विशेषतः खांसी और श्वास (दमा) को नष्ट करता है। क्षय और उरःक्षत के रोगियों, वृद्धों और बालकों के अंगों को बढ़ाता है। स्वरक्षय, छाती के रोग, हृदयरोग, वातरक्त, तृषा, मूत्रदोष और वीर्यदोषों को नष्ट करता है। कुटीप्रावेशिक विधि से इस रसायन का प्रयोग करने से वृद्ध पुरुष भी बुढ़ापे के चिह्नों से रहित होकर नई जवानी के रूप को धारण करता है। मेधा, स्मृति, कान्ति, दीर्घायु, मैथुन में सामर्थ्य, तीव्रकान्ति इत्यादि दिव्य गुणों को मनुष्य इसके सेवन से प्राप्त कर सकता है। इसी रसायन को सेवन करके अत्यन्त वृद्ध च्यवन-ऋषि (च्यवनोऽभूत्पुनर्युवा) पुनः युवक हो गये थे। तब से यह रसायन बराबर उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। यह अश्विनीकुमारों का बतलाया हुआ है। इसकी मात्रा एक तोले से दो तोले तक है।

आमलकी रसायन—ताजे सूखे हुए आँवलों का कपड़छन चूर्ण लेकर उसमें ताजे हरे आंवलों के रस की भावना देकर सुखाना चाहिये। इस प्रकार उस चूर्ण को हरे आंवलों के रस में २१ बार तर करके सुखाकर रख लेना चाहिये। इस चूर्ण को तीन माशे से छः माशे तक की मात्रा में दिन में दो बार गाय के दूध के साथ सेवन करने से वीर्य पुष्ट होता है, कांति बढ़ती है और पित्त की शान्ति होती है।

आमलक घृत—बढ़िया भूमि में उत्पन्न उत्तम आंवलों का स्वरस ८ आढ़क (५१ सेर १६ तोला) और पुनर्नवा की लुग्दी आधा आढ़क (३ सेर १६ तोला) लेकर उसमें दो आढ़क घी डालकर मन्दी आंच पर पकावें। जब रस जलकर घी मात्र शेष रह जाय, तब उसको छान लें। इस प्रकार इस घी को सौ बार आंवलों के रस में पुनर्नवा की लुग्दी में तथा १०० बार बिदारीकंद के स्वरस में और जीवन्ती की लुग्दी में तथा सौ बार अतिबला के काढ़े में शतावर की लुग्दी में पकावें। इस प्रकार सिद्ध हो जाने पर उस घी को छानकर उसमें १२८ तोला शहद और १२८ तोला शक्कर मिला दें। फिर उस घी को घी से तृप्त शुद्ध मिट्टी के घड़ों में भर दें। इस घी का कुटीप्रावेशिक विधि से अग्नि-बल के अनुसार सेवन करने से मनुष्य सौ वर्ष तक जरारहित होकर जीता है, श्रुतिधर होता है। उसका रूप अत्यन्त ही सुन्दर और तेजस्वी होता है, उसकी स्त्री-सहवास की शक्ति बहुत बढ़ जाती है, और उसकी संतान भी बहुत दृढ़ होती है।

आमलकी अवलेह—तरुण खांखरे (पलास) के झाड़ को जलाकर उसका खार निकालें। उस खार को छः गुने जल में घोल लें। उस खार के जल में १००० आंवले और १००० पीपर डाल दें। ये दोनों चीजें उस क्षारजल में डूबी हुई रहनी चाहिये। जब यह देखें कि क्षारजल उनके अन्दर अच्छी तरह पहुँच गया है, तब उन्हें निकाल कर, आंवलों की गुठलियां निकाल कर, उन्हें फेंक दें तथा उन्हें छाया में सुखा लें। सूखने पर उन्हें और

पीपर को कूटकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण के वजन से चौगुने वजन की शहद और घी क्रमशः उस चूर्ण में मिला दें। फिर उस चूर्ण के वजन से चौथाई बढ़िया शक्कर भी मिला दें। फिर इस सब औषधि को घी से भावित मिट्टी के घड़े में रख कर, उस घड़े का मुँह बन्द करके छः महीने तक जमीन में गाड़ दें। उसके बाद उसे निकाल कर आधे तोले तक की मात्रा में दूध के साथ सेवन करें और सात्त्विक भोजन करें। इस अवलेह का गुण भी उपर्युक्त रसायन के गुण के बराबर होता है।

धात्रीलौह—अच्छे ताजे सूखे हुए आंवलों का चूर्ण ८ तोला, लोहभस्म ४ तोला, मुलेठी २ तोला, इन तीनों चीजों का बारीक चूर्ण करके इस चूर्ण में ७ भावना हरे आँवलों के रस की और ७ भावना नीमगिलोय के रस की देनी चाहिये। इस चूर्ण को एक माशे से दो माशे तक की मात्रा में लेने से पांडु, कामला, अजीर्ण और अम्ल-पित्त आदि रोग दूर होते हैं। भोजन के पहिले इस चूर्ण को तीन माशे घी और ६ माशे शहद के साथ लेने से पित्त और वायु की व्याधियाँ दूर होती हैं। भोजन के अन्त में लेने से खट्टी डकारें, हृदय की जलन, परिणामशूल और पेट के शूल दूर होते हैं।

महातिक्त घृत—अतीस, अमलतास, कुटकी, कालीपाढ़, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला नीम की अन्त-छाल, धमासा, रक्तचन्दन, पीपर, गजपीपर, पद्माक, हल्दी, दारुहल्दी, बच, इन्द्रायण, शतावरी, गोरीसर, कालीसर, इन्द्रजौ, अडूसा, गिलोय, चिरायता, मुलेठी, त्रायमाण, ये सब चीजें एक २ तोला लेकर पानी के साथ पीसकर चटनी जैसी बना लेनी चाहिये। फिर उस लुग्दी को लोहे की कढ़ाई में रखकर, उसमें १२८ तोला पानी, २५६ तोला ताजे आँवले का रस और १२८ तोला घी डाल कर, मन्दाग्नि से उबालना चाहिए। जब सब चीजें जलकर केवल घी मात्र शेष रह जाय, तब उतारकर छान कर रख लेना चाहिये। इस घी को एक तोले से २ तोला तक की मात्रा में दिन में दो बार लेने से और ऊपर से थोड़ा ठण्डा पानी पीने से कोढ़, वातरक्त, रक्तपित्त, खूनी बवासीर, अम्ल-पित्त, विस्फोटक, खुजली, पाण्डु, कामला, कंठमाला, भगन्दर, इत्यादि कष्ट-साध्य स्थिति में पहुँचे हुए रोग भी नष्ट होते हैं। गरम प्रकृति के लोगों को खून या पित्त के विकार में जब दूसरी कोई भी औषधियाँ अनुकूल नहीं पड़तीं, तब उस समय यह औषधि आश्चर्यजनक ढङ्ग से लाभ पहुँचाती है। बशर्ते कि धैर्य के साथ इसका सेवन किया जाय।

बृहद्धात्री घृत—आंवले का रस, विदारीकंद का रस, शतावरी का रस, गाय का दूध और घी ये सब चीजें चौसठ २ तोला, कास, डाभ, काला गन्ना, मूंज और खस, इन सब की जड़ें सोलह २ तोला लेकर जौकुट करके ८ सेर पानी में उबालना चाहिये। जब ६४ तोला पानी शेष रह जाय, तब उसको छानकर, उपर्युक्त रसों में डालकर मंदाग्नि से पकाना चाहिये। जब सब चीजें जलकर केवल घीमात्र शेष रह जाय, तब उसको उतार-छानकर उसमें मुलेठी, निसोथ, यवक्षार और विधारा, इन सब चीजों का चूर्ण चार २ तोला और शक्कर तथा शहद ३२ तोला डालकर मिला लेना चाहिये। इस घी में से प्रतिदिन एक-दो तोला तक की मात्रा में घी लेकर ऊपर से अशोक, गिलोय अडूसे की जड़ की छाल, दारुहल्दी, नागरमोथा और लालचन्दन, इन सब चीजों के चूर्ण का बनाया हुआ काढ़ा पीने से स्त्रियों को होने वाले सब प्रकार के प्रदर नष्ट होते हैं और उनका शरीर पुष्ट होता है।

बवासीर-नाशक महौषधि—गाय का मक्खन पाव भर लेकर लोहे की कढ़ाई में मन्दाग्नि पर चढ़ाना चाहिये। जब उसमें से फेन का भाग जल जाय, तब उसमें गुठली निकाले हुए सूखे आंवलों का चूर्ण दो तोला डालकर हिलाना चाहिये। जब वह थोड़ा सिक जाय, तब उसमें बड़ के कोमल पत्तों की पीसी हुई लुग्दी २ तोला डालकर फिर हिलाना चाहिये। जब दोनों चीजें अच्छी तरह सिक जाँय, तब उस कढ़ाई को उतार कर २४ घण्टे तक पड़ी रहने देना चाहिये। उसके बाद उसे नीम के हरे डण्डे से अच्छी तरह से घोट कर रख लेना चाहिये। इस औषधि को प्रतिदिन सबेरे-शाम ६ माशे से १ तोले तक की मात्रा में लेने से और भोजन में केवल दूध और भात लेने से कुछ दिनों में बवासीर में रक्त गिरने से होने वाली पीड़ा और गिरने वाला खून बन्द हो जाता है। इतना ही नहीं कुछ दिनों तक लगातार सेवन करते रहने से धीरे २ बवासीर निर्जीव होकर खिर जाता है। जंगलनी जड़ी-बूटी नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता का कथन है कि यह औषधि अनेक रोगियों पर आजमाई हुई है।

आँवले का तेल—आंवले का स्वरस ४ सेर, शैवाल का स्वरस ४ सेर, भांगरे का स्वरस ४ सेर, शुद्ध तिल

का तेल ३ सेर, इन सब औषधियों को पीतल के कलई किये हुए बर्तन में भर दें। फिर इसमें बालछड़ १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, सफेद चन्दन का बुरादा १० तोला, खस १० तोला, गुलाब के फूल १० तोला, कपूर-कचरी १ तोला, लौंग १ तोला, दालचीनी १ तोला, तेजपात १ तोला, जटामांसी १ तोला, इन सब चीजों को पानी के साथ बारीक पीसकर इनकी लुग्दी को उस बर्तन के बीच में रख दें। इसके साथ ही नागरमोथा २ तोला, मुलेठी २ तोला, कमल के फूल २ तोला, गिलोय २ तोला, मजीठ २ तोला, हलदी २ तोला, केवड़े की जड २ तोला और त्रिफला २ तोला, इन सब चीजों को जौकुट कर ८ सेर पानी में इनका काढ़ा बनाकर, २ सेर पानी रहने पर, छानकर वह भी उस बर्तन में डाल दें और उस बर्तन को मन्दाग्नि पर चढ़ादें। जब सब चीजें जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उतार कर तेल को छान लें और उसमें वेंजील डाल कर एक दिन रात पड़ा रहने दें। फिर उसे छानकर उसमें रूह गुलाब ६ माशे, रूह केवडा ६ माशे, रूह हिना ६ माशे, रूह मोतिया ६ माशे, इत्र मौलश्री ६ माशे, रूह सन्दल ६ माशे, रूह खस २ तोला, रूह मदनमस्त १ तोला, सतपोदीना १ तोला और कपूर १ तोला, ये सब चीजें भलीभांति मिलाकर बोतलों में भर कर रख लें।

यह योग आयुर्वेदीय कोष का है। इस ग्रन्थ के रचयिताओं का कथन है कि इस तेल को सर में डालने से बाल अत्यन्त मुलायम रहते हैं, एक दिन लगाने से इसकी भीनी २ खुशबू कई दिनों तक बनी रहती है। इससे बाल काले और लम्बे हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह तेल हर प्रकार के सिरदर्द, चक्कर आना, बाल टूटना, मूर्च्छा आना इत्यादि मस्तक से सम्बन्ध रखनेवाली बीमारियों की अनुपम औषधि है।

आँवले के अन्य उपयोग—अतिसार—आँवलों को जल में पीसकर रोगी की नाभि के आस-पास उनकी थाल बांध दें और उस थाल में अदरक का रस भर दें। इस प्रयोग से अत्यन्त भयंकर नदी के वेग के समान दुर्जय अतिसार का भी नाश होता है। (भाव-प्रकाश)

हिचकी—आंवला, कैंत का रस और पीपर का चूर्ण शहद के साथ रोगी को सेवन करने से हिचकी में लाभ होता है।

बवासीर—आंवलों को भली-भांति पीसकर उस पीठी का एक मिट्टी के बर्तन में लेप कर देना चाहिये। फिर उस बर्तन से छाछ भरकर उस छाछ को रोगी को पिलाने से बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र—आंवलों के २ तोला स्वरस में इलायची का चूर्ण भुरभुरा कर पीने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

सोमरोग—आंवले का स्वरस, पका केला, शहद और मिश्री को एक साथ मिलाकर चटाने से सोमरोग मिटता है।

श्वेत प्रदर आंवलों के बीजों को पानी के साथ पीसकर, उस पानी को छानकर, उसमें शहद और मिश्री मिलाकर पिलाने से श्वेत-प्रदर में लाभ होता है।

नेत्ररोग—आंवलों को जौकुट कर दो घण्टे तक पानी में औटाकर, उस जल को छानकर, दिन में तीन बार आंखों में डालने से नेत्ररोगों में बहुत लाभ होता है।

गठिया—२ तोले सूखे आंवले और दो तोले गुड़ को डेढ़ पाव पानी में औटाकर, आधपाव पानी रहने पर मलछानकर पिलाने से गठिया में लाभ होता है। मगर इस औषधि को सेवन करते समय नमक छोड़ देना चाहिये।

पित्त ज्वर और चित्त की घबड़ाहट—पके हुए आंवलों का रस निकालकर उसको खरल में डाल कर घोटना चाहिये, जब गाढ़ा हो जाय तब उसमें और रस डालकर घोटना चाहिये। इस प्रकार घोटते-घोटते सब को गाढ़ा करके उसका गोला बनाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। यह चूर्ण अत्यन्त पित्त-शामक है। इसको सेवन करने से चित्त की घबड़ाहट, प्यास और पित्त का ज्वर दूर होता है।

रक्त-पित्त—दही के साथ आंवले का सेवन करने से रक्तपित्त में लाभ होता है।

योनिदाह—योनि की जलन में आंवले के रस में शक्कर और शहद मिलाकर पिलाने से योनिदाह में अत्यन्त लाभ होता है।

पाण्डुरोग—लोह-भस्म के साथ आंवले का सेवन करने से कामला, पाण्डु और रक्ताल्पता के रोगों में अत्यन्त लाभ होता है।

सुजाक—आंवले का चूर्ण जल में मिलाकर पिलाने से और उसी जल की मूत्रेन्द्रिय में पिचकारी देने से सुजाक की जलन शान्त होती है और धीरे २ घाव भरकर पीव आना बन्द हो जाता है।

नक्सीर—आंवले के पत्तों को कपूर के साथ पानी में पीसकर सिर पर लेप करने से नक्सीर का आना तत्काल बन्द होता है।

आँख की फूली—सात माशे आँवले को जौकुट कर ठण्डे पानी में तर करदें। दो-तीन घण्टे बाद उन आंवलों को निचोड़ कर फेक दें और उस जल में फिर दूसरे आंवले भिगो दें। दो-तीन घण्टे बाद उनको भी निचोड़कर फेक दें। इस प्रकार तीन चार बार करके उस पानी को आंखों में डालना चाहिये। कई दिनों तक इस प्रयोग के करने से आँखों की फ़ूली में लाभ होता है।

मूत्र रोग—आँवले को घोट-छान कर शक्कर मिलाकर पीने से मूत्र के साथ रुधिर आना बन्द होता है।

आशफल

नाम—बंगाल—आशफल। बम्बई—उम्ब। कनाड़ी—मलेहकूट। मराठी—उम्ब, बुम्ब,। लेटिन—Nephelium Longana (नेफीलियम लोंगाना)

वर्णन—यह वनस्पति कोंकण से दक्षिण के हरे जंगलों में, खासिया पहाड़ी पर और बर्मा में पैदा होती है। इसकी छाल फिसलनी होती है, पत्ते, दो से लगाकर पांच २ तक के जोड़ में आते हैं, फूल छोटा और सफेद रहता है। फल जब छोटा रहता है, तब खाने के लायक रहता है। इस फल में एक काले रंग का चमकीला बीज रहता है।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक और पौष्टिक है। इसमें सेपानिन नामक एक पदार्थ होता है।

आस (विलायती मेंहदी)

नाम—अरबी—हब्बुलआस। फारसी—आस, असबिरी, मउरिद। हिन्दी—मुराद, विलायती मेंहदी। उर्दू—हब्बुलआस। लेटिन—myrtus Commnuis (मायर्टस कम्युनिस)

वर्णन—यह औषधि भूमध्यप्रदेश से उत्तर, पश्चिम हिमालय तक पैदा होती है। भारतवर्ष के बगीचों में भी यह बोई जाती है।

इसके बागी और जंगली ऐसे दो भेद होते हैं। बागी का वृक्ष अनार के वृक्ष की तरह और अनार के पत्तों से कुछ छोटे होते हैं, ये स्वाद में कुछ मीठे होते हैं। इसके फूल सफेद, सुगन्धित, स्वाद में किंचित् तिक्त और फीके होते हैं। फल काले और उसके बीज सफेद होते हैं। जंगली आस का वृक्ष बागी आस से किसी कदर छोटा होता है। इसका फल पकने पर लाल रंग का और पत्ते पीले होते हैं। जिसको बुंख आस कहते है। यह वस्तु उसके दूसरे सब अंगों से अधिक प्रभावशाली होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी-चिकित्सा के अन्दर आस को बहुत प्राचीन समय से बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त है। हिपॉक्रेटस, डिसकोरिडस, प्लाइनी तथा दूसरे अरबियन लेखकों ने अपने अपने ग्रन्थों में इस औषधि की बड़ी तारीफ की है। इस औषधि में एक सबसे बड़ी विशेषता-जो शायद दूसरी औषधियों में नहीं पाई जाती-यह है कि इसमें परस्पर-विरुद्ध गुणों का समावेश पाया जाता है। इस एक ही औषधि में शीतल और गरम, संकोचक और उत्तेजक इत्यादि अनेक विरुद्ध गुणों का सम्मेलन पाया जाता है। पहले गुण इसके पत्तों में हैं और दूसरे गुण इसके फलों में पाये जाते हैं। इसकी प्रधान क्रिया फुफ्फुस और मूत्रेन्द्रिय पर होती है। यह कफनाशक और मूत्रल होता है। इसलिए पुरानी खांसी और सुजाक में इसका उपयोग होता है।

यूनानी मतानुसार बागी-आस पहले दर्जे में रूक्ष है। यह अतिसार और प्रवाहिका रोग में लाभ पहुंचाता है। इसके अधिक सूंघने से खराब स्वप्न दीखने का रोग हो जाता है। आँतों को भी यह हानि पहुँचाता है, इसका फल गर्मी की खाँसी में लाभ पहुँचाता है। दस्तों को बन्द करता है। मूत्रनिस्सारक है, पथरी को तोड़ता है, हृदय को बल देता है, पेचिस में लाभकारी है, रक्तस्राव को बन्द करता है। इसके तेल से बनी हुई मरहम को आग से जले

हुए स्थान पर लगाने से फफोला नहीं होता। बिच्छू के जहर में भी यह फायदा पहुँचाता है। यह आमाशय को बल देनेवाला, प्यास, कै और मतली को निवारण करनेवाला और हिचकी को दूर करनेवाला है। इसके तेल को बालों पर लगाने से बालों का गिरना बन्द होकर नये बालों का आना प्रारम्भ हो जाता है।

इसके पत्ते दिमाग की तकलीफों में बड़े मुफीद माने जाते हैं। खास करके मृगी के रोग में ये बड़े उपयोगी हैं। ये अग्निमांद्य, पेट और यकृत् की बीमारियों को दूर करते हैं। इसके पत्तों के पानी से मुँह साफ करने से लारकी बहुलता रुकती है।

इसके पत्तों का तेल फ्रांस में बहुत काम में लिया जाता है। वहाँ पर यह संक्रमण को दूर करनेवाला माना जाता है। यह एक प्रकार की रोगाणुनाशक औषधि है। पेरिस के अस्पतालों में श्वासक्रिया और मूत्राशय की तकलीफों में तथा फेफड़े के कतिपय विकारों में इसका उपयोग किया जाता है। आमवात की बीमारी में भी इसकी मालिश करने से बड़ा लाभ होता है।

इसके फूलों के तेल को बालों में लगाने से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं। उनमें शक्ति आती है, उनका चमकीलापन तथा कालापन वृद्धि पाता है। बालों के लिए यह एक अत्यन्त पौष्टिक खुराक है। आग से जले हुए स्थान पर इसका लगाना बड़ा लाभदायक है। यद गरमी की सूजन को मिटानेवाला, घावों को भरनेवाला तथा सिर की गंज में लाभ पहुँचानेवाला है। इस तेल को कान में टपकाने से कान का दर्द मिटता है। नौ माशे की खुराक में पिलाने से सिर का दर्द मिटता है, श्वास रोग में भी यह लाभदायक है।

डाक्टर नाँडकरनी के मतानुसार आस का पौधा उत्तेजक और संकोचक है। आमवात के विकारों में इसके पत्तों से निकाला हुआ तेल मालिश करने के काम में लिया जाता है। इसके बीजों से बनाये हुए तेल के उपयोग से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं। इसका फल आफरे को नष्ट करनेवाला है, अतिसार और प्रवाहिका रोग में इसका फाण्ट पिलाने से और श्वेतप्रदर में इसकी बस्ति देने से बड़ा लाभ होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह संकोचक, उत्तेजक, रोगाणुनाशक और चर्मदाहक औषधि है। यह बिच्छू के जहर में उपयोग में ली जाती है। इसमें एक प्रकार का इसेन्शियल ऑइल पाया जाता है। केस और महेस्कर के मत के अनुसार यह औषधि बिच्छू के डंक में निरुपयोगी है।

उपयोग—**बवासीर**—इसके पञ्चाङ्ग की धूनी देने से अर्श रोग में लाभ होता है।

सिर दर्द—आस के पत्तों को शराब में उबालकर लेप करने से कठिन सिरदर्द भी आराम हो जाता है।

अण्डवृद्धि—इसके पत्तों का लेप करने से अण्डवृद्धि में लाभ होता है।

सन्धिवात—आस के पत्तों को पानी में उबालकर उस पानी की धार देने से संधिवात में लाभ होता है।

कुष्ठरोग—इसकी ताजी लकड़ी से दातुन करने से कुष्ठरोग में कुछ शान्ति मिलती है।

नेत्र रोग—यदि गरमी से आँखें दुखती हों या वायु से फूल जायँ तो इसके पत्तों का स्वरस टपकाने से बड़ा लाभ होता है।

संग्रहणी—इसके पत्तों का स्वरस पीने से अतिसार, संग्रहणी, बवासीर और कामलारोग में लाभ होता है।

पथरी—इसके फल और पत्तों का मद्य के साथ उपयोग करने से बस्तिगत पथरी में लाभ होता है तथा पेशाब साफ आने लगता है।

दन्तशूल—इसके सूखे पत्तों के चूर्ण से मञ्जन करने से दांतों की जड़ें मजबूत होती हैं तथा इसके पत्तों के काढ़े से कुल्ले करने से गरमी से होनेवाला दाँत का शूल आराम हो जाता है।

आस्से ओड़ा

वर्णन—यह एक छोटा वृक्ष है जो पल्लीग्राम के जंगलों में होता है। लोग इसकी डाल की दतून करते हैं। इसके फल की चुरट बनाकर पीने से गले के घाव और डिफ्थीरिया रोग में बड़ा लाभ होता है।

चुरट बनाने की तरकीब यह है। आस्से ओड़ा के पके फल १६ और कालीमिर्च १६, इन दोनों चीजों को

अच्छी तरह पीस लें। फिर एक पतले कागज पर गाय का घी लगाकर सुखा लें, सूख जाने पर उपर्युक्त पिसी हुई चीज का उस कागज पर लेप करके फिर सुखा लें। फिर उस कागज को लपेट कर चुरट तैयार कर लें।

इक्लीलुल् मलिक

नाम—अरबी—असाबउल मलिक, इक्लीलुल् मलिक। हिन्दी—नाखुना। फारसी—नाखुना ग्याहकैसर। लैटिन—Trigonella Uncata (ट्रिगोनेला अंकेटा) और Melilotus Alba (मेलीलोटस एल्बा)

वर्णन—यह एक प्रकार की मुलायम वनस्पति है। इसके पत्ते तीन २ के गुच्छे में रहते हैं, ये गोल रहते हैं। इसके फूल सफेद और लम्बे रहते हैं। इसकी फली लम्बगोल होती है। इसमें एक-दो बीज रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी मत से यह सूजन को उतारनेवाला, दोषों को पचानेवाला और कठिन सूजन को मुलायम करनेवाला है। आमाशय, यकृत् और प्लीहा के दर्दों में भी यह विशेष उपयोगी है। अफसंतीन रूमी के साथ इसको मिलाकर लेप करने से यकृत् और प्लीहा की सूजन घट जाती है।

मध्य यूरोप के अन्दर यह औषधि अस्पर्क (Melilotus officinalis) के बदले में उपयोग की जाती है।

इसका काढ़ा लकवा, धनुष्टंकार, आक्षेप और स्नायु-जाल की अन्य बीमारियों में लाभ पहुँचाता है। श्वास और दमे में भी यह लाभदायक है। इसके प्रयोग से पथरी भी कट कर निकल जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह संकोचक और निद्रा लाने वाली औषधि है। इसमें कोमेरिन (Coumarin) नामक पदार्थ पाया जाता है। यह हृदय की क्रिया को धीमी करता है।

उपयोग—सूजन—कठोर और दृढ़ सूजन के लिये इस औषधि को बनफशा, अलसी और मेथी के साथ उपयोग करना चाहिये।

सिर की गंज—इसको सिरके में पीसकर सिर की गंज पर लेप करने से लाभ होता है।

कान का दर्द—इसके काढ़े को कान में टपकाने से कान का दर्द आराम होता है।

सिर का दर्द—इसका सिरका और गुलरोगन के साथ सिर पर लेप करने से गरमी का सिर-दर्द मिटता है।

इन्द्रजौ

नाम—संस्कृत—कुटजबीज, यव, इन्द्रयव, कालिंग, भद्रयव इत्यादि। हिन्दी—इन्द्रजौ। गुजराती—इन्दरजव बंगाली—इन्द्रयव। मराठी—कुड़याचें बीज। कर्नाटकी-कोड़ासिगय बीज। फारसी-जबानकुंचिश्क। अरबी-लेसानुत् असाकीर। लैटिन—Holorrhana Antidysenterica

वर्णन—इन्द्रजौ का पौधा जिसको कुड़े का झाड़ कहते हैं भारतवर्ष की एक अत्यन्त प्रसिद्ध वनस्पति है। इसके झाड़ १० फीट तक ऊंचे होते हैं। इसकी छाल आध इञ्च तक मोटी तथा भूरे रंग की होती है। इसकी शाखाओं पर चार से आठ इञ्च लम्बे और तीन-चार इञ्च चौड़े पत्ते आमने-सामने आते हैं, इसके फूल गुच्छेदार और सफेद रंग के होते हैं। इसकी फलियां एक से दो फीट तक लम्बी, पाव इञ्च मोटी और दो २ एक साथ जुड़ी हुई होती हैं, ये फलियाँ लाल रंग की होती हैं। इनके भीतर के बीज जो इन्द्रजौ के नाम से मशहूर हैं कच्ची हालत में हरे और पक्की हालत में गेहूँ के रंग के होते हैं।

कुड़े का वृक्ष दो प्रकार का होता है। एक सफेद और दूसरा काला। सफेद कुड़े के बीज मीठे इन्द्रजौ के नाम से और काले कुड़े के बीज कडवे इन्द्र जौ के नाम से मशहूर हैं। कड़वे इन्द्र जौ को लैटिन में Antidysenterica और मीठे इन्द्रजौ को Wrightia Tinctoria कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—कुड़े के झाड़ की छाल और उसके बीज अर्थात् इन्द्रजौ बहुत प्राचीन समय से इस देश में औषधि के रूप में व्यवहृत होते हैं। इसकी छाल कड़वी, शुष्क, गरम, कसैली और कृमिनाशक होती है। अतिसार, रक्तातिसार, पित्तातिसार, आमातिसार, इत्यादि रोगों पर यह वनस्पति बहुत ही उत्तम कार्य करती है। मरोड़ी के दस्तों में जब कि भयंकर रीति से दस्तों में खून गिरता है, उस समय कुड़े की छाल

आशीर्वाद की तरह लाभ पहुँचाती है। चाहे जैसा खूनी अतिसार हो और चाहे जैसी मरोड़ी आती हो, उसको भी यह औषधि मिटा देती है। आयुर्वेद के अन्दर रक्तातिसार में कुड़े की छाल की बराबरी करनेवाली दूसरी कोई औषधि नहीं है। यह एलोपैथी की प्रसिद्ध दवा इपीकोना का मुकाबला करती है। बवासीर और रक्त-पित्त के रोगों में भी यह औषधि बड़ा लाभ पहुँचाती है। इससे बवासीर के अन्दर से पड़ने वाला खून बन्द हो जाता है। शरीर में ताकत आती है। चेहरे का पीलापन मिटता है और आँखों में जीवन आता है। मलेरियाज्वर, इकतरा तथा मियादी बुखारों में भी यह औषधि बड़ा काम करती है। जिस समय अकेली क्विनाइन किसी बुखार को तोड़ने में नाकामयाब होती है, उस समय क्विनाइन के साथ कुड़े की छाल का सत्त्व मिलाकर देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। इसकी छाल का स्वरस शहद के साथ लेने से प्रमेह और कामला में लाभ होता है। लोहभस्म के साथ इसके चूर्ण का सेवन करने से प्रदर में बड़ा जबरदस्त लाभ होता है।

इसके बीज अर्थात् इन्द्रजौ ग्राही और शीतल हैं। बालकों के अतिसार, रक्तातिसार और आंतों की व्याधियों में जब गुदद्वार से खून गिरता है और साथ में बुखार भी रहता है, तब यह औषधि छाछ के साथ देने से बड़ा लाभ पहुँचाती है। दूसरी ग्राही औषधियों में जहाँ केवल स्तम्भन का गुण रहता है, वहाँ कुड़े की छाल और इन्द्रजौ में स्तम्भन के साथ पाचन का भी गुण रहता है। इससे जहां यह एक तरफ दस्तों को बन्द करती है, वहां दूसरी ओर आम का पाचन भी करती है। इन्हीं दिव्य गुणों के कारण चिरकाल से यह औषधि आयुर्वेद की प्रियपात्र रहती आई है।

यूनानी मत—यूनानी मत से कुड़े की छाल कड़वी, जखम भरने वाली और रक्तस्राव-रोधक है। यह सिर-दर्द को मिटाने वाली और मसूड़ों को मजबूत करने वाली है। इसका धुआं बवासीर के लिये लाभकारक है। इसके पत्ते संकोचक और स्तनों के दूध को बढ़ाने वाले हैं, ये पौष्टिक और कामोद्दीपक हैं। कटिवात और पुरातन वायु-नलियों के प्रदाह में भी यह मुफीद है। मूत्र-नाली सम्बन्धी रोगों में भी ये अपना असर दिखाते हैं तथा ऋतुस्राव की क्रिया को नियमित रूप में ला देते हैं। इनका खास उपयोग प्रसूति काल के बाद माता और बच्चे को बफारा देने के लिये किया जाता हैं।

इसके बीज पेट के आफरे को दूर करने वाले, संकोचक, कामोद्दीपक और पौष्टिक हैं, ये सीने के दर्द में, श्वास में, पेट के शूल में और मूत्रकृच्छ्र रोग में उपयोगी होते हैं। इसके सिवाय ज्वर, में, पेचिश में, रक्तातिसार में व अँतड़ियों के कृमिरोगों को नष्ट करने में ये मुफीद हैं।

चरक, सुश्रुत, भावप्रकाश व योग-रत्नाकर के मतानुसार इस वनस्पति की छाल और बीज, साँप और बिच्छू के जहर में बहुत उपयोगी है। मगर केस और महेस्कर का कथन है कि सर्प और बिच्छू के जहर में इस वनस्पति का प्रत्येक अंग निरुपयोगी है। उनके मतानुसार न तो यह वृक्ष विषनिवारक है, न कृमिनाशक है, न उत्तेजक है, न रक्तस्रावरोधक है और न संकोचक है। यह कड़वी है, जिससे क्षुधा को उत्तेजना मिलती है और पाचन शक्ति बढ़ती है। यह पेचिश को दूर करने वाली और रक्तातिसार को मिटाने वाली है। इसका अतिसार-निवारक गुण किसी रासायनिक उपादान के ऊपर निर्भर नहीं है। फिर भी अतिसार-सम्बन्धी तकलीफों में यह वनस्पति सस्ता, सुरक्षित और विश्वस्त गुण बतलाती है। दमा और अतिसार, रोग में इसको ६० से १२०० ग्रेन तक की मात्रा में तीन या चार बार एक निश्चित औषधि के रूप में उपयोग में ले सकते हैं।

कर्नल चोपड़ा—कर्नल चोपड़ा इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि पुरानी कथाओं के आधार पर इस वृक्ष की उत्पत्ति अमृत की उन बूँदों से हुई है, जो कि रामचन्द्र की सेना के बन्दरों को जीवित करने के लिये इन्द्र ने ऊपर से गिराया था। कई लोग (Holarrhena Antidysenterica (कड़वा इन्द्रजौ) होलेरिना एन्टि-डिसेन्ट्रिका' के पौधे को तथा Wrightia Tinctoria (मीठा इन्द्रजौ) 'राइटिया टिंक्टोरिया' के पौधे को एक समझ कर गड़बडा जाते हैं। एक क बजाय दूसरे को काम में लेते हैं। इसलिये यह ख्याल रखना चाहये कि मीठे इन्द्रजौ के फूलों में एक प्रकार की खूशबू होती है, जो जूही या चमेली के फूलों से मिलती-जुलती होती है, लेकिन कडवे इन्द्रजो के फूलों में किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती। इसके अतिरिक्त मीठे इन्द्रजौ की छाल का रंग बादामी और कुछ ललाई लिये हुए होता है और हाथ लगाने से वह कुछ चिकनी मालूम होती है। मगर कड़वे इन्द्रजौ की छाल, मोटी, कड़वी और मटमैले रंग की होती है। इसकी फली के अन्त में एक बालों का गुच्छा रहता है।

आर्वेयुदिक ग्रन्थों में इसकी छाल पेचिश को दूर करने वाली और इसके बीज ज्वर, अतिसार और कृमियों को नष्ट करने वाले माने गये हैं।

अरेबियन चिकित्साशास्त्रों में भी इसकी उपयोगिता बहुत बतलाई गई है। उनके मतानुसार यह पेट के आफरे को दूर करने वाला, संकोचक और फेफड़े के दर्दों में बहुत उपयोगी माना गया है। यह पौष्टिक, पथरीनाशक और कामोद्दीपक होता है। यदि इसको शहद और केशर के साथ मिला कर, उसकी 'पेसरी' (Pessaries) बनाकर योनिमार्ग में रक्खी जाय तो गर्भाधान में बहुत मदद मिलती है।

रासायनिक विश्लेषण—कुड़े के वृक्ष के रासायनिक तत्वों के सम्बन्ध में बहुत कुछ अन्वेषण हो चुके हैं। यूरोपियन लोगों ने खास तौर से 'होलेरिना कांगोलेंसिस' के सम्बन्ध में और भारतीय लोगों ने 'होलेरिना एएटीडिसेरिएट्रका' के सम्बन्ध में अनुसन्धान करके अपनी २ खोजें जाहिर की हैं। केस और महेस्कर ने सन् १९२७ में इसका रासायनिक विश्लेषण करके यह तत्त्व निकाला कि इसके बीजों में '०२५ प्रति सैकड़ा अलकेलाइडल और छाल में '२२ परसेन्ट अलकेलाइडल पाया जाता है। सन् १९२८ में घोष और बोस ने इसका नवीन विश्लेषण करके यह सिद्धान्त निकाला कि इसके सारे पौधे में अलकेलाइडल (Alkaloidal) की मात्रा, जैसा कि अभी तक कहा जाता है, उससे अधिक पाई जाती है। अर्थात् १२ प्रति सैकड़ा से भी इसकी मात्रा अधिक पाई जाती है। इसका यह बढ़ा हुआ अंक यह बतलाता है कि व्यावसायिक स्केल पर अगर इससे उपक्षार तैयार किये जायँ, तो वे लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

सन् १८५८ में सबसे पहले 'हेन्स' ने इसमें से कोनेसिन (Conessine) नामक एक उपक्षार, रामचन्द्र दत्त ने इसके सभी उपक्षारों को निकाला और उन्होंने उनका नाम कुर्चिसिन (Kurchicine) रक्खा। सन् १८८६ में 'वार्नेक' (Warnecke) ने और १९२५ में ऐय्यर और सियोनसेन ने इसके बीजों से शुद्ध 'कोनेसिन' निकाला। सन् १९२९ में 'पायमेन' ने इसकी छाल से एक नया 'अलकोलाईड' निकाला जिसका नाम उन्होंने Holarrhenine (होलेरीनाइन) रक्खा। सन् १९२८ में घोष और बोस ने यह बताया कि कोनेसिन के अतिरिक्त इसमें अन्य उपक्षार भी हैं, जिनके नाम 'कुर्चिसिन' और कुर्चाइन' नामक क्षार इनकी छाल में अधिक मात्रा में रहता है।

सन् १९२३ में घोष और बोस ने कलकत्ते के 'स्कूल आफ़ ट्रोपिकल मेडिसिन' में 'कुर्चाइन' और 'कुर्चिसिन' नाम के दोनों उपक्षार बिलकुल शुद्ध मात्रा में प्राप्त किये और इसके रासायनिक तत्त्वों का और मुख्य २ क्षारों का पूरा २ अध्ययन किया।

आगे चलकर कर्नल चोपरा लिखते हैं कि इसके बीज पेचिश, अतिसार, ज्वर और पित्तसम्बन्धी तकलीफों में बहुत ही लाभकारी हैं। खूनी बवासीर के उपचार में इसके बीजों का काढ़ा दूध के साथ तैयार करके उपयोग में लिया जाता है और यह बड़ा लाभ करता है। कुड़े की छाल को पीसकर या गरम पानी में उसका सत्त्व निकाल करके कृमियुक्त पेचिश रोग में देने से बड़ा लाभ होता है।

बीजों की अपेक्षा इसकी छाल की बहुत ही तारीफ की गई है और सुश्रुत, भाव-प्रकाश तथा निघण्टुकारों ने रक्तातिसार-नाशक औषधि की हैसियत से इसे बहुत ही ऊँचा स्थान दिया है। भारतीय और यूरोपियन दोनों ही प्रकार के चिकित्सक इसको पेचिश की एक उत्तम दवा मानते हैं। सन् १८८१ में डाक्टर आर० सी० दत्त ने जीर्ण और भयङ्कर पेचिश के रोगियों को इसकी छाल के सत्त्व से आराम करने में सफलता पाई। टुलवाल्श (Tullwalsh) ने भी सन् १८९१ में इसकी छाल के प्रति अपना पूर्ण सन्तोष प्रकट किया। कनाईलाल दे को तो इस छाल की उपयोगिता पर इतना विश्वास हो गया कि उन्होंने ब्रिटिश फरमाकोपिया में इस औषधि को सम्मिलित करने की सिफारिश की।

इण्डियन्स ड्रग कमेटी ने पेचिश की बीमारी में कुड़े की छाल की इतनी उपयोगिता देखकर इसकी जाँच करना चाहा और इसके सत्व को निकालकर कई गवर्नमेंट अस्पतालों में भेजा और उनसे इस बात की रिपोर्ट मांगी कि आंतों सम्बन्धी शिकायतों में इसकी उपयोगिता कहां तक सिद्ध होती है।

इसके परिणाम स्वरूप समय २ पर जो रिपोर्टें प्राप्त हुईं वे अत्यन्त उत्साहवर्द्धक थीं और उन्होंने उस कमेटी के मेम्बरों के हृदय पर यह छाप जमा दी कि अमेबिक रक्तातिसार को नष्ट करने के लिये यह एक बहुत उत्तम औषधि है। वॉरिंग (Waring) का कथन है कि यह सभी प्रकार के जीर्ण पेचिश के रोगों में एक उत्तम दवा है।

चाहे वह पेचिश अन्य रोगों के अथवा ज्वर के साथ हो, चाहे वह उग्ररूप में हो, अगर इस औषधि का इस्तेमाल किया जाय तो उससे अवश्य लाभ होगा। मद्रास के डाक्टर कोमान का कथन है कि बच्चों और युवकों की अमेबिक पेचिश की बीमारियों में इस वृक्ष की छाल का सत्व अत्यन्त सन्तोषजनक लाभ पहुंचाता है।

पेचिश की बीमारी के अन्दर इस औषधि की पूरी तरह से आजमाइश हो चुकी है, इस वस्तु का उपयोग सबसे पहिले इसकी जड़ की छाल के सत्व से प्रारम्भ किया गया। यह स्वाद में बिलकुल कड़वा और अग्राह्य है। व्यूरो वेलकम एण्ड को० (Burroughs Wellcome & Coy) ने इसकी छाल के सत्व से तैयार की हुई गोलियां बाजार में बेचना शुरू कीं, जिसमें थोड़ी २ मात्रा में दूसरे पदार्थों को भी सम्मिलित किया। ये गोलियां सरलता से ली जा सकती हैं और लाभप्रद भी हैं।

सन् १९२७ में केस और महेस्कर ने भी इसकी छाल के चूर्ण को इस्तेमाल किया और ये भी अत्यन्त सन्तोषजनक परिणाम पर पहुँचे। सन् १९२८ में नॉवेल्स और दूसरे लोगों ने करीब सोलह बीमारों को इसकी छाल का सेवन कराया, जिसमें से १० को तो इसका अर्क दिया गया और ६ को इसके सत्त्व से तैयार की हुई गोलियां दी गईं, इसके परिणाम में आराम होने वाले रोगियों की संख्या का अनुपात बहुत ऊँचा रहा और विशेषता यह पाई गई कि बिना इञ्जेक्शन लगाये ही रोगी में किसी प्रकार के टॉक्सिक या विषैले लक्षण पैदा नहीं होने पाते। गोलियां देने से बिना किसी प्रकार की असुविधा के ६० ग्रेन की मात्रा रोगी के शरीर में पहुंच जाती है और इससे रोगी को किसी भी प्रकार की दूसरी शिकायत पैदा नहीं होती है।

कर्नल चोपडा ने इस दवा को २ ड्राम की मात्रा में दिन में तीन बार ४ सप्ताह से लगाकर पांच सप्ताह तक अकेले ही या ईसबगोल के साथ में जीर्ण आंतों की पेचिश की बीमारी में काम में लिया और उसका परिणाम बहुत सन्तोषजनक रहा। किसी भी प्रकार के असन्तोषजनक चिह्न या विषैले पदार्थों का एकत्रित होना नहीं पाया गया। यहाँ तक कि उसे बीमारों को भी जो अँतड़ियों के सिवाय दूसरे कारणों से भी पेचिश के रोग से ग्रसित थे, इससे लाभ पहुँचा।

पेचिश-निवारक-शक्ति के अतिरिक्त यू० पी० के अन्दर यह भी विश्वास किया जाता है कि इस औषधि में मलेरिया के कीटाणुओं को दमन करने की शक्ति भी है। मगर प्रयोगों से मालूम हुआ है कि इस विश्वास का कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं है। मलेरिया में यह औषधि किसी प्रकार का प्रभाव नहीं बतलाती।

मतलब यह है इसमें जितने उपक्षार पाये गये हैं उनको रसायनशाला और अस्पतालों में आजमाइश करके देखा गया तो मालूम हुआ कि अमेबिक अतिसार के कीटाणुओं से उत्पन्न हुई पेचिश की बीमारी में ये प्रशंसनीय फायदा पहुँचाते हैं। ये उपक्षार अधिक मात्रा में दिये जाने पर भी किसी प्रकार के खराब चिह्न पैदा नहीं करते। यदि इसका इन्ट्रामस्क्यूलर (Intramuscular) इन्जेक्शन दिया जाय और उसमें १ ग्रेन की मात्रा में उपक्षार हो तो यह इन्जेक्शन एमेबिक डिसेंट्री में इमेटाइन के मुकाबले ही तुरन्त फायदा पहुँचाते हैं। इतना जरूर है कि इञ्जेक्शन देने के स्थान पर १४ घण्टे से लगाकर ४८ घण्टे तक सूजन की तकलीफ रहती है। पुरानी बीमारियों में यदि १० ग्रेन की मात्रा में दिन में दो बार ये उपक्षार १० दिन तक दिये जायँ तो संक्रामक कीटाणुओं को नष्ट कर देते हैं। कई हठीले मामलों में १५-२० दिन तक भी इनका उपयोग किया जाता है।

इण्डियन मेडिकल गजट में सन् १९३० में कर्नल चोपड़ा ने यह मत प्रगट किया कि इन सब उपक्षारों को जांचने से हमें यह अनुभव हुआ है कि स्नायु में एक ग्रेन की मात्रा में अगर इसका इञ्जेक्शन दिया जाय तो अँतड़ियों की कार्यशक्ति में यह तुरन्त ही अपना असर दिखलाता है। सर्वप्रथम इसका असर वमन से शुरू होता है। हम आशा करते थे कि ये उपक्षार यकृत्-सम्बन्धी पीड़ाओं में भी उतने ही गुणकारी सिद्ध होंगे, लेकिन यकृत्-प्रदाह में इन उपक्षारों की उपयोगिता सिद्ध नहीं हुई।

फरीदपुर के सिविल सर्जन टी० बसु का कथन है कि जेल अस्पताल में लगातार रक्तातिसार के १४ केसों के अन्दर इसकी छाल का काढ़ा देने से बहुत ही फायदेमन्द असर देखने में आया। इसी प्रकार और भी अनेक प्रसिद्ध डाक्टरी सर्जनों, रसायन-शास्त्रियों और वैद्यों के अभिप्रायों से मालूम होता है कि सब प्रकारों के अतिसारों पर यह एक रामबाण औषधि है।

इन्द्रजौ का अद्भुत चमत्कार—सन् १६२२ के जून मास के 'वैद्य कल्पतरु' में इन्द्रजौ के सम्बन्ध में एक नोट प्रकाशित हुआ था, वह इस प्रकार है—सेठ इस्माइल इब्राहिम नामक एक बीमार को ६५ वर्ष से रक्तातिसार, ज्वर इत्यादि की तकलीफ थी। उन्हें किसी इलाज से लाभ नहीं हुआ। वे एक दिन अनायास ही शास्त्री प्रभुलाल भाई से मिलने आये और उनसे सारा हाल कहा। तब शास्त्रीजी ने उन्हें सिर्फ दो आने की एक शीशी इद्रजौ कीदी, उसको चालू करने पर पहले ही दिन दस्त में से खून गिरना बन्द हो गया, दूसरे दिन दस्तों की संख्या कम हो गई और सात दिन खाने के बाद एक दिन अचानक पेशाब में जोर पड़कर चने के बराबर पथरी बाहर निकल पड़ी। उस दिन से फिर उन्हें कोई तकलीफ न रही।

प्रयोग और बनावटें—**कुटजाष्टक अवलेह**—कुटज की जड़ की ताजी छाल ५ सेर लेकर उसका १६ सेर जल में काढ़ा करें। जब दो सेर रह जाय तब उसे छानकर फिर आग पर चढ़ा दें। जब पानी पकते २ गाढ़ा हो जाय, तब उसमें पाढ़, सेमर का गोंद, धाय के फूल नागरमोथा, अतीस, लाजवन्ती और नरम बेलगिरी, इन सब चीजों का चार चार तोला पिसा-छना चूर्ण उसमें डालकर उसका अवलेह बना लें। इस अवलेह को ३ माशे से एक तोला तक की मात्रा में चावलों के मांड या बकरी के दूध या छाछ या शहद के साथ देने से अतिसार, संग्रहणी, रक्त-प्रदर, रक्त पित्त और खूनी बवासीर इत्यादि रोग आराम होते हैं। चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदास वैद्य इस योग को अपना परीक्षित योग बताते हैं।

कुटज पुटपाक—कीड़ों से न खाई हुई कुटज की आधापाव ताजी छाल लेकर उसे सिल पर रख चावलों के धोवन में चटनी के समान पीसकर उसका गोला बनालें। उस गोले पर जामुन के पत्ते लपेट कर उन पत्तों को डोरे से बाध दें। उसके बाद गेहूं का सना हुआ आटा उसके चारों ओर लपेट कर उस आटे पर गीली मिट्टी की दो अंगुल तह चढ़ा दें, फिर उसे सुखाकर जंगली कंडों की आग में डाल दें। जब पक कर गोला कुछ सुर्ख हो जाय (अधिक लाल न होना चाहिये) तब उसे निकाल कर ठण्डा कर उसकी मिट्टी और आटा दूर करके मोट रेजी के कपड़े में उसको रखकर जोर से उसे निचोड़ लेना चाहिये। इस रस को छः माशे से दो तोले तक की खुराक में जवान आदमी को देने से सब तरह के अतिसार शर्तिया आराम होते हैं। बाबू हरिदास वैद्य लिखते हैं कि यह पुटपाक हमारी अनेकों बार की आजमाई हुई है। यह कभी व्यर्थ नहीं जाती। यह अतिसार के सौ में से नब्बे रोगियों को आराम करती है।

कुटजादि घृत—इन्द्रजौ, कुड़े की छाल, नागकेशर, नीलकमल, लोध और धाय के फूल, इन सब चीजों की दो २ रुपये भर लेकर सबको सिल पर पानी के साथ महीन पीसकर गोला बनाकर, उस गोले को एक कढ़ाई में रखकर उसमें पाव भर घी और एक सेर कुड़े की छाल का औटाया हुआ जल डालकर मन्दाग्नि पर चढ़ा दो। जब काढ़ा जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान लो। इस घी को बलाबल के अनुसार छः माशे से दो तोले तक की मात्रा में लेने से खूनी बवासीर में बड़ा लाभ होता है।

कुटजारिष्ट—कुड़े की अन्तर्छाल ४०० तोला, द्राक्षा २०० तोला, महुए ४० तोला, गम्भारी की छाल ४० तोला, लेकर उसको जौकुट करके १ मन ११ सेर पानी में औटाना चाहिये। जब १२॥ सेर पानी शेष रह जाय तब उतार कर, छानकर उसमें ५ सेर गुड़ और १ सेर धावड़ी के फूलों का चूर्ण डालकर अच्छी तरह से मिलाकर एक चीनी मिट्टी की बरनी में भरकर उसका मुँह बन्द करके उसको पड़ी रखना चाहिये। उसके बाद उसको छान-कर उपयोग में लेना चाहिये।

प्रतिदिन सबेरे, दोपहर और शाम को एक रूपये भर यह आसव चार २ रुपये भर पानी के साथ मिलाकर लेने से पुरानी संग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर और रक्तातिसार में बहुत लाभ होता है।

इन्द्रजौ मीठा

नाम—संस्कृत—श्वेतकुटज, मधुइन्द्रयव, । हिन्दी—मीठा इन्द्रजौ, । मराठी—गोदा इन्द्रजौ, कालाकुदी। गुजराती—कालीकरी। अरबी—लसनुलासाफिर। फारसी—अहरेशिरिन, इन्द्रजौ। तेलगू—अमकुदु, पल्लुमिलि। तामिल—नीलपलाई, वेपाली। लेटिन—Wrightia Tinctoria (राइटिया टिंक्टोरिया।

वर्णन—इसका वानस्पतिक वर्णन कड़वे इन्द्रजौ से मिलता-जुलता है।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मत से इसकी छाल और बीज बवासीर, चर्मरोग और पित्त में उपयोगी है। ये पौष्टिक तथा कामोद्दीपक औषधि के रूप में उपयोग में लिये जाते हैं। इसके शेष गुण कड़वे इन्द्रजो से ही मिलते-जुलते हैं।

केस और महेस्कर के मतानुसार इसकी छाल और इसके बीज दोनों ही रक्तातिसार में निरुपयोगी हैं।

इन्द्रायन

नाम—संस्कृत—आत्मरक्ष, बृहद्‌वारुणि, बृहत्फल, चित्रल, चित्रफल, चित्रावली, देवि, दीर्घवल्ली, हस्तिदांत, कपिलाक्षी, कटुरस, काया, कुम्भाषि, महाफल, महेन्द्रवारुणी इत्यादि। गुजराती—इन्द्र वारुणी, इन्द्रानन, इन्दरक। मराठी—इन्द्रावण, इन्द्रफल, इन्द्रायण। हिन्दी—इन्द्रायण, मकल, घोरुम्ब। बंगाली—इन्द्रायन, माखल। उर्दू—इन्द्रायण। अरबी—हबजल, हमजक, दुमजिक। फारसी—काबिश्तेतल्ख। तामील—पेयकुमुटि। तेलगू—वेरिपुत्स। कनारी—तुमतिकाइ। लेटिन—Citrullus Colocynthis (सायट्रूलस कोलोसिंथिस)

वर्णन—इन्द्रायन के सम्बन्ध में वैद्य लोगों में तथा प्राचीन ग्रन्थों में कुछ मतांतर सा दिखलाई पड़ता है। कई लोग Cucumis Trigonus (क्यूक्यूमिस ट्रिगोनस) नामक वनस्पति को जिसे हिन्दी में विषलोम्बी या जंगली इन्द्रायण कहते हैं, उसी को बड़ा इन्द्रायण समझ कर काम में लेते हैं। काठियावाड़ के कई वैद्य महाफला की जगह छोटे फल वाली इन्द्रायण को काम में लेते है। मगर वास्तव में इन्द्रायण की बेल उससे लम्बी होती है और उसमें तरबूज के पत्तों के समान पत्ते लगते हैं। इस बेल पर नर और मादा दो प्रकार के फूल लगते हैं। इसके फल गोलाई में दो से तीन इन्च तक व्यास में होते हैं और उनका रंग पहले हरा और फिर पीला तथा सफेद रंग की धारियोंवाला होता है। इसके बीज भूरे, चिकने, चमकदार, लम्बे, गोल और चपटे होते हैं। इस बेल का पंचांग ही कड़वा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इन्द्रायण कड़वी, चरपरी, शीतल रेचक तथा गुल्म, पित्त उदररोग, कफ, कृमि, कोढ़ और ज्वर को दूर करनेवाली है। यह अर्बुद (सांघातिक फोड़ा), जलोदर, कफ, धवलरोग, व्रण, श्वास, खाँसी, मूत्रसम्बन्धी व्याधियां, पीलिया, तिल्ली, क्षयरोगजन्य कण्ठमाला, मन्दाग्नि, कब्जियत, रक्ताल्पता और श्लीपद में लाभदायक है। इसकी जड़ सीने की जलन और जोड़ों के दर्द में मुफीद है। चक्षुरोग और गर्भाशय के रोगों में भी यह लाभ पहुँचाती है तथा गर्भस्थ बालक को असमय में बाहर आने से रोकती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह तीसरे दर्जे में गर्म और दूसरे दर्जे में रूक्ष है। इसके बीज और छिलके ग्रहण नहीं करने चाहिये, क्योंकि ये अत्यन्त मरोड़ी पैदा करके मृत्यु के कारण होते हैं। अधिक मात्रा में यह आमाशय को हानि पहुचानेवाला और मरोड़ तथा पेचिश उत्पन्न करनेवाला है। इसके पत्ते आंतों को हानिकर हैं। इसके दर्प को नाश करनेवाला बबूल का गोंद है। इस औषधि की मात्रा १॥ माशे से ३ माशे तक की है।

इन्द्रायण का गूदा सूजन को उतारनेवाला, वायु को नष्ट करनेवाला और स्नायु-मण्डल-सम्बन्धी बीमारियों जैसे लकवा, फालिज, आधाशीशी, मृगी, विस्मृति इत्यादि रोगों के लिये उपयोगी है। यह मस्तिष्क के विकारों को शुद्ध करता है। इससे सिद्ध किया हुआ तेल कान में टपकाने से कर्णशूल नष्ट होता है।

कर्नल चोपरा का इस औषधि के सम्बन्ध में कथन है कि 'आयुर्वेद में यह पुरानी औषधि है। इसका फल विरेचक गुणवाला बतलाया जाता है। यह पित्त, कब्जियत, ज्वर और अँतड़ियों के कीड़ों में लाभकारी है। इसकी जड़ जलोदर, पीलिया, मूत्र की बीमारी और आमवात में उपयोगी है। यूनानी हकीम इस वस्तु को जलोदर, पीलिया, नष्टार्तव और गर्भाशय की तकलीफों में बहुत ज्यादा उपयोग में लेते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—भारत और यूरोप की दोनों वनस्पतियों के रासायनिक तत्त्वों में कुछ भी अन्तर नहीं पाया जाता है। इन दोनों में अलकालॉइड (उपक्षार) और कोलोसिन्थिन (Colocynthine) नामक कटु-पदार्थ पाये जाते हैं। इसके अंदर उपक्षार बहुत कम मात्रा में पाये जाते हैं। और वे शुद्ध हालत में अलग निकाले भी नहीं जा सकते। ट्रापिकल मेडिसिन स्कूल कलकत्ता के रासायनिक विभागों में भारत के अंदर पैदा हुए इंद्रायण

की जांच की गई और परिणाम इस प्रकार प्राप्त हुआ। पेट्रोलियम ईथर एक्स्ट्रेक्ट इसके गूदा में '६१ प्रतिशत और सारे सूखे हुए फल में १'३६ पाया गया। सलफ्यूरिक ईथर एक्स्ट्रेक्ट गूदा में ३'१७ प्रतिशत और सूखे हुए फल में २'०४ प्रतिशत पाया गया और एलकोहेलिक एक्स्ट्रेक्ट गूदा में १०'६० प्रतिशत और सारे सूखे फल में १२'१५ प्रतिशत पाया गया।

यह औषधि तेज विरेचक के रूप में काम में ली जाती है और बहुत-सी विरेचक गोलियां इसके सम्मेलन से बनाई जाती हैं।

के० एल० दे के मतानुसार इसमें पाया जाने वाला प्रधान तत्व कोलोसिंथिन नामक ग्लुकोसाइड है। इसका स्वाद कड़वा है, थोड़ी मात्रा में यह कटु-पौष्टिक है। साधारण मात्रा में यह अंतड़ियों की ग्रंथियों को उत्तेजना देता है और पतले दस्त लाता है। अधिक मात्रा में यह तेज विरेचक का काम करता है और आंतों में दर्द पैदा करता है। गर्भवती स्त्री को यदि यह दिया जाय तो गर्भपात का डर रहता है।

मटेरिया मेडिका ऑफ् वेस्टर्न इण्डिया के लेखक डाक्टर डायमाक का कथन है कि स्नायु मण्डल की कमजोरी से होनेवाली कब्जियत, जलोदर, पीलिया, कृमि, उदरशूल व श्लीपद में इस औषधि का उपयोग होता है। मखजन के लेखक ने इसके उपयोग करने की एक विचित्र विधि बतलाई है। वह इस प्रकार है। इन्द्रायन का एक फल लेकर एक तरफ से उसकी डिग्री निकालकर उसमें कालीमिर्च भरकर पीछे बन्द करके कपड़-मिट्टी करके कुछ दिनों तक चूल्हे के पास की गरम राख में पड़ा रहने देना चाहिये। उसके बाद उन मिर्चों को निकालकर, सुखाकर, उनका चूर्ण करके देने से दीपन, पाचन और रेचन होता है।

ब्रिटिश मटेरिया मेडिका के मतानुसार इन्द्रायण अतिशय रेचक, प्रवाही, मल लाने वाली तथा शीघ्र जुलाब है। इसलिये यह हमेशा रहनेवाली सख्त कब्जियत में, बुखार में, जलोदर में, ऋतुस्राव और गर्भस्राव के दर्द में तथा पेट और कामले की बीमारियों में बहुत उत्तम असर बतलाती है।

इस औषधि का विरेचन उन मनुष्यों के लिये अधिक उपयोगी है, जिनकी प्रकृति सुदृढ़ और सबल हो, जिनका शरीर स्थूल हो। गर्भवती स्त्रियों, कमजोर मनुष्यों, बालकों तथा अतिसार, प्रवाहिका के रोगियों को इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसके सिवाय इस औषधि को अकेली भी सेवन नहीं करना चाहिये। बल्कि बबूल का गोंद, कतीरा इत्यादि इसके दर्प को नाश करने वाली औषधियों के साथ इस औषधि का सेवन करना चाहिये। इसका बहुत महीन चूर्ण बनाकर उपयोग करना चाहिये। चूर्ण दरदरा रहने से यह मरोड़, पेचिश पैदाकर आंतों को काट डालता है।

मटेरिया मेडिका ऑफ् थेरोप्यूटिक्स के लेखक डाक्टर विलियम व्हिटला लिखते हैं कि कोलोसिंथ (इन्द्रायण) एक उत्कृष्ट तेज विरेचन और पतले दस्त लाने वाली औषधि है पर इससे मरोड़ पैदा होती है। इसलिये इसका अकेले कभी व्यवहार नहीं होना चाहिये। बल्कि एलुआ (Aloes) और पारे (Mercury) के साथ मिश्रित कर देने से यकृत की विकृति और पुरानी कब्जियत में बहुत लाभ होता है। इससे पानी की तरह दस्त आते हैं। इसलिये कभी २ जलोदर, उदर शोथ और मस्तिष्क के अन्दर रक्त-संचय होने की बीमारी (Cerebral Congestion) में इसका प्रयोग किया जाता है। मगर इन बीमारियों में Scammony और Elaterium इसकी अपेक्षा अधिक प्रभावशाली औषधियां हैं। खुरासानी अजवायन का सत्त्व और बेलाडोना कोलोसिंथ के द्वारा पैदा हुई मरोड़ी और शूल को बिना उसके विरेचक गुण को हानि पहुँचाये शांत करता है। इसलिये पुरानी कब्जियत में आवश्यकता पड़ने पर इन तीनों औषधियों को सम्मिलित गोली (Compound Pill) देने से निरुपद्रव विरेचन होता है।

उपयोग—**स्तन शोथ**—इसकी जड़ का लेप करने से या उसकी पुल्टिस बांधने से स्त्रियों का स्तनपाक दूर होता है।

मूत्ररोग—जब गुर्दे के अन्दर मूत्र का बनना बंद हो जाता है अथवा मूत्र रुक जाता है, तब इन्द्रायण के गूदे में रेवन्दचीनी मिलाकर देने से लाभ होता है।

डिब्बा रोग—इसकी जड़ के एक माशे चूर्ण में दो रत्ती सेंधा नमक मिलाकर गरम जल के साथ देने से बच्चों के डिब्बा रोग में लाभ होता है।

आफरा—इन्द्रायण की गिरी और एलवे को पीसकर गरम पानीके साथ लेने से आफरा मिटता है।

प्रसव कष्ट—इसकी जड को पीसकर गाय के घी में मिलाकर योनि पर लेप करने से बचा तुरन्त सुख से पैदा होता है।

उपदंश—इसकी जड़ के टुकड़ों को पांचगुने पानी में औटकर, जब तीन भाग पानी रह जाय तब उसको छानकर, उसमें बूरा डालकर, फिर चढ़ा कर शर्बत बना लेना चाहिये। इस शर्बत को बलाबल के अनुसार उचित मात्रा में देने से उपदंश और वात-पीड़ा में लाभ होता है।

सूजन—इसकी जड़ को सिरके में पीसकर सूजन पर लेप करने से सूजन मिटती है।

दांतों के कीड़े—इसके पके हुए फल की धूनी देने से दांतों के कीड़े मर जाते हैं।

संधिवात—इन्द्रायण की जड़ १ तोला, पीपर १ तोला और गुड़ ४ तोला, इन सबको मिलाकर छः माशे से एक तोला तक की मात्रा में रोज लेने से संधिवात में लाभ होता है।

योनिशूल—इन्द्रायण की जड़ को गाय के दूध के साथ कई दिनों तक सेवन करने से और इसके बीजों का तेल सर में लगाने से बाल काले हो जाते हैं।

कंठमाला—कंठमाला में इसकी जड़ का गो मूत्र के साथ उपयोग करने से लाभ होता है।

आँख का रोयाँ—आँखों की पलक के भीतरी बाजू में एक ऐसा बाल उत्पन्न होता है जो आँख के अन्दर तकलीफ पहुँचाता रहता है, इससे आँख से हमेशा आँसू बहा करते हैं। इस दर्द को मिटाने के लिये इन्दायण एक अद्भुत औषधि है। इसका उपयोग करने की विधि इस प्रकार है—इन्द्रायन का एक फल लेकर एक तरफ से उसकी डिगरी अलग कर उसमें २ तोला काले सुरमे का टुकड़ा रखकर डिगरी को पीछे बन्द करके धूप में रख देना चाहिये जब वह फल सूख जाय, तब सुरमे को निकाल कर दूसरे फल में रखकर उसे भी सुखा लेना चाहिये। इस प्रकार तीन फल में उस सुरमे को रख-रख सुखाने के पश्चात् फिर उसे निकाल कर बारीक पीसकर पलकों के भीतरी रोयें को निकालकर, उस सुरमे को आँजना प्रारम्भ करना चाहिये। इससे वह बाल फिर पैदा नहीं होगा। (जंगलनी जड़ी-बूटी)

इन्द्रायणादि चूर्ण—अजवायन १० तोला, माँढी आँवले के पत्ते ८ तोला, निशोथ की जड़ की छाल २ तोला, हरड़ १ तोला, आँवला १ तोला, बहेड़ा १ तोला, सूँठ १ तोला, मिर्च १ तोला, पीपर १ तोला, रेवन्दचीनी का सत १ तोला, एलुवा १ तोला, चित्रक की जड़ १ तोला, अकलकरा १ तोला, मेदा लकड़ी १ तोला, आंबाहल्दी १ तोला, सज्जीखार १ तोला, फुलाई हुई फिटकरी १ तोला, लवंग १ तोला, जायफल १ तोला, संचर नमक १ तोला, सेंधा नमक १ तोला, विड नमक १ तोला, सांभर नमक १ तोला, भोरिंगणी की जड़ १ तोला, पीपलामूल १ तोला, कालीजीरी १ तोला, राई १ तोला, स्याह जीरा १ तोला, सुहागा १ तोला, मोथा १ तोला, इन सब औषधियों को लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। फिर इन्द्रायन के १०—११ फल लेकर उनमें डिगरियाँ लगाकर उन फलों में उस चूर्ण को भर कर पीछे डिगरियें बन्द कर कपड़-मिट्टी करके उपले कंडों की आग में डाल देना चाहिये। जब फलों के ऊपर की मिट्टी पककर लाल हो जाय तब उनको निकालकर उनकी कपड़-मिट्टी दूर कर फलों के अन्दर भरे हुए चूर्ण को और फलों के गर्भ को छाया में सुखाकर पीस लेना चाहिये। इस चूर्ण को प्रति दिन सबेरे-शाम ३ माशे से ६ माशे की खुराक में १ तोला अरंडी के तेल के साथ मिलाकर आधापाव गाय के दूध में डालकर पीने से अण्डवृद्धि का रोग दूर होता है। इसी मात्रा में इस चूर्ण को ५ तोला गो-मूत्र के साथ पीने से जलोदर के रोग में लाभ होता है। इसी चूर्ण को १ तोला घीग्वार के गूदे के साथ मिलाकर खाने से कलेजे की गांठ, तिल्ली और कामला रोग दूर होते हैं तथा बेर की जड़ के काढ़े के साथ लेने से वायुगोला दूर होता है। इसी प्रकार भिन्न २ अनुपानों के साथ यह औषधि भिन्न २ रोगों में काम करती है।

इन्द्रायन छोटी

यह इन्द्रायन की एक छोटी जाति होती है, जिसको लैटिन में Cucumis Trigonus (क्यूक्यूमिश ट्रिगोनस) हिन्दी में बिसलोम्बि तथा जंगली इन्द्रायन और संस्कृत में बहुफल, चित्रफल, इत्यादि नामो से पहचानते हैं।

इसका हरा फल कड़वा और कुछ तूरा होता है। यह अग्निवर्द्धक स्वाद को सुधारनेवाली और कफ पित्त को ठीक करने वाली है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह सर्पदंश में उपयोगी है। इसमें कोलोसिंथ से मिलते-जुलते कटु तत्व रहते हैं।

केस और महेस्कर के मतानुार यह सर्पदंश में निरुपयोगी है।

इंद्रायन लाल

नाम—संस्कृत—श्वेतपुष्पी, मृगाची, महाकाल, इत्यादि। हिन्दी—लालइन्द्रायन, इन्द्रायण, महाकाल। गुजराती—लालइन्द्रवारुणी। बंगाली—माकाल। टेलगू—अबदुत। तामील—कोटंइ। अरबी—हंजले अहमर। फारसी—हंजले सुर्ख। उर्दू—इन्द्रायन। लैटिन—Trichosanthes palmata (ट्रिकोसेंथस पालमेट)।

वर्णन—लाल इन्द्रायन की बेलें बहुत लम्बी बढ़ती हैं। ये बड़े ऊँचे २ झाड़ों पर चढ़ जाती हैं। इनके पत्ते २ से ६ इञ्च व्यास के और त्रिकोण से सप्तकोण तक होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के तथा नर और मादा दो तरह के होते हैं। इसके फल गोल नारंगी के समान होते हैं और पकने पर लाल हो जाते हैं। फलों पर नारंगी रंग की १० धारियाँ होती हैं। इसका गूदा कालापन लिये हुए हरे रंग का होता है और उसमें बहुत से बीज रहते हैं। इसकी जड़ जमीन में बहुत गहरी बैठती है और उसमें एक के नीचे एक ऐसी कई गांठें होती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत——आयुर्वेदिक मत से इसका फल श्वास, कर्णरोग और पीनस में उपयोगी है। यह कण्ठरोग, अपच, श्वास, कास, प्लीहा, उदररोग और मूढगर्भ को निवारण करनेवाला और कुष्ठ एवम् दुष्टव्रण को जीतनेवाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल कड़वा, पेट के आफरे को दूर करनेवाला, विरेचक और गर्भस्रावक है। आधाशीशी, मस्तिष्क की गरमी, नेत्ररोग, कुष्ठरोग, मृगी और आमवात में भी यह मुफीद है। इसके कुल्ले करने से दाँत की पीड़ा में लाभ होता है। इसके बीज वमनकारक और विरेचक हैं।

बम्बई में इसके फल का धुवां श्वास के रोगियों को पिलाया जाता है। इस धुएँ से गले में जमा हुआ कफ ढीला होकर निकल जाता है। फुफ्फुस की सूजन में इसकी जड़ की छाल का काढ़ा बीस गुने पानी में बनाकर देते हैं। इसकी जड़ और बड़ी इन्द्रायण की जड़ को बराबर की मात्रा में लेकर एक लेप तैयार किया जाता है, जो सांघातिक फोड़ों (दुष्ट विद्रधि) पर लगाने के काम में आता है। त्रिफला और हलदी के साथ तैयार किया हुआ इसका शीतल क्वाथ सुजाक में मुफीद माना जाता है।

कोमान के मतानुसार इस वनस्पति का फल बहुत तेज विरेचक है। इसको नारियल के तेल के साथ उबालकर एक तेल तैयार किया जाता है। यह तेल आधा शीशी, पीनश, कर्णशूल और अर्धाङ्गशूल में लाभजनक होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि श्वास और फुफ्फुस के रोगों में मुफीद है। इसमें 'ट्रिकोसेन्थीन' नामक एक कटु तत्व पाया जाता है, जो 'कोलोसिंथ' के तुल्य ही होता है।

'इण्डियन प्लांट्स एण्ड ड्रग्स' के रचयिता का कथन है कि इसके फलों के रस या जड़ की छाल के काढ़े के साथ तेल को पकाकर उस तेल को छानकर उपयोग में लेने से आधाशीशी और शिरःशूल के प्राचीन रोग नष्ट होते हैं। कान में टपकाने से कर्णस्राव भी बन्द होता है।

प्लेग और लाल इन्द्रायण—प्लेग के ऊपर भी इसकी जड़ के नीचे निकलनेवाली गांठ बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। इसका उपयोग करने की रीति इस प्रकार है। इसकी जड़ के नीचे, एक के नीचे एक, ऐसी कई गाँठें निकलती हैं। उन गांठों में सबसे नीचेवाली या सांतवें नम्बर की गांठ को लाकर उसे ठण्डे पानी में घिसकर, प्लेग की गांठ पर दिन में दो-बार लगाना चाहिये और डेढ़ माशे से तीन माशे तक की खुराक में उसे पिलाना भी चाहिए। इस प्रयोग से गाँठ एकदम बैठने लगती है, बुखार भी हलका पड़ने लगता है और दस्त की राह से प्लेग का जहर निकल जाता है तथा बीमार को चैतन्य आने लगता है।

जंगलनी जड़ी-बूटी नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता वैद्य-शास्त्री शामलदास लिखते हैं कि हमारे एक परिचित सद्गृहस्थ जो लोगों की जिन्दगी प्लेग से बचाने के लिये डाक्टरों को हजारों रुपये खिला देने पर भी निष्फल हुये थे, उन्हें अचानक एक जंगली मनुष्य से यह योग हाथ लग गया और इसीसे वे सैकड़ों मनुष्यों को प्लेग के पंजे से मुक्त करने में समर्थ हुए हैं।

उपर्युक्त लेखक यह भी लिखते हैं कि अकेली लाल इन्द्रायन की गांठ का लेप करने के बदले अगर इस गांठ के साथ संखिया, जहरी कुचले की जड़, कालीजीरी, लोध और हरड़, ये वस्तुएँ समान भाग में मिलाकर गोमूत्र में पीसकर प्लेग की गांठ पर लेप किया जाय तो विशेष हितकर होता है।

अन्य उपयोग—कान का दुष्ट व्रण—इसके फल को पीसकर नारियल के तेल के साथ गरम करके कान के भीतर लगाने से कान का दुष्ट व्रण साफ होकर भर जाता है।

नाक का फोड़ा—सर्दी, गर्मी से नाक में फोड़े होते हैं और जिनमें से सड़ा हुआ पीब निकलता है, उनमें भी यह तेल लगाने से लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र—लाल इन्द्रायण की जड़, हलदी, हरड़ की छाल, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक बराबर लेकर जौ-कुटकर इनका काढ़ा बनाकर शहद के साथ पीने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

दमा—इसके फल को चिलम में रखकर पीने से दमे में लाभ होता है।

इपिकेकोना

नाम—लेटिन—Psychotria Ipecacuanha

वर्णन—इपिकेकोना एक मशहूर वनस्पति है जो कि संसार के कई देशों में चिकित्सा-प्रणाली के अन्तर्गत उपयोग में ली जाती है। यह साइकोट्रिया इपिकेकोना नामक वृक्ष की जड़ है। यह वृक्ष दक्षिण अमरीका के ब्राझील प्रान्त में पैदा होता है। रिओडिझेनेरियो नामक बन्दरगाह से सारे संसार को इसकी जड़ें भेजी जाती हैं।

इपिकेकोना वृक्ष की जड़ें बड़ी नाजुक और वेलनाकार होती हैं, इसकी छाल मोटी होती है, जिस पर बाकायदा रेखाएँ तथा गाठें सरीखी पड़ी हुई रहती हैं, इसका रङ्ग लाल और भूरा होता है। इसको तोड़ने से यह मोम के पदार्थ की तरह टूटती है। इसकी छाल और इसकी मोटी जड़ें ही वास्तव में व्यापार और उपचार की वस्तुएँ हैं।

भारतवर्ष के अन्दर इस औषधि के वृक्ष पैदा नहीं होते। मगर कुछ वनस्पतियाँ यहाँ पर ऐसी पैदा होती हैं, जो गुण और धर्म में बिल्कुल इसके ही समान हैं। उनमें अन्तमूल, पित्तल और आँकड़े की जड़ की छाल विशेष रूप से इपिकाक के समान गुण धर्म रखनेवाली होती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—भारतवर्ष के अन्तर्गत इपिकोना एक बहुत महत्त्व की वस्तु सिद्ध हुई है। क्योंकि यह एमेबिक अतिसार की जगत् प्रसिद्ध औषधि है और यहाँ पर एमेबिक डिसेंट्री (एमोयबी नामक एक प्रकार के कृमि से होने वाला अतिसार) का रोग अधिक मात्रा में फैला हुआ रहता है। कलकत्ता स्कूल ऑफ् ट्रापिकल मेडिसिन एण्ड हायजिन के प्रोटोजूलॉजी डिपार्टमेंट में बहुत से लोगों के मल का परीक्षण किया गया और उसका परिणाम यह निकला कि १४ सैकड़ा रोगी एमेबिक अतिसार के पाये गये। इससे इस वनस्पति का महत्त्व भली प्रकार जाना जा सकता है। यह वनस्पति भारतवर्ष में नहीं बोई जाती है। इस कारण इसकी और इसके एमेटिन एलकालाइड्स की मात्रा प्रतिवर्ष दूसरे देशों से मँगाई जाती है।

कर्नल चोपड़ा लिखते हैं कि इस वृक्ष को अच्छी मात्रा में भारतवर्ष में पैदा किया जा सकता है। गवर्नमेंट आफ् इण्डिया ने इसके गुणों को महसूस कर सन् १९१६-१७ में नीलगिरी और दार्जिलिंग के पास इसे बोया और फिर बर्मा में भी इसकी खेती प्रारम्भ की। इसके पौधे बहुत अच्छे परवरिश हुए। १६१०-२२ की रिपार्ट से इसका बहुत आशाजनक भविष्य दिखलाई देने लगा। मगर टेम्परेचर के शीघ्रता से बढ़ने और घटने का इस वनस्पति पर बहुत खराब असर होता है और कई खराबियाँ पैदा हो जाती हैं। जहाँतक इस विषय में उचित इन्तजाम न हो, वहाँतक इसके बिगड़ने की सम्भावना ही अधिक है। इन कठिनाइयों के बावजूद भी दार्जिलिंग के समीप मम्पू नामक स्थान पर इस वनस्पति की अच्छी परवरिस हो रही है। और ज्ञात हुआ है कि अकेले मम्पू में ही इसके २२६४९६ पौधे मौजूद हैं। बर्मा में भी सिंकोना की खेती के साथ इसके ६८८५२ पौधे परवरिश हुए हैं।

इसकी जड़ के गुण और उसमें पाये जाने वाले एमेटिन और एलकोलाइड्स भी सन्तोषजनक हैं—जैसा कि नीचे लिखे अंकों से ज्ञात होता है—

इपिकेकोना	टोटल उपचार प्रतिशत	एमेटिन प्र०श०
ब्राझील की जड़	२.७	१.३५
ब्राझील का प्रकाण्ड	१.८०	१.१८
कोलम्बिया की जड़	२.२०	०.८६
हिन्दुस्तानी पौधे की जड़	१.६८	१.३९

ऊपर लिखे अंकों से स्पष्ट मालूम होता है कि भारत में पैदा हुई इपीकेकोना की जड़ में ब्रांझील के एपिकेकोना की जड़ से एमीटाइन की मात्रा अधिक है। अगर भारत में इसकी खेती पर ध्यान दिया जाय तो इसमें अच्छी सफलता प्राप्त हो सकती है।

इमली

नाम—संस्कृत—अम्लिका, अम्ली, अत्यम्ला, भुक्ता, चरित्रा, चिञ्चा, चिञ्चिका, चुक्रा, दन्तशठा, गुरुपत्रा, सर्वाम्ला, तिन्तिडिका, यमदूतिका। हिन्दी—इमली। बंगाली—तेंतलू। मराठी—चिंच। गुजराती—आम्बली। तेलंगी—चितचेट्टू। तामील—पुलि। फारसी—खुर्मायेहिन्दी, तमरे हिन्दी। लैटिन—Tamarindus Indicus (टेमरिन्डस इन्डिकस)

वर्णन—इमली के वृक्ष प्रायः सब ओर होते हैं और सब लोग इनको जानते हैं। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कच्ची इमली भारी, वातनाशक, पित्त-जनक, कफकारक और रक्त को दूषित करने वाली है। पक्की इमली-दीपन, रूखी, किंचित् दस्तावर और गरमी, कफ तथा वात को नाश करने वाली है।

इमली का वृक्ष भारी, गरम, खट्टा, पित्तजनक, कफ पैदा करने वाला, रक्त को दूषित करने वाला और वातविनाशक है। इसके फूल कसैले, स्वादिष्ट, खट्टे, रुचिकारक, अग्निदीपक, हलके तथा वात, कफ और प्रमेह को नाश करने वाले हैं। इसके पत्ते सूजन और रक्तविकार को दूर करने वाले हैं। कच्ची इमली-खट्टी, अग्निदीपक, मलरोधक, गरम तथा रक्त-पित्त और रक्त को कुपित करने वाली है। पकी हुई इमली मधुर, सारक, खट्टी, हृदय को बल देने वाली, दीपन, रुचिकर, वस्तिशोधक और कृमि नाश करने वाली है। इसका रस मधुर, मीठा, खट्टा, रुचिकारक, व्रणविनाशक तथा सूजन और पक्तिशूल को नष्ट करने वाला है।

इस वृक्ष की छाल पक्ष घात रोग में उपयोगी है। चेतनहीन अंगों पर इसे लगाने के काम में लेते हैं। इसकी छाल की राख सुजाक और मूत्रसम्बन्धी बीमारियों में देने के काम में ली जाती है। इसके पत्ते कर्णरोग, नेत्ररोग, सर्पदंश और बड़ी माता के अन्दर उपयोग में लिये जाते हैं। इसका कचा फल आँतों के लिये संकोचक, वातनिवारक और रक्त को दूषित करने वाला है। इसका पका फल घावों को तथा हड्डी की मोच को दूर करने वाला है। इसके बीज फोड़े, फुंसी और प्रसवद्वार-सम्बन्धी तकलीफों के लिये लाभदायक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में शीतल और रूक्ष है। यह स्वरयन्त्र, प्लीहा, और खाँसी तथा जुकाम में हानिकारक है। इसका प्रतिनिधि आलूबुखारा तथा दर्प को नाश करने वाला वनफशा और उन्नाब है।

मखजनूल अदविया के मतानुसार यह हृदय को बल देने वाली, साफ दस्त लाने वाली, पित्त की वमन को रोकनेवाली तथा मृदु-रेचन के द्वारा शरीर को शुद्ध करने वाली है। गले के घाव में इमली के पानी से कुल्ले करने से बड़ा लाभ होता है। आंख के रोगों पर इसके फूलों का पुल्टिस बांधने से लाभ होता है। खूनी बवासीर के अन्दर भी इसके फूलों का रस लाभदायक है। इसके बीजों को उबाल कर विस्फोटक के समान फोड़ों पर पुल्टिस बांधने से लाभ होता है।

एक यूनानी लेखक के मत से यह हृदय और आमाशय को बल देने वाली, मूर्च्छा को दूर करने वाली, सिर-दर्द में लाभ पहुँचाने वाली और संक्रामक रोगों को दूर करने वाली है। इसके बीज संग्राही और वीर्य-स्तम्भक हैं। इसका पका फल ज्वर में शान्ति देने वाला, पेट के आफरे को दूर करने वाला और मृदु विरेचक है। शरीर की जलन में तथा नशीले पदार्थों के असर में भी यह लाभ पहुँचाता है।

मेडागास्कर में इसका हर एक हिस्सा औषधि के प्रयोग में लिया जाता है। इसकी छाल को श्वास की बीमारी में लाभदायक समझते हैं। इसके पत्तों का सत्व कृमिनाशक औषधि के रूप में काम में लिया जाता है। यह पेट की तकलीफों में भी उपयोगी है।

गायना में इसके पत्तों को पानी में उबालकर, उस उबले हुए पानी को घाव धोने के काम में लिया जाता है।

इसके सूखे पत्तों का चूर्ण खराब घावों पर लगाने के काम में लिया जाता है। इसके ताजे पत्तों की पुल्टिस सूजन और मोच के ऊपर बाँधी जाती है। इस फल का गूदा ज्वर और मन्दाग्नि में उपयोगी समझा जाता है।

कम्बोडिया में इसकी छाल अतिसार रोग में व मसूड़ों की सूजन में संकोचक औषधि की तरह काम में ली जाती है। यह पौष्टिक भी मानी जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके फल का गूदा पानी के साथ उबालकर शक्कर मिलाकर ज्वर, पेट का आफरा और कब्जियत मिटाने के काम में लिया जाता है। इसके बीज के ऊपर का लाल छिलका अतिसार, रक्तातिसार और पेचिश की उत्तम औषधि मानी जाती है। इस रोग में इसके पीसे हुए बीज ५ रत्ती, जीरा ५ रत्ती और शक्कर ५ रत्ती, इनको मिलाकर दिन में दो-तीन बार देना चाहिये। शीतादिक रोग में नीबू की अनुपस्थिति में इमली का उपयोग किया जाता है। इसके फल का पका हुआ गूदा रात-दिन की कब्जियत की बीमारी में विरेचन का काम करता है। आयुर्वेदीय-चिकित्सा में इसका बहुत सी जगह उपयोग होता है। इसके पत्तों की पुल्टिस प्रदाहिक सूजन में काम में ली जाती है।

डायमॉक के मतानुसार इमली में कुछ शक्कर, ऐसेटिक साइट्रिक, टॉरटेरिक ऐसिड्स और पोटाश का सम्मेलन रहता है। इसमें ऐसा कोई भी तत्त्व नहीं दिखलाई देता, जिसमें इसमें विरेचक गुण पाया जाय। भारतीय लोग इस वृक्ष के अम्ल निस्सरणों को स्वास्थ्य के लिये हानिकारक समझते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इमली के वृक्ष के नीचे तम्बू के कपड़े को बहुत दिन तक रखने से उसका कपड़ा सड़ जाता है। यह भी कहा जाता है कि इसके वृक्ष के नीचे दूसरे पौधे नहीं उगते। मगर ऐसा मालूम होता है कि यह नियम सर्वव्यापक नहीं है। क्योंकि हमने इस वृक्ष की छाया में चिरायता या दूसरे प्रकार के छाया-प्रेमी पौधों को परवरिश पाते देखा है।

सीलोन के अन्दर यकृत और प्लीहा में गाँठ होने की बीमारी में इमली के फूल को एक प्रकार की मिठाई बनाकर रोगी को देते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि इमली की छाया में सोने से मनुष्य का शरीर ऐंठ जाता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसकी पत्तियों के स्वरस को लाल किये हुए लोहे से छौंककर प्रवाहिका रोग में देते हैं। इसकी छालकी क्षार का पाचक रूप से आन्तरिक उपयोग होता है। इसका तरीका इस प्रकार है—इसकी छाल को सेंधे नमक के साथ एक मिट्टी के बर्तन में रखकर जला लें। जब उसकी सफेद राख हो जाय, तब उसे रख लेना चाहिये। इस राख को १ रत्ती की मात्रा में देने से अजीर्ण और उदरशूल रोग में बड़ा लाभ होता है।

डा० आर० एन० खोरी के मतानुसार पकी इमली का गूदा 'स्कर्व्ही' रोग को नष्ट करने वाला और मृदुविरेचक है। यह ज्वर, प्यास, सर्दी, गरमी और पित्त-प्रधान रोगों में व्यवहृत होता है। हमेशा की कब्जियत में इसका गूदा लाभदायक है। चोट लगने के कारण यदि किसी अंग में सूजन आ गई हो तो कच्ची इमली के पत्तों को पीसकर गरम कर सूजन पर लेप करने से लाभ होता है। इमली के बीज आमातिसार और रक्तातिसार में लाभदायक हैं।

उपयोग—आमातिसार—इसके पके हुए बीज के छिलके का चूर्ण ४ माशा, जीरा ६ माशा, मिश्री ६ माशे, इन सबको मिलाकर चूर्ण कर चार माशे की मात्रा में तीन २ घण्टे के अन्तर पर देने से पुराना आमातिसार मिटता है।

एक वर्ष के इमली के पौधे की जड़ और काली मिर्चें दोनों बराबर लेकर मट्ठे के साथ पीसकर गोलियाँ बनाकर दिन में तीन बार देने से आमातिसार मिट जाता है।

वीर्य की कमजोरी—इमली के बीजों को रात में भिगोकर सबेरे उन्हें छीलकर, पीसकर बराबर का गुड़ मिलाकर छः २ माशे की गोलियाँ बना लें। इनमें से एक २ गोली सबेरे शाम लेने से वीर्य की कमजोरी मिटकर पुरुषार्थ बढ़ता है, गरीबों के लिये यह वस्तु बहुत उपयोगी है।

लू लगना—पकी हुई इमली के गूदे को हाथ और पैरों के तलवे पर मलने से लू का असर मिटता है।

हृदय की दाह—मिश्री के साथ पकी हुई इमली का रस पिलाने से हृदय की जलन मिटती है।

कब्जियत—पन्द्रह-बीस वर्ष की पुरानी इमली का शर्बत बनाकर पिलाने से पुरानी कब्जियत मिटती है, ऐसा कहा जाता है कि पुरानी इमली पुरुषार्थ बढ़ाने के लिए अच्छी औषधि है।

शीतला—चक्रदत्त का मत है कि इमली के पत्ते और हलदी से तैयार किया हुआ ठण्डा पेय शीतला की बीमारी में बहुत मुफीद है।

बनावटें—क्षुधावर्द्धक पन्ना—इमली के फल का गूदा २॥ तोला लेकर आधा सेर पानी में मसलकर छान लिया जाय, उसके बाद उसमें १ छटांक मिश्री, ३॥। माशे दालचीनी, ३॥। माशे लौंग और ३॥। माशे इलायची मिला दी जाय। शीतादिक रोगों के बाद की कमजोरी को मिटाने में और वातसम्बन्धी शिकायतों को दूर करने में यह शर्बत बहुत अच्छा है, यह क्षुधावर्द्धक भी है।

हलका विरेचन—इमली के फल का गूदा २॥ तोला, खारक २॥ तोला और दूध पाव भर, इन तीनों को उबालकर, छानकर पीने से हलका जुलाब लगता है।

इलायची छोटी

नाम—संस्कृत—वयःस्था, तीक्ष्णगन्धा, सूक्ष्मैला, द्राविडो, मृगपर्णिका, छर्दिकारिपु, गौराङ्गी, चन्द्रबाला इत्यादि। हिन्दी—छोटी इलायची। बंगाली—छोट एलाच, गुजराती इलायची। मराठी—वेलची। गुजराती—एलची कागदी। तेलगी—एलाकु। फारसी—हैल, हाल। अरबी—काकिले सिगारा। लैटिन—Elettaria Cardamomum (इलेटेरिया कार्डेमॉमम्)

वर्णन—यह एक प्रकार का हमेशा हरा रहनेवाला पौधा होता है। इसका पौधा अदरख से मिलता जुलता होता है। इसकी ऊँचाई ४ से ८ फीट तक होती है। इसका पेड़ १० से १२ वर्ष तक रहता है। यह सामुद्रिक तर हवा में और छायादार जमीन में परवरिश पाता है। इसके फल गुच्छों में लगते हैं। छोटी इलायची के चार भेद होते हैं। एक को मलाबारी इलायची कहते हैं, दूसरी को मैसूरी इलायची, तीसरी को बेंगलोरी इलायची और चौथी की लंका की अथवा जंगली इलायची कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से छोटी इलायची के बीज शीतल, तीक्ष्ण, कड़वे और सुगन्धित होते हैं। ये पित्तजनक, मुख और मस्तक को शुद्ध करनेवाले और गर्भघातक होते हैं। ये वात, श्वास, खाँसी, बवासीर, क्षयरोग, विषविकार, वस्तिरोग, गले के रोग, सुजाक, पथरी और खुजली का नाश करनेवाले होते हैं।

भारतवर्ष के अन्दर इस वस्तु को प्राचीनकाल से ही बहुत मान प्राप्त है। यहाँ के खान-पान के अन्दर तथा उत्तम पकवानों के अन्दर सुगन्धित द्रव्य के रूप में इसका उपयोग होता आया है। इसी प्रकार आयुर्वेदिक औषधियों में चूर्ण, बटी, पाक, अवलेह इत्यादि सब चीजों के गुण और रुचिवर्द्धन की दृष्टि से यह काम में ली जाती है। सुश्रुत तथा वाग्भट के अन्दर इलायची मूत्रकृच्छ्रनाशक, बंगसेन में हृदयरोगनाशक, निघण्टुरत्नाकर में अश्मरीनाशक तथा धन्वन्तरि-निघण्टु और भावप्रकाश में श्वास, खाँसी, क्षय और बवासीर-नाशक मानी गई है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल सुगन्धित, हृदय को बल देने वाला, अग्निवर्द्धक, विरेचक, मूत्र-निस्सारक और पेट के आफरे को दूर करनेवाला है। इसके बीज सिरदर्द, कर्णवेदना, दांत की पीड़ा, यकृत और गले के रोगों में भी लाभकारी है।

यह पाचक, आमाशय तथा हृदय को शक्ति देनेवाली, अरुचि और उबाक को बन्द करनेवाली तथा अप-स्मार, मूर्च्छा और वायुजन्य सिरदर्द में लाभकारी है। इसके भुने हुए बीज संग्राही तथा गुर्दे और बस्ति की पथरी को निकालनेवाले हैं। इसका तेल रतौंधी के लिये रामबाण दवा है। आँख में इसका तेल लगाने से पुरानी से पुरानी रतौंधी नष्ट हो जाती है। इसको कान में डालने से कर्णशूल नष्ट होता है। छोटी इलायची को मस्तगी और अनार के स्वरस के साथ देने से वमन और मिचलाहट का नाश होता है। यह पाचन-शक्ति को बहुत सहायता पहुँचाती है। आमाशय के विकारों को नष्ट करती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार छोटी इलायची अग्निवर्द्धक और मूत्रनिस्सारक है। यह बिच्छू के डंक में भी काम में ली जाती है। इसमें एक प्रकार का इसेंसियल ऑइल पाया जाता है।

उपयोग—मस्तकपीड़ा-इलायची के बीजों को महीन पीसकर सूंघने से छींकें आकर मस्तकपीड़ा मिटती है।

केले का अजीर्ण—इलायची के दाने खाने से केले का अजीर्ण मिटता है।

पेशाब की जलन—इलायँची को सेंक कर मस्तगी के साथ दूध में फंकी लेने से मूत्राशय की जलन मिटती है।

हृदय रोग—इलायची के दाने और पीपला-मूल के चूर्ण को घी के साथ चटाने से कफ-जनित हृदयरोग मिटता है।

विसूचिका—इलायची के २ तोला छिलकों को आधा सेर पानी में औटाकर पावभर पानी रहने पर छान-कर पीने से विसूचिका में लाभ होता है।

पथरी—खीरे के बीज के साथ इलायची को देने से गुर्दे और वस्ति की पथरी में लाभ होता है।

नकसीर—इलायची के अर्क को डेढ़-दो माशे की खुराक में सात-आठ बार पिलाने से नकसीर बन्द होता है।

इलायची बड़ी

नाम—संस्कृत—एला, स्थूलैला, कान्ता, दिव्यगन्धा, इन्द्राणी इत्यादि। हिन्दी—बड़ी इलायची। मराठी—वेलदोडं, थोरवेला। गुजराती—मोटी एलची, एलचा। फारसी—हलेकलां। अरबी—काकलेकिवार। तेलंगी—पेद्दएलक्कुलू। लेटिन—Amomum Subulatum, (एमॉमम सुब्युलेटम)।

वर्णन—बड़ी इलायची के वृक्ष भारतवर्ष तथा नैपाल के पहाड़ों में पैदा होते हैं। इसके वृक्ष दो-तीन हाथ ऊँचे होते हैं। इसके फल तिकोने और आधे इञ्च की लम्बाई के होते हैं। इसके बीज छोटी इलायची से कुछ बड़े होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से बड़ी इलायची रक्त-पित्तनाशक, वमननिवा-रक, पथरी को दूर करने वाली, शीतल, हलकी, वातनाशक और अग्निदीपक है।

इसके बीज तेज, सुस्वादु, सुगन्धित, अग्निवर्द्धक और आक्षेपनिवारक होते हैं। कफ, वात, मन्दाग्नि, वमन, श्वास, खुजली, उदररोग, गुदाद्वार की पीड़ा, पित्तसम्बन्धी विकार इत्यादि रोगों में ये मुफीद हैं। धन्वन्तरि-निघंटु के मतानुसार बड़ी इलायची, तिक्त, हलकी, कफ, वात तथा विष एवम् व्रण का नाश करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज तीक्ष्ण और सुस्वादु हैं। ये अग्निवर्द्धक, हृदय तथा यकृत् को बल देने वाले, निद्राकारक, क्षुधावर्द्धक तथा आँतों को सिकोड़ने वाले हैं। इसके बाहर का छिलका सिरदर्द, दाँतों के रोग और मुख की सूजन में लाभ पहुँचाने वाला होता है। इसके बीजों में से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। जो सुगन्धित, अग्निवर्द्धक, दिल को प्रसन्न करने वाला और उत्तेजक होता है। इसके बीज खरबूजे के बीज और सिकजबीन के साथ देने से गुर्द की पथरी का नाश होता है। पाचन-प्रणाली और रसक्रिया के अव्यवस्थित होने पर भी इसके बीज लाभ पहुँचाते हैं। सौंफ के साथ इसका सेवन करने से पाचनशक्ति की निर्बलता मिटती है। मिश्री के साथ इसे लेने से आमाशय की जलन और गरमी मिटती है। काले नमक के साथ इसके चूर्ण को लेने से पेट का दर्द और आफरा मिटता है। इसके काढ़े से कुल्ले करने से मसूडे और दाँतों के रोग मिटते हैं।

इसके बीज स्नायुशूल में भी उपयोगी पाये गये हैं। स्नायुशूल की बीमारी में ३० ग्रेन की मात्रा में कुनेन के साथ देने से ये अच्छा लाभ पहुंचाते हैं।

अ० सर्जन गुलाम नबी का मत है कि यह विसूचिका तथा अन्य रोगों के कारण उत्पन्न हुई पेट की पीड़ा को दूर करती है। दाँतों और मसूढ़ों की पीड़ा में इसके पानी से कुल्ले किये जाते हैं। गुर्दे और मूत्रकृच्छ्र के रोगों में खरबूजे के बीजों के साथ इसके बीज मूत्रनिस्सारक औषधि के रूप में दिये जाते हैं।

पेलवरम (मद्रास) के सर्जन मेजर सी० आर० जी० पारकर लिखते हैं कि यकृत् सम्बन्धी तकलीफों में और खासकर उस समय जब कि विद्रधि का भय हो, यह औषध बड़ी उपयोगी है। इसकी मात्रा पाँच रत्ती की है।

इश्कपेंचा

नाम—संस्कृत—कामलता। हिन्दी—कामलता, चाँदरेल, अमेरिकन चमेली। बंगाली—तरुलता, कामलता। मराठी—विष्णुक्रान्ता। अरबी, फारसी—इश्कपेंचा, आशिकुश्शजर, लवलाबसगीर। लेटिन—Ipomoea Quamoclit (इपोमोइआ क्वामोक्लिट)

वर्णन—यह एक प्रकार की नाजुक वनस्पति है। इसकी पत्तियां सूत की तरह बारीक होती हैं। फूल आने

की अवस्था में इसकी बेल बहुत ही सुन्दर होती है। इस पर रंग-रंगीले पुष्प आते हैं। जिस वृक्ष पर यह चढ़ती है, उसका रस चूसकर उसे सुखा देती है। इसका फल गोल और फिसलना होता है। यह वनस्पति अमेरिका में पैदा होती है, परन्तु भारतवर्ष के बगीचों में भी यह बहुत लगाई जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—हिन्दू लोग इसे शीतल बतलाते हैं। इसके पीसे हुए पत्ते खूनी बवासीर पर लगाये जाते हैं और इसके रस को गरम घी के साथ पकाकर बवासीर को दूर को करने के लिये पिलाते हैं। बम्बई में इसके पत्ते सिर के सांघातिक फोड़ों में लेप के रूप में लगाये जाते हैं।

इसका एक भेद और है जिसको लेटिन में Quamoclit Vulgaris (क्वामोक्लिट व्हलगेरिस) कहते हैं। इसके पत्ते भी संकोचक और रक्तार्श में उपयोगी हैं। ये साँघातिक फोड़ों में, वमन में और रक्तातिसार में लाभदायक हैं। गर्भवती स्त्री के गर्भाशय को दृढ़ करने में ये सहायता देते हैं।

इश्रास

वर्णन—यह एक वनस्पति की जड़ है। इस वनस्पति के फूल ललाई लिये हुए सफेद, फल गोल और कुछ कड़वे होते हैं। इसका शाक बनाकर भी खाया जाता है। इसके पत्ते प्याज के पत्तों की तरह होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—इसके पीने से पार्श्वशूल आराम होता है। यह पित्तजनित कामला और गले की खुश्की को दूर करता है। इसकी राख मूत्र और आर्तव प्रवर्तक और कफ की सूजन को मिटानेवाली है। सिरके साथ इसे लगाने से सिर की गंज, दाद, अण्डवृद्धि, फोड़े, फुन्सी और शोथ में लाभ पहुँचाती है। यह टूटी हुई हड्डी को भी जोड़ने में लाभकारी साबित हुई है। (आयुर्वेदीय कोष)

इस्पन्द (हरमाल)

नाम—हिन्दी—इस्पन्द लाहौरी, हरमाल। मराठी—हरमाल। गुजराती—इस्पन्द। उर्दू—इस्पन्द। बंगाली—इस्पन्द। लेटिन—Peganum Harmala (पेगानुम हरमाल)

वर्णन—यह औषधि विहार, संयुक्तप्रान्त, डेकन, कोकण, सिन्ध, बिलोचिस्तान इत्यादि स्थानों पर पैदा होती है, यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसका फल गोल होता है। इसकी काली और सफेद के भेद से दो जातियाँ होती हैं। इसके बीज मेंहदी के बीजों के समान होते हैं। ईरान से आने वाले बीज उत्तम माने जाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—हरमाल के बीज नशीले, संकोचविकास प्रतिबन्धक, वेदनानाशक, आर्त्तवप्रवर्त्तक और दुग्धबर्द्धक होते हैं। बड़ी मात्रा में इनको लेने से जंभाइयां आकर वमन होती है। इन बीजों का नशा गांजे के नशे की तरह होता है। गर्भाशय के ऊपर इसकी क्रिया 'अर्गट' की तरह या सुहाब की तरह होती है। यह वनस्पति स्त्रियों और पुरुषों के लिए कुछ कामोत्तेजक भी होती है।

हरमाल वात और कफ प्रधान रोगों में दिया जाता है मासिक धर्म की रुकावट, मासिक धर्म की पीड़ा और मूत्रावरोध रोग में इसके क्वाथ में तिल का तेल और शहद मिलाकर देते हैं। आमवात रोग में इसके बीज सोडा सेलिसिल्स की अपेक्षा जल्दी लाभ पहुँचाते हैं। ज्वर, गृध्रसी, अपस्मार और धनुर्वात में ये पोटासियम ब्रोमाइड की अपेक्षा अधिक उत्तम होते हैं। दमा, सूखी खाँसी और हूपिंग कफ में भी ये बहुत लाभ पहुँचाते हैं।

इसके बीजों की छोटी मात्रा ५ रत्ती, मध्यम मात्रा ३० और बड़ी मात्रा साठ रत्ती की होती है जो क्वाथ या फांट बनाकर दी जाती है।

डाक्टर मुहीउद्दीन शरीफ के मतानुसार इसके बीज मादक, उत्तेजक, आक्षेपनिवारक, वमनकारक, मासिक-धर्म को नियमित करनेवाले और शूल को दूर करनेवाले होते हैं। वे इस औषधि को श्वास, कुक्कुर खाँसी और गुल्म वायु में उपयोग में लेने की सिफारिश करते हैं। इसके अतिरिक्त उदरशूल, पीलिया और पित्त की पथरी, स्नायु-शूल तथा रजःकष्ट में भी यह उपयोग में ली जाती है। इस वनस्पति से साधारण खाँसी और छाती के दर्दों में भी संतोष-जनक फायदा होता है। यह एक उत्तम वमनोत्पादक औषधि है। अपने निद्राकारक स्वभाव के कारण यह कष्ट को दूर करके शीघ्र ही नींद लाती है।

इसबगोल

नाम—संस्कृत—ईषद्गोलम्, स्निग्धबीजम्, स्निग्धजीरकम्। हिन्दी—इसबगोल। मराठी—इसबगोल। गुजराती—उथमुंजीरुं। बंगाली—इसपगुल। तेलगी—हस्पगुल। फारसी—इस्पगलम्। अरबी—वजरेकुतुना। लैटिन—Plantago Ovata, P. Isphagula (प्लेण्टेगो ओव्हेटा)

वर्णन—यह एक प्रकार का प्रकांडरहित झाड़ीनुमा पौधा होता है, जो लगभग गज भर ऊँचा होता है। इसके पत्ते धान के पत्तों के समान और डालियां बारीक होती हैं। डाली के सिरे पर गेहूँ की तरह बालें लगती हैं। इन बालों में बीज रहते हैं। इसके बीजों के ऊपर महीन और सफेद झिल्ली होती है। यह झिल्ली ही उतारने पर इसबगोल की भूसी के रूप में हो जाती है। यही इसमें पाये जानेवाले लुआब का केन्द्र है।

इसबगोल की एक बड़ी जाति और होती है, जिसको लेटिन में Plantago Amplexicaulis कहते हैं यह पंजाब, मालवा और सिन्ध के मैदानों में अधिक पैदा होता है और इससे भूरे रंग का इसबगोल पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थों के अंदर इसबगोल का बड़ा विवेचन देखने में आता है। अरबी और परशियन लेखकों ने इसका प्रायः वर्णन किया है। १० वीं शताब्दी के करीब अलेवीं नामक परशियन हकीम ने इसका वर्णन किया है। इसके बाद इब्नसीना ने इसका वर्णन किया है। इनके बाद में जितने मुसलमान लेखक हुए, उन सब ने अपने २ ग्रन्थों में इसकी बहुत तारीफ की है। इससे मालूम होता है कि यह औषधि मुसलमानों के भारत में आने के बाद ही प्रयोग में ली गई है। इसका उपयोग प्राचीन रक्तातिसार और अँतड़ियों की पीड़ा में किया जाता रहा है। किसी भी प्रकार के रक्तातिसार व ऐसे अतिसार में जिसमें खून और आँव टट्टी के साथ निकलती हो, यह एक प्रकार की लोकप्रिय घरेलू औषधि रही है।

यूनानी मत के अनुसार इसके बीज शीतल, शांतिदायक और प्रकृति को मुलायम करनेवाले हैं। ये साफ दस्त लाते हैं। मलावरोध को दूर करते हैं। पेट की मरोड़, अतिसार, पेचिश आंतों के घाव में यह औषधि बहुत उपयोगी है।

मुजर्रवात अकबरी के मतानुसार मुट्ठी भर इसबगोल को प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने से श्वास कष्ट और दमे में बहुत लाभ होता है। निरन्तर ६ मास से दो वर्ष तक सेवन करने से बीस-बाईस वर्ष तक का पुराना दमा भी इससे जाता रहता है।

उष्ण प्रकृति के रोगियों को होनेवाले शुक्रमेह के अन्दर भी यह औषधि बड़ी लाभदायक है। पाचन-प्रणाली के प्रदाह में तथा पित्त-सम्बन्धी विकारों में भी यह बहुत उपयोगी है। सन्धिवात, ग्रन्थिवात व अन्य वात रोगों में इसकी पुल्टिस चढ़ाने से बड़ा लाभ होता है।

इसबगोल और आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान—आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के अन्दर भी इस औषधि ने बहुत महत्त्व धारण किया है। सन् १८६८ में यह औषधि इण्डियन फरमाकोपिया के अन्दर प्रविष्ट की गई है। १८ वीं शताब्दी के फ्लेमिंग, एन्सली और रॉक्स वर्ग इत्यादि डाक्टरों ने पुराने अतिसार के अन्दर इस औषधि की उपयोगिता का दृढ़ता से समर्थन किया है। उसके बाद तमाम रासायनिक खोजों के अन्दर इस औषधि की उपयोगिता सिद्ध हुई, जिसका वर्णन कर्नल चोपड़ा ने इस प्रकार किया है।

इसबगोल के बीज शीतल व शान्तिदायक हैं। अतिसार, रक्तातिसार, पेचिश व पाचन-प्रणाली के अन्य विकारों में तथा ज्वर की हालत में भी इनका इस्तेमाल करना उपयोगी माना गया है। इसमें मूत्रनिस्सारक गुण भी है। मूत्राशय, मूत्रनाली तथा गुर्दे की अन्य पीड़ाओं में छः माशे से लगाकर १ तोले तक की मात्रा में ये शक्कर के साथ देने के काम में लिए जाते हैं। इसके पीसे हुए बीज इन्द्रायन के बीजों के साथ मिलाकर पेचिश की बीमारी में देते हैं। इसके बीजों को कुचलकर उनका पुल्टिस बनाते हैं। इस पुल्टिस से ग्रन्थिसंबंधी पीडाओं में और जोड़ों के गठिया रोग में लाभ होता है। इनके लुआब से तैयार किया हुआ शीतल जल सिर को शान्ति देनेवाला है। इसके बीजों का काढ़ा ठण्ड व कफ की पीड़ाओं में दिया जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—कर्नल चोपरा इसके रासायनिक तत्त्वों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि इसबगोल के बीजों में एक प्रकार का मेदावर्द्धक तेल और एल्ब्यूमिनस (Albuminous) भी रहता है। इसमें लुआब

की मात्रा इतनी अधिक रहती है कि एक भाग बीज में बीस भाग पानी मिलाने पर भी एक प्रकार का स्वादरहित अवलेह बहुत थोड़े समय में तैयार हो जाता है। इसके लुआब में किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। गरमजल, अलकोहल, आयोडिन, बॉरेक्स व परक्लोराइट ऑफ आयर्न के द्वारा भी इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता है। सिर्फ जल में ही किञ्चित् मात्रा में यह घुल सकता है।

सन् १९३० में कनल चोपरा ने इस औषधि पर अपने विचार प्रगट किये। उन्होंने इस बात को पुष्ट किया कि इसबगोल के बीजों में ग्लुकोसाइड की कुछ मात्रा रहती है पर उपचार की दृष्टि से उसका विशेष महत्त्व नहीं है। इसमें टेन्सिन की काफी मात्रा मौजूद है, परन्तु प्रोटीझुआ और वेक्टेरिया नामक कीटाणुओं पर ये भी किसी प्रकार का असर नहीं दिखाते, अगर इसके अन्दर इसकी उत्तमता सिद्ध करनेवाली वस्तु है, तो वह उसमें पाया जानेवाला लुआब है। इसलिए इसी पर विशेष रूप से अनुसन्धान किये गये हैं।

कर्नल चोपड़ा ने इसके सम्बन्ध में १५ वर्षों से जो अनुसन्धान किये हैं। इसके परिणाम इस प्रकार हैं—

[१] जीर्ण आम रक्तातिसार (Chronic Bacillary Dysentery) इस बीमारी की हालत में दस्त में आँव रहता है। एक्टन और नाव्हल्स के मतानुसार हिन्दुस्तान में इस किस्म की पेचिश की बीमारी अधिक होती है। यह दो-तीन प्रकार के संक्रामक कीटाणुओं के जहर से पैदा होती है। इस बीमारी की हालत में आंतों में घाव पैदा हो जाता है। इससे पाचन-क्रिया-प्रणाली में जहर पैदा हो जाता है और उसकी शक्ति भी कमजोर हो जाती है। यह अतिसार कई वर्षों तक चालू रह सकता है इसमें कभी कब्जियत भी रहती है।

[२] जीर्ण अमेबिक आँव रक्तातिसार (Chronic Amoedic Dysentery) इस बीमारी से पीड़ित बीमारों को दस्तों की अनियमितता और कब्जियत रहती है। इसमें घावों का परिणाम भिन्न २ रहता है। इन बीमारों के दो प्रकार रहते हैं। एक तो वे जो दुबले पतले होते हैं और जिन्हें हमेशा ही कब्जियत रहती है और दूसरे वे जिनको प्रातःकाल के समय दस्त में आँव की पीड़ा रहती है। दूसरे प्रकार के बीमार देखने में मोटे-ताजे होते हैं।

[३] पुरानी कब्जियत जिसमें कि अन्य कारणों से नशे की मात्रा भी रहती है।

उपर्युक्त रोगों में इसबगोल के बीज काफी फायदा पहुँचाते हैं यद्यपि इन बीजों के अन्दर कोई भी ऐसा तत्त्व मौजूद नहीं, जो कि कीटाणुजन्य विषों को शान्त कर सके, पर यह औषधि घावों के प्रदाहिक भाग को व आँतों के प्रदाहिक हिस्से को अपने लुआब से ढक देती है, इसका परिणाम यह होता है कि खाद्य सामग्री घावों से लगकर किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचा सकती, जिससे घाव और प्रदाह दोनों ही जल्दी मिट जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह औषधि शरीर की विषैली सामग्री को अपने में मिलाकर अपने साथ ही निकाल देती है। शरीर की आन्तरिक क्रिया इस औषधि के ऊपर कुछ भी असर नहीं दिखा सकती। इसलिए १२ घण्टे के अन्दर ही यह औषधि शरीर के तमाम विषैले पदार्थों को लेकर बाहर निकल जाती है। इससे बीमार को क्षणिक शान्ति ही नहीं मिलती, प्रत्युत विषैले पदार्थों के निकल जाने से उसकी हालत में बहुत सुधार हो जाता है।

बहुत दिनों के प्राचीन (एमेबिक) आम रक्तातिसार में जहाँ कि इमेटिन और इन्द्रायण या इन्द्रजौ के प्रयोग असफल सिद्ध हुए हैं, वहाँ पर इसबगोल और इन्द्रजौ तथा इन्द्रायण के तरलसार सफल सिद्ध हुए हैं। रोगी को ७॥ माशा की मात्रा में उक्त सत्त्व दिन में ३-४ बार दिया जाय और दिन में दो बार इसबगोल के बीजों के दो या तीन बड़े चम्मच दिये जायँ तो ६ सप्ताह के बीच में रोगी के लक्षणों में ही सुधार नहीं होता, प्रत्युत मल की परीक्षा से यह पाया गया है कि रोग के कीटाणु बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं।

प्राचीन (एमेबिक) आम रक्तातिसार में जहाँ पर कि कब्जियत एक मुख्य चिह्न है, ये बीज आंतों में जमकर के फूल जाते हैं और दस्त में किसी भी प्रकार की तकलीफ नहीं होने देते। मल बिना प्रयास के बाहर निकल आता है। और कब्जियत की शिकायत मिट जाती है अगर कठिन कब्जियत की शिकायत में इसके साथ कुछ हलका विरेचन भी दे दिया जाय तो इसके गुण और भी बढ़ जाते हैं।

[४] पर्वतीय अतिसार (Hill Diarrhoea) यह बीमारी प्रायः उन लोगों को होती है, जो विशेष तौर से पहाड़ी स्टेशनों पर जाया करते हैं। यह यूरोपियन लोगों में भी ज्यादा पाई जाती है। इसमें रोगी को प्रातःकाल के समय कई दस्त होते हैं और उनमें कुछ आंव भी रहता है। इसकी प्रारम्भिक अवस्था में इसबगोल के बीज बहुत

उपयोगी हैं। इससे केवल श्लैष्मिक झिल्लियों का प्रदाह ही कम नहीं होता प्रत्युत मल बँधकर दस्त साफ आता है।

[५] बालकों के चिरकालीन अतिसार में भी इससे बहुत लाभ होता है। इस बीमारी में भी इसका लुआब पाकस्थली और अंतड़ियों के घावों को ढाँक देता है और कीटाणुओं को बाहर निकाल देता है।

इसबगोल की खुराक और उसको लेने की विधि—इसबगोल के बीजों को पहिले साफ करके उनकी धूलमिट्टी को निकाल देना चाहिये। फिर इन्हें एक या दो कप पानी में धो लेना चाहिये। इनकी साधारण मात्रा ७॥ माशे से १। तोले तक की है। लेकिन २॥ तोले से पांच तोला की मात्रा में भी लिये जाँय तो भी कोई हानि नहीं है। क्योंकि इनमें किसी भी प्रकार का विषैला पदार्थ नहीं रहता और इनमें से अधिकांश १२ घण्टे में आँतों के विषैले पदार्थों को लेकर बाहर निकल जाते हैं। अगर कब्जियत अधिक हो तो इसको अधिक मात्रा में लेना ही मुफीद होता है। इससे दो लाभ हैं, पहला यह कि यह लुआब पेट में अधिक मात्रा में रहने से दस्त लाने में सुविधा करता है और दूसरा यह कि यह आंतों में ज्यादा मात्रा में पहुँचकर वहाँ के सब पदार्थों को फुला देता है, जिसके परिणामस्वरूप मल फूलकर आँतों में आवश्यकता से अधिक हो जाता है और अधिक होने से वह आसानी से बाहर निकल जाता है। इन बीजों को प्रयोग में लाने के लिये चार तरकीबें बतलाई गई हैं।

[१] स्वच्छ सूखे बीज एक कप भर पानी में डालकर धो लिये जाते हैं। धोने के बाद उनमें एक या दो चम्मच शक्कर मिलाकर ले लेते हैं।

[२] दूसरी तरकीब यह है कि इसके बीज एक कप पानी में डाल दिये जाते हैं। आधे घण्टे में वे सब फूल जाते हैं। अगर इच्छा हो तो कुछ शक्कर मिलाकर इस लुआब का सेवन कर लिया जाता है।

[३] आधा सेर से एक सेर पानी में इसकी दो-तीन खुराकें डालकर उबाल ली जाती हैं। आधा पानी शेष रहने पर उसे उतारकर २ से लेकर ४ औंस की खुराक में तकसीम कर तीन २ घण्टे के अन्तर से ली जाती हैं।

[४] चौथी विधि से इसबगोल के बीज की जगह उसकी भूसी काम में ली जाती है। इस भूसी को आधा तोला से एक तोला तक की मात्रा में एक कप पानी में डालकर कुछ शक्कर के साथ मिलाकर लेना चाहिये। अगर अँतड़ियों के भाग मल से अवरुद्ध हों तो इस विधि का इस्तेमाल करना ज्यादा अच्छा बतलाया गया है। पाचन-प्रणाली की तीव्रता पर भारतीय वैद्य इसी तरकीब को ज्यादा इस्तेमाल में लेते हैं।

कर्नल चोपरा कहते हैं कि जीर्ण पेचिश की साधारण स्थिति में और अतिसार तथा रक्तातिसार की बाधाओं में पहली विधि अधिक उत्तम है। क्योंकि ये बीज आँतों में स्थित पदार्थों के साथ मिलकर काफी फूल जाते हैं और श्लैष्मिक झिल्लियों को पूरी तरह से ढक देते हैं। अगर यह लुआब इकट्ठा हो जाय तो इसकी गाँठें बँधकर यह पाचन-क्रिया-प्रणाली में से ज्यों का त्यों निकल आता है। अनुभव से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि जब यह लुआब बीजों के साथ रहता है, उसी हालत में पाचन-क्रिया प्रणाली इसपर बहुत कम असर डाल सकती है। अगर इसके बीज निकाल कर केवल इसकी भूसी या काढ़ा उपयोग में लिया जाय तो पाचन-क्रिया-प्रणाली उस पर असर डाल देती है। यहाँ तक की २४ घण्टे में कुछ लुआब का चिकनापन पेट में नष्ट भी हो जाता है। लेकिन अगर यही लुआब बीजों के ऊपर रहे तो उसमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं होने पाता। इसलिये यह सिद्ध है कि भूसी के बजाय बीजों को उपयोग में लेना ज्यादा मुफीद है। प्रोटोझोल (Protozoal) और बेसीलरी (Bacillary) नामक कीटाणुओं से पैदा होने वाली पेचिश में इसकी भूसी लेना ज्यादा लाभदायक है।

पेरेफिन से बनाये हुए कई पदार्थ अँतड़ियों की स्निग्धता के लिये दिये जाते हैं। वे अँतड़ियों के भीतर के तत्त्वों के साथ मिल जाते हैं और अन्न-प्रणाली के मार्ग को नरम रखते हैं तथा आँतों के अन्दर संचित पदार्थों को वे जल्दी ही बाहर निकाल देते हैं। पेरेफिन यह एक प्रकार का खनिज सत्त्व है, इसलिये यह हजम नहीं किया जा सकता और ज्यों का त्यों दस्त के साथ बाहर निकल आता है। इसबगोल के बीजों के साथ पेरेफिन का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद हम (कर्नल चोपड़ा) इस तत्त्व पर पहुँचे हैं कि कब्जियत को दूर करने में व आँतों को स्निग्ध बनाने में जो कार्य पेरेफिन करता है, वही कार्य इसबगोल के बीज भी करते हैं। लेकिन इन बीजों में विशेष लाभ यह है कि पेरेफिन के समान इनमें किसी प्रकार का अवगुण नहीं है। पेरेफिन की उत्तम से उत्तम बनावट भी पेट में जलन व अन्य प्रकार के विकार फैलाये बिना नहीं रहती। इस पदार्थ को लेने वाले लोगों के गुदा-मार्ग में

इसका सतत उपयोग करने से यह अँतड़ियों के मार्ग में ज्यों का त्यों जम जाता है और पोषक-पदार्थों का समावेश नहीं करता। इसबगोल में ये दोष कुछ भी नहीं हैं। लिक्विड पेरेफिन (पेरेफिन का तेल) से जो फायदा होता है, वही रात को सोते समय इसबगोल के दो-तीन चम्मच बीजों को लेने से हो सकता है और किसी प्रकार का अवगुण भी नहीं होता।

मतलब यह है कि औषधि अतिसार, रक्तातिसार और आम अतिसार में अत्यन्त उपयोगी और निरुपद्रव है। यह शीतल और मूत्रनिस्सारक है।

डाक्टर के० एल० दे का कथन है कि इसबगोल के बीज हिन्दुस्तान में पुराने अतिसार और पुराने आम रक्तातिसार के लिये अत्यन्त उपयोगी घरेलू दवा है। हम इसे गत २५ वर्षों से तीव्र, पुरातन और अन्य सभी प्रकार की पेचिश में देते आये हैं और यह लाभदायक सिद्ध हुई है। हाईब्लडप्रेशर (रक्तभार की अधिकता) की बीमारी में भी हम इसका उपयोग करते हैं। इस बीमारी में जिसके साथ अँतड़ियों की खराबी व अन्य कार्यों से पैदा हुआ नशा भी हो, यह बहुत उपयोगी है। हमारे अनुभव से हमने यह देखा कि इसके सतत प्रयोग से बीमारी आगे नहीं बढ़ने पाती।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्र—इसबगोल, शीतल मिर्च और कलमीशोरे की फंकी लेने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

खूनी बवासीर—इसके बीजों को ठण्डे पानी में भिगोकर उनके लुआब को छानकर पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

पेशाब की जलन—बूरे के साथ इसका लुआब पिलाने से पेशाब की जलन मिटती है।

गठिया—गठिया और जोड़ों की पीड़ा पर इसका पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है।

नक्सीर—इसको सिरके में पीसकर कनपटियों पर पतला लेप करने से नक्सीर बन्द होती है।

श्वास या दमा—साल-छः महीने तक लगातार दिन में दो बार इसबगोल की फंकी लेते रहने से सब प्रकार के श्वास रोग मिटते हैं।

पित्तोन्माद—एक तोले इसबगोल का लुआब निकाल कर उसमें बूरा मिलाकर पिलाने से पित्तोन्माद मिटता है।

अतिसार—सब प्रकार के अतिसारों में इसबगोल का उपयोग करने की विधियाँ हम ऊपर लिख चुके हैं।

नोट—ऐसा कहा जाता है कि इसबगोल के पीसने से वह जहरी हो जाता है। इसलिये खाने के उपयोग में इसको पीसकर उपयोग में नहीं लेना चाहिये। बल्कि भिगोकर, छानकर या भूसी निकाल कर इसका उपयोग करना चाहिये।

इसरमूल

नाम—संस्कृत—अहिगन्ध, अर्कमूल, सुनन्दा, अर्कपत्रा, विषापहा। हिन्दी—ईश्वरमूल, इसरमूल। गुजराती—अर्कमूल, नोलवेल। अरबी—जरवन्दहिन्दी। बंगाली—ईशरमूल, ईश्वरी। मराठी—सापसन। तेलगू—गोविल। फारसी—जरावन्दे हिन्दी। लेटिन—Aristolochia Indica (अरिस्टोलोकिया इण्डिका)।

वर्णन—यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसका तना प्रारम्भ में बड़ा नाजुक रहता है। इसकी छाल मोटी होती है। इसके पत्ते भिन्न-भिन्न आकारों के होते हैं। इन पत्तों की नोक तीखी और किनारें सीधी रहती हैं। इसके फूल कम मात्रा में आते हैं। ये छोटे और गोलाकार होते हैं। इसके बीज चपटे, कुछ गोल और तीखी नोकवाले होते हैं। इस औषधि की जड़ सुगन्धित और कड़वी होती है। यह औषधि विशेषकर बंगाल, कोकण, ट्रावणकोर, सिलोन और समुद्र के पश्चिम किनारों पर मिलती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से ईश्वरमूल की जड़ कड़वी, कसैली, कृमिनाशक, विषनिवारक, ऋतुस्राव-नियामक तथा श्वास, खाँसी और हृदय रोग को नष्ट करनेवाली है। यह त्रिदोष, जोड़ों के दर्द और बच्चों की आँतों की तकलीफ में उपयोगी है।

इसकी जड़ को औटाकर पिलाने से जोड़ों की सूजन उतर जाती है और रुका हुआ मासिकधर्म फिर से चालू हो जाता है। इसको घिसकर लगाने से बिच्छू के दर्द में भी लाभ होता है। इसकी जड़ गुड़ के साथ उबालकर पिलाने से शिशु-प्रसव के समय की वेदना में बहुत लाभ होता है। यह दवा शक्ति उत्पादन करती है और

ज्वर का नाश करती है। सर्पदंश पर भी यह दवा खाने और लगाने के उपयोग में ली जाती है। इसके पत्तों का रस पिलाने से जलोदर रोग में लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि पित्तप्रदाह, सूखी खाँसी, और जोड़ों के दर्द में लाभदायक है। यह एक प्रकार का विरेचन है। उत्तेजक, पौष्टिक और ऋतुस्राव-नियामक गुण के कारण यह औषधि बड़ी उपयोगी है।

इसरमूल और साँप का जहर—सर्पदंश के सम्बन्ध में यह औषधि बहुत लम्बे समय से इस देश के कई भागों में प्रसिद्ध रही है। पौराणिक ग्रन्थों के अन्दर भी इसके सर्प-विष नाशक गुण का उल्लेख मिलता है। शिव-पुराण के अन्दर एक कथा है कि शिव और पार्वती के विवाह के समय पर सब देवता इकट्ठे हुए थे। उस समय नारद जी को शिवजी के साथ कुछ मजाक करने की इच्छा हुई और वे जंगल में से ईश्वर बूटी को उखाड़कर लाये और उसको लेकर हिमालय पर पहुँचे। उस समय विवाह का कार्य समाप्त हो चुका था और शिवजी अन्तःपुर में कई स्त्रियों के बीच में बैठे हुए थे। नारद जी अपनी वीणा को बजाते-बजाते वहाँ पहुँच गये और ईश्वरबूटी को चुपचाप शिव जी के पास रख दिया। इसको रखते ही शिवजी के शरीर पर लिपटे हुए सब सांप भागने लगे। जिस सांप से शिवजी ने अपनी कमर के व्याघ्र चर्म को बांध रखा था, वह भी भागा, जिससे व्याघ्रचर्म खुलकर शंकर दिगम्बर स्वरूप हो गए, जिससे सब स्त्रियां उठकर भाग गईं और शिवजी बहुत शर्माए।

इस कथानक में कितना सत्यांश है, इसका विवेचन करने की यहां आवश्यकता नहीं। हमारा केवल इतना ही मतलब है कि ईश्वरमूल यह बहुत प्राचीनकाल से इस देश में सर्प-विष की अमूल्य औषधि की तरह प्रसिद्ध है।

बंगाल के लोगों को इस औषधि का सर्पविषनाशक गुण जितना मालूम है, उतना दूसरे प्रान्त के लोगों को नहीं मालूम है इसलिए यह औषधि वहां के गांवों में बहुत लोकप्रिय है।

डाक्टर ब्रिटन और मिस्टर लोकास इत्यादि कितने ही यूरोपियन डाक्टरों ने इस औषधि के द्वारा सांप के काटे हुए बहुत से रोगियों को प्राणदान दिया है।

डाक्टर ब्रिटन के पास सांप की काटी हुई एक युवती संज्ञाहीन अवस्था में लाई गई। उसकी नाड़ी की गति बन्द हो चुकी थी और शरीर बरफ के समान शीतल हो गया था। इस औषधि के तीन पत्ते दस कालीमिर्च के साथ बारीक पीसकर थोड़े पानी के साथ उसके मुँह में डाले गए। दवा मुँह में पहुँचने के पश्चात् दूसरे मनुष्यों की सहायता से उस स्त्री को बिठाया गया। दस मिनट के बाद उसके नीचे के होठ की नाड़ी में कुछ गति होने लगी। रक्त-संचालन में सहायता पहुँचाने के लिये कुछ मनुष्यों की सहायता से उस स्त्री को खड़ी करके टहलाना प्रारम्भ किया गया। कुछ समय के पश्चात् रोगिणी अपने पैरों पर खड़ी होने की चेष्टा करने लगी। उसके बाद उसने एक लम्बी सांस ली और उसमें चैतन्य का संचार होने लगा। उसके पश्चात् रोगिणी ने चिल्लाकर कहा कि मेरी छाती जलती है, तब उसे एक बार फिर से दवा दी गई और उसके घाव पर एक पत्ता पीसकर लगाया गया। दो घण्टे में वह युवती स्वस्थ हो गई। (जंगलनी जड़ी बूटी)

डा० रेमरेन्ड का कथन है कि सांप के जहर को उतारने वाली औषधियों में से यह भी एक है।

पोर्तगीज लोगों ने सबसे पहिले सर्पदंश-नाशक होने की वजह से इसका नाम Raizde Cobra रखा। यह कोबरा-डी-केपेला Cobra-de-capella नामक भयंकर सर्प के विष में भी उपयोगी है।

कोमान के मतानुसार इस वृक्ष के पत्तों का रस सर्प-विष को दूर करने वाला होता है। इसकी जड़ भी विषनिवारक है और यह भी विषैले जन्तुओं के काटने पर काम में ली जाती है। धवलरोग में इसकी जड़ का चूर्ण शहद के साथ दिया जाता है।

फिलिपाइन द्वीपसमूह में भी इसकी कड़वी जड़ विषैले जन्तुओं के काटने पर बहुत उपयोग में ली जाती है।

मतलब यह कि चरक, वाग्भट इत्यादि प्राचीन और एन्सली, रीड, राबर्ट्स, रेवरेन्डस, ब्रिटन, कोमान, नॉडकर्नी, चोपरा इत्यादि आधुनिक चिकित्सकों के मत से ईश्वरमूल की जड़, लकड़ी और पत्ते तीनों सर्पदंश में उपयोगी हैं, इनको देने की तरकीब इस प्रकार है—

सांप के काटे हुए स्थान पर तत्काल इसके पत्तों का रस मसलना चाहिये और दो-तीन पत्तों को आठ-दस कालीमिर्चों के साथ बारीक पीसकर पानी में मिलाकर पिला देना चाहिये। अगर रोगी मूर्च्छित अवस्था में हो तो भी

इस पानी को किसी प्रकार युक्ति से पिला देने से बड़ा लाभ होता है। अचेतन अवस्था में इसके रस का हाईपोडर मिक्सरिंज से इन्जेक्शन देने से खून में विष को नाश करने में सहायक होता है। जहां पर इसके ताजे पत्ते न मिल सकें, वहां पर इसकी जड़ काम में ली जा सकती है। इस जड़ को आधे या एक तोले की मात्रा में २१ कालीमिर्चों के साथ पानी में पीस-छानकर पिलाई जाती है, जरूरत के माफिक १५ मिनट और आधे २ घण्टे के अन्तर से इसकी दो-तीन खुराकें पिलाई जाती हैं। यह केवल सांप ही नहीं बल्कि बिच्छू, चूहा तथा अफीम के विष को भी दूर करती है।

विषनाशक गुण के अतिरिक्त इस औषधि में और भी कई विशेष गुण भरे हुए हैं। औषधि संग्रह नामक मराठी ग्रन्थ के रचयिता डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार ज्वर के अन्दर इस औषधि को देने से सिर का दर्द दूर होता है, पेशाब की जलन कम होती है, पसीना आता है और बुखार उतरता है। विषम-ज्वर और दूषित सूतिका-ज्वर में यह विशेष तौर से उपयोगी है। त्रिदोषिक सन्निपात में ईश्वरी को तगर और गंठोड़े के साथ देने से यह ज्ञानतन्तुओं को शान्ति देती है। नये और प्राचीन सन्धिवात में यवक्षार के साथ देने से और दर्द की जगह इसका लेप करने से बड़ा लाभ होता है।

गर्भाशय के ऊपर इस औषधि की उत्तेजक क्रिया बहुत स्पष्ट रूप से होती है। प्रसूति के समय अगर स्त्री कष्ट पाती हो तो ईश्वरी को पीपलामूल के साथ देने से लाभ होता है। प्रसूति के पश्चात् स्राव को साफ के करने लिये इसका बड़ा उपयोग होता है। गर्भावस्था में इसको नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे गर्भपात होने का डर रहता है।

यह औषधि आँतों के दर्द में बड़ी लाभदायक है। इसको साधारण मात्रा में लेमे से आँतों की शिथिलता कम होती है। अजीर्ण, वमन, हैजा, अतिसार, संग्रहणी और प्राचीन अजीर्ण में इसको काली मिर्च के चूर्ण के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

केस और महेस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्पदंश के विषनाशक और लाक्षणिक उपचारों में बिलकुल निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि स्वाद में कड़वी होती है। इसमें कपूर के समान कुछ गन्ध आती है। इसकी जड़ का काढ़ा २॥ से ५ तोले तक की मात्रा में उत्तेजक पौष्टिक और ज्वरनाशक है। रक्तातिसार व आँतों की अन्य शिकायतों में तथा पेट का आफरा दूर करने के लिये इसे कालीमिर्च और सोंठ के साथ देते हैं। इसके पत्तों का ताजा रस सर्प-विष में लाभदायक है। यह ऋतुस्राव-नियामक भी है।

डाक्टर नॉडकर्णी के मतानुसार इसकी जड़ पौष्टिक, उत्तेजक, रजःप्रवर्तक और सन्धिवातनाशक है। इसके पत्ते पाचक, पौष्टिक और पार्यायिक ज्वरों को दूर करने वाले हैं। इसकी जड़ सर्पदंश तथा बिच्छू वगैरह दूसरे जहरीले जानवरों के लिये मूल्यवान औषधि है, विषों के उपचार में इसका भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार से उपयोग होता है। जलोदर रोग में भी यह उपकारी मानी जाती है। हैजा और अतिसार में इसे कालीमिर्च के साथ मिलाकर देने से बड़ा लाभ होता है। बच्चों के अतिसार और सविराम ज्वरों में भी इसके पत्ते और छाल लाभदायक हैं।

ईख

नाम—संस्कृत--इक्षु, दीर्घच्छद, भूरिरस इत्यादि। हिन्दी—ईख, ऊख, गन्ना, पौण्डा, सांठा। गुजराती—शेरड़ी, शेरड़ीनु मूल। बंगाली—कुशिर, आक। तैलगू—चिरक्कु। फारसी—नेशकर। अरबी—कसउसशकर। अंग्रेजी—Sugar cane। लैटिन—Saccharum Officinarum (सेकेहरम आफिसिनेरम्)

वर्णन—ईख को भारतवर्ष में प्रत्येक व्यक्ति भली प्रकार से जानता है, इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं। यह सफेद, काली और लाल भेद से तीन प्रकार की होती है। इसी प्रकार उपयोगिता और जायके की दृष्टि से इसके ऊख, गन्ना और पौंडा ऐसे तीन भेद और हैं। ऊख विशेष कर बिहार में तथा समस्त भारत में पैदा होती है और शक्कर बनाने के काम में आती है। पौंडा सफेद रंग का, मोटा और रसदार होता है, यह विशेष कर रस चूसने के काम में आता है और गन्ना कड़े छिलके का और लम्बा होता है। इससे हल्की शक्कर बनती है। आयुर्वेदिक मत से इसकी पौण्ड्रक, भीरुक, वंशक, शतपोरक, कान्तार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचिपत्र, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर, कोशकृत् इत्यादि कई जातियां मानी गई हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से ईख रक्त-पित्तनाशक, बलकारक, वीर्य-वर्द्धक कफकारी, पचने में मधुर, स्निग्ध, भारी, मूत्रल और शीतल है।

सफेद ईख—स्निग्ध, तृप्तिकारक, पुष्टिकारक, संजीवन, स्वादिष्ट, श्रमनाशक, रक्तपित्त को शान्त करने वाली, दाहनाशक और कफकारक है।

काली ईख—या कालागन्ना गुणों में सफेद ईख के समान है। यह वीर्यवर्द्धक, तृप्तिकारक, दाहनिवारक, क्षारयुक्त, मधुर, शोषनाशक और व्रण को पूरने वाला है।

लाल ईख—शीतल, पाक में मधुर, मृदु, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, कान्तिजनक, धातुवर्द्धक, भारी, कसैली तथा पित्त, दाह, वात, विस्फोटक, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और रुधिर-विकार को नष्ट करने वाली है।

पौंडा—शीतल, वात-पित्तनाशक, रस और पाक में मधुर, शीतल, पौष्टिक और बलवर्द्धक है।

बाल अर्थात् कच्ची ईख—कफकारी, मेदजनक तथा प्रमेहकारक है। अधपकी ईख—वातनाशक, स्वादिष्ट, किंचित् तीक्ष्ण और पित्तनाशक है और पकी हुई ईख रक्त-पित्तनाशक, क्षतनिवारक और बल-वीर्यकारक है।

दांतों से चूसी हुई ईख का रस—शीतल, रक्त-पित्तनाशक, मधुर, पौष्टिक, कफकारक, स्निग्ध, हृदय को बल देने वाला, सारक, श्रम को हरने वाला, लवणयुक्त, मूत्रवर्द्धक, मेदवृद्धि को मिटाने वाला, त्रिदोषनाशक, इन्द्रियों को तृप्त करने वाला और अमृतोपम है।

ईख का रस—चरखी से निकाला हुआ ईख का रस दस्तावर, भारी, चिकना और कफ तथा मूत्र को जीतने वाला है, इसके अग्रभाग का रस क्षारयुक्त, मध्य भाग का मधुर और निम्न भाग का अत्यन्त मधुर होता है।

भोजन से पहले खाई हुई ईख पित्तनाशक, भोजन के मध्य में खाई हुई ईख भारीपन लाने वाली और भोजन के अन्त में खाई हुई ईख वात को कुपित करने वाली होती है।

ईख स्वाद में मधुर और रसयुक्त होती है। यह मूत्रनिःसारक पौष्टिक, शीतल, कामोद्दीपक और थकान को दूर करने वाली होती है। इसके सिवाय यह प्यास, कोढ़, आँतों की तकलीफ, अग्निविसर्प, रक्ताल्पता इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाती है।

'वैद्य कल्पतरु' नामक गुजराती मासिक पत्र के सन् १९१५ की जनवरी के अंक में एक वैद्य लिखते हैं—परिश्रम से थके हुए मनुष्य की थकावट ईख के रस से तुरन्त दूर होती है। शरीर में होनेवाली दाह को मिटाकर यह अमृत के समान शान्ति-प्रदान करता है, इसमें एक विशेष उपयोगी गुण यह है कि तेल, मिर्च इत्यादि गर्म वस्तुओं के अत्यधिक सेवन से पैदा हुए रक्तविकार, गर्मी, रक्त-पित्त इत्यादि रोग इससे नष्ट होते हैं। इसी प्रकार मूत्रावरोध इत्यादि मूत्राशय की बीमारियों में भी यह अच्छा काम करता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से ईख का रस अवरोध का उद्घाटन करके खून में गति पैदा करता है, यह फेफड़े की रूक्षता को मिटाकर तरी पैदा करता है। जिससे खाँसी में लाभ होता है। यह दस्त साफ लाने वाला, कामोद्दीपक, पेट की जलन को दूर करने वाला और अधिक मात्रा में आफरा पैदा करने वाला है। यह शहद के समान शरीर का संशोधन कर, उसे निर्मल करता है। कोठे को मुलायम करने में यह शहद से बढ़ा-चढ़ा है। यह आमाशय की अम्लता को दूर कर वायु के प्रकोप का निवारण करता है।

इसके रस में अनार का रस मिलाकर पीने से रक्तातिसार में लाभ होता है। शहद के साथ इसका रस पीने से पित्त की उल्टी बन्द होती है और आँवले के रस के साथ इसके रस का सेवन करने से सुजाक में लाभ होता है। इसके रस के साथ हरड़ के चूर्ण की फंकी लेने से कण्ठमाला में लाभ होता है तथा इसको भूभल में भूनकर चूसने से बैठा हुआ गला साफ होता है।

प्रमेह के रोगी, निर्बल पाचनशक्ति वाले, पीनस के रोगी, कृमिरोग वाले तथा जिनके मुँह से दुर्गन्ध आती हो, ऐसे रोगियों को इसके रस का सेवन नुकसान करने वाला है। इसलिये उन्हें इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

इसके दर्प को नाश करने वाली अदरक का रस, आँवला, मस्तगी इत्यादि वस्तुएँ हैं।

ईख से बनी हुई वस्तुएँ—फाणित-ईख के पकाये हुए अधिक गाढ़े और कुछ पतले रस को 'फाणित' कहते

हैं। यह फाणित आयुर्वेदिक मत से भारी, पौष्टिक, कफकारी, शुक्रजनक तथा वात, पित्त और श्रम को दूर करती है और मूत्र तथा बस्ति को शुद्ध करती है।

मत्स्यण्डी—ईख के पकाये हुए अधिक गाढ़े रस को-मत्स्यण्डी कहते हैं। यह भेदक, बलकारक, हलकी, वातपित्तनाशक, मधुर, पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक और रक्त-विकार को हरने वाली है।

गुड़—ईख के रस को पूरी तरह पकाकर उसका गुड़ भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से मांगलिक द्रव्य के रूप में व्यवहृत होता आया है। आयुर्वेदिक दृष्टि से प्राचीन और नवीन गुड़ के गुणों में अन्तर है। भारतवर्ष के कई प्रान्तों में प्रसूता स्त्रियों को पुराने गुड़ में बनाई हुई चीजों को देने का रिवाज है। इसके सिवाय गुड़ मूत्रशोधक, वीर्यवर्द्धक, अग्निदीपक, दस्तावर और पित्तकारक माना गया है। यह गुदारोग, कामलारोग, शोष, प्रमेह, गुल्म-रोग, पाण्डुरोग, वात, रक्तपित्त इत्यादि रोगों को हरने वाला है। कास और श्वास में भी यह उपयोगी है तथा भिन्न २ अनुपानों से और भी कई रोगों को हरने वाला माना जाता है।

हार्ट डिसीज (हृदय रोग) और गुड़—सन् १६३३ के २४ अक्टूबर के 'मुम्बई समाचार' में रतनशा के दादा चानजी के नाम से 'हार्ट अर्थात् हृदय को मजबूत बनाने के लिये यूरोप के अन्दर हाल ही में शोधा हुआ आश्चयजनक उपाय' नामक लेख प्रकाशित हुआ था इसका आशय इस प्रकार है—

'मि० बरजोरजी संजाना एडवोकेट को बम्बई के डाक्टरों ने बतलाया कि तुमको हार्टडिसीज (हृदयरोग) हो गया है और हार्ट का एक रेस टूट गया है। इसलिए उनको सलाह मिली कि बिस्तर पकड़ लेना चाहिए और अधिक हिलना-डुलना नहीं चाहिए'''तब मि० संजाना इस रोग का इलाज कराने के लिये वियना गये और वहाँ के प्रसिद्ध डाक्टरों को दिखलाया। वहां उन सबों ने कहा कि आपको हार्टडिसीज नहीं है और उन्हें दस मील रोज घूमने का आदेश दिया।

वहाँ से मि० संजना इंगलैण्ड गये और वहाँ के हार्ट एक्सपर्ट के पास जाकर उन्होंने हार्ट को मजबूत बनाने का उपाय पूछा। उस डाक्टर ने एक गिन्नी फीस लेकर नुसखा लिखा और उस नुसखे में खाली 'शार्प की सुपरक्रीम टॉफी' का नाम लिख दिया। इस नुसखे को देखकर मि० संजना आश्चर्य-चकित हो गये और उन्होंने डाक्टर को फिर से दोहराया तब डाक्टर ने कहा 'टॉफी, खाने से हार्ट बहुत मजबूत होता है, इसी प्रकार गुड़ की पपड़ी या गुड़ की बनाई हुई चीज खाने से भी हार्ट पर बहुत अच्छा असर होता है।

इस लेख के लेखक (रतनशा के दादा चानजी) ने जब उनके मुँह से इस बात को सुना तब कुछ समय तक इन्होंने भी शार्प की सुपरक्रीम टॉफी का उपयोग किया था। इससे लेखक को विश्वास हुआ कि गुड़ खाने से हार्ट के ऊपर आश्चर्यजनक ढंग से चमत्कारिक असर होता है। हमारे देश में गुड़ का बहुत भारी तादाद में उपयोग होता है। मगर इसके वास्तविक गुणों से लोग अपरिचित हैं। अगर इसके वास्तविक गुणों से लोग परिचित हो जायँ और इसका नित्य उपयोग जारी कर दें, तो हार्टफेल्युअर से होने वाली कई मौतों से बचाव हो जाय।

उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि गुड़ हृदयरोग में लाभ पहुँचाने वाली वस्तु है, इस कथन के साथ जब हम प्राचीन ग्रन्थों में बतलाये हुए गुड़ के गुणों की तुलना करते हैं तो उसमें बहुत कुछ सामने नजर आता है।

पुराने गुड़ का वर्णन करते हुए आयुर्वेदिक ग्रन्थों में लिखा है कि यह रसायनरूप और अग्निदीपक है। चेहरे के फीकेपन को, पाण्डु को, पित्त को, त्रिदोष को और प्रमेह को मिटाने वाला है। तीन वर्ष का पुराना गुड़ सबसे उत्तम माना जाता है। पुराना गुड़ अदरख के साथ खाने से कफ तथा हरड़ के साथ खाने से वायु का नाश करता है। गुल्म, बवासीर, अरुचि, क्षत, खाँसी, हृदयरोग, छाती का जख्म, क्षीणता, पाण्डु वगैरह रोगों में पुराना गुड़ पथ्य है। बवासीर तथा श्वास वाले को, हृदय रोग वाले को, परिश्रम से थके हुए को, मूर्छा वाले को, मूत्र-कृच्छ्र और पथरी वाले को, रक्तविकार वाले, को जीर्ण तथा विषम-ज्वर वाले को युक्तिपूर्वक अगर गुड़ का सेवन कराया जाय तो बड़ा लाभ होता है। गुड़ भोजन को पचाकर खून की वृद्धि करता है तथा उसे स्वच्छ करता है। पेट और श्वासोच्छ्वास के दर्दों को मिटाता है। शरीर के गठन को मजबूत करता है, मेद और चरबी को कम करता है। समाज में यह एक बहुत सामान्य वस्तु मानी जाती है, मगर यह अमृत तुल्य है। द्राक्षासव, हरीतकी अवलेह, वासावलेह इत्यादि मशहूर औषधियों में गुड़ का मिलाया जाना इसकी उपयोगिता को सिद्ध करता है। (वैद्य-कल्पतरु, दिसम्बर सन् १६३३)

शक्कर—आयुर्वेदिक मत से ईख की शक्कर शीतवीर्य, पाक में मधुर, सारक तथा दाह, तृषा, वमन, मच्छी,

रुधिरविकार और कृमि रोग को नष्ट करने वाली है। इसकी बनाई हुई मिश्री नेत्रों को हितकारी, स्निग्ध, धातुवर्द्धक, मुखप्रिय, मधुर, शीतल, इन्द्रियों को तृप्त करनेवाली, हलकी, तृषानाशक तथा क्षत, क्षय, रक्तपित्त, मूर्छा, कफ, वात, पित्त, दाह और शोष को हरने वाली है।

अरेबियन मटेरिया मेडिका के अनुसार यह विरेचक और रसयुक्त है। बहुत से लेखक इसे सीने के दर्दों में मुफीद मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि स्थूलता को नष्ट करती है और पथरी की शिकायतों में भी लाभदायक है।

विष के मामलों में खास करके तांबा और संखिया के विष में शक्कर बहुत उपयोगी मानी गई है। रसकपूर के विष में भी यह उपयोगी है। इन मामलों में इससे सफलतापूर्वक काम लिया जा चुका है। घाव में और घाव-सम्बन्धी दूसरी पीड़ा में शुद्ध सफेद शक्कर मांसांकुर लाने के लिये घाव पर छिड़की जाती है।

उपयोग—सूखी खाँसी—कच्चे गन्ने का रस पीने से सूखी खांसी में लाभ होता है।

पित्त विकार—पके हुए गन्ने का रस पिलाने से वात और पित्त के विकार मिटते हैं।

रुधिर का वमन—वृद्ध गन्ने का रस पिलाने से रुधिर का वमन बन्द होता है।

मूत्ररेचन—गन्ने का बासी रस पिलाने में मूत्रवृद्धि होती है।

विरेचन—गन्ने के रस में जौ की बाल के नीचे का डंठल मलकर पिलाने से शीघ्र विरेचन होता है।

रक्तातिसार—गन्ने के रस में अनार का रस मिलाकर पिलाने से रक्तातिसार मिटता है।

पित्तगुल्म—गन्ने के रस और आँवले के रस में शुद्ध किये घी को खाने से पित्त गुल्म में फायदा होता है।

ईरसा

नाम—हिन्दी—ईरसा, सौसन, इन्द्रधनुष्पुष्पी। अरबी—इर्सा, सौसने आसमानी। लेटिन—Iris Versicolor (आइरिस व्हर्सिकलर), Iris Florentina. (आयरिस फ्लोरेंटिना)।

वर्णन—इस वनस्पति की जड़ चपटी, टेढ़ी, गाँठदार और लता की भांति फैलने वाली होती है। इस पौधे के बीच में से एक डाली निकलती है, वही इसका तना होता है। उस डाली के ऊपर पत्तों के गुच्छे और फूल होते हैं। इसके फूल भिन्न २ रंगों के नीले, पीले, सफेद और इन्द्र-धनुष के समान सम्मिलित रंगों के होते हैं। इसीसे इसको इन्द्र-धनुष्पुष्पी और ईरसा (इन्द्र-धनुष) कहते हैं। इसके पत्ते मोटे दल के और दीर्घ होते हैं। इसकी जड़ में बनफशा के समान खुसबू आती है। यह औषधि हिमालय पहाड़ पर ३००० फीट से ९००० फीट की ऊँचाई तक होती है।

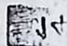
यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थों के अन्दर बहुत प्राचीनकाल से इस औषधि का उल्लेख पाया जाता है। हकीम डिसकोरिडस और सावफरिस्तून ने अपने ग्रन्थों में इसका उल्लेख किया है। प्राचीनकाल में यूनान के अंदर इस औषधि की जड़ के द्वारा एक उत्तम कोटि का मरहम तैयार किया जाता था।

यूनानी मत से इसकी जड़ शरीर में गरमी पैदा करने वाली, प्रकृति को दुरुस्त करने वाली तथा आक्षेप, लकवा और अंग-स्फुरण को लाभ पहुँचाने वाली है। तेल और सिरके के साथ इसका लेप करने से पुराना सिरदर्द आराम होता है। जैतून के तेल के साथ इसको कान में टपकाने से पुराने बहरेपन में लाभ होता है। हड्डी के टूटने या चोट लगने के स्थान पर इसका लेप करने से लाभ होता है। सूजन और जलोदर की बीमारी में भी यह फायदेमन्द है। इसको महीन पीसकर व्रण पर भुरभुराने से हड्डी पर मांस पैदा होकर गम्भीर व्रण भर जाता है। सन्धिशूल में भी इसके खाने से लाभ होता है। इसके पंचांग का ताजा रस आँख में डालने से आँख का जाला कट जाता है।

खाँसी, दमा, पार्श्वशूल, सीने का दर्द और फेफड़े की बीमारियों में भी यह लाभकारी है। हृदय को भी यह शक्ति प्रदान करता है। कामला और बवासीर के रोग में भी यह लाभ पहुंचाता है। गृध्रसी में इसकी बस्ति उपयोगी है। इसको गुदा में रखने से पेट के कीड़े नष्ट हो जाते हैं तथा शहद के साथ गर्भाशय में रखने से गर्भपात होने का अंदेशा रहता है। सरदी से होने वाले यकृत और प्लीहा के दर्द में भी इससे लाभ होता है।

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के मतानुसार इसकी जड़ रक्त-शोधक और धातुपरिवर्तक होती है। यह अनेक रक्त-शोधक औषधियों का एक प्राधन अंग है। यकृत और जलोदर की पीड़ा में भी यह बहुत मुफीद है। सम्भोग-सम्बन्धी बीमारियों (Sexeual Desease) में भी यह बहुत काम में आता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह (Iris Florentina) तथा आइरिश जर्मेनिका नामक वृक्ष की जड़ है जो कि कश्मीर में पैदा होती है। यह रक्त-शोधक, मूत्रनिस्सारक और मृदुविरेचक है। इसमें एक प्रकार का ग्लुकोसाइड रहता है। पित्ताशय की तकलीफ में इसका उपयोग होता है।



उटंगन

नाम—संस्कृत—खितिवार, स्वस्तिक, सुनिषण्णक, श्रीवारक, शितिवार इत्यादि। हिन्दी—शिरिआरी, चौपतिया, उटिंगन, गुठवा, उटंगन के बीज। मराठी—कुरडू। गुजराती—ओटीगण, ओटीगणनाबीज, खड़कातेग। फारसी व अरबी—अंजरा, तुख्मेअंजरा। तेलगू—सुनिषण्ण मनेशाकमु। लेटिन—Blepharis Edulis (ब्लेफेरिस एडयूलिस)

वर्णन—उटंगन के पौधे सजल स्थानों, ठण्डी जगहों तथा नदी के कछारों में उत्पन्न होते हैं। इसके पत्ते चांगेरी के समान एक साथ चार २ लगते हैं। उन चार पत्तों के बीच में कली लगती है। इसके फलों के बीच में दो चपटे बीज होते हैं। ये बीज तालमखाने के सदृश चिकने होते हैं। इसके पत्तों का शाक बनाकर खाया जाता है। कहा जाता है कि इसका शाक अच्छा निद्राजनक है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से उटंगन के पत्तों का शाक शीतल, मलरोधक, त्रिदोषनाशक, हलका, स्वादिष्ट, कसैला, रूखा, दीपन, रुचिकारक तथा ज्वर, श्वास, प्रमेह, कोढ़ और भ्रम को दूर करनेवाला है।

इसके पत्ते सुगन्धित और तिक्त होते हैं। ये आंतों के लिए संकोचक, कामोद्दीपक, क्षुधावर्द्धक, धातुपरिवर्तक, कृमिनाशक और निद्राजनक हैं। त्रिदोष और ज्वर में तथा मूत्र-नालीसम्बन्धी बीमारियों में और मानसिक विकृति में ये बड़े उपयोगी हैं। इनको लगाने से घाव और व्रण में भी लाभ होता है।

इसके बीज मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) की बीमारियों में बड़े लाभदायक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से उटंगन की जड़ मूत्रनिस्सारक और मासिकधर्म को नियमित करने वाली है। इसके पत्ते पौष्टिक, कामोद्दीपक, विरेचक और नकसीर को बन्द करने वाले हैं। श्वास, कफ, गले की जलन, जलोदर, यकृत् और तिल्ली सम्बन्धी रोगों में ये बड़े मुफीद हैं। इसके बीज यकृत् रोग, सीने के रोग, फेफड़े के रोग, रक्तरोग तथा पेशाबसम्बन्धी बीमारियों में लाभदायक हैं। ये मूत्रनिस्सारक, आक्षेप-निवारक, कामोद्दीपक, वीर्यस्तम्भक, बलदायक और शुक्रमेह तथा शुक्रतारल्य को दूर करने वाले हैं। मूत्रदाह को दूर करके ये गुर्दे को बल प्रदान करते हैं। ये कफनिस्सारक और चरबी को कम करने वाले हैं। बिलोचिस्तान में इसके बीज आँखों की तकलीफ में काम में लिये जाते हैं। कर्नल चोपरा के मत से इसके बीज मूत्रनिस्सारक, कामोद्दीपक, कफनिस्सारक और शक्तिवर्द्धक हैं। इनमें एक प्रकार का कटुतत्त्व पाया जाता है।

उपयोग—मूत्राघात—उटंगन के बीज १ माशा, मिश्री १ माशा, इनको मिलाकर लेने से बन्द हुआ मूत्र फिर चालू हो जाता है।

मूत्रकृच्छ्र—मट्ठे के साथ इसके बीजों को पीसकर पीने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

ऊरुस्तम्भ—इसके पत्तों का शाक तेल और जल के साथ बनाकर, बिना नमक डाले ऊरुस्तम्भ के रोगियों को देने से लाभ होता है।

उटिगण

नाम—बंगाल—चोरपाटा। बरमा—पैत्यगी। नेपाल-मोरिंगी। तामील—उत्पिजव। हिन्दी—उटिगण। लैटिन—Laportea Carenulata।

वर्णन—यह वृक्ष हिमालय में सिक्किम से पूर्व की तरफ, आसाम, खासियापहाड़ी, सीलोन, सुमात्रा और मलाया द्वीप समूह में पैदा होता है। इसके वृक्ष पर चुभने वाले कांटे होते हैं। इसके फूल मुलायम और पुष्पवृन्त छोटे होते हैं। इसके नर और नारी दो तरह के पुष्प आते हैं। इसका फल गोल होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—कार्टर के मतानुसार उत्तरी लखीमपुर में इसकी जड़ का रस पुराने ज्वरों को दूर करने के काम में लिया जाता है।

उड़द

नाम—संस्कृत—बीजरत्न, धान्यवीर, माष, कुरुविन्द, वृषांकुर, मांसल, बलाढ्य इत्यादि। हिन्दी—उड़द, उरिद, ठिकिरि। गुजराती—अरद्, उड़द। बंगाली—माषकलई। मराठी—उड़िद। तेलगू—मिनुमुल। कनाडी—उदद्दु। तामील—पट्चैप्यरी। फारसी—माष। अरबी—माषा। लैटिन—Phaseolus Radiatus (फेसिओलस रेडिटस)।

वर्णन—उड़द का उपयोग दाल के रूप में प्रायः सारे भारतवर्ष में होता है। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत-आयुर्वेदिक मत से उड़द स्निग्ध, बलकारक, वीर्यवर्धक, पित्तकारक, भारी, तृप्तिजनक, स्वादिष्ट, पौष्टिक, मूत्रल, मलभेदक, दुग्ध पैदा करनेवाले, मांसवर्द्धक, मेदवर्द्धक तथा श्वास, श्रम, परिणामशूल, अर्दित और बवासीर को दूर करनेवाले हैं। ये प्यास, कफ और रक्तरोग को उत्पन्न करनेवाले हैं।

इसके बीज मीठे और तेलयुक्त रहते हैं। ये मृदु-विरेचक, कामोद्दीपक, पौष्टिक, भूख बढ़ानेवाले, मूत्रल और दुग्धवर्धक हैं। ये हृदय के लिये उत्तम और थकान को दूर करने वाले हैं। ये प्यास, कफ और रक्तरोग को उत्पन्न करने वाले हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से उड़द के बीज कामोद्दीपक, पौष्टिक, मूत्रल, दुग्धवर्धक और रक्तस्रावरोधक हैं। ये खाज, धवलरोग, सुजाक और नकसीर में लाभदायक हैं। पक्षाघात, आमवात, स्नायुमण्डल के रोग, बवासीर और यकृत् की तकलीफों में भी ये उपयोगी हैं। इनका उपचार भीतरी और बाहरी दोनों तरीकों से होता है। ये पहले दर्जे में तर हैं। ये आफरे को पैदा करने वाले तथा कठिनता से हजम होनेवाले हैं। इनके दर्प को नाश करने वाले कालीमिर्च, अदरख और हींग हैं।

उड़द की जड़ निद्राकारक मानी जाती है। संथाल लोग इसे हड्डियों के दर्द में लाभदायक बतलाते हैं। इन्डोचायना में इसके बीज जलोदर और मस्तकशूल में काम में लिए जाते हैं।

सुश्रुत के मतानुसार इसके बीज सर्प और बिच्छू के डंक में उपयोगी हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार ये दोनों ही प्रकार के विषों में निरुपयोगी हैं।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर नॉडकरनी के मतानुसार उड़द स्निग्ध, शीतल, कामशक्तिवर्धक और स्नायु मण्डल को ताकत देने वाला है। इसमें केवल एक दोष यह है कि यह वायु को पैदा करता है। इस दोष को नष्ट करने के लिए तथा इसको स्वादिष्ट बनाने के लिए इसमें हींग मिला देना आवश्यक है। इसका काढ़ा अजीर्ण रोगी के लिए उपयोगी है। औषधि रूप में इसका भीतरी और बाहरी दोनों तरीकों से प्रयोग होता है। आमाशय से पैदा होनेवाले जुकाम, अतिसार, प्रवाहिका, लकवा, बवासीर, आमवात, यकृत् की बीमारियाँ और वातव्याधियों में इसका काढ़ा पीने के लिए दिया जाता है तथा आमवात, यकृत् के रोग और वातव्याधियों में इसका बाहरी प्रयोग भी होता है। इसकी दाल शरद-ऋतु में शीत के आक्रमण से रक्षा करती है। जरायु के विकारों में इसको भूनकर खाने से लाभ होता है। इसकी साधारण पकाई हुई दाल दुग्धवर्धक है।

उपयोग—**लकवा**—उड़द को सोंठ के साथ औटाकर पिलाने से लकवा में लाभ होता है।

गठिया—अरंड की जड़ की छाल के साथ उड़द को औटाकर पिलाने से गठिया में लाभ होता है। इसके मेल से बनाये हुए तेलों के मर्दन से सन्धियों तथा कन्धे की बादी में लाभ होता है।

फोड़ा—पीव वाले फोड़ों पर इसकी पुल्टिस बांधने से लाभ होता है।

नकसीर—इसके आटे का तालू के ऊपर लेप करने से नक्सीर बन्द होता है।

हिचकी—हलदी, सन की छाल और उड़द के आटे का धूम्रपान करने से हिचकी बन्द होती है, उड़द को हुक्के में रखकर तम्बाकू की भाँति पीने से भी हिचकी बन्द होती है।

स्नायु-शक्ति—उड़द के काढ़े पर एक रत्ती सफेद चिरमी का चूर्ण भुरभुरा कर पिलाने से स्नायुजाल की शक्ति बढ़ती है।

पित्त की सूजन—उड़द को उबालकर पित्त की सूजन पर बांधने से पित्त की सूजन मिटती है।

अर्दित रोग—उड़द के आटे के बड़े बनाकर मक्खन के साथ खाने से मुँह का अर्दित मिटता है।

उड़द की पुल्टिस—उड़दों के आटे में थोड़ा नमक, थोड़ी सोंठ और थोड़ी हींग मिलाकर उसकी रोटी बनाकर एक तरफ से सेंक ले और उसको उतारकर कच्चे भाग की तरफ तिल का तेल लगाकर शरीर के किसी भी वेदनायुक्त स्थान पर बांधने से बड़ा लाभ होता है।

उड़द पाक—छिले हुए उड़द का आटा डेड़पाव, गेहूँ का सत्त्व डेढ़पाव, जौ का सत्त्व डेढ़पाव, सांठी के चावलों का चूर्ण तीन छटांक, छोटी पीपर शोधी हुई डेढ छटांक, घी एक सेर आधपाव, चीनी सवा दो सेर। पहले ऊपर की पांचों चीजों को घी में मन्द-मन्द आँच पर भूंज लो। जब चूर्ण लाल हो जाय और खुशबू आने लगे तब उसे उतार लो। फिर चीनी की गाढ़ी चासनी करके उस चासनी में वह चूर्ण डाल दो। ऊपर से बादाम, पिश्ते, किशमिश आदि मेवे पाव भर कतर कर डाल दो। फिर एक २ छटाँक के लड्डू बना लो।

चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदास वैद्य का कथन है कि इसमें से सबेरे-शाम एक २ लड्डू खाकर ऊपर से दूध पीने से अत्यन्त बलवीर्य बढ़कर धातुपुष्ट होती है। रतिशक्ति को बढ़ाने के लिए यह पाक बहुत मुफीद है। वे इसे अपना परीच्छित बताते हैं।

उड़द का हलवा—उड़द की धोई हुई दाल को लेकर ताजे गाय के दूध में भिगो दें। जब सब दूध उस दाल में रम जाय, तब उसे छांह में सुखा लें। सूख जाने पर पीसकर आटा कर लें। इस आटे में सिंघाड़े का आटा, सफेद मूसली का चूर्ण और इमली के भुंजे हुए छिलके रहित चीजों का चूर्ण समान भाग मिलाकर चूर्ण तैयार कर लें। इस चूर्ण में से साढ़े तीन तोले चूर्ण का साढ़े तीन तोले घी और पांच तोला शक्कर के साथ हलवा बनाकर सेवन करें। अगर पाचनशक्ति कमजोर हो तो इस मात्रा में कमी भी की जा सकती है।

यह योग आयुर्वेदीय-विश्वकोष का है। इस योग के सेवन से भी वीर्यवृद्धि और पुष्टि होकर ओज, कांति और रतिशक्ति की वृद्धि होती है।

उतरण

नाम—संस्कृत—फलकण्टका, चाण्डालदुग्धिका, इन्दीवरा, युग्मफला इत्यादि। हिन्दी—उतरण। मराठी—उतरणी, उतरडी। बंगाली—छागुलवाटी। पंजाब—सियाली। तामील—उत्तमनी। गुजराती—गागली दुधैली। काठियावाड़ी—चमार दुधैली। तेलगू—गुरुति। लेटिन—Daemia Extensa (डेमिया एक्सटेन्सा)

वर्णन—यह औषधि भारतवर्ष के तमाम गरम आबहवा वाले प्रान्तों में तथा सीलोन और अफगानिस्तान में पैदा होती है। यह बहुवर्षजीवी वृक्षाश्रयी लता है। यद्यपि यह बारह मास होती है, फिर भी बरसात के दिनों में ज्यादा पाई जाती है। इसके पत्ते कुछ गोलाई लिए हुए नोकदार और रुयेंदार होते हैं। इसके फूल सफेद और फल आँकड़े के समान, लेकिन दो २ मिले हुए रहते हैं। इसी से इसे फलयुग्मा कहते हैं। इसके फलों पर कांटे होते हैं। इन फलों में से आँकड़े की तरह रूई निकलती है। इस फल को तोड़ने से उसकी डाली में से दूध निकलता है। इस बेल के अन्दर खराब गन्ध आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति तीक्ष्ण, शीतल, कृमिनाशक, विरेचक, ज्वरनाशक और पित्त, कफ, श्वास तथा त्रिदोष का नाश करनेवाली है। यह व्रणों के लिए बहुत मुफीद है। नेत्ररोग, मूत्राशय के रोग, गर्भाशय के रोग, पथरी, प्रदाह और धवलरोग में भी यह लाभदायक है।

इसकी जड़ की छाल पौने चार माशे से साढ़े सात माशे की मात्रा में गाय के दूध के साथ गठिया रोग में विरेचक, औषधि के बतौर दी जाती है। इसकी ताजी पत्तियों की लुग्दी उत्तेजक पुल्टिस के बतौर सांघातिक फोड़ों पर लगाई जाती है। इसके पत्तों का रस जुकाम और श्वास की बीमारी में लाभदायक है। चूने और सोंठ के साथ इस रस को मिलाकर लेप करने से सन्धिवात की सूजन में लाभ होता है। इसके पत्तों को काली मिर्च के साथ पीसकर देने से रक्तातिसार में लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि बम्बई प्रान्त में वामक तथा कफ-निस्सारक औषधि की तरह उपयोग में ली जाती है। इसके पीसे हुए पत्तों का रस पांच से लगाकर दस ग्रेन तक की मात्रा में एक उत्तम कफ-निस्सारक औषधि है। इसके कफ-निस्सारक गुण को बढ़ाने के लिए इसमें कभी २ तुलसी के पत्तों का स्वरस और शहद भी

मिला दी जाती है। इसके पत्ते कफनिस्सारक और वामक होने से श्वासरोग में भी लाभदायक होते हैं। ये सर्पदंश में भी उपयोगी माने जाते हैं। इस औषधि में एक प्रकार का कड़वा ग्लुकोसाइड रहता है।

'जंगलनी जड़ी-बूटी' नामक ग्रन्थ के रचयिता वैद्य-शास्त्री श्यामलदास इस औषधि के अन्दर दो नवीन और चमत्कारिक गुणों का उल्लेख करते हैं। इनमें से पहला गुण खूनी बवासीर को बन्द करने का है और दूसरा पारे की गोली बनाने का।

(१) उनका कथन है कि इस वनस्पति के अन्दर एक दिव्य गुण यह देखने में आता है कि इसके पत्तों को प्रति टाइम दो तोले के करीब लेकर उनके छोटे टुकड़े कर घी में लौंग के बघार के साथ तलकर खाने से बवासीर से गिरनेवाला खून बन्द हो जाता है। इस प्रयोग को १०-१५ रोज तक चालू रखने से कई रोगियों का हमेशा के लिये खून पड़ना बन्द हो गया है।

(२) प्राचीन निघंटुओं में इस औषधि को धातु-वृद्धि करने वाली, हृदय को हितकारी, गरम और पारे को बांधने वाली लिखा है। मगर इससे पारा किस प्रकार बाँधा जाता है, यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है। हमको एक महात्मा ने इसका प्रयोग बतलाया वह इस प्रकार है।

भलीभांति शुद्ध किये हुए पारे को एक पत्थर की खरल में डालकर फिर उतरण की जड़ों को मुँह में चबा २ कर उनका रस निकाल २ कर उस पारे में डालना चाहिये और नीम की हरी लकड़ी के डण्डे से उसे घोटते जाना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक घोटने पर पारा मक्खन के समान हो जाता है। इस पारे को कपड़े में बांधकर धतूरे के डोड़े में बन्द कर उस डोड़े पर गाय के गोबर का थर चढ़ाकर सुखा लेना चाहिये। फिर एक रुपये भर उपले कंडे का चूर्ण समाय इतना खड्डा खोदकर उसमें बकरी की मेंगनी भरकर उसके बीच में पारे का डोड़ा रखकर आग सुलगा देनी चाहिए। जब अग्नि ठण्डी हो जाय तब उसे निकालकर दूसरे धतूरे के डोड़े में पारे को भरकर दूसरी बार दो रुपये भर बकरी की मेंगनियों में उसे फूँकना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक बार एक २ रुपये भर मेंगनी बढ़ाते हुए उसे सौ पुट देना चाहिये। उसके बाद उसी प्रकार उसे धतूरे के फल में रखकर गाय के गोबर का थर चढ़ाकर, दाल, चावल की खिचड़ी में पकाना चाहिये। इस प्रकार ६० दिन तक उसे खिचड़ी में पकाते रहना चाहिये। उसके बाद उसे उपले कंडों की आग में उसी प्रकार १०० पुट और देना चाहिये। इतनी क्रिया के पश्चात् पारे का जल शुष्क होकर उसकी एक गोली तैयार हो जाती है। कई गुणों के साथ ही साथ इस गोली में वीर्यस्तम्भन करने का बहुत बड़ा गुण है। इसको सोने या चांदी के पतरे में रखकर मुँह में रखने से वीर्यस्तम्भन होता है।

पेट के कृमि—उतरण के स्वरस को दस बून्द से एक माशे तक की मात्रा में देने से या इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से बच्चों के पेट के कृमि नष्ट होते हैं और उदररोग भी मिटते हैं।

सांघातिक फोड़ा (Carbuncle)—इसके ताजे पत्तों की लुग्दी पुल्टिस की तरह सांघातिक फोड़ों पर रखने से वह जल्दी भरता है।

श्वास और खाँसी—इसके पत्तों के रस को पांच रत्ती से दस रत्ती तक की मात्रा में लेने से श्वास और खांसी में तत्काल फायदा होता है।

गठिया की सूजन—इसके पत्तों के स्वरस में चूना मिलाकर लेप करने से हाथ-पैरों की गठिया की सूजन में लाभ होता है।

उदूजाति

नाम—हिन्दी—उद्जाति। कनाडी—कपूरकरणी। तामील—नीलाम्बरी। मराठी—रणवोलि, घाक्त। तेलगू—पत्वदवरम्। लैटिन—Ecbolium Liuncanum (एक्बोलियम लिनकेनम्)

वर्णन—यह एक प्रकार की छोटी झाड़ी है। इसकी शाखाएँ सीधी, पत्ते बड़े, लम्बे और नोकदार, पुष्पावरण तीखे, फल मुलायम और बीज सफेद रहते हैं। यह वनस्पति कोकन, पश्चिमी घाट, दक्षिण और कर्नाटक में पैदा होती है।

गुण-दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ पीलिया और अत्यधिक रजःस्राव में उपयोगी है।

उन्नाव

नाम—संस्कृत—सौबीर, सौवीरक, सौबीरवदर। हिन्दी—बनबेर, कँडियारी, तितनीवेर, उन्नाव सिंगली, सिमली। काश्मीर—फिटनी, सिमली। बम्बई—रनबीर, उन्नाव। सीमाप्रान्त—खँडियारी। फारसी—पुनर, उन्नाप, सिंजिदेफेलानी। उर्दू—उन्नाव। लैटिन—Zizyphus Vurgaris (झिझीफस व्हलगेरिस) और Zizyphus Sativa (झिझिफस सेटिव्हा)

वर्णन—यह एक प्रकार का बेर होता है। इसकी मूल उत्पत्ति अफगानिस्तान की है। मगर यह पंजाब और पंजाब के पास हिमालय के प्रान्त में ६५०० फीट की ऊँचाई तक होता है। इसके अतिरिक्त पूर्व में बंगाल तक तथा सीमाप्रान्त, बिलोचिस्तान और फारस में भी यह पैदा होता है। इसका वृक्ष बेर के समान झाड़ीदार और कांटेवाला होता है। इसके पत्ते बेर के पत्तों से कुछ बड़े, गोल, बर्छी के आकार के और नरम होते हैं। इसका फल मारवाड़ में पैदा होने वाले बड़े झड़बेर के बराबर होता है। इसका पक हुआ फल लाल रंग का होता है। बगदाद का उन्नाव सर्वोत्कृष्ट होता है। यह मीठा लाल रंग का, सुस्वादु और अधिक गूदा वाला होता है।

गुण-दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी मत से ताजा उन्नाव समशीतोष्ण है। किसी के मत में यह पहले दर्जे में सर्द और तर और किसी के मत से यह पहले दर्जे में उष्ण और तर है। कठिनता से पचने वाला होने के कारण यह आमाशय को हानि करने वाला और आफरा पैदा करने वाला है। सूखा उन्नाव वीर्य को घटा-कर मैथुन-शक्ति को कमजोर करता है। इसके दर्प को नष्ट करने वाला मुनक्का, शहद और शक्कर हैं तथा इसका प्रतिनिधि सपिश्ता (बड़गूँदा) है।

इसका छिल्का घाव और फोड़ों को पूरने के लिये काम में लिया जाता है। इसके पत्ते विरेचक हैं। ये खाज तथा गले की बीमारी और शरीर की जलन में प्रयोग में लिये जाते हैं। इसका फल मीठा, खट्टा, कफ-निस्सारक, रक्तवर्द्धक और रक्तशोधक है। पुरानी खाँसी, वायु-नलियों के प्रदाह, ज्वर और लिव्हर के बढ़ने पर यह बहुत लाभदायक है। इसके बीज सूखी खाँसी और चमड़े के फटने पर बहुत उपयोगी हैं। इसका गोंद नेत्र रोगों के लिये मुफीद है।

मखजन तुहफा के मतानुसार यह औषधि अवरोधोद्घाटक, दोषों को मुलायम करने वाली, मूत्रनिस्सारक और आर्तव-प्रवर्तक है। इसका काढ़ा बुद्धि और स्मरणशक्ति को तेज करता है। इस्तिकावारिद (जलोदर) और यर्कानस्याह (काला कामला) में यह लाभदायक है। पेट के कृमियों को नष्ट करने में तथा कफ और वात से पैदा होने वाले ज्वरों में यह मुफीद है। सुजाक, सन्धिशूल और तिल्ली की वृद्धि को यह दूर करता है। घाव पर इसको महीन कर भुरभुराने से घाव भर जाता है। इसके ताजे पत्तों का लेप भी पुराने घावों में लाभदायक है। इसकी धूनी से जहरीले जानवर भाग जाते हैं।

यह खून को साफ करने वाला, खाँसी में लाभ पहुँचाने वाला, गुर्दे और वस्ति के रोगों में लाभदायक तथा कण्ठ की कर्कशता को दूर करने वाला है। चेचक में तथा पित्ती उछलने की बीमारियों में इसको अर्क-कासनी और सिकञ्जबीन के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

इसके सूखे फलों से बनाया हुआ शर्बत खाँसी, छाती, और आमाशय की जलन को मिटाता है तथा रक्त की गरमी को नाश कर उसे शुद्ध करता है। शीतला की बीमारी में यह शर्बत शान्तिदायक होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शान्तिदायक और कफ-निस्सारक है।

उपदली

नाम—गुजराती—कालीधावनी, कालीअमंथोकली। मलाया—उपकली। सिहली—नीलपुरुक। लेटिन—Ruellia Prostrata. (रुलिया प्रोस्ट्रेटा)

गुण-दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि सुजाक की बीमारी में लाभदायक है।

उपास

नाम—संस्कृत—बल्कल । बम्बई—चन्दुल, जसुन्द, करवट । मराठी—करवट, खरवट, चन्दल । कनाड़ी—बैरि, अरण्यी । तामील—मरुरि, पतई । कुर्ग—थैलेवाला । लेटिन—Antiaris Toxicaria. (ऑन्टियारिस टाक्सिकेरिया)

वर्णन—बर्मा, पेगू, पश्चिमी प्रायद्वीप इत्यादि स्थानों पर यह औषधि पैदा होती है । यह एक बहुत ऊँची जाति का वृक्ष है । इसकी छाल गहरे भूरे रंग की होती है । इसके पत्ते तीखी नोक वाले और गोलाकार होते हैं ।

गुण- दोष और प्रभाव—हृदय के लिये यह वनस्पति एक बहुत भयंकर विष है । इस पदार्थ की तीन बूंदें पानी के साथ में मेंढक को देने से मालूम हुआ कि करीब सात मिनट में उसकी नाड़ी बन्द हो गई और दस मिनट में वह बिलकुल निश्चेष्ट हो गया । ट्रापिकल मेडिसिन स्कूल ऑफ् कलकत्ता में बिल्लियों के ऊपर भी इसके अनुसंधान किये गये जिससे मालूम हुआ कि हृदय के लिये यह एक भयंकर विष है ।

इस औषधि को प्रबलता को देखने से मालूम होता है कि अगर इसका उचित रूप से उपयोग किया जाय तो दूसरे तीव्र विषों की तरह यह भी मनुष्य जाति के रोगों को दूर करने में बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है ।

इस समय कोकण और कनाड़ा में इसका बीज ज्वर और पेचिश की बीमारियों में काम में लिया जाता है । इसकी मात्रा एक बीज के तिहाई हिस्से से लगाकर आधे हिस्से तक दिन में तीन बार दी जाती है । कुर्ग में इस वृक्ष की अन्तर्छाल से थैले और वस्त्र बनाये जाते हैं ।

उफीमूनस

नाम—लेटिन—Agrimonia Eupatorium । हिन्दी—उफीमूनस ।

वर्णन—यह औषधि हिमालय के समशीतोष्ण प्रान्त में मरी और काश्मीर से लगाकर सिक्कम तक ७ हजार फीट से १० हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है । यह एक बहुवर्ष-स्थायी रुएँदार वनस्पति है ।

गुण-दोष और प्रभाव—इसकी जड़ एक प्रकार की मृदु संकोचक औषधि है । यह पौष्टिक और मूत्र-निस्सारक है । यूरोप के वनस्पति-विशारदों में इस औषधि की बड़ी तारीफ है । इसका काढ़ा खाँसी, अतिसार और आँतों के ढीलेपन को दुरुस्त करता है । यह पाचन-क्रिया प्रणाली और पाचन-शक्ति को बढ़ाता है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि सुगंधित, संकोचक, कृमिनाशक और मूत्रनिस्सारक है । इसमें एक प्रकार का इसेंशिअल ऑइल पाया जाता है ।

उमरी

नाम—हिन्दी—उमरी । तामील—उमरी, कटुमारी, सितुमारी । तेलगू—कोयालु । लेटिन—Salicornia Brachiata.

गुण-दोष और प्रभाव—इसकी राख चर्मरोग और खुजली के काम में ली जाती है । यह ऋतुस्राव-नियामक और गर्भस्रावक मानी जाती है । (इण्डियन मेडिकल प्लांट्स)

उम्मुलकल्व

नाम—अरबी—उम्मुलकल्व ।

वर्णन—यह औषधि मिश्र देश के खेतों में तथा अरब में बहुत पैदा होती है । इसके पत्ते मेंहदी के पत्तों की तरह पर कुछ चौड़े, फूल पीले रंग के और खराब गन्धयुक्त होते हैं ।

गुण-दोष और प्रभाव—इसके पत्तों का रस ६ माशे की मात्रा में या इसके सूखे पत्तों का चूर्ण ७ माशे की मात्रा में जैतून के तेल के साथ देने से सांप, बिच्छु और पागल कुत्ते का जहर वमन की राह निकलकर नष्ट हो जाता है ।

उलटकंबल

नाम—हिन्दी—उलटकम्बल, सनुकपास। बंगाली—उलटकम्बल। गुजराती व मराठी—उलटकम्बल। लैटिन—Abroma Augusta (एब्रोमा अगस्टा)। अंग्रेजी—Devils Cotton।

वर्णन—यह एक प्रकार का छोटे कद का झाड़ीनुमा पौधा होता है। इसके पत्तों का आकार स्थल पद्म के समान होता है। कभी २ तो इन दोनों को पहचानने में भी भ्रम हो जाता है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि उलटकम्बल के पत्तों के बीच डण्ठल कुछ लाल होते हैं। इस पौधे में से सन को तरह मजबूत और सफेद रेशे निकलते हैं। सरदी के दिनों में इस पौधे पर लाल रंग के छोटे फूल निकलते हैं तथा गरमी में इसके छत्राकार फल आते हैं। इन फलों के चारों तरफ छोटे २ पत्ते आते हैं और इनक भीतर पोले रंग के बीज रहते हैं। यह पौधा गर्म प्रदेशों की पहाड़ी भूमियों पर कुदरती तौर से बहुत पैदा होता है और इसकी डालियां भी लगाने से लगती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रन्थों में इस औषधि का कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता। इसके गुणों की खोज सबसे पहले सन् १८०१ में डा० राक्सवर्ग के द्वारा हुई और उन्होंने इसे कष्टार्तव अर्थात् मासिक धर्म से होने वाले कष्ट के लिये उपयोगी बतलाया। तब से यह औषधि इस व्याधि के सम्बन्ध में बराबर कीर्ति प्राप्त करती आ रही है।

इसके पश्चात् सन् १८७२ के इण्डियन मेडिकल गजट में भुवनमोहन सरकार ने इसकी रजःप्रवर्त्तिनी शक्ति की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और इसके लिये उन्होंने इसके ताजे रस की तीस ग्रेन की मात्रा निर्द्धारित की।

दी इकानमिक प्राडक्ट्स ऑफ् इण्डिया के विख्यात लेखक सर जार्ज वॉट ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में इस औषधि के दिव्य रजःप्रवर्तक गुण का उल्लेख किया और इस पर कई नामी डाक्टरों की सम्मतियाँ भी उद्धृत कीं।

सन् १८७३ में डॉक्टर थार्नटन ने 'अमेरिकन मेडिकल साइन्स' में इसकी जड़ की छाल के ताजे रस की बहुत प्रशंसा की और इसकी उपयोगिता को जाहिर किया। उन्होंने बतलाया कि रक्तसञ्चय और स्नायुशूल दोनों ही कारणों से होनेवाले रजःकष्ट में यह बड़ा उपयोगी है। यह मासिक धर्म को व्यवस्थित रूप में ला देता है। गर्भाशय के लिए यह एक पौष्टिक पदार्थ है।

के० सी० बोस के मतानुसार भी इसकी जड़ का छिलका मासिकधर्म को नियमित करने वाला और गर्भाशय के लिये पौष्टिक है। इसकी ताजी जड़ का रस और सूखी जड़, दोनों का ही रसायनशाला में परीक्षण हो चुका है। यह गर्भाशय पर अपना पौष्टिक और संकोचक असर दिखलाता है। इसलिये यह गर्भाशय का ठीक तौर से संकोचन करके मासिकधर्म को नियमित कर देता है। अलकोहल के साथ पिलाने से इस वनस्पति का असर नष्ट हो जाता है। इसलिये इसका ताजा रस या चूर्ण ही उपयोग में लेना चाहिये।

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध 'बंगाल केमिकल वर्क्स' के विद्वान् संचालक इस औषधि का वर्णन करते हुए अपने केटलॉग में लिखते हैं—'उलटकम्बल ने मासिक धर्म के समय की पीड़ा को नष्ट करने में रामबाण होने की ख्याति प्राप्त की है। इस औषधि का रासायनिक और वैद्यकीय अभ्यास करने के पश्चात् हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि इसका व्यवहार कभी व्यर्थ नहीं जाता। स्त्रियों का आरोग्य, उनका सौन्दर्य और उनका स्वभाव सब बातें उनके मासिकधर्म की शुद्धता पर अवलम्बित रहता है। आँखों के आसपास काले दाग पड़ना, हमेशा सिर-दर्द रहना इत्यादि रोग कष्टार्तव की वजह से ही पैदा होते हैं। इस औषधि के कुछ दिनों तक सेवन करने से यह व्याधि नष्ट हो जाती है और स्त्रियों का बन्ध्यात्व दूर होकर वे गर्भाधान के योग्य हो जाती हैं।'

कलकत्ते के प्रसिद्ध कविराज द्वारकानाथ विद्यारत्न इस औषधि के सम्बन्ध में लिखते हैं कि उलटकम्बल की जड़ की छाल का चूर्ण एक ड्राम (पौने चार माशे) की मात्रा में इक्कीस कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर मासिकधर्म के समय सात दिन तक सेवन करना चाहिये और भोजन में केवल दूध-भात लेना चाहिए। पति-समागम का का बिलकुल त्याग करके पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए। इस प्रकार दो-चार महीने तक प्रत्येक मासिकधर्म के समय सात दिन तक यह योग प्रयोग करने से गर्भाशय के सब दोष मिट जाते हैं। प्रदर और बन्ध्यात्व की यह सर्वोत्कृष्ट औषधि है।

मगर कर्नल चोपरा, घोष और चटर्जी ने इसके मद्यसार और अलग २ अंगों का विश्लेषण करके यह परिणाम निकाला कि रक्त-बहाव, श्वासक्रिया एवम् पाकस्थली और अँतड़ियों के मार्ग पर इस औषधि का कोई भी

प्रशंसनीय असर नहीं होता। गर्भाशय पर भी, फिर चाहे वह गर्भ से युक्त हो, चाहे विहीन, इसने कुछ भी असर नहीं दिखाया, संतोषजनक फल न होने से रोगियों पर इसका परीक्षण नहीं किया गया। रासायनिक विश्लेषण पर इसमें फिक्स्ड ऑइल, राल, अलकोहल और कुछ पानी में घुलने वाले पदार्थ पाये जाते हैं।

'जंगलनी जड़ी बूटी' नामक ग्रन्थ के रचयिता कहते हैं कि हमने अनेक स्त्री-रोगियों पर इस औषधि का प्रयोग किया है और हमें विश्वास हो गया है कि गर्भाशय के रोगों पर यह अचूक औषधि है।

आर० एन० खोरी के मतानुसार इसकी जड़ और उसका रस गर्भाशय को बल देनेवाला और आर्त्तव-प्रवर्त्तक है। अवरोध सहित तथा वातिककृच्छ्र रजोरोग और रुके हुए मासिकधर्म में कालीमिर्च के साथ ऋतुकाल के समय में सप्ताह तक इसका व्यवहार होता है। यह हाइड्रास्टिस, वाईवनंम और पलसेटिला की उत्तम प्रतिनिधि है।

उलौयन

वर्णन—यह पौधा पानी के किनारे रेतीली जमीन में तथा गीले स्थानों में पैदा होता है। इसके फूल ललाई और पीलाई लिये हुये होते हैं। इसकी जड़ चुकन्दर की तरह और बीज अफ्तीमून की तरह होते हैं।

गुण-दोष और प्रभाव--खजानुल अदविया के मतानुसार यह औषधि अत्यन्त उग्र और स्थायी उन्माद रोग में बड़ी लाभदायक है। उन्माद के लिए इसके बीज ३॥ माशे से ९ माशे तक की मात्रा में ३॥ माशे नमक, २। तोला सिरके और ६। तोला पानी के साथ देने चाहिये। काले कामले की बीमारी में भी यह फायदेमन्द है।

उल्लैक

वर्णन—यह एक कांटेदार वृक्ष है जो गुलाब के पेड़ की तरह होता है।

गुण-दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि दूसरे दर्जे में शीतल और रूक्ष है। यह तिल्ली और गुर्दे को हानि पहुंचाती है। इसके दर्प को नष्ट करने वाला मुलेठी का सत्व, शक्कर और खट्टा अनार है।

यह औषधि व्रण, पित्ती, विसर्प तथा सिर की गंज में लाभदायक है। कहा जाता है कि, इसके काढ़े को मेंहदी में घोलकर सफेद बालों पर लगाने से बाल काले हो जाते हैं। इसका फल काबिज और रक्तस्राव में उपयोगी है। मुँह का रक्तस्राव और बवासीर का खून इससे बन्द हो जाता है। मासिकधर्म के समय इसके पत्ते और फल का काढ़ा पिलाने से स्त्री को संतान होना बंद हो जाता है। इसके पत्तों का लेप करने से आँख की सूजन और सिर की गंज मिटती है। इसके पत्तों को चबाने से दांत और मसूढ़े दृढ़ होते हैं। इसके फूलों के सेवन से खून की दस्त और कफ में खून आना बन्द हो जाता है। यह आमाशय की निर्बलता में लाभ पहुँचाता है।

उशक

नाम—अरबी—उश्शक, उशक, अज्जाकुज्जहब, कलख। हिन्दी–समगहमाम, कल्यान। गुजराती–उशक। तामील—गमनायकम। लेटिन—Dorema Ammoniacum (डोरेमा एमोनायकम), Ferula Orlientalis (फेरुला ओरियण्टेलिस)

वर्णन—यह एक प्रकार का रालदार गोंद है, जो ईरान देश के अन्दर उशक नामक वृक्ष से पैदा होता है। इस वृक्ष को शीराज, बदरान और बुखारा में 'कन्दल' कहते हैं। किसी २ यूनानी लेखक ने इस वृक्ष का नाम 'तसूंस' भी लिखा है।

गुण-दोष और प्रभाव—यूनानी मत—आयुर्वेदीय ग्रन्थों के अन्दर इस औषधि का कोई वर्णन नहीं पाया जाता। मगर यूनानी ग्रन्थों में बहुत प्राचीनकाल से इस औषधि का वर्णन चला आता है। सब से पहिले हकीम डिसकोरिडस ने इस औषधि का रोम देश के एमन नामक देवता के नाम से उल्लेख किया था। सम्भव है, डाक्टरी का एमोनायकम् शब्द उसी के अपभ्रंश से बना हुआ हो।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह औषधि उत्तेजक तथा सूजन और वात को नष्ट करने वाली है। यह कब्जियत को दूर कर आमाशय को साफ करती है। शहद के साथ इसको लेने से मृगी, लकवा और सुन्नवात दूर

होती है। इसका लेप तिल्ली की सूजन और कठोरता को तथा सन्धियों की सूजन को नाश करता है। इसे सिरके में मिलाकर लेप करने से कण्ठमाला और अण्डकोष की सूजन में लाभ होता है। २। माशे की मात्रा में इसको शहद के साथ सेवन करने से मृगी में लाभ होता है। इसको सिकंजबीन के साथ चाटने से और पेट पर इसका लेप करने से यकृत, प्लीहा और जलोदर के रोगों का नाश होता है। यह कृमिनाशक भी है। इसको अफसन्तीन के काढ़े के साथ लेने से पेट के कीड़े मरकर निकल जाते हैं। यह गुर्दे और बस्ति की पथरी को तोड़कर निकाल देती है।

पुरानी खाँसी और दमे के रोगों में भी कफ-निस्सारक होने की वजह से यह बहुत लाभ पहुँचाती है। शहद के साथ चाटने से यह श्वास, कष्ट-श्वास, आमवात, गृध्रसी, इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाती है। यह मूत्र-निस्सारक और आर्तव प्रवर्तक है।

उश्तुरगाज (असारियून)

नाम—अरबी—जंजबीलुल अलम्, जंजबील। फारसी—असारियून।

वर्णन—यह पौधा विशेषकर रोम, बगदाद, अफगानिस्तान इत्यादि के जंगलों में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत—इसकी जड़ मुश्किल से हजम होनेवाली और मेदे को खराब करनेवाली होती है। यह मगज, पुट्ठे, वस्ति और गुर्दे को हानि पहुँचाने वाली है। इसके दर्प को नष्ट करने के लिये खट्टे अनार का शर्बत या उसका रस मुफीद है। इस औषधि का प्रतिनिधि अजदान है।

यह औषधि मूत्र-निस्सारक, आमाशय को बल देने वाली और चौथिया ज्वर को नष्ट करनेवाली है। सन्निपात में भी इससे लाभ होता है। इसका सिरका आमाशय को बल देनेवाला और भूख बढ़ाने वाला होता है।

उसबा मगरबी

नाम—हिन्दी—विलायती अनन्तमूल, विलायती सारिवा, सालसा, उसबा। बंगाली—छालछा, सालसा। गुजराती—उसबो, उसबो मगरबी। अँग्रेजी—Sarsaparilla (सारसापरिला)। तामील—शीमैनन्नारि। तेलगू—सारसबेल। लेटिन—Sarase Redix (सारसी रेडिक्स)

वर्णन—यह औषधि विशेषकर दक्षिणी और मध्य अमेरिका में पैदा होती है। इसकी बेल अनन्तमूल की तरह होती है और इसके गुण भी प्रायः उसी से मिलते-जुलते होते हैं। इसलिए इसे देशी भाषा में विलायती अनन्तमूल या विलायती सारिवा कहते हैं। विलायती सारिवा की जड़ें बहुत लम्बी, सीधी और लचीली होती हैं। देशी सारिवा की जड़ों की तरह वे आधी-टेढ़ी नहीं होतीं।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपड़ा इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं।

'सारसी रेडिक्स' स्माइलेक्स आरनेटा-नाम की एक बेल से पैदा होता है, यह अमेरिका में पाई जाने वाली, इसी प्रकार की एक अन्य वनस्पति से भी पाया जाता है जो कि 'जमेका सार्सापरिला' के नाम से मशहूर है। जमेका बन्दरगाह से बाहर भेजे जाने की वजह से इसका नाम जमेका पड़ा है। इसकी एक और जाति Smilax Officinalis (स्माइलेक्स ऑफिसनेलीस) हाण्डुरस से आती है, लेकिन व्यापारिक दृष्टि से स्माइलेक्स आरनेटा ही उत्तम माना जाता है।

यह वनस्पति कई वर्षों से उपदंश (Syphilis) के इलाज में और पाचन-क्रिया प्रणाली की दुर्व्यवस्था के उपचार में उपयोग में ली जा रही है। चर्मरोगों में भी यह काम में ली जाती है। रक्तशोधक औषधि के रूप में भी यह उपयोगी मानी जाती है। लेकिन आधुनिक अनुसन्धानों से यह सिद्ध हो चुका है कि सार्सापरिला में पाये जानेवाले मुख्य पदार्थ एँझीम (Enzyme), इसेन्शियल ऑइल और सेपानिन (Saponin) ये तीनों ही पदार्थ उपदंश तथा उन अन्य रोगों में, जिनमें यह अधिकता से प्रयोग में आती है, निरुपयोगी हैं। इतना होते हुए भी इससे तैयार किये हुए कई कीमती पदार्थ बाजार में प्राप्त होते हैं और करीब ४००००) साल का सार्सापरिला ब्रिटिश इंडिया में बाहर से आता है।

यूनानी मत—यूनानी चिकित्सक लोग भी इसको रक्तशोधक, सूजन उतारनेवाला, मूत्र-प्रवर्तक, वीर्य को पतला करनेवाला, गुर्दे, वस्ति और जरायु-सम्बन्धी रोगों को नष्ट करनेवाला तथा गठिया, लकवा, चर्मरोग और कष्ट को नाश करनेवाला मानते हैं।

एलोपैथिक डाक्टर इसको धातु-परिवर्तक, मूत्र-निस्सारक और पसीना लानेवाला मानते हैं। मगर कई लोगों के मत से जैसे कि ऊपर कर्नल चोपरा का उदाहरण दिया गया है, इसमें कोई खास प्रभाव नहीं है। फिर भी रक्त-विकार, उपदंश, सन्धिवात, चर्मरोग इत्यादि रोगों में इसको दूसरी औषधि के साथ देते हैं। एक्स्ट्रेटम सार्सि लिक्विडम् तथा लिक्विड एक्स्ट्रेट ऑफ् सार्सापरिला इत्यादि कई वस्तुएँ इसके योग से तैयार की जाती हैं।

सार्सापरिला के समान गुण रखनेवाली दो वनस्पतियाँ भारतवर्ष में पाई जाती हैं। एक तो अनन्तमूल जिसका वर्णन इस ग्रन्थ में पहले दिया जा चुका है और रास्ना (Saccolabium Papillosum) जिसका वर्णन आगे के भागों में किया जायगा। अनन्तमूल के गुण यूरोपियन चिकित्सकों के द्वारा सन् १८६४ से ही मान्य कर लिये गये हैं और उसी समय से ब्रिटिश फर्माकोपिया के अन्दर यह दर्ज कर ली गई है। प्रत्यक्ष-परीक्षण से यह बात तसदीक हो चुकी है कि इसकी उपचारिक योग्यता सार्सापरिला से किसी कदर कम नहीं है।

उस्तखद्दूस

नाम—हिन्दी—धारू, उस्तखद्दूस। अरबी—अनसुलरावाह। फारसी—उस्तखद्दूस। बंगाली—तुनतुना। लैटिन—Brunella Valgaris. (ब्रूनेला व्हलगेरिस), Lavandula Stoechas. (लेवेण्डुला स्टीकास)।

वर्णन—यह औषधि हिमालय के समशीतोष्ण प्रान्त में काश्मीर से भूटान तक ४६०० से ११००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। इसी प्रकार खासिया पहाड़ी, नीलगिरी, ट्रावनकोर तथा उत्तरी समशीतोष्ण कटिबन्ध में भी यह पाई जाती है। इसका पौधा जाड़े के दिनों में पहाड़ों की तर भूमि में पैदा होता है। यह करीब हाथ भर लम्बा होता है। इसके पत्ते गोलाकार और कटी हुइ किनारों के होते हैं। इसके फूल बैंगनी रंग के होते हैं। इस पौधे में एक प्रकार की तीव्र गन्ध आती है। इसके बीज बहुत छोटे-छोटे और श्याम-पीत वर्ण के होते हैं।

गुण-दोष और प्रभाव—यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज तीक्ष्ण और कड़वे होते हैं। ये ज्वर-निवारक, रेचक, पौष्टिक, मूत्रनिस्सारक और परजीवी कीटाणुओं को नष्ट करनेवाले होते हैं। प्रदाह, हृदयरोग, फेफड़े के रोग, खाँसी, श्वास-कष्ट, उन्माद, रगड़, बवासीर, यकृत, तिल्ली और नाक तथा कान की तकलीफों में ये बड़े लाभदायक हैं। ये आँख के पपुटे और कान की पपड़ी के सफेद दागों को मिटाते हैं। वृद्धावस्था जनित दृष्टि की कमजोरी में भी लाभदायक हैं। इसका काढ़ा वातवेदना, आमाशय तथा मृगी में लाभ पहुँचाता है, क्योंकि यह दिमाग का पूरी तरह से संशोधन करता है।

स्टैवर्ट के मतानुसार हिमालय की तलहटी के लोग इसको कफ निस्सारक और आक्षेप निवारक मानते हैं। वे इसके हरे पत्तों को अरण्डी के तेल के साथ मिलाकर गरम करके बवासीर के ऊपर लगाते हैं।

डायमॉक के मतानुसार इसके फूल से एक प्रकार का तेल तैयार किया जाता है जो खून को बन्द करने में और घावों को पूरने के काम में आता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कफनिस्सारक और कृमिनाशक है, यह पेट के आफरे को दूर करने वाली, प्रदरनाशक और शोथ इत्यादि रोगों को उपशम करनेवाली है। इसमें इसेन्सियल ऑयल और कटुतत्त्व पाया जाता है।

उपयोग—उदर रोग—दो भाग उस्तखद्दूस और एक भाग कबर की जड़ को पीसकर शहद के साथ चाटने से बवासीर, सूजन, जलोदर, तिल्ली और यकृत की वृद्धि में लाभ पहुँचता है।

मृगी—अकरकरा और सिकंजबीन के साथ इसका उपयोग करने से मृगीरोग में लाभ होता है।

उस्तखद्दूस की गोली—पीली हरड़, काबुली हरड़, प्रत्येक १० माशे, निसोत २ तोला, एलुआ पौने दो तोला, उस्तखद्दूस, गारीकून, वसफैज और अफ्तीमून प्रत्येक दस २ माशे, इन्द्रायन का गूदा ५ माशे, लौंग और पहाड़ी पुदीना चार २ माशे, इन सब औषधियों को कूट-पीसकर गोलियाँ बना लें। ये गोलियाँ मस्तक और सारे शरीर के दोषों का शोधन करती हैं। मालीखोलिया नामक उन्माद में भी ये बहुत लाभ पहुँचाती हैं।

सुंघनी उस्तखद्दूस—उस्तखद्दूस २ तोला, ऊदसलीब १ तोला, कुंदश १ तोला, अरीठे की छाल ६ माशा, काली मिर्च ३ माशा, कपूर २ माशा, नौसादर ४ रत्ती, सब चीजों को कूट-पीस छानकर रख लें। इस औषधि को सूंघने से मस्तक के सब विकारों का नाश होता है।

शर्बत उस्तखद्दूस—उस्तखद्दूस १६ तोला, बस्फाइज, बिल्लीलोटन और गावजवां प्रत्येक तीन ३ तोला, इनका विधिवत् १ सेर शक्कर में शर्बत तैयार कर लें। यह शर्बत चार तोला की मात्रा में १२ तोला अर्क गावजवां के साथ लेने से विस्मृति और भ्रम में बड़ा लाभ होता है। (आयुर्वेदीय-कोष)

उक्षि

नाम—संस्कृत—श्वेतधातकी। मराठी—उक्षि। मध्यप्रान्त—कोहरंज। तैलगू—आदिविज्म। उड़िया—कुकुंडिया। तामील—मिनरगोदि। लेटिन—Calycopteris Floribunda (कालिकोपटेरिस फ्लोरिबन्दा)।

वर्णन—यह औषधि पश्चिमी प्रान्त, आसाम, चटगाँव, उत्तर दक्षिणी बर्मा तथा मलाया में पैदा होती है। यह एक प्रकार की पराश्रयी वनस्पति है। इसकी शाखाएँ बड़ी नाजुक होती हैं। इसके पत्ते गोल और बरछी के आकार के होते हैं। इसके फूल पीलापन लिये हुए हरे रंग के होते हैं। इसकी पुष्प-कटोरी रुएँदार होती है।

गुण-दोष और प्रभाव—इसके पत्ते विरेचक और कृमिनाशक माने जाते हैं। इनका रस सूतिकाज्वर में लाभदायक समझा जाता है। ज्वर उतारने के लिये शरीर पर इस रस का मालिश भी किया जाता है।

इसके पत्ते कड़ुवे और संकोचक हैं। इनका रस उदरशूल की बीमारी में मुफीद है। इसकी जड़ को चूका (खाटी भाजी) के रस में पीसकर तथा मिलाकर सर्पदंश के ऊपर लगाने से काम में ली जाती है। इसका फल पीलिये की बीमारी में लाभदायक है।

बापट के मतानुसार समशीतोष्ण आब हवा वाले प्रान्तों में इसकी जड़ सर्पदंश के उपचार में विशेष उपयोगी होती है मगर केस और महेस्कर के मतानुसार सर्पदंश के उपचार में इसकी जड़ बिल्कुल निरुपयोगी है।

कम्बोडिया में इसका शीतल क्वाथ प्रसूति के बाद १५ रोज तक प्रसूता को दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कड़वी, संकोचक, कृमिनाशक और विरेचक है। यह उदरशूल और सर्पदंश में उपयोगी है।

उपयोग—पाण्डुरोग—उक्षि के फलों का चूर्ण, जायफल, जायपत्री, लवंग, इलायची, दालचीनी और छाड़छड़ीला, इन सब का चूर्ण करके दो २ माशे की मात्रा में शहद के साथ देने से पाण्डुरोग में लाभ होता है।

आग से जलने पर—आग से जले हुए स्थान पर इसके फलों की राख तेल में मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

ऊँटकटारा

नाम—संस्कृत—उष्ट्रकण्टकः, कण्टफलः, करभादनः, वृत्तगुच्छ, कण्टालु, इत्यादि। हिन्दी—ऊँटकटारा। मराठी—उटकटीरा। गुजराती—उतकण्टो, शूलियो। अरबी—अस्तरखर। बंगाली—ठाकुरकांटा। अँग्रेजी—Thistle (थिस्टल)। लेटिन—Echinops Echinatus (एकिनोप्स एकिनटस)

वर्णन—यह एक प्रकार का बहुशाखी पौधा होता है। इसकी शाखाएँ जड़ से फूटती हैं। इसके पीले रंग के डोड़े लगते हैं, जिन पर कांटे होते हैं। इस वनस्पति को ऊँट बहुत प्रेम से खाते हैं। यह पौधा मध्यभारत, मालवा, मारवाड़, संयुक्तप्रान्त तथा दक्षिण में बहुतायत से पैदा होता है।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से ऊँटकटारा चरपरा, कड़वा, कफ-वातनाशक, हलका, रुचिकारक, गरम, वीर्यवर्द्धक तथा मूत्रकृच्छ्र, पित्तवात, प्रमेह, तृषा, हृदयरोग और बिस्फोट को दूर करने वाला है। इसके बीज शीतल, वीर्यवर्द्धक, तृप्तिकारक और मधुर हैं। इसकी जड़ें गर्भस्रावक और कामोद्दीपक है।

प्रसूतिकष्ट और ऊँटकटारा—इस औषधि के अन्दर एक और चमत्कारिक गुण देखने में आता है। वह यह कि प्रसव काल के समय में जब कोई स्त्री भयंकर रूप से कष्ट पा रही हो और अनेक उपचार करने पर भी उसका प्रसव न होता हो, उस समय में इसकी जड़ को पानी के साथ घिसकर एक रुपये भर की मात्रा में पिलाने से तुरन्त प्रसव हो जाता है। उपर्युक्त कार्य में यह औषधि ऐसे समय में काम करती है, जब कि अच्छी २ दाइयें और मिडवाइफें भी निराश हो जाती हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति कड़वी, अग्निप्रवर्द्धक और ज्वर-निवारक है। यह यकृत् को उत्तेजना देने वाली और क्षुधावर्द्धक है। आँखों की तकलीफ, जीर्णज्वर, जोड़ों के दर्द और मस्तक की बीमारियों में भी यह लाभदायक है। इसकी जड़ कामोद्दीपक, पौष्टिक और मूत्र-निस्सारक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह वनस्पति अग्निवर्द्धक, स्नायु-मण्डल को बल देनेवाली तथा मन्दाग्नि, कण्ठमाला, गुल्मवायु और खांसी में हितकर है।

उपयोग—प्रमेह—इसकी जड़ की छाल ३ माशे, गोखरू ३ माशे और मिश्री ६ माशे, इन तीनों का बारीक चूर्णकर सबेरे-शाम दूध के साथ सेवन करने से प्रमेह की शिकायत मिटती है।

ऊँटकटारे की जड़ की छाल पीस-छानकर उसका चूर्ण करके रख देना चाहिए। फिर मुगली वेदाना १ और मिश्री २ तोला, इन सब को रात्रि के समय पावभर पानी में भिगो देना चाहिये। सबेरे उस पानी को मल छानकर उसमें उपर्युक्त चूर्ण ६ माशे की मात्रा में डालकर पी लेना चाहिये। इस योग के सेवन से पुराना प्रमेह और सुजाक नष्ट होकर वीर्यवृद्धि और पुरुषार्थवृद्धि होती है।

मन्दाग्नि—इसकी जड़ की छाल का चूर्ण और छुहारे की गुठली का चूर्ण, तीन २ माशे लेकर फंकी लेने से मन्दाग्नि में लाभ होता है।

खांसी—इसकी छाल के चूर्ण को पान में रखकर खाने से कफ की खांसी मिटती है।

मूत्रकृच्छ्र—तालमखाना और मिश्री के साथ इसकी जड़ की छाल की फंकी देने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

पुरुषार्थवृद्धि—इसकी जड़ की छाल १ तोला लेकर उसे कुचलकर पोटली में बांधकर आधा सेर गाय का दूध और १ सेर पानी में औटावें। उसमें चार खारक भी डाल दें। जब पानी जलकर दूध मात्र रह जाय तब उस पोटली को निकालकर फेंक दें और उस दूध को पी लें। यह दूध अत्यन्त कामशक्तिवर्द्धक है।

सर्पदंश—ऊँटकटारे की जड़ को पानी में पीसकर लेप करने से और उसको पीने के सर्प और बिच्छू के विष में लाभ होता है।

ऊदसलीब

नाम—हिन्दी—ऊदसालप। काश्मीर—मिदु। उत्तर-पश्चिमी प्रान्त—चन्द्र। पञ्जाब—ममेख। उर्दू—ऊदसलीब। इङ्गलिश—Official Peony (आफिशियल पीओनी)। लेटिन—*Paeomia Emodi* (पीओनिया एमोडी)।

वर्णन—यह औषधि पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से कुँमायू तक पैदा होती है। यह पौधा बहुशाखी होता है। इसका तना ऊँचा होता है। इसके फूल खूबसूरत और तादाद में कम होते हैं और इसके पत्ते गाजर के पत्तों की तरह होते हैं। फूलों का रंग नीला होता है और उनमें ४-५ पंखड़ियाँ होती हैं तथा उनके बीच में पीले रंग का जीरा होता है। इसके फल गोल और ग्रन्थिनुमा होते हैं। इन ग्रन्थियों में इसके बीज रहते हैं।

गुण-दोष और प्रभाव—प्राचीन यूनानी हकीमों ने इस औषधि की जड़ की, गर्भाशय सम्बन्धी बीमारियों, मृगी, आक्षेप, जलोदर, शूल इत्यादि रोगों के लिए बड़ी प्रशंसा की है।

इसकी जड़ें दो प्रकार की होती हैं। ये स्वाद में मीठी और तिक्त होती हैं। ये क्षुधा को नष्ट करनेवाली तथा मृगी, सिरदर्द, गर्भाशय के रोग और मूत्राशय की व्याधियों के लिए मुफीद हैं। दूध के साथ इसका उपयोग करने से रक्त-विकार की बीमारी में बड़ा लाभ पहुँचाती हैं। मूत्रावरोध और कफ के साथ खून जाने में भी यह उपयोगी है।

इस वनस्पति की गांठें गर्भाशय-सम्बन्धी इलाज की उपयोगिता के लिए मशहूर हैं। ये उदरशूल, जलोदर, अपस्मार, गुल्मवायु, आक्षेप और तानों की बीमारी में भी लाभदायक हैं। यूनानी हकीम इस औषधि को मृगी के लिए अचूक और रामबाण इलाज मानते हैं। बच्चों की पथरी में भी वे इसे उपयोगी मानते हैं।

डायमॉक का कथन है कि हकीम जालीनूस के समय से यूनानी हकीमों का यह ख्याल है कि इसके बीजों को किसी ताबीज में बन्द करके बच्चों के गले में लटकाने से उसे चाहे कितनी ही पुरानी मृगी हो वह दूर हो जाती है। इस थैली से बच्चे की दोनों तरफ से रक्षा होती है अर्थात् मृगी का दौरा भी रुक जाता है और रोग-निवारण भी हो जाता है। यूरोप के किसानों का यह विश्वास है कि इन बीजों को धारण करने से बच्चों को दाँत आने के

समय की तकलीफें नहीं होतीं। मगर आधुनिक खोजों ने प्रगट कर दिया है कि इन सब विश्वासों को कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। यद्यपि किसी २ ने कफवात, मृगी एवं कुक्कुर खांसी में इसके लाभदायक होने का उल्लेख किया है, पर इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध के प्रमाण बहुत कमजोर हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि उदरशूल तथा पित्त सम्बन्धी तकलीफों में उपयोगी है। इसके बीज वमनकारक और विरेचक हैं। ये मृगी की बीमारी में काम में लिये जाते हैं। इनमें ग्लुकोसाइड रहता है।

ऋद्धि

नाम—संस्कृत—ऋद्धि, प्राणप्रिया, वृष्या, प्राणदा, जीवदात्री, लोककान्ता, जीवश्रेष्ठा, इत्यादि।

वर्णन—ऋद्धि आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध अष्टवर्ग की एक औषधि है। ऐसा ख्याल किया जाता है कि अष्टवर्ग की औषधियाँ इस समय या तो दुष्प्राप्य हैं अथवा उन्हें पहिचाननेवाला कोई भी नहीं है, फिर भी आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस औषधि की पहिचान को लिखते हुए लिखा है कि ऋद्धि लता जाति की औषधि होती है। इस लता की जड़ में से एक कन्द निकलता है, जो कपास की गाँठ के समान होता है और जिसके ऊपर सफेद रोम होते हैं। यह छिद्रयुक्त होता है। यह लता कौशल पर्वत पर उत्पन्न होती है। इस समय कई लोग अष्टवर्ग की इन औषधियों की छानवीन में लगे हुए हैं। हमको मलेरकौटला के एक वैद्य ने अष्टवर्ग की इन आठों औषधियों को बतलाया था, जो उन्होंने समीपवर्ती हिमालय पहाड़ से प्राप्त की थी। इन औषधियों का रूप और गुण आयुर्वेद में बतलाए हुए लक्षणों से बहुत मिलता-जुलता था और इनके गुणों की भी बड़ी प्रशंसा करते थे। कई सुप्रसिद्ध कविराजों के प्रशंसा पत्र भी उनके कथनानुसार इन औषधियों के सम्बन्ध में उन्हें प्राप्त हुए हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मतानुसार ऋद्धि मधुर, स्निग्ध, मेधाजनक, शीतल, कफकारक, शुक्रवर्द्धक, प्राणदायक, ऐश्वर्यजनक, बलकारक, रक्तशोधक, रुचिकारक, भारी तथा कोढ़, कृमिदोष, मूर्च्छा, रक्त-पित्त, तृषा, क्षय, पित्त, वातरक्त और ज्वर का नाश करनेवाली है।

भाव-प्रकाश के मतानुसार ऋद्धि बलकारक, त्रिदोष-नाशक, वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, प्राणप्रद, ऐश्वर्यजनक तथा मूर्च्छा और रक्तपित्त का नाश करनेवाली है।

यूनानी और वनस्पति-विज्ञान सम्बन्धी दूसरे ग्रन्थों में इसका पता नहीं मिलता।

जिन नुस्खों में ऋद्धि का उल्लेख हो उनमें ऋद्धि न मिलने की हालत में वाराहीकन्द या विदारीकन्द लेना चाहिये क्योंकि ये उसके प्रतिनिधि हैं।

ऋषभक

नाम—संस्कृत—ऋषभक, दुर्धर, द्राक्षा, भूपति, कामी, ऋषिप्रिय, वनवासी इत्यादि।

वर्णन—भावप्रकाश के मतानुसार जीवक और ऋषभक, ये दोनों औषधियाँ हिमालय पर्वत के शिखर पर उत्पन्न होती हैं। इनका कन्द लहसन के कन्द के समान होता है। इनके पत्ते साररहित और बारीक होते हैं। जीवक का आकार बुहारी के समान और ऋषभक का बैल के सींग के समान होता है।

गुण-दोष और प्रभाव—निघण्टु-रत्नाकर के मतानुसार ऋषभक मधुर, शीतल, गर्भसन्धानकारक, वीर्य-वर्द्धक, कफकारक, बलदायक, वीर्यजनक, पुष्टिकारक तथा पित्त, रक्तरोग, रक्तातिसार, दुर्बलता, वातज्वर तथा दाह और क्षय का नाश करने वाला है।

भाव-प्रकाश के मतानुसार जीवक और ऋषभक, बलकारक, शीतल, वीर्यवर्द्धक, कफकारक, मधुर तथा पित्त, दाह, रुधिरविकार, वायु और क्षय को नष्ट करने वाले हैं।

एकवीर

नाम—संस्कृत—एकवीर, महावीर, सुवीरक, एकदिवि, इत्यादि। हिन्दी—एकवीर। मराठी—असाणा। गुजराती—एकलंकटो। आसाम—कोहीर। बंगाल—कंटकोई। तेलगू—बिगालु, पतिंगा। मध्यप्रान्त—कर्क। बांसवाड़ा—अंगनेर। लेटिन—Bridelia Montana (ब्रिडेलिया मोंटेना) B. Retusa।

वर्णन—यह एक प्रकार का मध्यम ऊँचाई का वृक्ष होता है। इसके पत्ते बहुत होते हैं। इनका रंग गहरा हरा होता है तथा ऊपर से ये कुछ मखमली होते हैं। इनमें १५ से लेकर २५ तक धारियां होती हैं। इसकी डालों में अलग २ दूर २ पर बड़े २ कांटे होते हैं। इसके फूल गहरे हरे रंग के और सफेद होते हैं। इसके फल छोटे २ बेर की तरह झूमकों में लगते हैं। ये बैंगनी और काले रंग के होते हैं। यह औषधि हिमालय में झेलम के पूर्व की ओर तथा बिहार, उड़ीसा और बंगाल में पैदा होती है।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह औषधि कड़वी, गरम और वातनाशक होती है। कटिवात, लकवा, अर्द्धाङ्गवायु इत्यादि रोगों में यह लाभदायक है। इस वृक्ष की छाल, मूत्राशय की पथरी में बहुत मुफीद है। इसकी जड़ और छाल एक उत्तम संकोचक औषधि है।

इसकी छाल का लेप सोंठ के तेल के साथ मिलाकर करने से आमवात में बड़ा लाभ होता है।

उपयोग—कृमिरोग—इसके चूर्ण की फंकी देने से पेट के कृमि नष्ट होते हैं और वीर्य पुष्ट होता है।

अतिसार—बेलगिरी और मिश्री के साथ इसके चूर्ण की फंकी देने से अतिसार मिटता है।

एरक

नाम—संस्कृत—एरका, गुन्द्रमूला, शिम्बि, गुन्द्रा, शरी। हिन्दी—एरक, गोन्दपटोर, मोथीतृण। मारवाड़ी—एरो। बंगाली—होंगला। बम्बई—रामबाण। मराठी—एरका, पाणलव्हाणा। गुजराती—एरका। पंजाब—पतीर। तामील—चम्बु। तैलगू—जम्मूगड्डे। लेटिन—Typha Alephantina (टायफा एलिफाण्टिना)

वर्णन—यह कीचड़ में पैदा होने वाली एक वनस्पति है। इसके पत्ते घास की तरह लम्बे और सीधे रहते हैं, जो मूल से ही निकलते हैं, इनकी चौड़ाई इञ्च सवा-इञ्च रहती है। इसके फूल के झाँवरे मूल से ही पैदा होते हैं। इसके फूल नर और नारी दो प्रकार के होते हैं। इसके पत्तों के बीच में एक लम्बी डण्डी होती है। उस पर एक फुट लम्बा एक रुएँदार सिट्टा लगता है। यह भारतवर्ष में सभी ओर नदियों-तालाबों के किनारे होता है।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति शीतल, कामोद्दीपक, नेत्रों को फायदा पहुँचाने वाली तथा पथरी, सुजाक, दाह, रक्त पित्त और तिल्ली बढ़ने के रोग में लाभदायक है। यह वात को कुपित करती है।

इसके फूलों के तन्तु फोड़े और घावों पर लगाने के काम में लिये जाते हैं। ये अपना गुण उसी प्रकार दिखलाते हैं, जिस प्रकार औषधि युक्त सूती ऊन, जो अस्पतालों में प्रयोग में ली जाती है।

इसकी जड़ संकोचक और मूत्रल है। पूर्वी एशिया में यह पेचिश, सुजाक और खसरे की बीमारी में लगाने के काम में ली जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि ज्वरनाशक, कामोद्दीपक और उत्तेजक है।

उपयोग—व्रण—इसके पके हुए सिट्टे की रूई व्रण और क्षत पर लगाई जाती है।

शीत-पित्त—इसको जल में औटाकर स्नान करने से शीत-पित्त में लाभ होता है।

सुजाक—इसकी जड़ को मिश्री के साथ औटाकर, छानकर, ठण्डाकर पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

ओखराढ्य

नाम—संस्कृत—ओखराड़ी, भिस्सता। हिन्दी—ओखराढ्य, गन्धिबुद्धि। गुजराती—धोलो ओखराड़। बंगाली—ओखड़। लेटिन—Mollugo Hirta (मोल्यूंगो हिरटा।

वर्णन—यह औषधि प्रायः सारे भारत, सीलोन और संसार के अन्य उष्ण भागों में पैदा होती है। यह एक वर्षजीवी वनस्पति है। इसका पेड़ एक से तीन फुट तक ऊँचा होता है। इसके फूल हलके गुलाबी रंग के रहते हैं। इसकी फलियां लम्बी और गोलाई लिए हुए रहती हैं। इसमें बहुत से बीज रहते हैं। उनका रंग काला रहता है।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—यह औषधि पेशाब रुकने पर तथा सुजाक की बीमारी में बहुत हितकारी है। इसको पीसकर सिरपर लगाने से सिर का व्रण, खुजली, दाद और सूजन दूर हो जाती है।

इसके सूखे पत्ते सिन्ध में अतिसार रोग में और पंजाब में उदररोगों में विरेचक औषधि की तरह दिये जाते हैं। हक्सबूलर के मतानुसार यह औषधि लासबेला में फोड़े, घाव और पित्तजन्य तकलीफों के उपयोग में ली जाती है। कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह खुजली और चर्मरोगों में लगाने के काम में ली जाती है।

उपयोग—कफरोग—बच्चों के कफ रोग में इसकी जड़ की भस्म देने से लाभ होता है।

रक्तविकार—इसके सूखे पत्तों के पंचांग का क्वाथ कर, उस पर थोड़ी राई भुरभुराकर पिलाने से रक्त शुद्ध होता है।

पुराने व्रण—इसके पंचांग की भस्म और कालीमिर्च को तेल में मिलाकर लगाने से पुराने व्रण अच्छे होते हैं।

पेशाब का रुकना—इसके पंचांग और कालीमिर्च को ठण्डाई की तरह घोट, छानकर पिलाने से पेशाब की रुकावट दूर हो जाती है।

ओट

नाम—संस्कृत—लामफल, वक्त्रशोधन, भव्य, भव्यफल इत्यादि। हिन्दी—ओट, दंपेल। मराठी—जरंबी, ओटीचे फल। बंगाली—चालत। गुजराती—ओटफल। तेलगू—सीता कमरखु। तामील—पचलई, तमालू। लेटिन—Garcinia Xanthochymus (गारसीनिया एक्सन्थोचाइमस)।

वर्णन—ओट का वृक्ष सीधा और बड़ा होता है। इसकी शाखायें चारों ओर भिन्न २ दिशाओं में फैलती हैं। इसके तने तथा बड़ी डालों की छाल, चौथाई इञ्च मोटी, खरदरी और चमकदार होती है। इसमें बहुत सी छोटी २ दरारें होती हैं। इसके पत्ते आठ दस इञ्च लम्बे, तीखी नोकवाले, चमकीले और कटे हुए किनारों के होते हैं। इसके फूल सफेद और पीले रंग के तथा खुशबूदार होते हैं। ये नर और नारी दो प्रकार के होते हैं। ये वर्षाऋतु में आते हैं। इसका फल मध्यम श्रेणी की नासपाती के बराबर होता है। यह चिकना और नुकीला रहता है। इसमें एक से लगाकर चार तक बीज रहते हैं। यह पकने पर बिलकुल गहरे पीले रंग का हो जाता है। इसके फल के भीतर का गूदा चिकना रहता है। यह फल पौष-माघ में पकता है।

गुण-दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका कच्चा फल खट्टा, चरपरा, गरम तथा वात और कफ को नष्ट करनेवाला होता है तथा इसका पका फल मीठा-कुछ खट्टा, रुचिकारक, शूल और श्रमनाशक, आक्षेपनिवारक, त्रिदोष-नाशक तथा हृदय-सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाला होता है। इसके सूखे फल से तैयार किया हुआ अमसूल ढाई तोला लेकर, थोड़ा सेंधानमक, कालीमिर्च, सोंठ, जीरे और शक्कर के साथ शर्बत बनाकर लेने से पित्त सम्बन्धी शिकायतें दूर होती हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पित्त-जन्य बीमारियों में लाभदायक है।

बनौषधिगुणादर्श के मतानुसार इसके फल की बनाई हुई अमसूलें दूसरी अमसूलों की अपेक्षा विशेष पथ्यकारक होती हैं। दूसरी अमसूलें रक्त-शोधक होती हैं, मगर इस फल की अमसूलें रक्त को बढ़ानेवाली होती हैं। ओट के फल का रायता व लोणचा बड़ा स्वादिष्ट होता है। इसके फलों के रस में शक्कर, जीरा और मिर्च डालकर बनाया हुआ शर्बत शीत-पित्तशामक, पथ्यकर, रुचिवर्द्धक और दीपक होता है। प्रसूता स्त्रियों के लिये ओट के फल का सार-पथ्यकर होता है।

उपयोग—ज्वर का दाह—इसके फल के रस में मिश्री और जल मिलाकर पीने से ज्वर का दाह मिटता है।

खाँसी—इसके फल के रस में शहद मिलाकर पीने से खाँसी मिटती है।

अतिसार—इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से अतिसार में लाभ होता है।

ओगई

नाम—पंजाब—ओगई। लेटिन—Astragalus Tribuloides (एस्ट्रागेलस ट्रिब्यूलाइडस)

वर्णन—यह औषधि पंजाब, अफगानिस्तान और इजिप्ट में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके बीज शान्तिदायक औषधि के तौर पर काम में लिये जाते हैं। यह औषधि कोठे को मुलायम करनेवाली है।

ओलंकराइ

नाम—मराठी—ओलङ्कराइ। तामील—उलंगराई। बंगाल—जलपाई। कनाड़ी—पेरिंकर। मलाया—पेरुंकर। संस्कृत—चिरिबिलु। उड़िया—जुलोपारि।

वर्णन—यह औषधि पश्चिमी प्रायद्वीप, सीलोन और मलाया में पैदा होती है। यह एक प्रकार का छोटा वृक्ष होता है। इसके पत्ते तीखी नोक वाले और कटे हुए किनारों के होते हैं। इसके फूल नीचे की बाजू झुके हुए और गुच्छों में लगे हुए रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते आमवात में लाभ पहुँचाते हैं तथा ये विषनाशक हैं। इसके फल पेचिश और रक्तातिसार में लाभदायक हैं।

ओसदी

नाम—बंगाल—डोकंटि। बम्बई—ओसदी। सीलोन—पंपिलु। गुजराती—अजगंध। मराठी—गनेसैसदि। लेटिन—Ageratum Conyzoides (एगेरेटम कोनीझोइडस)

वर्णन—यह औषधि सारे भारतवर्ष और गरम देशों में पैदा होती है। यह एक मध्यम कद का सीधे तने वाला वृक्ष होता है। इसके पत्ते एक दूसरे के आमने-सामने होते हैं। ये गोलाकार और नोकदार होते हैं। इनका पत्र-वृंत रूयेंदार होता है। इसके फूल हलके नीले रंग के होते हैं। इसकी फली काले रंग की होती है, जिसमें बीज होते हैं।

गुण-दोष और प्रभाव—इण्डियन मेडिसिनल प्लांट्स के मतानुसार इसके पत्ते घावों के ऊपर रक्तस्राव को रोकने वाली औषधि के बतौर लगाये जाते हैं। इनके लगाने से घाव जल्दी ही भर जाता है। इसकी जड़ के रस में बहुत गुण होते हैं। पथरी के रोग को नष्ट करने में यह औषधि अपना खास प्रभाव रखती है। यह कृमिनाशक भी होती है।

जूड़ी के बुखार में यह औषधि बाह्योपचार के काम में ली जाती है। इसका रस गुदा की पीड़ा में बहुत लाभदायक है। गुदा-निर्गमन में यह मुफीद है।

सीलोन में इसके पत्ते घाव पर लगाने के लिए तथा इण्डोचायना में इसकी जड़ और पत्ते पेचिश रोग को दूर करनेवाले माने जाते हैं। मेडागास्कर और लॉरियूनियन में इसके पत्ते और डालियाँ चर्म रोग और कुष्ठ रोगों में बफारा देने के उपयोग में लिए जाते हैं। इसके पत्तों की पुल्टिस अर्बुद पर बाँधी जाती है। अगर यह दवा घाव पर लगाई जाय तो उसे साफ कर देती है। इसका शीतनिर्यास एक नेत्ररोगों में डालने के काम में लिया जाता है।

ब्राझील और गायना में इसका शीतनिर्यास एक उत्तेजक पौष्टिक पदार्थ के रूप में दिया जाता है। ये रक्तातिसार और वातजन्य उदरशूल में उपयोगी हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पथरीरोग में खासतौर से लाभदायक है। इसमें एक प्रकार का इसेंशियल ऑइल् पाया जाता है।

(पहला भाग समाप्त)

महत्त्वपूर्ण चिकित्सोपयोगी ग्रन्थ—

अभिनन्दनग्रन्थ (श्री सत्यनारायण शास्त्री जी का) १५—००
अभिनव विकृति विज्ञान—आचार्य त्रिवेदी २२—००
अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान—श्री प्रियव्रत शर्मा १०—००
अष्टाङ्गसंग्रहः—'अर्थप्रकाशिका' हिन्दीटीका सूत्रस्थान ८—००
अष्टाङ्गहृदयम्—सविमर्श विद्योतिनी हिन्दी व्याख्या १५—००
अष्टाङ्गहृदय—मूलमात्र ४—००
आयुर्वेद प्रदीप—डा० गंगासहाय पाण्डेय १२—००
आयुर्वेदप्रकाशः—संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या १२—५०
आयुर्वेदविज्ञानम्—विद्योतिनी हिन्दी टीका २—००
आसवारिष्टविज्ञान—आचार्य पक्षधर झा ३—००
एलोपैथिक पाकेट प्रेस्क्राइबर—शिवनाथ खन्ना ५—००
एलोपथिक मिक्श्चर्स—डा० राजकुमार द्विवेदी २—५०
औपसर्गिक रोग—(परिवर्धित संस्करण) डा० घाणेकर
प्रथम भाग १०—०० द्वितीय भाग १२—००
काकचण्डीश्वर कल्पतन्त्रम्—हिन्दी टीका २—००
कामकुञ्जलता—ढुण्ढिराज शास्त्री २०—००
हिन्दी कामसूत्रम्—(जयमंगला टीका सहित) १६—००
कायचिकित्सा—डा० गङ्गासहाय पाण्डेय २५—००
कायचिकित्सा—श्रीरामरक्ष पाठक १-२ भाग २५—००
काश्यपसंहिता—विद्योतिनी हिन्दी टीका १६—००
कौमारभृत्य—आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी ८—००
क्लिनिकल पैथोलोजी—डा० शिवनाथ खन्ना १२—००
सचित्र क्रियात्मक ओषधि परिचय विज्ञान—
विश्वनाथ द्विवेदी १२—००
गदनिग्रह—हिन्दी टीका सहित १-३ भाग ६५—००
गर्भरक्षा तथा शिशु परिपालन—डा० वर्मा ४—५०
चक्रदत्त—'भावार्थसन्दीपनी' हिन्दी टीका १०—००
चरकसंहिता—'सविमर्शविद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या ३६—००
चरक तथा काश्यप संहिता का निर्माणकाल—
रघुवीरशरण शर्मा २—००
चौखम्बा-चिकित्सा-विज्ञानकोश २०—००
द्रव्यगुणविज्ञान—श्री प्रियव्रत शर्मा १-३ भाग २३—००
त्रिदोषविज्ञानम्—उपेन्द्रनाथ दास हिन्दी टीका ४—००
नव्य-चिकित्सा-विज्ञान—डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा
प्रथम भाग ८—००, द्वितीय भाग ८—००
निघण्टुआदर्श—वैद्य बापालाल हिन्दी प्रथम भाग ३५—००
पञ्चभूतविज्ञानम्—उपेन्द्रनाथ दास हिन्दी टीका ४—००
पञ्चविध कषाय कल्पना विज्ञान—डा० अग्निहोत्री १—५०
परिभाषा-प्रबन्ध—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल २—५०
पेटेण्ट प्रेस्क्राइबर—डा० रमानाथ द्विवेदी १०—००
प्रसूति विज्ञान—डा० रमानाथ द्विवेदी १२—००
प्रारम्भिक उद्भिद् शास्त्र—प्रो० बलवन्त सिंह ४—५०
प्रारम्भिक भौतिकी—श्री निहालकरण सेठी ५—५०
प्रारम्भिक रसायन—प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा ४—५०
बीसवीं शताब्दी की ओषधियाँ—डा० वर्मा ८—००
भारतीय रसपद्धति—कविराज अत्रिदेव गुप्त १—५०
भावप्रकाशः—'विद्योतिनी' हिन्दी टीका २९—००
भावप्रकाश-ज्वराधिकारः—विद्योतिनी हिन्दी टीका ५—००
भावप्रकाशनिघण्टुः—डा० गङ्गासहाय पाण्डेय १२—००
भिषक् कर्मसिद्धि—डा० रमानाथ द्विवेदी २०—००
भेलसंहिता—सटिप्पण शोधपूर्ण संस्करण १०—००

भैषज्यरत्नावली—विद्योतिनी हिन्दी व्याख्या १६—००
भैषज्यकल्पनाविज्ञान—डा० अग्निहोत्री ५—००
मर्म-विज्ञान—(सचित्र) श्री रामरक्ष पाठक ३—५०
माधवनिदान—सर्वाङ्गसुन्दरी हिन्दी टीका ४—५०
माधवनिदानम्—'मधुकोष' संस्कृत टीका तथा 'विद्योतिनी'
हिन्दी व्याख्या, विमर्श सहित १४—००
माधवनिदानम्—मधुकोष मनोरमा सं० हिं० व्याख्या यन्त्रस्थ
यकृत के रोग और उनकी चिकित्सा २—००
योग-चिकित्सा—अत्रिदेव गु ३—५०
योगरत्नाकर—मूलमात्र ६—००
योगरत्नाकर—विद्योतिनी हिन्दी टीका २०—००
रसकौमुदी—हिन्दी टीका सहित १—५०
रसचिकित्सा—कविराज प्रभाकर चट्टोपाध्याय ६—
रसरत्नसमुच्चयः—सुरत्नोज्वला हिन्दी टीका १२-
रसरत्नसमुच्चय—मूलमात्र ३—००, ३-
रसादि परिज्ञान—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल २
रसार्णवं नाम रसतन्त्रम्—भाषा तथा टिप्पणी सहित ३-
रसेन्द्रसारसंग्रहः—रसचन्द्रिका हिन्दी टीका ७—०
रसेन्द्रसारसंग्रहः—'गूढार्थसंदीपिका' संस्कृत व्याख्या ५—००
राजमार्तण्ड—हिन्दी टीका सहित २—५०
रोगनामावली कोष—वैद्य दलजीत सिंह ३—५०
रोग परिचय—डा० शिवनाथ खन्ना १५—००
रोगि-परीक्षा विधि—श्री प्रियव्रत शर्मा ६—००
रोगी परीक्षा—डा० शिवनाथ खन्ना ७—००
रोगी-रोगविमर्श—डा० रमानाथ द्विवेदी २—००
लोहसर्वस्व—हिन्दी टीका सहित २—००
वनौषधि चन्द्रोदय—(विशाल निघण्टु ग्रन्थ)
१-१० भाग। प्रत्येक भाग ५—००, संपूर्ण ४०—००
वाग्भटविवेचन—प्रियव्रत शर्मा २०—००
विषविज्ञान और अगदतन्त्र—रमानाथ द्विवेदी २—००
वैद्यक परिभाषाप्रदीप—प्रदीपिका हिन्दी टीका १—५०
वैद्यकीय सुभाषितावली—डा० प्राणजीवन मेहता २—००
वैद्यकीयसुभाषितसाहित्यम्—डा० घाणेकर २५—००
व्यवहारायुर्वेद-विषविज्ञान-अगदतन्त्र—डा० द्विवेदी ५—००
शल्यप्रदीपिका । मुकुन्दस्वरूप वर्मा १५—००
शार्ङ्गधरसंहिता—सुबोधिनी हिन्दी टीका ५—००
शालाक्यतन्त्र—डा० रमानाथ द्विवेदी १०—००
सचित्र-इन्जेक्शन—डा० शिवनाथ खन्ना ११—००
सामान्य रोगों की रोकथाम—डा० प्रियकुमार चौबे ३—५०
सिद्धभेषज संग्रह—डा० गङ्गासहाय पाण्डेय ७—००
सिद्धान्तनिदान । गणनाथ सेन । १-२ भाग १४—००
सुश्रुतसंहिता—आयुर्वेदतत्त्वसंदीपिका हिन्दी टीका २४—००
सुश्रुत-शारीर स्थान—'प्रभा'-'दर्पण' हिन्दी व्याख्या ४—००
सूचीवेध विज्ञान—डा० राजकुमार द्विवेदी २—५०
सौश्रुती—डा० रमानाथ द्विवेदी १०—००
स्त्रीरोग-विज्ञान—डा० रमानाथ द्विवेदी ३—५०
स्वास्थ्यविज्ञान—डा० घाणेकर ९—००
स्वास्थ्यसंहिता—हिन्दी टीका, नानकचन्द वैद्य २—५०
स्वास्थ्यशिक्षापाठावली—डा० घाणेकर ३—५०
हिन्दी प्रत्यक्षशारीर—गणनाथ सेन १-२ भाग २५—००

प्राप्तिस्थान—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, पो० बा० ८, वाराणसी-१

GOODWILL INDIA

CREDIT

CASH BOOK for ....

Receipt & Vr. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH Rs.	CASH P.	TOTAL Rs.